वैद्यक-शिक्षा।

अर्थात्

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, भावप्रकाश, चक्रदत्त,
शार्ङ्गधर, रसेन्द्रसार-संग्रह, रसेन्द्रचिन्तामणि,
तथा भैषज्य-रत्नावली, आदि आयुर्व्वेद-
ग्रन्थोंके अवलम्बन से बनाई

**आयुर्व्वेद-शास्त्रके यावतीय जानने लायक
विषयों की सचित्र पुस्तक।**

पञ्चम संस्करण।

गवर्णमेण्ट मेडिकेल डिप्लोमाप्राप्त, पैरिस केमिकल सोसाइटी,
लण्डन सर्जिकेल एड् सोसाइटी और लण्डन केमिकल
इण्डष्ट्री के मेम्बर तथा दिल्ली बनवारीलाल
आयुर्व्वेदीय विद्यालय के परीक्षक

कविराज नगेन्द्रनाथ सेन सङ्कलित।

नगेन्द्र ष्टीम् प्रिण्टिंग वार्क्स्—कलकत्ता।

सम्वत् १९९६।

दाम—२) दो रुपये।

वैद्यक-शिक्षा।

अर्थात्

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, भावप्रकाश, चक्रदत्त,
शार्ङ्गधर, रसेन्द्रसार-संग्रह, रसेन्द्रचिन्तामणि,
तथा भैषज्य-रत्नावली, आदि आयुर्व्वेद-
ग्रन्थोंके अवलम्बन से बनाई

**आयुर्व्वेद-शास्त्रके यावतीय जानने लायक
विषयों को सचित्र पुस्तक।**

पञ्चम संस्करण।

गवर्णमेण्ट मेडिकेल डिप्लोमाप्राप्त, पैरिस केमिकेल सोसाइटो,
लण्डन सर्जिकेल एड् सोसाइटो और लण्डन केमिकल
इण्डष्ट्री के मेम्बर तथा दिल्ली बनवारीलाल
आयुर्व्वेदीय विद्यालय के परीक्षक

कविराज नगेन्द्रनाथ सेनगुप्त सङ्कलित।

नगेन्द्र-स्टीम्-प्रिण्टिंग वर्क्स—कलकत्ता।
सम्वत्—१९९६।

दाम—२) दो रुपये।

कलकत्ता,

१७ नं० लीवर चितपुर रोड,

नगेन्द्र-स्टीम्-प्रिण्टिंग वर्क्स में

श्रीउपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा मुद्रित

तथा

१८।१ व १९ नं० लोवर चितपुर रोड से

श्रीराधापद सेन वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित।

प्रस्तावना।

——:०:——

आयुर्वेद-चिकित्सापर जो साधारणका मनोयोग दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है, यह अवश्य बड़े आनन्दका विषय है। जिन सब असाधारण गुणोंके वलसे आयुर्वेद चिकित्सा सब चिकित्सासे श्रेष्ठ है, वही सब रहस्य जाननेके लिये लोग व्यग्र हो रहे हैं। पर आयुर्वेद शास्त्रके सब ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रहनेके सबब दरिद्र भारतवासीको अर्थकरी विद्या अंरेजी आदि सीखनेके बाद संस्कृत पढ़नेका अवसर नही मिलता; सुतरां लोग अपना मनोरथ पूरा करनेमें समर्थ नही होते हैं। साधारणके सुबोतेके लिये कई महात्माओंने कई एक सानुवाद आयुर्वेद ग्रन्थको प्रचारकर संस्कृत न जाननेवालोंको आयुर्वेद शिक्षाका सूबोता किया है। तथापि वर्त्तमान समयमें विविध ग्रन्थ अनुशीलनके लिये चाहिये जैसा अवकाश न रहनेके सबब उक्त ग्रन्थोंसे लोगोंका मनोरथ पूरा नही हो सकता। इधर बहुतेरे लोग हिन्दी भाषाके केवल एक ग्रन्थसे चिकित्सा शास्त्रकी सब बातें जानना चाहते हैं; ऐसी पुस्तकके अभावसे लोगोंकी प्रवल इच्छा चिकित्साशास्त्र जाननेकी पूरी न होनेसे दुःखित हो रहे हैं। तथा रोगप्रवण भारतवासी प्रत्येक गृहस्थको चिकित्सा विषयमें व्युत्पत्ति होना भी एकान्त आवश्यक हो रही है; कारण बहुतेरे चिकित्सकशून्य स्थानवासीयोंको उपयुक्त चिकित्सकका अभाव और दरिद्रोंको चिकित्सोपयोगी अर्थके अभावसे दारुण रोग यन्त्रणा भोगकर अकालमें कालके कवलमें पड़ते दिखाई देता हैं।

मैंने यही सब बाते विचारकर प्रत्येक मनुष्य सहजमें चिकित्सा कर सकें इस आशासे "वैद्यक-शिक्षा" नामक यह पुस्तक तयार किया हैं। इसमें यथाक्रम स्वास्थ्यरक्षा, रोगपरीक्षा, सब रोगोंका

निदान, लक्षण और प्रणाली, रोग विशेषमें औषध प्रयोग तथा पथ्यापथ्य, काढ़ा औषध, तैल, घृत, मोदक, मकरध्वज आदि बनानेकी विधि और धातु आदिका शोधन, मारण आदि विषय इसमें सन्निवेशित किया गया है। आयुर्वेद-शास्त्रके भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें हरेक रोगोंपर बहुतेरी दवायें लिखी हैं, उनमें से जो जो दवायें प्राय सब चिकित्सकोंके द्वारा व्यवहृत होता है, तथा जो सब दवायें हमारे कुलपरम्परासे व्यवहार कर हजार रोगीयोंपर परीक्षाकर अव्यर्थ स्थिर हुई है; इस ग्रन्थमें वही सब परीक्षित दवायों सन्निवेशित की गई है। अव्यवहृत या कदाचित व्यवहृत दवायें जान बूझकर त्याग की गई है, और कहांतकको साधारण व्यक्तिमात्र जिसमें केवल इसी पुस्तकके सहायतासे बिना किसीका उपदेश लिये चिकित्सा कर सके, तदुपयुक्त यह पुस्तक बनानेकी चेष्टा की गई हैं। अब गृहस्थ मात्र यदि चिकित्सामें व्युत्पत्ति लाभकर परिवारवर्ग और अपने शरीरको नीरोग रख सके तब यह परिश्रम सफल हुआ समझूंगा।

संवत् १९५५, श्रावण।
कलकत्ता।

श्रीनगेन्द्रनाथ सेन कविराज।

पञ्चम संस्करणका विज्ञापन।

सर्व साधारण को सूचित करता हूं कि थोड़ेही दिनमें "वैद्यक-शिक्षा" आपलोगों से समादर लाभ उठाया है। और थोड़ेही दिनमें इसकी चतुर्थ संस्करण भी शेष होगई; पञ्चम संस्करण छप गई हैं। आशा है कि यहभी पूर्ववत् समादर लाभ उठायेंगे।

संवत् १९९६ वैशाख
कलकत्ता।

कविराज श्रीराधापद सेन।

अरण्यकुसुम—हि॰ कुसुम, खस, दाना।

अरण्यकार्पासी—हि॰ बनकपास।

अरण्यकुलत्थिका—हि॰ बन-कुरथी। बं॰ बनकुलत्थ।

अरण्यजीरक—हि॰ बनजीरा।

अरण्यसूरण—हि॰ जङ्गली सूरण।

अरिमेद—हि॰ हिंवर।

अर्क—हि॰ आक, मदार, आकड़ा। बं॰ आकन्द।

अर्द्रक—हि॰ आद्दी, अद्रक। बं॰ आदा।

अशोक—हि॰ अशोका। बं॰ अशोक।

अश्मन्तक—हि॰ सिरहटा, असिमिलीरा।

अश्वखुरा—हि॰ सफेद गोकर्णी, सफेद कीयल। बं॰ हापर माली। श्वेतअपराजिता।

अश्वगन्धा—हि॰ असगन्ध। बं॰ अश्वगन्धा।

अश्वकाथरिका—हि॰ घोड़ेका घरा।

अश्वकर्ण—हि॰ छोटाशाल। बं॰ साज, शाल।

अश्वत्थ—हि॰ पिपरवृक्ष।

अश्वत्थी—हि॰ छोटा पीपल।

असन—हि॰ असन।

असितबन्धूक—हि॰ काली दुपहरिया।

अङ्कोट—हि॰ ढेरा टेरा। बं॰ धल आंकड़ा।

अहिफेन—हि॰ अफीम, अमल-आफ। बं॰ अहिफेन।

आ।

आकाशमांसी—हि॰ आकाश-जटामासी।

आखुकर्णी—हि॰ मूसाकर्णी। बं॰ इंदूरकाणिपाता, कालीदन्ती।

आखुपाषाण—हि॰ सोमल।

आढ़की—हि॰ अरहर, रहरी।

आदित्यपत्र—हि॰ आदित्यपत्र।

आदित्यभक्ता—हि॰ सीचसी, हुहुज।

आमलकी—हि॰ आमला, आमरा। बं॰ आमलकी।

आम्र—हि॰ आम।

एलावालुक—हि० एलवा। बं० एलालु।

एर्वारु—हि० बड़ी ककड़ी।

ऐ

ऐन्द्री—हि० इन्द्रायन। बं० राखालशशा।

औ

औखर—हि० खारी नोन।

औद्भिद—हि० सूर्याखार, रेहगवा, रेहगमानोन, रेहका निमक।

क

कटभी—हि० काली कटभी, करहो।

कट्फल—हि० कायफर। बं० कट्फल।

कटुतुम्बी—हि० कडुई तोरई तितलौकी। बं० तितलाऊ।

कटुका—हि० कुटकी। बं० कटकी।

कटुतुण्डिक—हि० कडुइकंदूरी, कडुई गुलकांख। बं० बनकदरको।

कटुहुची—हि० कडवंची।

कटुनिष्पाप—हि० कड़वा निष्पाव।

कटफल—हि० काय फर। बं० कट्फल, कायफाल।

कणगुग्गुल—हि० कणगूगल।

कतक—हि० निर्मली। बं० निर्मला।

कत्तृण—हि० रोहिस, सौंधिआ, गन्धेज घास। बं० रामकर्पुर।

कदली—हि० केला, केरा।

कदम्ब—हि० कदम्ब, कदम।

कपर्दक—हि० कौड़ी।

कपिलशिंशपा—हि० पीला सिसव।

कपित्थ—हि० कैथ। कयेथबेल।

कमल—हि० कमल। बं० पद्म।

करमर्द—हि० करौंदा, करौंरो। बं० करमचा।

करञ्ज—हि० कञ्जा, कटकरञ्जा।

करञ्जतेल—हि० करञ्ज का तेल।

करीर—हि० करील करेल, करेल।

करुणी—हि० करवीरणी (कोंकण देशमें प्रसिद्ध हैं।)

काष्ठधात्री—हि० छोटा आमला।
काष्ठदारु—हि० काष्ठ देवदार।
काष्ठागरु—हि० काष्ठागर।
कासालु—हि० काजालुं।
कासीस—हि० कसीस।
कुटज—हि० कूड। बं० कुड़ची।
कुटम्बिनी—हि० ऊंधा होली।
कुण्डर—हि० लेसूवा।
कुद्दाल—हि० बनको कोदो। बं० बनकोद्रव।
कुब्जक—हि० कुजा।
कुमुद—हि० सफेद कमल चन्द्रविकाशी।
कुरी—हि० कुरीधान्य।
कुलत्थिका—हि० बनकुरथी।
कुलित्थ—हि० कुलथी। बं० कुलत्थकलाई।
कुलञ्जन—हि० कुलिजन।
कुष्ठ—हि० कूठ। बं० कुड़;
कुसुम्भ तैल—हि० कुसुमके बीजका तेल।
कुष्माण्डी—हि० कुम्हड़ा, कोहड़ा, पेठा। बं० साचिकुमड़ा।
कुमीशङ्क—हि० कुमीशङ्क।

कृष्णजीरा—हि० शाहजीरा।
कृष्णत्रिवत्—हि० काली निसौथ। बं० श्यामतेउड़ी।
कृष्णकुटज—हि० कालाकूड़ा।
कृष्णकरवीर—हि० काली कनेर। बं० कृष्णकरवी।
कृष्णधत्तूर—हि० काला धतूरा। बं० कृष्णकरवी।
कृष्णतुलसी—हि० कालीतुलसी।
कृष्णमरुवक—हि० कालामरुआ
कृष्णसारिवा—हि० कालीसर, करिआसाठ। बं० श्यामालता।
कृष्णागरु—हि० काला अगर।
कृष्णार्जक—हि० काला अजबला।
कृष्णोदुम्बरिका—हि० कठूमर, कटूम्बर। बं० डूमूर।
केकती—हि० कवेड़ा, गगनधुल।
केना—हि० केना।
केविका—हि० केवा।
कैडर्य—हि० कृष्णनिब, वरसंग, महारुख। बं० कार्याफली।
कोकनद—हि० लाल कमल।
कोकिलाक्ष—हि० तालमखाना। बं० कुलेखाड़ा।

खदिरसार—हि॰ खैरसार, कत्था।
खर्परी—हि॰ खापरिया।
खर्जूरी—हि॰ जङ्गली खजूर।
खसखस—हि॰ खसखस। बं॰ पोस्तदाना।
खण्ड—हि॰ बं॰ चीनी, शक्कर।

ग

गणिकारी—हि॰ मदनमादनी।
गर्मोटिका—हि॰ जरणी तृण।
गार्जर—हि॰ गाजर।
गारुत्मज—हि॰ पन्ना।
गिरिकदली—हि॰ जंगली केला।
गुग्गुल—हि॰ गूगल, गूगर। बं॰ गुग्गुल।
गुच्छकन्द—हि॰ गुच्छकन्द।
गुच्छकरञ्ज—हि॰ गुच्छकरञ्ज।
गुड़—हि॰ गुड़।
गुड़कन्द—हि॰ कसेरु, केचुक चिचोड़। बं॰ केसुर।
गुड़ची—हि॰ गिलोय। बं॰ गुलञ्च।
गुड़ासिनी—हि॰ गोदपटेर।
गुण्डाला—हि॰ गोंडाला।
गृहकन्या—हि॰ घीकुवार ग्वार-पाठा। बं॰ घृतकुमारी।
गैरिक—हि॰ गेरु।
गोक्षुरक—हि॰ गोखरू। बं॰ गोक्षुरी।
गोजिह्वा—हि॰ गोभी। बं॰ गोजिया, दानाशाक।
गोधापदी—हि॰ गोहालिया।
गोधूम—हि॰ गेहूं।
गोपालकर्कटी—हि॰ गोपाल कांकड़ी।
गोमय—हि॰ गोबर।
गोमूत्र—हि॰ गोमूत।
गोमूत्रिका—हि॰ गोमूत्रतृण।
गोमेद—हि॰ गोमेद।
गोरक्षतुम्बी—हि॰ गोलतुम्बी।
गोरक्षदुग्धी—हि॰ गोरक्षदूधी।
गोरक्षी—हि॰ गोरख इमली।
गोरोचन—हि॰ गोलोचन। बं॰ गोरोचना।
गोलोमी—हि॰ गोलोमी। बं॰ भंईकेश।
गोस्तनी—हि॰ कालीदाख।
गौरसुवर्णशाक—चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध।
गङ्गापत्री—हि॰ गङ्गावती।
गण्डदूर्वा—हि॰ गांडरदूब।
गन्धक—हि॰ गन्धक।

गन्धपत्रा—हि० कपूरहल्दी, गन्धपलाशी।

गन्धनाकुली—हि० सरहटी, गंडिनी, सुगन्ध नकुलगन्ध। बं० सर्पकङ्कालिका।

गन्धमांसी—हि० गन्धमांसी।

[illegible]—हि० गोंड़ाला।

[illegible] हि० लालमुठा।

ग्रन्थिपर्णी—हि० गठिवत, गठौना। बं० गेंठेला।

घ

घृत—हि० घी।

घृतकरञ्ज—हि० घीयाकरञ्ज, [illegible]ाञ्जि।

घोटी—हि० घोटी।

घोली—हि० नोनिया शाक, [illegible]ी।

च

चणक—हि० चना, छोला। बं० छोला।

चणिका—हि० चणइत्तण।

चतुफला—हि० गुलशकरी, गंगेरन, गगिरुमा। बं० गोरचचाकुले।

चक्रमर्द—हि० पवाड़र, ममाड़र, चकवड़। बं० हाकुच, चाकन्दे।

चव्य—हि० चाभ। ब० चव्य।

चाणक्यमूलक—हि० बड़ीमूली।

चार—हि० चिरौंजी।

चित्रक—हि० चीता, चितरक। ब० चिता।

चित्रवल्ली—हि० बड़ी इन्द्रकला,

चिर्भिटा—हि० गोरख ककड़ी।

चिल्लिका—हि० चिल्ली, बड़ा बथुआ।

चिविल्लिका—हि० छोटी लोनी।

चीडा—हि० चीढ़ देवदार।

चीनकर्पूर—हि० चीनीकपूर।

चुक्र—हि० बडा चुका। बं० चुका पालङ्ग।

चूर्ण—हि० भटेडर।

चोरक—हि० भटेडर।

चञ्चु—हि० चञ्च, चेबुना।

चञ्चुक—हि० चञ्चु।

चन्दन—हि० सफेद चन्दन।

चन्द्रकान्त—हि० चन्द्रकान्तमणि।

चम्पक—हि० चम्पा।

चण्डालकन्द—हि० चन्दालकन्द।

चांङ्गेरी—हि० अंरूल, भालि-लोवा।

चिञ्चा—हि० इमली, अम्बली।
ब० आमरूल, तेंतुल।

ज

जपा—हि० ओडहुल, गुडहर।

जन्तुका—हि० पपरी, पनडी, पद्मावती, नाड़ीहिंग, लाख।

जलमधुक—हि० जलमहुवा।
बं० जलमोत।

जलब्राह्मी—हि० बाब।

जलवेतस—हि० जलवेत।

जलशुक्ति—हि० नदीके सीप।

जवादि—हि० जवादी कस्तूरी।

जातिपत्री—हि० जाविञी। ब० जईत्री।

जाती—हि० चमेली।

जातीफल—हि० ब० जायफल।

जालबब्बूलिका—हि० जाल-बब्बूल।

जीवनी—हि० डोडोशाक।

जीरक—हि० जीरा। ब० जीरा।

जीर्णफञ्जी—हि० फांजी।

जीवक—गौड़ देशमें प्रसिद्ध है।

जीवन्ती—हि० बं० लघुजीवन्ती।

जीवशाक—हि० जीवशाक।

जेपाल—हि० अजेपाल, जमाल-गोटा। ब० जयपाल।

जम्बीर—हि० जम्भीरी। ब० गोंडालेबू।

जम्बु—हि० जामुन, जामन।
बं० जाम।

ज्योतिष्मती—हि० मालकांगुनी।
बं० लताफट्की।

ज्योतिष्मती तैल—हि० मालकांगनी तैल।

झ

झिंझरीटा—हि० छिरछिटा, झंझरीटा।

झिण्डक—हि० झेण्डू।

ट

टङ्कण—हि० सोहागा।

ड

डोडी—हि० डोडी।

डङ्गरी—हि० सफरिकुमरा, लालपेठा।

त

तक्र—हि॰ छांछ।

तक्राह्वा—हि॰ ताका।

तमाल—हि॰ बं॰ तमाल।

तमालपत्र—हि॰ पत्रज, तेजपात। बं॰ तेजपत्र।

तरटी—हि॰ तरटी।

तर्कारी—हि॰ अरनी। (कोकण देशमें प्रसिद्ध है।

तरुणी—हि॰ शेवती गुलाब।

तवक्षीर—हि॰ तवाखीर।

ताम्र—हि॰ तांबा, तामा।

तारमाक्षिका—हि४ रूपामक्खी।

ताल—हि॰ ताड।

तीलीसपत्र—हि॰ तालीसपत्र।

तिनिश—हि॰ तिरिच्छ, निनसुना। बं॰ तिलिश।

तिल—हि॰ तिल।

तिलक—हि॰ बं॰ तिलक।

तिल तैल—हि॰ तिलका तेल।

तूल—हि॰ पारस पीपल, गजदण्ड।

तीक्ष्णफला—हि॰ काली राई।

तुत्थ—हि॰ नीला थोथा, नीली तूतिया।

तुरुष्क—हि॰ शिलारस।

तुलसी—हि॰ बं॰ तुलसी।

तृणकुङ्कुम—हि॰ तृणकेसर।

तृणधान्य—हि॰ तृणधान्य।

तेजफल—हि॰ तिरफल।

तेजोवती—हि॰ बड़ी मालकांगना।

तेरणी—हि॰ तेरडा।

तैलकन्द—हि॰ तैलकन्द।

तुण्डिका—हि॰ कन्दूरी, कुलकांच। बं॰ कुन्दरकी।

तण्डुलीयदल - हि॰ चौलाई।

तण्डुलीहक—हि॰ चौलाई, चौराई बं॰ नेडेशाक, चांपातूतिया।

तिंदुक—हि॰ तेन्दू।

तुम्बरु—हि॰ तुम्बरुफल।

त्रपु—हि॰ रांगा, रागा।

त्रपुसैर्वारुकचारक कूष्माण्ड प्रभृति बीज तैल हि॰ त्रपुसी, काकाड़ी, चारोली, कोहड़ोके बीजका तैल।

त्रपुसी—हि॰ खीरा, काकड़ी।

त्रायमाणा—हि॰ त्रायमाणा।

त्रिधार—हि॰ तिधारा थूहर।

त्रिपर्णीकन्द—हि॰ त्रिपर्णीकंद।

त्रिवृत—हि० निसोय सफेद श्वेत पनिलरं। बं० श्वेत-तेउड़ी।

त्रिसन्धि—हि० सांझो।

त्वच—हि० तज, दालचीनी बं० दारुचिनी।

द

दग्धरुहा—कोकण देशमें प्रसिद्ध हैं।

दधि—हि० दही।

दधिपुष्पी—हि० सुअरासेम, करियेसेम।

दमनक—हि० दौना, दवना।

दारुहरिद्रा—हि० दारुहल्दी। बं० दारुहरिद्रा।

दाहागरु—हि० दाहागरु।

दीर्घरोहिषक—हि० बड़ा रोहिषक।

दुग्ध—हि० दूध।

दुग्धपाषाण—हि० शिरगोला।

दुग्धफेनी—हि० दुग्धफेनी।

दुग्धतुम्बी—हि० मीठी तूम्बी। बं० लाऊ।

दुरालभा—हि० धमासा। बं० दुराला।

देवदारु—हि देवदारु।

देवदाली—हि० सौनैया, बंदाल, घघरवेल, देवदाली, बिदाल, विदाली।

द्रवती--हि० छोटी मूसाकर्णी। बं० इंदूरकाणिपाना।

द्राक्षा—हि० दाख।

द्रोणपुष्पी—हि० गोया, गुम', दणहली; बं० कलथसिया।

द्रोणेय—हि० द्रोणीलवण, बरतनका नमक।

ध

धन्वन—हि० धामिन। बं० धामनि।

धरणीकन्द—अनूप देशमें होताहै।

धव—हि० धौ, धावा। बं० धाओया।

धातकी—हि० धावई, धाय। बं० धाई।

धान्य—हि० धान्य।

धान्यक—हि० धनिया। बं० धनिया।

धान्यतैल—हि० धान्य तेल।

धाराकदम्ब—हि० धाराकदम्ब।

धाराकोशातकी—हि० तोरई, तुरैया। बं० झिंगा।

धूम्रपत्र—हि० कोड़ामार।
धूलिकदम्ब—हि० धूलिकदम्ब।
ध्वांक्षनाशिनी—हि० छोटी हाउबेर।

न

नख—हि० नख।
नखनिष्पाविका—हि० छोटी सेंवो।
नदीवट—हि० नदीबड़।
नद्योदुम्बरिका—हि० नदी गूलर
नल—हि० नरसल। बं० नल, कच्छो-ग्रांची।
नलिका—हि० पवारो।
नवनीत—हि० मखन।
नवमल्लिका—हि० नेवारी।
नाकुली—हि० नकुलचन्द्र।
नागकेसर—हि० नागकेसर।
नागचम्पक—हि० नागचम्पा।
नागदन्ती—हि० नागालो। बं० नागदन्ती।
नागदमनी—हि० नागदौन। बं० नागदना।
नागबला—हि० गुलसकरी, गंगेरन, गागेरुआ। बं० गोरक्षचाकुले।
नागरमुस्ता—हि० नागरमोथा।
नागवल्ली—हि० नागरवेल।
नाड़ीहिङ्गु—हि० डिकामाली।
नारिकेल—हि० नारियल।
नारङ्ग—हि० नारङ्गी।
निकुञ्चिका—हि० सीकाकाइ भेद।
निर्विषा—हि० निर्विषी।
निष्पाव—हि० भटवासु निष्पाव।
निष्पावी—हि० सेंव।
निःश्रेणिका—हि० निश्रेणीतृण।
नील—हि० नीलम।
नीलदूर्वा—हि० नीली दूब।
नीलधत्तूर—हि० नीला धत्तूरा। बं० नील धुतूरा।
नील पलाश—हि० नीलपलास। बं० नील पलाश।
नीलबीज—हि० काला आसन। बं० नील आसन।
नीलवृक्ष—हि० नील वृक्ष।
नीलमार्कव—हि० पीला भांगरा
नील यूथिका—हि० नीलीजूही।
नीलसिन्दूक—हि० नीलसम्भालू।
नीलागस्त्य—हि० नीलपलास। बं० नील पलाश।

नीलागिरिकर्णिका—हि० काली गोकर्णी, नीली कोयल। बं३ नील अपराजिता।

नीलापुनर्नवा—हि० नीलीसांठ।

नीलाम्लान—हि० नीला कटसरैया।

नीलाम्ली—हि० काली पिठोंडी।

नीलालु—हि० काला आलु, काला धोपा, काड़ा चिमकुरा।

नीली—हि० नील, लील। बं० नील।

नीलोत्पल—हि० नील कमल-चन्द्रविकाशी।

नीवार—हि० तीनी। बं० उड़ी धान।

नैपाल—हि० नैपालनिव, चिरायता।

नन्दीवृक्ष—हि० नन्दीवृक्ष।

निम्ब तेल—हि० नीमकी बीजका तेल।

निम्बूक—हि० नींबू। बं० पातिलेबू।

प

पखोड़—हि० पखोड़।

पटोल—हि० पलवल, पटोल।

पतङ्ग—हि० पतङ्ग।

पद्मा—हि१ भारङ्गी।

पद्मक—हि० पद्मा। बं० पद्मकाष्ठ।

पद्मकन्द—हि० कमलकन्द।

पद्माक्ष—हि० कमलगट्टा।

पद्मिनी—हि० पद्मनी।

पनस—हि० कटहर, कटैर, फनस। बं० कांठरल।

पर्पट—हि० पीत पापड़ा, दवन पापड़ा। बं० क्षेत पापड़ा।

परिपेल्ल—हि० केवटी मोथा। बं० केउटमुथा।

परुषक—हि० फालसे। बं० फलसा।

पलांडु—हि० प्याज। बं० पियाज

पाची—हि० पाच।

पाठा—हि० पाठ, पाढ़। बं० आकनादि।

पाणियालु—हि० पानीका आलु।

पानीय—हि० पानी।

पारन्द—हि० पारा।

पारिभद्र—हि० फरहन, जलनीक। बं० पालिदामादार।

पालक्य—हिं० पालक। बं० रालेक।

पाषाणभेदो—हिं० पाषाणभेदो।

पित्तल—हि० पीतल।

पिप्पली—हिं० पोपर, पीपल। बं० पीपुल।

पिप्पलामूल—हिं० पीपरामूल। बं० पीपलमूल।

पीतकरवीर—हिं० पीलीकनेर। बं० पीत करवी।

पीतचन्दन—हिं० पीला चन्दन।

पीततण्डुला—हिं० मोतरंगनी, वृहतीभेद।

पीतधतूर—हिं० पीला धतूरा। बं० पीत धुतुरा।

पीत पलाश—हिं० पीला पलास। बं० पीतपलाश।

पीत पुष्पी—हिं० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डोत्पल।

पीत बन्धूक—हिं० पीली दुपहरिया।

पीतमार्कव—हिं० पीला भगरा।

पीतागस्त्य—हिं० पीला अगस्तिया। बं० पीत बक।

पीता जगंधा—हिं० पीली हुरहुर।

पीताम्लान—हिं० पीला कटसरैया।

पुत्रजीव—हिं० जीयापीता, पुनजीया। बं० पुतञ्जिया।

पुत्रदा—हि० पुत्रदाई, गर्भदात्री

पुन्नाग—हिं० पुन्नाग, पुलाक। बं० पुन्नाग।

पुष्करमूल—हिं० गांठदा, पुहकरमूल।

पुष्पकासीस—हिं० पुष्पकासीस।

पुष्पद्रव—हिं० पुष्पद्रव।

पुष्पराज—हिं० पुखराज।

पुष्पाञ्जन—हिं० पुष्पाञ्जन।

पूग—हिं० सुपारी। बं० सुपारी।

पूतिकरञ्ज—हि० दुर्गन्धकरञ्ज। बं० लाटा करञ्ज।

पृष्टिपर्णी—हिं० पिठवन, पिठोनी। बं० चाकुले, चाकोलिया, शङ्करजटा।

पेऊ—हिं० जङ्गली आदा।

पेरोज—हिं० फिरोजा।

पोतास—हिं० भीमसेन कापूर।

पाण्डुफली—हिं० पाटली।

पिण्डखर्जूर—हिं० पिण्डखजूर, छुहारा। बं० सोहारा।

पिण्डमूलक—हि० गोलमूली।

पिण्डालु—हि० पेंड़ालु।

पिण्डीतगर—हि० पिण्डीतगर।

पुण्डरीक हि० सफेदकमल।

प्रचीण्डरीक—हि० पुण्डरिया।

प्रभद्र—हि० नीम। ब० निम।

प्रवाल—हि० मुंगा।

प्रसारिणी—हि० गन्धप्रसारिणी, पसरन। बं० गन्धभादुल्या।

प्रियङ्ग—हि० फुलप्रियङ्ग। बं० प्रितङ्ग।

प्लक्ष—हि० पाकर, पाक खर। बं० पाकुड़।

फ

फञ्जिका—हि० फांजी।

फोंड़ालु—कोकण देशमें प्रसिद्ध है।

ब

बक—हि०—बड़ी बोलसिरी। बं० पद्मबक।

बकुल—हि० मोलसरी, बनहुला। बं० बकुल।

बटलाह—हि० बटलोहा, निखु।

बदरी—हि० बेर बं० कुल।

बद्दरसाम्र—हि० बडा रसाल आम।

बनबर्बरिका—हि० सुगन्ध अजबला।

बनपिप्पली—हि० बनपीपल।

बव्वूल—हि० बबूर, कीकर। बं० बाबला।

बर्बर—हि० बाबरी, बनतुलसी।

बर्हिचूडा—हि० मोर शाखा।

बला—हि० बरियारा। बं० वेड़ेला।

बलोत्तरा—हि० खिरेंटी, खरहटी। बं० श्वेतवेड़ेला।

बल्वज—हि० नरई साविबागे।

बस्तान्त्री—हि० बोकड़ी।

बहुदल—हि० नाचनी।

बाकुची—हि० बावची। बं० सोमराज।

बालक—हि० सफेद बाला।

बिडलवण—हि० विरिआ नमक कटिलानोन। बं०बिटलवण।

बिभीतक—हि० बहेडा। बं० बहेडा।

बिल्व—हि० वेलवृक्ष।

बसन्धि—हि० सांभी।

बीजपूर—हि० बिजौरा। बं० टावालेंबु।

बृहच्चञ्चु,—हि॰ बड़ी चञ्चु।

बृहज्जीवन्तिका—हि॰ बड़ी जीवन्ती।

बृहत्पीलु—हि॰ बड़ा पीलु।

बृहती—हि॰ बड़ी कटाई, बरहटा। बं॰ वृहती, व्याकुड़।

बृहल्लजालु—हि॰ बड़ी लजालु।

वेणुबीज़—हि॰ वेणुयव।

बोल—हि॰ बोल।

बन्धूक—हि॰ दुपहरिया, गेजुनिया।

बन्ध्याककोंटका—हि॰ बांजककोड़ा, वांजखखसा।

बशयव—हि॰ बशयव।

ब्रह्मदण्डी—हि॰ उटकटारा।

ब्राह्मी—हि॰ ब्रह्मी, वरम्भी। बं॰ व्राह्मी।

भ

भव—हि॰ रोमफल।

भद्रदन्तिका—हि॰ बड़ी दन्ती, मुगलाई अरंड।

भद्रमुस्ता—हि॰ भद्रमोथा। बं॰ भद्रमुथा।

भल्लातक—हि॰ भिलावा, भिलाए। बं॰ भेलां।

भार्गी—हि॰ भारङ्गी, भांडगा, ब्रह्मनेटी। बं॰ वामुनहाटी।

भूखर्जूरी—हि॰ छोटी जङ्गली खजूर।

भूतसार—हि॰ पीला सोनापाठा

भूताङ्कुश—हि॰ भूतकेशी।

भूतुम्बी—हि॰ पातालतुम्बी।

भूतृण—हि॰ सुगन्ध रोहिष।

भूनाग—हि॰ केंचवे।

भूनिम्ब—हि॰ भूचिरायता, चिरेता। बं॰ भूचिराता।

भूपाधली—हि॰ भुईपाडरी।

भूबदरी—हि॰ झरबेर।

भमिज गुग्गुल—हि॰ भूमिगूगल।

भूमिजम्बु—हि॰ बनजामुन।

भूम्यामलकी—हि॰ भुंय आंवला, जरआंवला। बं॰ भुइ आंवल।

भूम्याहुली—हि॰ सोनमक्खी।

भूर्जपत्र—हि॰ भोजपत्र। बं॰ भूर्जपत्र।

भृङ्गमारी—हि॰ भृङ्गमारी। (मालवामें प्रसिद्ध है)।

भृङ्गाह्वा—हि॰ भ्रमरच्छली।

भेंडा—हि॰ रामतोरई।

म

मदन—हि० मैनफल। बं० मयना फल।

मध—हि० दारु, यूनानी शराब।

मधु—हि० शहद।

मधुक—हि० महुवा। बं० मोल, महुवा।

मर्कटी—हि० पपई, अण्ड-माकड़ी। व वाताबिलेवु।

मधुखर्जुरिका—हि० मीठी जङ्गली खजूर।

मधुजम्बीर—हि० मीठा नेवू। बं० कमलालेवु।

मधुनारिकेल—हि० मधुनारियल।

मधुरदाड़िम—हिमि—अनार।

मधुवल्ली—हि० मुलहठी भेद।

मज्जर—हि० मज्जरतृण।

मल्लिका—हि० वेल मोतिया।

मसूर—हि० मसूर।

मरिच—हि० काली मिरिच।

महाकरञ्ज—हि० करञ्जी, अरारि, बड़ा करञ्ज।

महाकन्द—हि० लाल लहसन।

महाजम्बू—हि राजजामन, फरेंद। बं० गोलाप्जाम।

महाद्रोण—हि० बड़ा गोमा।

महानिम्ब—हि० बकास। ब० घोड़ानिम।

महापारेवत—हि० बड़ी द्वीपान्तर खजूरी।

महापिण्डीतक—हि० बड़ा मैनफल।

महापिण्डीतरु—पण्डिरा वृक्ष।

महामेदा—गोमुदेशमें प्रसिद्ध हैं।

महानीली—हि० बड़ी नील।

महाराजाम्र—हि० महाराज आम्र।

महाराष्ट्री—हि० मरेटी पनिसंगा।

महावला—हि० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डोत्पल।

महाशतावरी—हि० बड़ी सतावर।

महाश्रावणी—हि० बड़ी मूंडी।

महिषीकन्द—हि० भैंसाकन्द।

मनःशिला—हि० मनसिल।

मत्स्याक्षी—हि० मछेछी, मछेद्री, जलपीपर। बं० कांचड़ाशाप।

माकन्दी—हि० मायमूड़।

माड़—हि० माड़ा।

माधवी—हि० माधवी।

माणिक्य—हि० मानिकलाल।

माष—हि० उरद।

मायाफल—हि० माजूफल।

मार्कव—हि० भागरो। बं० भोमराज।

मालाकन्द—हि० मालाकन्द।

माषपर्णी—हि० मगवन, मशवन, बनउर्दी। बं० माखानो बनमाष।

मिशीमीशी—हि० छोटा कांस।

मिश्रेया—हि० सौंफ बड़ी सौंफ। बं० मौरी।

मीनाखड़ो—हि० मिसरी, खड़ी शक्कर।

मुकष्ठक—हि० मठ, मोट।

मुक्ताशुक्ति—हि० मोतीके सीप

मुखालू—हि० मुचकुन्द। विशेष।

मुचकुन्द—हि० मुचकुन्द।

मुद्ग—हि० मंग।

मुद्गपर्णी—हि० मुगौन मुगवन। बं० मुगानि।

मुद्गर—हि० मोतिया।

मुरा—हि० एकाङ्गीमुरा। बं० मुरामांसी।

मुष्कक—हि० मोखा, फरवाह।

मुसलीकन्द—हि० काली मुसली।

मूर्वा—हि० चूरीनहार, चूरनहार, मरोरफली। बं० मूर्वा।

मूलपाता—हि० पोई भेद।

मूलक—हि० मूली।

मूषकमारी—हि० उंदिरमारी।

मृगाक्षी—हि० सन्धिनी।

मृणाल—हि० कमलकी डण्डी।

मेचकयूथिका—हि० मेचक जूही।

मेथिका—हि० बं० मेथी।

मेदा—गौड़ देशमें प्रसिद्ध हैं।

मेषशृङ्गी—हि० मेढ़ाशिङ्गी। बं० मेढ़ाशिंगा।

मोचरस—हि० मोचरस। बं० मोचरस।

मोरटा—हि० चोर चूरीनि नहाह, मुर्हरी।

मौक्तिक—हि० मोती।

मङ्गलागरु—हि० मङ्गलागरु।

मञ्जिष्ठा—हि० मजीठ। मञ्जिष्ठा।

मांहरोहिणी—हि० मांसरोहिणी। बं० चमारकशा।

मांसी—हि० छड़, जटामासी।
बं० जटामासी।
मुञ्ज—हि० मूंज।

य

यव—हि० जौ।
यवचिंची तैल—हि० सत्यनाशी के बीजका तेल।
यवक्षार—हि० जवाखार।
यवानी—हि० अजवान। बं० यमानी, यौयद।
यवासा—हि० जवासा। बं० हवासा।
यष्टीमधु—हि० मुलहटी। बं० यष्टीमधु।
यावनल—हि० ज्वार, जोधरी, पोनरी।
यावनालशर—हि० रामशरभेद।
यूथिका—हि० जही।

र

रक्त एरण्ड—हि० लाल अरण्ड।
बं० लोहित एरण्ड।
रक्तकरवीर—हि० लाल कनेर।
बं० रक्तकरवी।
रक्तखदिर—हि० लाल खैर।
रक्तगंजा—हि० लाल घुंगची, चिरोमणी गुंज, चौटली।
बं० लालकुंच।
रक्तचन्दन—हि० लालचन्दन।
रक्तचित्रक—हि० लालचिता।
रक्तधत्तूर—हि० लालधतूरा। बं० रक्त धुतुर।
रक्तपलाश—हि० लालपलास, ढाक, केसु, खाकरिया। बं० रक्तपलास।
रक्त पाटली—हि० लाल पाडरि।
ब० रक्त पारुल।
रक्तपादी—हि० लजाल, लज्जावन्ती।
रक्त पिण्डालू—हि रताल, रतण्डा, दमणिया।
रक्तबन्धूक—हि० लाल दुपहरिया।
रक्तबीज—हि० बीजेसार।
रक्तरोहितक—हि० रोहिडा रोहेरा।
रक्तशिग्रु—हि० लाल सहजना।
रक्तत्रिवृत—हि० लाल निसोथ।
रक्तागस्त्य—हि० लाल अगस्तिया। बं० रक्तबक।

रक्तापामार्ग—हि॰ जाल औंगा, चिरचिरा। बं॰ लाल आपांग।

रक्तापुनर्नवा—हि॰ सांठ, गदह पूर्णा बं॰ लाल पुनर्नवा।

रक्ताम्लान—हि॰ लालकटसरैया, पोहाबांसा। बं॰ रक्तझिंटी, झांटी।

रक्तावसु—हि॰ लाल वसु।

रक्तोत्पल—हि॰ लाल कमल, चन्द्रविकाशी।

रसांञ्जन—हि॰ रसाञ्जन, रसौत।

रसोन—हि॰ लहसन, कादा। बं॰ रसुन।

राजखजूरी—हि॰ राजपिण्ड-खजूर।

राजगिरा—हि॰ कलकाघास।

राजतरुणी—हि॰ बड़ा शेवती गुलाब।

राजधत्तूर—हि॰ राजधत्तूरा बं॰ राजधुतुरा।

राजपलाण्डु—हि॰ काल प्याज।

राजबदर—हि॰ रायबेर।

राजमाष—हि॰ खेसारी भेद।

राजरीति—हि॰ सोन पितल।

राजादनी—हि॰ खिरनी। बं॰ कशिरति, खेरखेजूर।

राजाम्र—हि॰ कलमी आम। बं॰ लता आम।

राजार्क—हि॰ लाल मन्दार। बं॰ रक्त मंदार।

राजावर्त्त—हि॰ रेवटी।

राजिका तैल—हि॰ राईका तेल।

राजिका पत्र—हि॰ राईको शाक।

राल—हि॰ रार, राल। बं॰ धुना।

रास्ना—हि॰ रासना, रायसन। बं॰ रास्ना।

रीठाकरञ्ज—हि॰ रीठा।

रुद्रदन्ती—हि॰ रुद्रवन्ती।

रुद्रजटा—हि॰ ईश्वरमूल।

रुद्राक्ष—हि॰ बं॰ रुद्राक्ष।

रेणुका—हि॰ बं॰ रेणुका।

रोमक—हि॰ सूर्य्यखार, रेह-गवा, रेहगमानोन, रेहका नमक।

रोहिणी—हि॰ रोहिणी।

रौप्य—हि॰ रुपा, चांदी।

रन्ध्रवंश—हि॰ पोलेवास।

ल

लकुच—हि॰ बड़हर बं॰ माद।

लघुदन्ती—हि॰ दंती। बं॰ दन्ती।

लघुपोलु—हि॰ छोटा पोलू।

लघुवदरी—हि॰ छोटी बेर।

लघुशमी—हि॰ छोटा समी।

लघुशणपुष्पी—हि॰ छोटी शण-पुष्पी।

लघुश्लेष्मातक—हि॰ गंदनी, लभेरा।

लताकरञ्ज—हि॰ कटुकरञ्जा, करञ्जरा।

लवणक्षार—हि॰ लोणखार।

लवङ्ग—हि॰ लौंग। बं॰ लवङ्ग।

लक्ष्मणा—हि॰ सफेद कटेरी, श्वेतभटकटेया।

लक्ष्मणाकन्द—हि॰ लक्ष्मणाकंद।

लामज्जक—हि॰ पीलावाला।

लाक्षा—हि॰ लाख बं॰ लाहा।

लोहकिट्ट—हि॰ मण्डूर, लोह-सिंहानिका, किट्टी, सिंहान।

लोध्र—हि॰ लोध।

लांका—हि॰ खिलारी, कसूर।

व

वचा—हि॰ वच। बं॰ वच।

वज्रक्षार—हि॰ नोसादर।

वट—हि॰ बड़, वर। बं॰ बट।

वटपत्री पाषाणभेदी—हि॰ बड़-पत्ती पाषाणभेदी।

वत्सनाभ—हि॰ बचणाग, तिलि-याविष।

वत्सादनी—हि॰ छिरेटा, छि-हटा। बं॰ पातालगरुड़ी।

वनज्या उपोदकी—हि॰ जङ्गली पोई।

वनबीजपूर—हि॰ जङ्गली बि-जोरा।

वनशृङ्गाटक—हि॰ छोटा गो-खरू।

वन्यदमनक—हि॰ जङ्गली दवना

वरक—हि॰ वटी।

वरुण—हि॰ बरना। बंरुण।

वर्वरक—हि॰ वर्बर चन्दन।

वल्लिदूर्व्वा—हि॰ वल्लोदूब।

वर्षाभूपाक—हि॰ विषखोसरा।

वसपत्र—हि॰ सफेद वसु।

वानीर—हि॰ जलबेंत।

वार्ताकी—हि० वैंगन, भंटा। बं० बेगुन।

वाराही—हि० भेंटी, मिर्वोमो कंद।

वार्षिकी—हि० वेल।

वालुकी—हि० वालुकी ककड़ी।

वासक—हि० अरुसा, अड़ूसा बं० वासक।

वासन्त—हि० मधुमाधवी।

वास्तुक—हि० बथुवा। बं० बेतुया।

व्याघ्रनख—हि० व्याघ्रनख।

विकण्टक—हि० हरियिा।

विकङ्कत—हि० कटाई, किकिणी। बं० बंइची।

विटखदिर—हि० दुर्गन्ध खैर।

विड़ङ्ग—हि० वायविड़ङ्ग।

विदार कन्द—हि० बिदारीकंद, दोनो विलिथाकन्द।

विमला—हि० विमला।

विश—हि० बं० विष।

विषमुष्टि—हि० विगडोड़ी, करेरुआ।

विष्णुकन्द—कोकण देशमें प्रसिद्ध है।

विष्णुक्रान्ता—हि० विष्णुक्रान्ता।

वृत्ताम्ल—हि० विषाविल महादा। बं० महादा।

वृत्तमल्लिका—हि० वुधरु मोतिया।

वृद्धदारु—हि० बिधारा। बं० टृद्धदारुक।

वृद्धि—गौड़ देशमें प्रसिद्ध।

वृश्चिका—हि० विछ्वा।

वृश्चिकाली—हि० वृश्चिकाली।

वेतस—हि० वेत।

वेत्र—हि० वड़ाबेत। बं० वेत्र।

वेखर—हि० वखेल।

वैक्रान्त—हि० वैक्रान्त।

वैडूर्य—हि० वैडूर्य।

वपरिया—लज्जालू हि० वड़ी लज्जालू।

वन्दाक—हि० बन्दा, वन्दाक। बं० वन्दाक्कातादरा।

वंश—हि० बांस। बं० वंश।

वंशाङ्कुर—हि० बांसके अङ्कुर।

वंशपत्री—हि० बशपत्री तृषा।

वंशरोचना—हि० बंसलोचन।

श

शण—हि० सन।
शणपुष्पी—हि० शणहुली, शणई, घुंगरू। बं० बाणशणई।
शतपत्री—हि० शेवती, गुलदावरी।
शतावरी—हि० छोटी सतावर। बं० शतमूली।
शताह्वा—हि० सोआ। बं० शुल्फा।
शबरचन्दर—हि० शबरचन्दन।
शमी—हि० समी, छेकरा सफेद कीकर। बं० शांइबाबला।
शर—हि० सरपना।
शरपुङ्खा—हि० सरफोका।
शशाण्ड़ली—हि० एकप्रकारकी ककड़ी।
शाक—हि० सागवन। ब० शेगुन।
शाखोट—हि० सिहोड़ा। बं० श्याओड़ा।
शालि—हि० शालि।
शालिपर्णी—हि० सरिवन, शालवन। बं० शालपानि।
शाल्मली—हि० सेमर। ब० सिमुल
शाल्मलीकन्द—हि० सेमलका कन्द।
शनिवार—हि० शिरिआरी, सिलवारी। बं० शुनिनाक, शेमोला।
शिग्रु—हि० पीला सहजना। बं० पीत सजिना।
शिग्र तैल—हि० सहजनेका तैल।
शिग्रपत्रशाक—हि० सहजनेके पत्तेकाशाक।
शिरीष—हि० शिरस, भिऊणी। बं० शिरीष।
शिल्पिका—हि० शिल्पिकातृण।
शिलाजतु—हि० शिलाजीत।
शुनक चिल्ली—हि० शूकधान्य।
शेफालिका—हि० बन निर्गुण्ड।
शैलेय—हि० पत्थरफूल, चलीरा, मूरिछला। बं० शैलज।
शैवाड़—हि० काई, जलकुम्भी। बं० पाना।
शोभाञ्जन—हि० काला सहजना
शोली—हि० सोलानामक जंगली हल्दी।

शङ्ख—हि॰ शङ्ख।

शङ्खपुष्पो—हि॰ सङ्काहुली, कोड़ीयाला। बं॰ चोरकांचको।

शङ्खिनी—हि॰ वङ्कवेल।

शिंशपा—हि॰ शोशव, सिसव। बं॰ शिशु।

शिम्बोधान्य—हि॰ शिवोधान्य।

शण्ठी—हि॰ सोंठ, सूंठ। बं॰ सुंठ।

शृङ्गाटक—हि॰ सिङ्घाड़ा।

शृङ्गी—हि॰ कांकड़ासिङ्गी। बं॰ काकड़ाशृङ्गी।

श्यामाक—हि॰ सांवा, समा। बं॰ श्यामाघास।

श्योनाक—हि॰ सोनापाठा, अरलू, टेंटू। ब॰ सोना।

श्रावणी—हि॰ छोटी मुण्डी। बं॰ मुडुगी, भुंइकदम, थुलकुड़ो।

श्रोताल—हि॰ श्रोताड़।

श्रवल्ली—हि॰ सीकाकाई।

श्राविष्ठ—हि॰ विशिषधूप।

श्वाषान्तक—हि॰ लिहसोड़ा, निसोरे, बहुवार।

श्वेत अगस्त्य—हि॰ सफेद अगस्तिया, हथिया। बं॰ श्वेत वक।

श्वेत एरण्ड—हि॰ सफेद एरंड, अरण्डाश्रा।

श्वेत करवीर—हि॰ सफेद कनेर। बं॰ श्वेत करवी।

श्वेत खदिर—हि॰ सफेद खैर।

श्वेतचिल्ली—हि॰ श्वेतचिल्ली।

श्वेत जीरक—हि॰ सफेद जीरा। बं॰ शुक्लजीरा।

श्वेत टङ्कण—हि॰ सफेद सोहागा।

श्वेत तुलसी—हि॰ सफेद तुलसी।

श्वेतदूर्व्वा—हि॰ सफेद दूब।

श्वेत धत्तूर—हि॰ सफेद धतूरा। बं॰ श्वेत धुतुरा।

श्वेत पाटली—हि॰ सफेद पाडोर। बं॰ शतपारल।

श्वेतपाषाणभेद—सफेद पाषाणभेद।

श्वेतवृहती—हि॰ सफेद बड़ी कटाई।

श्वेत बन्धूक—हि॰ सफेद दुपहरिया।

श्वेतमरिच—हि॰ सफेद मिरच।

श्वेत मरुवक—हि॰ सफेद मरुआ।

श्वेतमन्दार—हि॰ सफेद मंदार। बं॰ श्वेतमंदार।

श्वेत रोहितक—हि॰ सफेद रोहिड़ा।

श्वेत लोध्र—हि॰ पड़ानी लोध।

श्वेत वचा—हि॰ सफेद बच।

श्वेत वणपुष्पी—हि॰ सफेद शणपुष्पी।

श्वेत शरपुङ्खा—हि॰ सफेद सरफोंका।

श्वेत शिग्रु—हि॰ सफेद सहजना।

श्वेतशिंशपा—हि॰ पिला सिसव।

श्वेतकटभी—हि॰ सफेद कटभी, करही।

श्वेतपुनर्नवा—हि॰ विषखोपड़ा। बं॰ श्वेतपुनर्नवा।

श्वेताम्लो—हि॰ पनसोंखा, पटकोका।

श्वेताक—हि॰ सफेद आक। बं॰ श्वेत आक्रन्द।

श्वेतार्जक—हि॰सफेद अजबला।

श्वेतावसु—हि॰ सफेद वसु।

श्वेतोत्पल—हि॰ सफेद कमल, चन्द्रविकाशी।

ष

षड्भुजा—हि॰ खरबूजा। बं॰ खरमुंजा।

षारिवर—हि॰ वालेवत।

स

सप्तपर्ण—हि॰ छितवन, सतवस, बं॰ छातिम।

समष्टिल—हि॰ नद्याम्र, केंचुआव्रह।

समुद्रफल—हि॰ कैथफल।

समुद्रमलफेन—हि॰ बं॰ समुद्रफेन

समुद्रलवण—हि॰ नमक, सामुद्रनोन। बं॰ करकचलवण।

सरल—हि॰ धूप सरल। बं॰ सरलकाष्ठ।

सर्ज—हि॰ बड़ा शाल। बं॰ झाजी राल।

सर्पाक्षी—हि॰ सरहथी गण्डिनी, सुगन्ध नकुलकन्द। संसर्यकङ्कालिका।

सर्पिणी—हि॰ सर्पिणी।

सवक्षार—हि॰ साबू।

सल्लकी—हि० शालई।

सहो (सलेहो) पिप्पली—हि० सिंहली पिप्पली।

सहचर—हि० सफेद कसेसरैया।

सहदेवी—हि० सहदेई। बं० पीतपुष्प, दण्डत्पल।

साखरुंड—हि० पड़वास, बड़ी माई, छोटी माई।

सातजा—हि० शातला, थूहरका भेज। बं० मिजविशेष।

सारिवा—हि० गौरीसर, गौरिआसाज। बं० अनन्तमूल।

सार्षपपत्र—हि० सरसों का शाक।

सार्षप तैल—हि० सरसोंकातेल।

सिकता—हि० वालू रेती।

सिक्थक—हि० मोम।

सिग्रुडी—हि० शिग्रुडी।

सितदम—हि० कुसद्राभ—डाभ, दाभवडी।

सितपलाश—हि० सफेद पलास बं० श्वेत पलाश।

सिद्धार्थ—हि० सफेद सरसों।

सीसक—हि० नोसा।

सुगन्धभूस्तृण—हि० सुगन्धतृण।

सुरपुन्नाग—हि० सुरपुन्नाग, कमल। बं० छबियान फुल।

सुवर्णकदली—हि० सोनकेला।

सुवर्णकेतकी—हि० सुवर्णकेतकी।

सुवर्णगैरिक—हि० सुवर्ण गेरु।

सुवर्णमाक्षिक—हि० सोनामाखी।

सुक्ष्मथोलिका—हि० छोटीलोनी।

सूरण—हि० सूरन, जमीकन्द। बं० ओल।

सूर्य्यकान्त—हि० अगिवो काँच।

सौराष्ट्री—हि० वोपोचन्दन।

सौवर्चल—हि० सोचर, नोन, कालानमक, होहा रकोड़ा। बं० प्रचललवण।

सौवीर—हि० काला सुरमा।

साम्भर—हि० साम्भरलोण।

सिन्दूर—हि० सिन्दूर।

सिन्दूरी—हि० सिन्दुरिया, जाफर लटकच।

सिन्दुवार—हि० श्वेत सम्भालु, निर्गुण्डी, मेउड़ी सेंदुआरि। बं० निसिन्दा।

सैन्धव—हि० सैन्धानमक, लाहौरी निमक।

स्थलपद्मिनी—हि० स्थल कमलिनी।

स्थूलैरण्ड—हि० बड़ा अरण्ड।

स्थूलैला—हि० बड़ी लाची। बं० बड़ ईलातची।

स्थूलशर—हि० सरपता।

स्थौणेयक—हि० थुनेर।

स्निग्धदारु—हि० तेलिया देवदारु।

स्नुही—हि० थेहुर, सेहुड़। बं० भिजभच्च।

स्पृक्का—हि० असवरग कलङ्कीदकपुरी। बं० स्पृक्काशाक।

स्फटिक—हि० स्फटिक।

स्फटिकी—हि० फिटकिरी।

स्रोतोजल—हि० लाल सूरमा।

स्वयंगुप्ता—हि० कौंछ, किवांच। बं० आलकुसी।

स्वर्जिक्षार—हि० सज्जी।

स्वर्ण—हि० सोना।

स्वर्णक्षिरी—हि० चोक, सत्यानासी। बं० चोक सियालकाटा।

स्वर्णुली—हि० सनाय।

स्वादुपटोली—हि० मीठापटोल।

ह

हबुषा—हि० बड़ो हाउबेर।

हीरक—हि० हीरा।

हरिचन्दन—हि० कुङ्कुमागुरुचन्दन।

हरिताल—हि० हरिताल।

हरिद्रा—हि० हल्दी। बं० हरिद्रा

हरिद्रु—हि० हरदिया।

हरिद्रुभ—हि० बड़ा दाम।

हरीतकी—हि० हरड, हर्ड, हर्र। बं० हरीतकी।

हरीतकीतैल—हि० हरडकातेल।

हस्तकोड़िका—हि० हाहजोड।

हस्तीकोशातकी—हि० नेनुआ, गलका तोरई, घीया तोरई। बं० धुंधुल।

हस्तिमद—हि० हस्तिमद।

हस्तिकन्द—हि० हाथी चिवारी। बं० कचु।

हस्तिशुण्डी—हि० हाथीशुण्डा।

हितावली—हि० जलकनेर।

हेमजीवन्तिका—हि० स्वर्णजीवन्ती।

हेमयूथिका—हि० पीली जूही ।

हंसपादा—हि० गोहालिया ।

हिङ्गु—हि० हींग । बं० हींग ।

हिङ्गुपत्री—हि० बाफली । बं० शेमुनी ।

हिङ्गुल—हि० सिंसरख ।

हिन्ताल—हि० बड़ा ताड़ ।

ह्रस्वालह—हि० छोटी पाखर ।

क्ष

क्षव—हि० चवरा, चोरा, रत्तरा, वौड़ा, लोनिया ।

क्षीरकाकोली—हि० क्षीरकाकोली ।

क्षीरणी—हि० पिसोरा ।

क्षीरविदारी—हि० दूधविदारी ।

क्षुद्रकारलीकन्द—हि० कड़वचोकन्द ।

क्षुद्रचञ्चु—हि० छोटी चञ्चु ।

क्षुद्रदुरालभा—हि० छोटा धमासा ।

क्षुद्रपाषाणभेद—हि० क्षुद्रपाषाणभेद ।

क्षुद्रशङ्ख—हि० छोटा शङ्ख ।

क्षुद्रा—उपोदकी—हि० छोटी पोई ।

क्षुद्राग्निमन्थ—हि० छोटी अरनी ।

श्रीगणेशाय नमः।

वैद्यक-शिक्षा।

प्रथम खण्ड।

स्वास्थ्यविधि।

"स्वस्थं वृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते।"—चरकसंहिता।

चिकित्सा शास्त्रका उद्देश्य।—स्वास्थ्य सम्पादन करनाही चिकित्सा शास्त्रका मुख्य उद्देश्य है। रोग उत्पन्न होनेसे चिकित्सा द्वारा उसका निवारण करना जैसा आवश्यक है, वैसही रोग आक्रमणके पहिले जो सब उपायों के अवलम्बन करने से रोग उत्पन्न न हो, उसका प्रतिपालन करना उससेभी अधिक आवश्यक है। स्वास्थ्य रक्षाही रोगोत्पत्तिके निवारण का एकमात्र उपाय है। यथोपयुक्त बल वर्णादि सम्पन्न नीरोग शरीर से निर्दिष्ट आयुके उपभोगका नाम स्वास्थ्य है, तथा जिस रीति के आहार विहारादि से स्वास्थ्यकी रक्षा होती है उसको स्वास्थ्यविधि कहते हैं। शरीरिमात्रको स्वास्थ्य एकान्त प्रार्थनीय है, कारण ऐहिक, पारत्रिक जितने काम हैं सबका मूल स्वास्थ्यही है। शरीर नीरोग न रहनेसे ऐहिक सुखजनक विद्या, धन, यश, अभीष्ट लाभ, अथवा व्रत यज्ञादि पारलौकिक धर्म्ममूलक कार्य्य सम्पादन, ये दोनों कोई

कार्य्यभी सम्पन्न नही हो सक्ता। वस्तुतः एक मनुष्य सब गुणयुक्त अनुकूल पुत्र कलत्रादि-परिवार परिवृत नष्ट स्वास्थ्य होनेसे जैसा दुःखित होता है, दूसरा मनुष्य सम्पूर्ण नीरोग पर ये सब सुखोंसे वंचित रहने परभी वैसा दुःखित नही होता। यही सब कारणोंको विचार करके आर्य्य मनीषिगण जो सब उपायोंके अवलम्बन करनेसे, मनुष्यगण जराव्याधि प्रभृतिसे छुटकारा पा सके वही सब उपदेशोंका उल्लेख चिकित्सा शास्त्रमें पहिले किया है। हमभी उसी रीतिसे इस पुस्तकके आरम्भमें प्रथम स्वास्थ्यरक्षाके विषयमें कई एक संक्षिप्त नियम सन्निवेशित करते हैं।

शारीरिक स्वास्थ्य लक्षण।—स्वस्थ व्यक्ति अर्थात् जिनके शरीरमें वात, पित्त और कफ यह तीन दोष; रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और ओजः यह अष्टधातु; और मूत्र, पुरीष, स्वेदादि मल-समूह उपयुक्त मात्रामें है, उनको ब्राह्म मुहूर्त्तमें अर्थात् चार दंड रात रहते बिछौनेसे उठकर मल मूत्रादि त्याग कर दन्तधावनसे मुख धोना चाहिये। पूर्व या उत्तर मुख बैठकर करञ्ज, करवीर, आकन्द, मालती, अर्ज्जुन, खैर अथवा कटु-तिक्त और कषाय रसयुक्त कोई काठकी कूची बनाकर दन्तमांसको छोड़कर दांतको साफ करना; तथा सोना, चांदी, ताम्बा सीसा या पीतलकी बनाई जीभीसे जिह्वा साफ करना इस रीतिसे दन्त प्रभृति साफ और मुखकी दुर्गन्ध नाश होनेसे अन्नादिमें रूचि होती है। अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, तृष्णा, मुखपाक और हृद्रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा कर्णरोगसे पीड़ित मनुष्योंको दतुवनसे दांत साफ करना उचित नही है; सफेद मिट्टी, कोयलेका चूर्ण, कंडेकी राख आदिसे उनको दांत साफ करना चाहिये। प्रातःकालकी तरह तीसरे पहरकी भी दतुवनसे मुख साफ करना चाहिये।

व्यायाम।—इसके बाद व्यायाम (कसरत) करना उचित है। अर्द्ध श्रान्ति बोध व्यायामको मात्रा निर्द्दिष्ट हैं; अर्थात् ललाटमें पसोना आना और ईषत् दीर्घ निःश्वासादि लक्षणसे अर्द्धश्रान्ति अनुभव कर व्यायाम बंद करना। शीत और वसन्तके सिवाय और ऋतुयों व्यायाम कुछ कम करना चाहिये। कारण, अधिक व्यायाम इस ऋतुमें करनेसे, तृष्णा, क्षय, प्रतमक (श्वासविशेष), रक्तपित्त, कास, ज्वर और वमन प्रभृति उत्कट रोग होनेका डर है। उचित मात्रामें व्यायाम करनेसे, शरीरको लघुता, कष्टसहिष्णुता, अग्निको दीप्ति, मेदक्षय और अङ्गका सुगठन आदि उपकार होता हैं। बालक, वृद्ध और वातपित्त तथा अजीर्ण रोगोको व्यायाम करना निषेध है।

तैलाभ्यङ्ग।—व्यायामके बाद सब शरीर को थोड़ी देरतक मर्द्दन करना आवश्यक है, इससे व्यायाम जनित श्रम दूर होने पर सर्व्वाङ्गमें विशेषकर मस्तक, पैरका तलवा और कानके छेदोंमें तेल मर्द्दनकर स्नान करना। शरीरमें तेल मर्द्दन करनेसे शरीर दृढ़, पुष्ट, क्लेशसह, सुखस्पर्श, और सुन्दर त्वक्युक्त होता हैं; तथा इससे जरा, श्रान्ति और विकृत वायु दूर हो आयुकी वृद्धि होती है। मस्तकमें तेल मर्द्दन करनेसे, खालित्य (टाक), केशकी अकालपक्कता और केशका झरना आदि रोग दूर हो मस्तक और कपालके वलकी वृद्धि, केशके मूलकी दृढ़ता, दीर्घत्व और कृष्णत्व, ईन्द्रिय-समूहोकी प्रसन्नता और सुनिद्रा होती है। पैरके तलवोंमें तेल मालिश करनेसे पदद्वयको कर्कशता, रूक्षता और स्पर्शानभिज्ञता आदि दोष दूर हो, स्थैर्य्य और वलवृद्धि, सुकुमारता और आंखकी ज्योति बढ़ती हैं, औरभी पैरका फटना, गृध्रसी, वात और स्नायु-संकोचको आशङ्का नही रहती है। कानके छेदमें तेल

डालनेसे ऊंचा आवाज सुनना और बहिरापन आदि वायुजनित कर्णरोग तथा मन्याग्रह और हनुग्रह प्रभृति वातज पीड़ा उत्पन्न नही होती। वस्तुतः तैलाभ्यङ्ग सर्व्वतोभावसे करना उचित है। चर्म्म, कलस और गाड़ीके अक्षमें तैल देनेसे जैसे बहुत दिन तक स्थायी रहता है, मनुष्य-शरीरभी वैसही तैलाभ्यङ्गसे बहुत दिन तक सबल और कार्य्यक्षम बना रहता है। वमन विरेचनादिके बाद, कफ रोगी और अजीर्ण रोगीको तैलाभ्यङ्ग करना उचित नही है।

स्नानविधि।—तैल मर्द्दनके बाद साफ और बहते पानीसे स्नान करना, अभाव में साफ पानी गरम कर ठंढा होने पर स्नान करना हो तो, मस्तकमें गरम पानी न देकर ठंढा पानी देना चाहिये, कारण गरम पानी शारीरिक बलप्रद होने परभी मस्तकमें देनेसे केश और चक्षुके बलको नष्ट करता है। स्नान करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध, मैल, दाह, पसीना, वीभत्सता, भारीपन, तन्द्रा और खजुली आदिका नाश होता है तथा शारीरिक बलवृद्धि और अग्निकी दीप्ति होती है। स्नानके बाद पहिले गीले अंगोछेसे बदन पोछना, फिर सुखे वस्त्रसे बदन पोछकर, साफ सुखा वस्त्र पहिरना और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यका अनुलेपन करना चाहिये। अर्द्दित रोग, नेत्र, कर्ण और मुखरोगमें, अतिसार रोगमें, पीनस रोगमें, अजीर्ण रोगमें और आहारके बाद स्नान करनेसे अनिष्ट होता है।

आहार।—स्नानके बाद परिष्कृत स्थानमें ऋजु भावसे बैठकर उपयुक्त मात्रासे ईषत् उष्ण, स्निग्ध मधुरादि छ रस सम्पन्न, बलकर रुचि जनक, और विश्वस्त प्रियजनका दिया भोज्य पदार्थ न बहुत जल्दी और न बहुत देरसे मौनावलम्बन पूर्व्वक भोजन करना। जितना भोजन करनेसे कुक्षि, हृदय या पार्श्वद्वयमें दर्द

और शरीर भारी मालूम न हो अथवा उदर और इन्द्रिय-समूहोंकी प्रसन्नता मालूम हो, क्षुधा पिपासाकी शान्ति हो और शयन उपवेशन, गमन, निश्वास, प्रश्वास और कथोपकथनमें कष्ट न हो वही आहारकी मात्रा है। किन्तु भोज्यवस्तुकी गुरुता और लघुतासे उसकी मात्रा स्थिर करना उचित है;—गुरुपाक अर्थात् देरसे हजम होनेवाला पदार्थ अर्द्ध तृप्ति अर्थात् आधा पेट और लघुपाक द्रव्य पेटभर खाना उचित है। उपयुक्त मात्रा आहार न कर अल्प मात्रा या अधिक मात्रा भोजन करनेसे विशेष अनिष्ट होनेकी आशङ्का है। अल्पाहारसे तृप्ति नहीं होती, तथा उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है, बल, वर्ण, आयु, रस-रक्तादि धातुसमूह और ओजः क्षीण होता है; तथा मन, बुद्धि और इन्द्रिय-समुदाय उपतप्त और वातजीय वायुरोग उत्पन्न होते है। अधिक मात्रा आहार करनेसे युगपत् समुदाय दोष कुपित हो अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसूचिका (हैजा) अलसक प्रभृति दुरारोग्य रोगसमूह उत्पन्न होते है। अपरिष्कृत स्थान, शत्रुगृह, नीच जातिका गृह, प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या प्रभृति समयमें, उत्तर मुख बैठकर, पहिलेका आहार अच्छी तरह जीर्ण न होनेपर, अन्यमनस्क भावमें अथवा ज्वरादि आहारनिषिद्ध रोगसे पीड़ित होनेपर आहार करना उचित नहीं है। इसके सिवाय शीतल द्रव्य, पर्य्युषित (बासी) और सूखी वस्तु, विरुद्ध वीर्य्य और क्षीर मत्स्यादिके तरह संयोगविरुद्ध द्रव्यभी आहार करना अनुचित हैं।

आहारान्ते कर्त्तव्य।—भोजनके बाद जायफल लताकस्तुरीका फल, शीतलचीनी लौंग, छोटी इलायची, कर्पूर, और सुपारी आदि मसालायुक्त पान खाना चाहिये, इससे खायाहुआ द्रव्यसमूह लारसे मिलकर हजम होता है; और मुखकी विरसता

दूर हो सुगन्धयुक्त होता है। इसके बाद थोड़ी देर बायें तरफ लेटना चाहिये। दिनको भोजनके बाद सोना उचित नही है। कारण दिनको सोनेसे कफ-पित्त प्रकुपित हो हलीमक, शिरः-शूल, स्तैमित्य, गात्रगौरव, अङ्गमर्द्द, अग्निमान्द्य, हृदय उपलेप, शोथ, अरोचक, हृल्लास, पीनस, अर्द्धावभेदक, कोठ, व्रण, पिड़का, कण्डु, तन्द्रा, कास, गलरोग प्रभृति और बुद्धिनाश, स्रोतोरोध, और इन्द्रिय-समूह दुर्व्वल आदि रोग होनेकी आशंका रहती है। पर जिनको सङ्गीत, अध्ययन, मद्यपान, अधिक रात्रि जागरण, मैथुन, भारवहन, पथ पर्य्यटन आदि कामोसे क्लान्ति हुई हैं और अजीर्ण, क्षत, तृष्णा, अतिसार, शूल, श्वास, हिक्का, उन्माद, पतन या आघातादिसे पीड़ित तथा क्रोधी, शोकार्त्त, भीरु, वृद्ध, बालक, कृश या दुर्व्वल है उनके हकमे दिवा निद्रा उपकारी है। साधा-रणतः दिवा निद्रा मना रहने परभी ग्रीष्म ऋतुमें स्वभावतः रुक्ष और इस ऋतुमें सूर्य्यकिरण तेज और रात्रि मान अति अल्प होनेके कारण दिवा निद्रा अनिष्टजनक नही है। किन्तु मेदस्वी, कफप्रकृति या कफ रोग पीड़ित और दूषित विषादिसे पीड़ित ऐसे मनुष्यको ग्रीष्म ऋतुमेंभी दिवा निद्रा अनिष्टकारक है।

भोजनके बाद शारीरिक परिश्रमजनक कार्य्य, तेज चलनेवाली सवारीमें चढ़ना और आंच तथा धूपमे बैठना उचित नही है। दो पहरके पहिले या तीसरे पहर को भोजन करना अनुचित है।

तीसरे पहरको जब सूर्य्यकी किरण ठंढी हो तब थोड़ी देर बगीचा आदि खुलासे स्थानमें टहलना चाहियें, इससे अग्निकी दीप्ति, शारीरिक फूर्त्ती और मन प्रफुल्लित होता है। टहलती समय जुता पैरमें रहना चाहिये, इससे पदद्वयमें किसी तरहका कष्ट नही होता और आंखके हकमें उपकारी है। धूप, वृष्टि या

शिशिरके समय कहीं जाना होतो छाता शिरपर लगाना अवश्य उचित है।

रातको एक पहरके भीतर उपर कहे अनुसार उपयुक्त मात्रासे आहार करना चाहिये। रातको दधि भोजन करना कदापि उचित नहीं है। आहारके बाद सूखा साफ और हवादार घरमें अवस्थानुसार पलंग, चौकी, चारपाई आदि पर ऋतु भेदानुसार कोमल सुखस्पर्श बिछौनेपर सोना चाहिये। रातको ६ घंटेसे ८ आठ घंटे तक सोना उचित है। इससे कम या अधिक देर तक सोनेसे शारीरिक कृशता, दौर्ब्बल्य, और कई कठिन रोग अथवा मृत्युतक होनेका डर है। इससे मनुष्य मात्रको स्वास्थरक्षाके विषयमें आहारादिके भांति उपयुक्त मात्रा निद्रा करनाभी एकान्त आवश्यक है।

स्त्री-सहवास।—शरीर-रक्षाके लिये सहवास अर्थात् मैथुनभी नितान्त उपयोगी है। ऋतुभेदसे उपयुक्त कालमें अनुरागिणी और अनुकूला स्त्रीसे उपगत होना चाहिये। रजस्वला कुष्ठादि रोगपीड़िता, स्वकीय अनभिमतरूपा या अनाचार-विशिष्टा, अन्या-सक्ता स्त्री, परस्त्री, दुष्टयोनि, पश्वादि योनि, योनि भिन्न गुह्य-द्वारादि अन्य छिद्रमें अथवा हस्तमैथुन नहीं करना। तथा प्रातः-सन्ध्या या सायंसन्ध्या, पूर्णिमा, अष्टमी, चतुर्द्दशी, अमावस्या, संक्रान्ति और श्राद्धदिन प्रभृति निषिद्ध दिनको; देवालय, चतुष्पथ, श्मशान, जलाशय तीर, गुरु ब्राह्मण आदिका मकान शराबकी दुकान आदि स्थानमें अथवा जहां बहुत मनुष्य रहे ऐसे स्थानमें मैथुन करना उचित नहीं है। ज्वरादि यावतीय रोगसे पीड़ित मनुष्यको मैथुन करना नहीं चाहिये।

ऋतुचर्य्या शीत और हेमन्तमें।—यह सब निर्दिष्ट

नित्य कर्मके सिवाय ऋतुभेदानुसार कई विशेष नियम प्रतिपालन करना चाहिये। हेमन्त और शीत ऋतुमें शीतल वायुस्पर्शादिसे पेटके भीतरकी अग्नि रुद्ध होती है इससे अग्निवल उसवक्त बढ़ता है तथा उपयुक्त मात्रा आहार न मिलनेसे रसादि धातु-समूहोंको परिपाक करता है, इससे इस ऋतुमें अधिक गोधूमादि, निर्म्मित, अम्ल और लवण रसयुक्त स्निग्ध पिष्टकादि भोज्य, जलज और आनूप प्रभृति मांस, अभ्यास रहनेसे मद्य, दूध और दूधकी बनाई वस्तु और मिष्टान्न प्रभृति खाना चाहिये। स्नान, पान, आचमन, और शौचादि कार्य्यमें गरम पानी व्यवहार करना। रेशम, कपास, और पशुलोम-निर्म्मित वस्त्रसे बदन ढाकना, उष्णगृह, और उष्ण शय्यामें शयन करना, इस ऋतुमें रोज मैथुन करनेसेभी शरीरमें किसी प्रकारकी हानिकी आशङ्का नहीं है। कटुतिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य, लघु द्रव्य, और वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, वायु सेवन, और दिवा निद्रा आदि हेमन्त और शीतमें परित्याग करना चाहिये। हेमन्त और शीतके आचरण प्राय एकही तरह है; इसलिये दोनोंकी ऋतुचर्य्या एक साथ लिखी गई है, पर शीतकी न्यूनाधिकसे पूर्व्वोक्त आचरण-समूहमें किंचित हेर फेर करना आवश्यक है।

वसन्तमें।—हेमन्तका सञ्चित कफ, वसन्त कालके सूर्य्यके प्रखर किरणसे कुपित हो पाचकाग्निको दूषित करता है, इससे बहुतेरे रोग होनेकी सम्भावना है। अतएव वसन्त ऋतुमें वमनादिसे कफको निकालना उचित है। इस ऋतुमें लघुपाक, रुक्ष-वीर्य्य, कटु, तिक्त, कषाय और लवणयुक्त अन्नादि, शश, आदिके मांसका आहार और स्नान पान आचमन और शौचादि कार्य्यमें थोड़ा गरम पानी व्यवहार करना चाहिये। पोशाक और बिछौना

हेमन्त ऋतुकी तरह व्यवहार करना। युवती स्त्रीका संग प्रशस्त है। गुरु स्निग्ध द्रव्य और अम्ल, मधुर रस भोजन, दिवा निद्रा, आदि वसन्त कालमें अनिष्टकारक हैं।

ग्रीष्ममें।—ग्रीष्मकालमें मधुर रसयुक्त शीतल और स्निग्ध द्रव्य आहार और पान करना चाहिये। इस ऋतुमें जंगली पशु पक्षीका मांस, घृत, दूध, शालि धान्यका भात, आदि भोजन शीतल गृहमें अल्प दिवा निद्रा, रातको शीतल गृहमें और शीतल बिछौनेपर शयन, सुशीतल उपवन और जलाशयके तीर आदि स्थानमें विचरण हितकर है। कपास-निर्म्मित हलका पोशाक इस समयमें व्यवहार करना। लवण, अम्ल और कटुरसयुक्त तथा उष्ण-वीर्य्य द्रव्य भोजन, मैथुन और मद्यपान ग्रीष्म ऋतुमें निषिद्ध है। मद्यपानका विशेष अभ्यास हो तो अधिक पानी मिलाकर थोड़ा मद्यपान कर सकते हैं।

वर्षामें।—वर्षामें ग्रीष्मसञ्चित वायु कुपित होता है, इससे अनुवासन कर्म्म (स्नेहपिचकारी) से वायुको शान्त करना चाहिये। इस ऋतुमें अग्निबल क्षीण होनेके कारण आहार हलका करना चाहिये। वर्षाऋतुमें पानी बरसनेसे किसी वक्त शीतकालकी तरह, किसी वक्त पानी न बरसनेसे ग्रीष्मकालकी तरह अनुभव होता है। इससे इस ऋतुका पान, आहार, शय्या, और पोशाक आदि विचार कर शीत, ग्रीष्म, वसन्त आदिके तरह समय समय पर परिवर्त्तन करना आवश्यक है। खाने पीनेकी चीजमें थोड़ा मधु मिलाकर खाना पीना चाहिये। जंगली मांस, पुराना यव, गोधूम वा धान्यादिका अन्न और अधिक खट्टा, लवण और स्निग्ध द्रव्य भोजन करना उचित है। वृष्टि, कूप या सरो-

वरका पानी गरम कर ठंढा होने पर पान और स्नान करना चाहिये। मद्यपान करना हो तो ग्रीष्मकालकी तरह पुराना मद्य बहुत पानी तथा थोड़ा सहत मिलाकर पीना। इसवक्त रूईका साफ़ कपड़ा पहिरना उचित है। वृष्टि और वृष्टिजन्य भूवाष्प (माटीके भीतरसे एक प्रकारका गैस उठता है उसको भूवाष्प कहते है) शरीरमें न लगने पावे। दिनको सोना, और धूप आदिमें फिरना, नदीके पानीसे स्नान, व्यायाम और मैथुन इस समय में बहुत अनिष्टकारक है।

शरत्में।—शरत् कालमें वर्षा ऋतुका सञ्चित पित्त सहसा अधिकतर सूर्य्यकिरण प्राप्त हो कुपित हो उठता है। इससे इसवक्त बिरेचनसे पित्तको शान्त और जलौकादिसे रक्त मोक्षण करनेकी विधि है। लघुपाक, शीतल, मधुर और तिक्त-रस संयुक्त अन्नपान हितकारी है। यव, गोधूम और धान्यादिका अन्न, लाव, चटक, हरिण, शश, मेष, प्रभृतिके मांस; नदीमें स्नान और वही पानीका पान; निर्म्मल और हलका वस्त्र परिधान, सुकोमल और सुख-स्पर्श शय्या तथा चन्द्रकिरण सेवन करना उचित है। क्षार द्रव्य, दही, जलज और आनूपमांस भोजन, तेल मर्द्दन, शिशिर और पूर्व्वदिशा को वायुस्पर्श शरत् कालमें अनिष्टकारक है।

साधारणतः वसन्तकालमें वमन, शरत कालमें विरेचन और वर्षाकालमें अनुवासन विधिका उपदेश रहनेपर भी मास भेदसे इसकी विशेष विधि कहते हैं;—जैसे—चैत्रमासमें वमन, श्रावणमें अनुवासन और अगहनमें विरेचन कराना उचित है।

ऋतुभेदसे ऋतुचर्य्या।—ऋतुभेदसे जो सब स्वास्थ्य-विधि उपर कह आये हैं, अपने अपने प्रकृति अनुसार उसका थोड़ा परिवर्त्तन करना आवश्यक है। वायु-प्रकृतिके मनुष्यका वायु

जिसमें शान्त रहे, सब ऋतुमें वैसाही आहार विहारादिका आचरण करना। ऐसही पित्त-प्रकृतिके मनुष्यको पित्तनाशक और श्लेष्म-प्रकृतिवालेको श्लेष्मनाशक आहार विहार करना चाहिये। स्निग्ध, उष्ण, मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त द्रव्य भोजन, शीतल पानीसे स्नान, शीतल जल पान, सम्बाहन (हाथ पैर दवाना) सर्व्वदा सुखजनक कार्य्य, घृत तैलादि स्नेह द्रव्य व्यवहार, अनुवासन (स्नेह पिचकारी), अग्निदीपक और पाचक औषधादि सेवनसे वात-प्रकृतिके व्यक्तिका वायु शान्त रहता है। मधुर तिक्त और कषाय रस संयुक्त शीतल द्रव्य पान भोजन, घृत पान, सुगन्धित द्रव्य सूङ्घना, मोती हीरा और पुष्पादिकी माला धारण, गीत वाद्य आदि श्रुति-सुखकर शब्द सुनना, प्रियजनोंके साथ बात चीत, ठंढी हवा और चन्द्रकिरणमें फिरना; मनोरम उपवन, नदीतीर या पर्व्वतशिखर प्रभृति मनोहर स्थानमें विचरण और विरेचन तथा तिक्त घृतादि औषध सेवनसे पित्त-प्रकृतिके मनुष्यका पित्त शान्त रहता है। कटु तिक्त और कषाय रसयुक्त तथा तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्य पान भोजन, सन्तरण, अश्वारोहण, व्यायाम, रात्रि जागरण, रुक्ष द्रव्य समूहद्वारा गात्र मर्द्दन, धूमपान, उपवास, उष्ण वस्त्र परिधान; और वमनादि क्रियासे श्लेष्म-प्रकृतिके मनुष्यका श्लेष्मा प्रशमित होता है। अतएव अपनी अपनी प्रकृति विचार कर उपर लिखे उपदेशोंको जहांतक बने पालन करना चाहिये।

स्वास्थ्यान्वेषीका कर्त्तव्य।—यह सब दैनिक कार्य्य और ऋतुचर्य्याके सिवाय औरभी कई एक सदाचार स्वास्थ्यान्वेषी मनुष्यगणोंको अवश्य पालन करना उचित है। इससे संक्षेपमें उसकोभी यहां लिखते हैं। सवेरे स्नानके बाद और शामको ईश्वर-

चिन्ता प्रभृति धर्म्म कार्य्य का अनुष्ठान करना। देवता ब्राह्मण गुरु और पूज्योंको सर्व्वदा भक्ति करना। यथासाध्य गरीबको खबर लेना और अतिथिकी सेवा करना। जितेन्द्रिय, निश्चिन्त, अनुद्दत, निर्भीक, लज्जाशील, क्षमाशील, प्रियभाषी, धार्म्मिक, अध्यवसायी और विनयी होना। सर्व्वदा परिष्कार वस्त्रादि परिधान और भद्रजनोचित वेश रखना। सब प्राणियोंपर आत्मीयता प्रकाश करना। परस्त्री और पर सम्पत्ति पर लोभ नही करना। कभीभी किसी तरहके पापका अनुष्ठान या पापोंके संगमें नही रहना। दूसरेका दोष और गुप्त बात किसीके पास प्रकाश नही करना, बड़े आदमी या भले आदमीसे विरोध नही करना। किसी तरह की खराब सवारी, वृक्ष या पर्व्वतशिखर पर न चढ़ना, जोरसे हंसना, विकट भावसे बैठना, असम स्थान या सङ्कीर्ण स्थानमें सोना; मुह बन्दकर जम्हाई लेना, हंसना या छींकना, विना कारण नासिका मर्द्दन, दांत कटकटाना, नाखून घिसना, हाड़से हाड़पर मारना, ज्योतिष्क पदार्थ देखना, अकेला शून्य घरमें रहना, जंगल-में फिरना, स्नान करने पर पहिरे हुए वस्त्रसे बदन पोछना, मल-मूत्रका वेग रोकना, शामको आहार निद्रा और मैथुन; रातको अपरिचित स्थानमें जाना आदि कामोंको त्यागना उचित है। रातको किसी जगह जानेकी आवश्यकता होने पर शिरमें उष्णीष, पैरमें जूता, हाथमें छड़ी और संगमें आदमी तथा रोशनी अवश्य लेना चाहिये। रातको अपरिचित स्थानमें जाना उचित नही है। स्वास्थ्यविधि सम्बन्धमें इतनाही कहना यथेष्ट होगा कि जिस कामसे शारीरिक या मानसिक किसी प्रकारके अनिष्टकी सम्भावना हो वैसा काम कभी नही करना चाहिये।

नियम पालनका फल।—उपरोक्त स्वास्थ्यविधि प्रति-

पालन करनेसे सर्व्वदा मनुष्य नीरोग रहकर निर्द्दिष्ट आयु उपभोग कर सकता है, सुतरां ऐहिक और पारत्रिक सब कार्य्य निर्व्विघ्न सम्पादन कर इहकालमें उत्तम गति पानेको समर्थ होता है। अतएव मनुष्यमात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें यत्नवान् होना उचित है।

नियम अपालनका फल।—स्वास्थ्यविधि पालन न करनेसे शरीरमें नानाप्रकारके रोगोंका प्रादुर्भाव होता है। कभी सम्पूर्ण रूपसे स्वास्थ्यरक्षा करने परभी अभिघातादि आकस्मिक कारणसे भी रोग होता है। चाहे जिस कारणसे हो, रोग उत्पन्न होते ही उसके उपशमनका उपाय करना चाहिये। किसी रोगको सामान्य समझकर छोड़ना नही चाहिये, कारण सामान्य रोगभी प्रथम अवस्थामें उपेक्षित होनेसे वही क्रमशः असाध्य हो जानेका गारुकाही जाता है। अतएव रोग होतेही चिकित्सकसे परामर्श लेकर उसका प्रतिकार करना चाहिये। कोई रोग असाध्य होने परभी चिकित्सामें त्रुटि नही करना, कारण बहुतेरे असाध्य रोगभी आराम होते देखा गया है। रोग होनेपर डरना नही, तथा उसका पूराहालाल चिकित्सकसे कहना, और चिकित्सकके परामर्श अनुसार सब काम करना। रोग असाध्य या उत्कट होनेसे चिकित्सक या आत्मीयगण रोगीसे न कह कर रोगको सर्वदा सामान्य रोग कहकर आश्वास देना चाहिये; कारण रोगी हताश या असन्तुष्ट होनेसे साध्य रोगभी असाध्य हो जाता है। रोगीके अनुगत, विश्वस्त और प्रिय २।१ आदमी सर्वदा पासमें रहकर आश्वासपूर्ण प्रिय वाक्यसे उसको सन्तुष्ट रखें। रोगीके पास बहुत आदमीके निश्वासादिसे घरको वायु दूषित होकर रोगीका अनिष्ट होनेका डर है जो घर सूखा, परिष्कृत और प्रवात अर्थात् जिसमें

वायु अच्छीतरह खेलती रहे ऐसे सुन्दर घरमें रोगीको रखना। पहिरनेका कपड़ा सुखा और साफ होना चाहिये, दिनभरमें कमसे कम दोबार पहिरनेका कपड़ा बदलना तथा उसका बिछौना सूखा नरम और साफ रहना चाहिये। किसी कारणसे बिछौना खराब होतेहो अथवा साधारणत: दो तीन दिन पर बदलना उचित है। सेवा करनेवाले सर्वदा सतर्क रहकर चिकित्सकके आदेशानुसार, काम करें और आहार विहारादि कार्य्यसे रोगी किसी तरहका कु-नियम करने न पावे, इस विषयमें विशेष सावधान रहें। चिकि-त्साके लिये उपयुक्त चिकित्सक निर्व्वाचन करना चाहिये। चिकित्सा शास्त्रमें व्युत्पन्न, दृढ़कर्म्मा और क्षतकर्म्मा, औषधादि सब उपकरण विशिष्ट और दयावान्, इन सब गुणयुक्त चिकित्सकको चिकित्साका भार देना चाहिये। अज्ञ चिकित्सकसे कभी चिकित्सा नही कराना। उपयुक्त चिकित्सकके चिकित्सासे मृत्युभी अच्छी है तथापि अज्ञ चिकित्सकसे आरोग्य लाभकी आशा करना उचित नही है। आयुर्वेदका प्रधान ग्रन्थ चरकसंहितामें इस विषयमें बहुत दोष लिखा है ;—

"कुर्य्यान्निपतिती मूर्द्धि सशेषं वासवाशनि: ।
सशेषमातुरं कुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥"

मस्तकमें बज्राघात होनेसे कदाचित् जीनेकी आशा कर सकते हैं तथापि अज्ञ चिकित्सककी दी हुई औषधसे जीवन रक्षाकी आशा नही करना चाहिये।

जो सब स्वास्थ्यविधि प्रतिदिन आवश्यक है, वही सब यहां लिखी गयी हैं। अत:पर रोग परीक्षाके विषयमें कतिपय नियमोंका लिखना आवश्यक हैं।

———०———

यावतीय रोगोमें शारीरिक सन्ताप १०४से १०५ डिग्री होकर लगातार एक अवस्थामें रहे तो उससे कोई दूसरा उपसर्ग होनेकी सम्भावना है। रोग उपशमके समय शरीरका सन्तापभी क्रमशः कम होने लगे तो फिर रोगके आक्रमणका डर नहीं रहता है। विषम ज्वरमें पुराना क्षयकारक रोग और तरुण ज्वरमें मृत्यु पास आनेसे शरीरका सन्ताप स्वाभाविक उत्तापसे कम होता है। विसूचिका रोगमें मृत्यु उपस्थित होनेसे सन्ताप ७७से ७८ डिग्री फारन् हीट तक कम होते देखा गया है।

—०—

मूत्र-परीक्षा।

परीक्षाका उपयुक्त मूत्र।—रोग समूहोंका या वातादि दोषोंके निरुपण करनेमें मूत्र-परीक्षाभी विशेष उपयोगी है। निर्दिष्ट लक्षणानुसार मूत्रका वर्ण और अन्यान्य विकृत दोषोंके निश्चय करनेको मूत्र परीक्षा कहते है। चार दण्ड रात रहते बिछौनेसे उठकर मूत्रत्याग करती वक्त प्रथम मूत्रधार छोड़कर मध्यकी मूत्रधार एक कांचके पात्रमें धर रखना, यही मूत्र परीक्षाके लायक है। मूत्र-परीक्षाके समय उसको बार बार हिलाकर बिन्दु बिन्दु तेल डालना।

प्रकृतिभेदसे मूत्रवर्ण।—वात प्रकृति मनुष्यका स्वाभाविक मूत्र श्वेतवर्ण, पित्त प्रकृति और पित्तश्लेष्म प्रकृतिका तेलके तरह, कफ प्रकृतिका आविल अर्थात् गदला, वात कफ प्रकृतिका गाढ़ा और सफेद रङ्ग, रक्त वात प्रकृतिका लाल और रक्तपित्त

प्रकृतिका कुसुम फूलको तरह मूत्र होता है। रोग विशेष के अन्यान्य लक्षण न होनेसे केवल इसी प्रकारके मूत्र परीक्षासे कोई पीड़ाकी आशङ्का नहीं है।

दूषित मूत्रके लक्षण।—वायुसे बिगड़ा मूत्र चिकना, पीला, किम्बा काला अर्थात् कृष्णपीत वर्ण अथवा अरुण वर्ण होता हैं। इस मूत्रमें तेल डालनेसे तेल मिला बिन्दु बिन्दु मूत्रबिम्ब ऊपरको उठता है। पित्तसे बिगड़ा मूत्र लाल ; तैलबिन्दु डालनेसे उसमें बुद बुद उत्पन्न होता है। कफसे बिगड़ा मूत्र फेनिला और क्षुद्र जलाशयकी तरह गदला होता है। आमपित्त दूषित मूत्र सफेद सरसोंके तेलकी तरह मालूम होता है। वात पित्तके मूत्रमें तेल डालनेसे उसमें काले रङ्गका बुद बुद उत्पन्न होता है। वायु और कफ दूषित मूत्रमें तेल डालनेसे मूत्र तेलके साथ मिलकर कांजीकी तरह दिखाई देता है। कफ और पित्तका मूत्र पाण्डुवर्ण होता है। सान्निपातिक दोष अर्थात् वात पित्त और कफ ये तीन दोषका मूत्र रक्त या कृष्णवर्ण होता है। पित्त प्रधान सन्निपात रोगीका मूत्र रख छोड़नेसे उपरका हिस्सा पीला और नीचेका हिस्सा लाल मालूम होता है। ऐसही वात प्रधान सन्निपातमें मध्यभाग काला और कफाधिक्य सन्निपातमें मध्यभाग सफेद मालूम होता है।

विशेष लक्षण।—प्रायः सब रोगोंमें यही सब लक्षणोंका विचार कर रोगीके दोषका भेद अनुमान करना चाहिये। कई एक रोगमें मूत्र लक्षणका किञ्चित विशेष लक्षण निर्द्दिष्ट है। जैसे—ज्वरादि रोगमें रस अधिक रहनेसे मूत्र उखके रसको तरह। जीर्ण ज्वरमें मूत्र छाग मूत्रकी तरह। जलोदर रोगमें घीके दानेकी तरह मूत्रमें एक पदार्थ दिखाई देता है। मूत्रातिसार

रोगमें मूत्र अधिक परिमाण रख छोड़नेसे नीचे लाल रंग मालूम होता है। आहार जीर्ण होनेसे मूत्र चिकना और तेलकी तरह आभायुक्त होता है सुतरां अजीर्ण रोगमें मूत्र विपरीत लक्षणयुक्त होता है। क्षय रोगमें मूत्र कृष्णवर्ण, और इसी रोगमें मूत्र सफेद होनेसे रोग असाध्य जानना।

इसके सिवाय प्रमेह रोगमें मूत्रभेद जैसा होता है, वह प्रमेह रोगमें विस्तृत रूपमें लिखा गया है।

—०—

नेत्र-परीक्षा।

—:○:—

प्रकोपभेदसे भिन्न भिन्न लक्षण।—वायु प्रकोपसे दोनो आंखे तीव्र, रूक्ष, धुंवाके आभाकी तरह, मध्यभाग पीला या अरुण वर्ण और पुतली चञ्चल होती है, अर्थात् दोनो पुतली सर्व्वदा घमती रहती है। पित्त प्रकोपसे आंखे उष्ण और पीत, लाल, या हरे रंगकी होती है। इसमें चक्षुदाह और रोगी दियेकी रोशनी सह नही सकता है। कफ प्रकोपसे दोनो आंखके चिकनी अश्रुपूर्ण पीतवर्ण, ज्योतीहीन, भारी और स्थिर दृष्टियुक्त होती है। दो दोषके आधिक्यसें दोनो दोषके लक्षण मालूम होते है। त्रिदोषके प्रकोपसे, अर्थात् सन्निपात रोगमें आंखे काली या लाल रंग, टेढ़ी दृष्टि, भीतरको धसी, विकृत और तीव्र पुतली, तन्द्राच्छन्न, और थोड़ी थोड़ी देरमें बन्द और खुलती रहती है। तथा इस रोगमें आंखे कभी अदृश्य और कभी कई प्रकारके वर्णकी होती है।

रोग आराम होने पर आंखमें क्रमशः स्वाभाविक सौन्दर्य्ययुक्त प्रसन्नता और शान्त दृष्टि प्रभृति दिखाई देने लगते है।

—०—

जिह्वा-परीक्षा ।

वायुके आधिक्यसे जिह्वा शाक पत्रके वर्णकी तरह या पीली, रूक्ष, गोजिह्वाकी तरह कर्कश और फटी होती है। पित्ताधिक्यसे जिह्वा लाल या काली, कफाधिक्यसे सफेद, रसीली, घनी और लिप्त ; दो दोषके आधिक्यसे दो लक्षणयुक्त और सन्निपात अर्थात् तीन दोषके आधिक्यसे काली, कर्कश सूखी, स्फोटकयुक्त और दग्धवत् होती है।

रक्तका आधिक्य और दाह रहनेसे जिह्वा उष्ण स्पर्श और लाल। ज्वर और दाह रोगमें नीरस। नये ज्वरमें प्रवल दाह, आमाजीर्ण और आमवातके प्रथम अवस्थामें जिह्वा सफेद और चटचटी मालूम होती है। सान्निपातिक ज्वरमें जिह्वा स्थूल, शुष्क, चट-चटी, रूक्ष और निर्व्वापित अङ्गारकी तरह काली होती है। यकृत क्रियाके वैषम्यमें और मल या पित्तके अवरुद्ध होनेसे, जिह्वा पाण्डु वर्ण और मलसे लिप्त रहती है। यकृत प्लीहा आदि पीड़ाकी शेष अवस्थामें और क्षय रोगके बाद जिह्वामें घाव होता है। हैजा, मूर्च्छा, और श्वासमें जिह्वा शीतल स्पर्श होती है। अत्यन्तदौर्बल्य और दाहमें जिह्वा बड़ी होती है। नीरोग मनुष्यकी जिह्वा सर्व्वदा आर्द्र और मद्यपाईकी जिह्वा फटी रहती है।

मुखरस-परीक्षा।

वायु प्रकोपमें मुखरस लवण, पित्त प्रकोपमें तिक्त, कफ प्रकोपमें मधुर, कोई दो दोषके प्रकोपमें दो रसयुक्त और सन्निपात अर्थात् त्रिदोषके प्रकोपमें तीन रसयुक्त होता है।

अरिष्ट-लक्षण।

क्रियापथमतिक्रान्ताः केवलं देहमाप्लुताः।
दोषा यत् कुर्व्वते चिह्नं तदरिष्टं निरुच्यते॥

अरिष्ट लक्षण और चिह्न।—रोगोत्पादक दोष सब शरीरमें व्याप्त होनेसे जो सब मृत्युके लक्षण प्रकाश होते है उसको अरिष्ट लक्षण कहते है। वस्तुतः जिस लक्षणसे भावी मृत्यु अनुभव हो उसीका नाम "अरिष्ट चिह्न" है। चिकित्सा कार्य्यमें अरिष्ट लक्षण पर विशेष लक्ष रखना आवश्यक है, नही तो किसी वक्त अरिष्ट लक्षणयुक्त रोगकी चिकित्सा कर वैद्यको अपदस्त होना पड़ता है अथवा रोगीकी एकाएकी मृत्युसे उसके आत्मीय स्वजनोको अतिशय दुःख और कष्ट होता है। चाहे जिस कारणसे मृत्यु हो, मृत्युके पहिले अरिष्ट लक्षण निश्चय प्रकाश होता है, पर किसी वक्त अच्छी तरह विचार न करनेसे अरिष्ट लक्षण स्पष्ट अनुभव नही होता है। पृथक पृथक रोग भेदसे जो सब अरिष्ट लक्षण प्रकाश होते है वह प्रत्येक रोग निर्द्देशके समय लिखूंगा। यहां केवल कई साधारण अरिष्ट लक्षण संक्षेपमें लिखते है।

प्रकारभेद ।—कई स्वाभाविकविषयका सहसा अस्वाभाविक परिवर्त्तनको अरिष्ट लक्षण कहते है; जैसे शारीरिक कोई शुक्लवर्णकी कृष्णता, कृष्णवर्णकी शुक्लता, रक्तवर्णकी अन्य वर्णता, कठिनावयवमें कोमलत्व, कोमल स्थानमें मृदुता, चञ्चल स्थानकी निश्चलता, अचञ्चल स्थानकी चञ्चलता, विस्तृत स्थानकी सङ्कीर्णता, सङ्कीर्णकी विस्तृति, दीर्घकी सूक्ष्मता, सूक्ष्मकी दीर्घता, पतन शीलका अपतन, अपतन शीलका पतन, उष्णका शीतल, शीतलका उष्ण, स्निग्धकी रुक्षता, रुक्षकी स्निग्धता आदि आदि अनुभव होते है। ऐसही भौं आदि स्थान का नीचे झुक जाना अथवा उपरकी चढ़ना, आंखेघूमना, मस्तक और ग्रीवा आदि अङ्गोका गिरना, बोली बदलना, शिरसे सूखे गोबरके चूर्णकीतरह पदार्थका निकलना, सबेरे ललाटमें पसीना दिखाई देना, नाकके छेदका लाल होना और फुनसी दिखाई देना, अथवा सर्व्वांगमें फुसरा या तिलका एकाएकी पैदा होनेसे भी अरिष्ट लक्षण समझना। जिसके शरीरका आधा भाग अथवा केवल मुखमण्डलके अर्द्धभागमें एक रंग और दूसरे भागमें दूसरा रंग मालूम हो तो अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीके दोनो ओष्ठ पके जामुनकी तरह काला होनेसे, दांत काला, लाल या नीला अथवा मैला होनेसे रोगीकी मृत्यु स्थिर है। जिह्वा फुली, काली और कर्कश होनाभी अरिष्ट लक्षण है। दोनो आंखोंका सङ्कोच, परस्पर असमान, स्तब्ध, शिथिल, लाल और आंसू जानाभी अरिष्ट लक्षण है। पर किसीकी नेत्ररोगके सबब आंसू जानेसे उसको अरिष्ट नही कहना। शिरके बाल और भी कङ्घीसे झाड़नेकी तरह मालूम होना अथवा तेल न लगाने पर भी चिकना मालूम होना; आंखके दोनो पलकों के बालका गिरना, अथवा एकसे एक मिल जाना,

नाकका छेद बड़ा होना, शोथ रोग न रहने परभी शोथ रोगकी तरह, मलीन, टेढ़ा, सूखा, फटा, और छेद बड़ा, होनेसे भी अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीका हाथ पैर और सांस ठण्ढी हो और जो रोगी मुख पसार कर निश्वास त्याग करे अथवा टूटी सांस ले, कोई बात कहते कहते बेहोश हो पड़े और अकसर चित्त सोकर दोनो पैर इधर उधर पटके तो मृत्यु पासही बैठी है जानना।

इसके सिवाय और भी बहुतसे अरिष्ट लक्षण आयुर्व्वेद शास्त्रमें लिखे है यहा उसकी उल्लेख करना अनावश्यक जान नही लिखा गया।

—०—

रोग-विज्ञान।

निदानं पूर्व्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्रातिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्॥

निदान।—निदान, पूर्व्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यहा पांच रोगके ज्ञानका उपाय है। जिससे दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होता है उसको निदान कहते हैं। विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट भेदसे निदान दो प्रकारका है; विरुद्ध आहार विहारादिको विप्रकृष्ट अर्थात् दूरका निदान और कुपित बातादि दोषको सन्निकृष्ट अर्थात् पासका निदान कहते हैं। रोग होनेसे पहिले जो सब लक्षणोंसे भावी रोगका अनुमान होता है उसको पूर्व्वरूप कहते हैं। पूर्व्वरूप दो प्रकार, सामान्य और विशेष। जिस पूर्व्वरूपसे वायु पित्त या कफ ये तीन दोषोंके कोई लक्षण मालूम न होकर केवल भावी रोगका अनुमान हो, उसको

सामान्य पूर्व्वरूप कहते हैं; और जिस पूर्व्वरूपसे भावी रोगका दोष भेदतक अनुमान हो उसको विशेष पूर्वरूप कहते हैं। यही विशेष पूर्व्वरूप स्पष्ट मालूम होनेसे उसको रुप कहते हैं, वस्तुत: जिन सब लक्षणोंसे उत्पन्न रोग मालूम हो उसको रुप कहते हैं। निदान विपरीत या रोग विपरीत अथवा दोनोंसे विपरीत अवस्थासें औषध सेवन और वैसही आहार विहारादिसे रोग उपशम होनेसे उसको उपशय कहते हैं इसके विपरीतका नाम अनुपशय है। यही उपशय और अनुपशयसे रोगका गूढ़ लक्षण निश्चय करना चाहिये। दोष समूह कुपित होकर शारीरिक अवयवोंमें अवस्थान या विचरण कर रोग उत्पन्न करता है उसको सम्प्राप्ति कहते है। संख्या, विकल्प प्राधान्य, बल, अबल और कालानुसारसे सम्प्राप्तिके कई प्रकार है। आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारका गुल्म और अट्ठारह प्रकारका कुष्ठ प्रभृतिके भेदको संख्या कहते हैं। दो दोष या तीन दोषके रोगके कुपित दोष समूहोंमें कौन दोष कितना कुपित हुआ है। जाननेके लिये प्रत्येक दोषका लक्षण विचार कर जिस अंशांशसे विभाग किया जाता है उसको विकल्प कहते है। ऐसही रोगसे मिलित दोष समूहोंमें जो दोष अपने निदानसे दूषित हो वही प्रधान और उसी कुपित दोषके सङ्ग बाकी दो दोष कुपित होनेसे उसको अप्रधान कहते हैं। जो रोग निदानसे उत्पन्न होता है और उसका पूर्व्वरूप और रुप सम्पूर्ण प्रकाशित हो वही रोग बलवान और जो अल्प निदानसे उत्पन्न होकर अल्प पूर्वरूप और रुपसे प्रकाश हो उस रोगको हीनबल जानना। नाड़ी परीक्षा प्रसंगमें कफादि दोष त्रयका प्रकोप काल लिखा गया है; वही काल उन सब रोगोंके आक्रमण और प्रकोपका है।

दोषज और आगन्तुक रोग।—रोग दो प्रकार,

दोषज और आगन्तुक। जिस रोगमें वात पित्त और कफ ये तीन दोष, एक एक कर या दो तीन दोष एक साथ मिलकर उत्पन्न हो उसको दोषज कहते हैं। एक दोष कुपित होनेसे बाकी दो दोषको भी कुपित करता है इसीसे कोई रोग एक दोषसे नही होता यही साधारण नियम हैं। जैसे रोग उत्पादक एक दोष या तीन दोष होता है वैसही नाम भी एक दोषज द्विदोषज या त्रिदोषज होता है। जो सब रोग अभिघात् अभिचार, अभिशाप, और भूतावेश प्रभृति कारणोंसे उत्पन्न होता है उसको आगन्तुक कहते हैं। अपने अपने निदानके अनुसार दोष कुपित न होनेसे रोग उत्पन्न नही होता, किन्तु आगन्तुक रोगमें पहिले यातना प्रकाशहो फिर दोष कुपित होता है यही दोनोमें प्रभेद है।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिदोष रोगोत्पत्तिका सन्निकृष्ट निदान है; विविध अहित कारक आहार विहारादिके निदानसे तीन दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होता है। इसके सिवाय कई रोगका आरम्भ भी रोग विशेषका निदान है। जैसे ज्वर सन्तापसे रक्तपित्त रक्तपित्तसे ज्वर, ज्वर और रक्तपित्त यह दो रोगसे राजयक्ष्मा, प्लीहा वृद्धिसे उदर रोग, उदर रोगसे शोथ, अर्शसे उदर रोग या गुल्म, प्रतिश्यायसे खांसी, खांसीसे क्षयरोग और क्षयरोगसे धातुशोथ प्रभृति उत्पन्न होते देखा गया है। उक्त रोगोत्पादक रोगोंमें कोई कोई अन्य रोग उत्पादन कर आपभी रहता है।

यही पांच निदान यावतीय रोगोंके ज्ञानका उपाय है। यहां केवल संक्षेप मात्र लिखा गया है। अतःपर प्रत्येक रोगका पृथक पृथक निदानादिके लक्षण लिखते हैं।

ज्वर।

ज्वरका प्राधान्य।—जीवमात्रके जन्म और मृत्युके समय ज्वर होना नियत नियम है। शरीरके उत्पत्ति कालहीसे ज्वर होता है इससे पहिले ज्वरहीका उल्लेख करते हैं। तथा अन्यान्य रोगोंकी अपेक्षा ज्वर अधिक भयङ्कर और ज्वरहीसे यावतीय रोग उत्पन्न होनेका सम्भावना आदि विचार करने परभी ज्वर सब रोगोंमें श्रेष्ठ लक्षित होता है सुतरां पुराने जमानेसे रोगाध्यायोंसे पहिले ज्वरहीके विषयमें लिखनेको रीति चली आती है इससे हमभी यहां पहिले ज्वरके विषयमें लिखते हैं।

ज्वरका साधारण लक्षण।—ज्वरका साधारण लक्षण शारीरिक और मानसिक सन्ताप, कारण सन्ताप लक्षण भिन्न ज्वर देखनेमें नही आता है। इसके सिवाय पसीना बंद होना और सर्वाङ्गमें पीड़ा आदि और कई एक ज्वरके साधारण लक्षण है। वस्तुतः जिस रोगमें सन्ताप, पसीना बन्द हो और सर्वाङ्गमें दर्द लक्षित हो उसीको ज्वर कहते हैं। पर पसीना न आना यह नियत नियम नही है, कारण पित्त ज्वरमें कभी कभी पसीना होते भी देखा गया है। लक्षण भेदसे ज्वर बहुत प्रकारके हैं, पर चिकित्सा कार्य्यके सूबीतेके लिये शास्त्रमें ज्वर केवल आठ प्रकारमें विभक्त है, हम भी उसको यहां लिखते है। ज्वर आठ प्रकार जसे—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्त-श्लेष्मज, सन्निपातज और आगन्तुक, क्रमशः इसी आठ प्रकारके ज्वरके लक्षणादि कहते हैं।

साधारण पूर्व्वरूप।—प्राय: सब ज्वरमें साधारण पूर्व्वरूप एकही प्रकारका होता है—जैसे मुखकी विरसता, शरीरका भारीपन, पान भोजनकी अनिच्छा, चक्षुद्वयकी आकुलता और अश्रुपूर्णता; अधिक निद्रा, अनवस्थित चित्तता, जृम्भा अर्थात् जम्हाई आना, शरीर सङ्कुचित करनेकी इच्छा, कम्प, श्रान्तिबोध, भ्रान्ति, प्रलाप, रातको नींद न आना, लोमहर्ष, दांतका घिसना वायु प्रभृति शीतल द्रव्यपर और आतपादि उष्ण द्रव्य पर थोड़ी थोड़ी देरपर इच्छा और अनिच्छा, अरुचि, अजीर्ण, दुर्व्वलता, शरीरमें दर्द, शारीरिक अवसन्नता, दीर्घ सुत्रता, अर्थात् प्रत्येक काममें देर लगना, आलस्य, हितकी वात कहनेसे भी बुरा लगना, तथा उष्ण, लवण, कटु, और अम्ल वस्तु खानेकी इच्छा। यही सब पूर्व्वरूपको सामान्य पूर्व्वरूप कहते हैं। इसके सिवाय वातादि दोष भेदसे औरभी कई विशेष पूर्व्वरूप लक्षित होते है;—वातज ज्वरके पहिले बार बार जम्हाई आना, पित्तज ज्वरके पहिले दोनो आंखोंका जलना और कफ ज्वरके पहिले अतिशय अरुचि होती है। द्विदोषज ज्वरमें पूर्व्वोक्त सामान्य पूर्व्वरूपके साथ कोई दो दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप और पित्तज ज्वरमें वैसही तीन दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप प्रकाश होता है। यही सब पूर्व्वरूप सभी ज्वरमें प्रकाश होंगे यह निर्द्दिष्ट नियम नहो है। दोष प्रकोपके न्यूनाधिक्यसे पूर्व्वरूप लक्षण भी कभी कम और कभी अधिक प्रकाश होता है।

साधारण सम्प्राप्ति।—अनियमित आहारादिसे वायु प्रभृति दोष कुपित हो आमाशयमें जाकर आमाशयको दूषित कर कोष्ठका सन्ताप बाहर निकाल ज्वर उत्पन्न करता है। यही सन्ताप बाहर आनेसे सब शरीर गरम हो जाता है, इसीको ज्वर रोगकी साधारण सम्प्राप्ति कहते हैं।

वातज ज्वर लक्षण।—वातज ज्वर,—इस ज्वरमें कम्प, विषम वेग अर्थात् ज्वरागमन और ज्वरकी वृद्धिमें विषमता, उष्णादिका वैषम्य अर्थात् त्वक आदि कभी अधिक गरम कभी कम गरम, कण्ठ और ओठका सूखना, अनिद्रा, क्षवस्तम्भ (छींक न आना) शरीरकी रुक्षता, मलकी कठिनता, सब अङ्ग विशेष कर मस्तक और छातीमें दर्द, मुखकी विरसता, पेटमें शूलकी तरह दर्द, आध्मान अर्थात् पेट फूलना और जम्हाई आना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तज ज्वर लक्षण—पित्तज ज्वर,—इसमें ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार रोगकी तरह पतला दस्त होना, अल्प निद्रा, वमन्, पसीना होना, प्रलापवाक्य, मुखकी तिक्तता, (कड़ुवा होना) मुर्च्छाकी तरह बेहोश होना, दाह, मत्तता, पिपासा, गात्र घूर्णन; कण्ठ, ओष्ठ, नासिका आदि स्थानोंका पाक अर्थात् इन सब स्थानोंमें घाव होना, तथा मलमूत्र और नेत्रादिका पीला होना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कफज ज्वर लक्षण।—कफज ज्वर,—इसमें ज्वरका वेग मन्द, आलस्य, मुखका स्वाद मीठा होना, शरीरमें स्तब्धता अर्थात् भार बोध, पान भोजनमें अनिच्छा, शीत बोध, हृल्लास अर्थात् जी मचलाना, रोमाञ्च, अतिनिद्रा, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नासिकासे पानी बहना, अरुचि, कास; मल, मूत्र, नेत्रका सफेद होना और स्तैमित्य अर्थात् शरीर गीले वस्त्रसे अच्छादितकी तरह मालूम होना आदि लक्षण लक्षित होते हैं।

वातपित्तज ज्वर लक्षण।—वातपित्तज ज्वर,—इस ज्वरमें तृष्णा, मूर्च्छा, गात्र घूर्णन, अनिद्रा, मस्तकमें दर्द, कंठ

और मुख सूखना वमन, अरुचि, रोमांच, जम्हाई आना, सब गांठोंमें दर्द और आंखके सामने अंधियाला मालूम होना आदि।

वातश्लेष्मज ज्वर लक्षण।—वातश्लेष्मज ज्वर, इस ज्वरमें स्तैमित्य अर्थात् सब शरीरमें आर्द्र वस्त्र आच्छादनकी तरह अनुभव, सब गांठों में दर्द, अधिक निद्रा, शिरमें दर्द, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नाकसे पानी बहना, कास, सर्व्वाङ्गमें पसीना और सन्ताप आदि लक्षण प्रकाशित होते है। इसमें ज्वरका वेग अधिक तीक्ष्ण या अधिक मृदु नहीं होता।

पित्तश्लेष्मज ज्वर लक्षण।—पित्तश्लेष्मज ज्वर, इस ज्वरमें, मुख कफसे लिप्त और पित्तसे कड़ुवा रहता है, तथा तन्द्रा, मूर्च्छा, कास, अरुचि, तृष्णा और बारम्बार दाह और बारम्बार शीत बोध आदि लक्षण प्रकाश होते है।

सन्निपात लक्षण।—त्रिदोषज या सन्निपातज ज्वरको चलित भाषामें विकार कहते है। इसमें कभी दाह, फिर थोड़ी ही देर बाद शीतबोध. अस्थि समूह, सन्धिस्थल और मस्तकमें, दर्द आंखें डबड़बी. मैली, लाल, विस्तारित या अतिकुटिल, कानमें कई प्रकारके शब्द सुनाई देना, कण्ठ मानो धानके छिलकेसे भरा; तन्द्रा, मूर्च्छा, प्रलाप बकना, कास, श्वास, अरुचि, भ्रम, तृष्णा, निद्रा नाश, जीभ कोयलेकी तरह काली और गौके जीभकी तरह कर्कश सर्व्वाङ्गमें शिथिल भाव, कफमिश्रित रक्त वा पित्तका निकलना, शिरका इधर, उधर फिराना, मल, मूत्र और पसीना बन्द होना, दोषके पूर्णताके सबब शरीरकी कृशता, कण्ठसे बार बार अव्यक्त शब्द निकलना, मुख और नासिका प्रभृति स्थानोंमें घाव होना पेटका भारी होना, रस पूर्णताके सबब वातादि दोष समूहोंका देरसे परिपाक और शरीरमें काला तथा लाल कोठ

अर्थात् बर्रै काटनेकी तरह शोथकी उत्पत्ति आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

निउमोनिया।—सन्निपात ज्वरकी अवस्था विशेषको "निउमोनिया" कहते है। सन्निपात ज्वरमें साधारण लक्षणके सिवाय औरभी कई विशेष लक्षण दिखाई देते है। यह पीड़ा प्रकाश होनेके पहिले अत्यन्त दुर्ब्बलता और क्षुधा मन्द होती है। पीड़ाकी प्रथम अवस्थामें कम्पज्वर, वमन, छातीमें दर्द, शिरःपीड़ा, प्रलाप, अस्थिरता और आक्षेप अर्थात् हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण दिखाई देते है; सम्पूर्ण रुपसे पीड़ा प्रकाश होनेके बाद भी यह सब लक्षण अधिक होनेके सिवाय और भी कई लक्षण अधिक प्रकाश होते है। जैसे छाती छूनेसे दर्द मालूम होना, निश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, अत्यन्त कास, लोहेके मोरचेकी तरह मैला और गाढ़ा लसलसा कफ निकलना, वह कफ किसी बरतनमें रखनेसे फिर जलदी नही छूटता। कभी उसी कफके साथ थोड़ा खुनका निकलना। सतवें दिन मूत्र और पसीना अधिक आना, प्रत्येक मिनिटमें ९० से १२० बार तक नाड़ीका चलना; शरीरका उत्ताप थर्म्मामिटरमें १०३से १०४ डिग्री होना। (किसी किसीको १०७ डिग्री तक उत्ताप होने परभी आराम होते देखा गया है) मुखमण्डल मलिन और चिन्तायुक्त होना, गाल लाल और काला होना और फटना जीभ सूखी और और मैली, क्षुधामन्द, आहारमें कष्ट, उदरामय, अनिद्रा, उजियाला देखनेसे कष्टबोध और पीड़ा प्रकाशके दूसरे तीसरे दिन मुखमण्डल पर छोटी २ फुड़ियोंका होना। फुसफुसका दूषित होना इस पीड़ाका प्रधान लक्षण है, कहीं कहीं वह सड़ भी जाता है। फुसफुस दूषित होनेसे ईषत लाल और मैले रंगका पतला कफ निकालता रहता है। सड़

जानेपर दुर्गन्धयुक्त दूधकी मलाईकी तरह अथवा पीपकी तरह कफ निकलता है। इस प्रकार फुसफुस दूषित होने पर पीड़ा अत्यन्त कष्टसाध्य होती है। फुसफुसमें दाह रहनेसे, वह भी एक कष्टसाध्यका लक्षण है। शिशु, वृद्ध, स्त्री, विशेषत: गर्भिणी स्त्री और मद्यपायी व्यक्तिको यह रोग होनेसे साधारणत: वह दुःसाध्य होजाता है।

सन्निपातके भोगका काल।—सन्निपात ज्वर कभी भी साध्य नहीं होता। यदि मल और वातादि दोष विरुद्ध होय, अग्नि नष्ट हो जाय और सब लक्षण सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश होय तो असाध्य जानना। इसके विपरीत होनेसे कष्टसाध्य होता है। ७ दिन, ८ दिन, १० दिन, ११ दिन, १२ दिन, १४ दिन, १८ दिन २२ दिन, या २४ दिन तक इस ज्वरसे मुक्ति पानेकी या मृत्यु होनेकी अवधि निर्दिष्ट है, अर्थात् इस ज्वरमें यदि क्रमश: ज्वर और वातादि त्रिदोषकी लघुता, इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता सुनिद्रा, हृदय परिष्कार, उदर और शरीरकी लघुता, मनकी स्थिरता और बल लाभ प्रभृति लक्षण प्रकाश हो तथा उक्त अवधि यदि पूरीहो जाय तो वह रोगी आराम होता है, और यदि दिन पर दिन निद्रानाश, हृदयकी स्तब्धता, पेट और देहका भारी होना, अरुचि, मनमें अस्थिरता और बलहानि आदि लक्षण प्रकाश होय, तो उसी निर्दिष्ट अवधिके भीतरही रोगीकी मृत्यु होती है। सन्निपात ज्वरके शेष अवस्थामें यदि कानके जड़में कष्टदायक शोथ हो तो ऐसही कोई रोगी बचता है; पर वह शोथ यदि प्रथम अवस्थामें हो तो साध्य और मध्य अवस्थामें होनेसे कष्टसाध्य जानना।

अभिन्यास ज्वर।—अभिन्यास ज्वरमें वातादि दोषत्रय

थोड़ाभी कुपित होकर यदि वक्षःस्थलके स्रोत समूहोंमें प्रविष्ट होय और आमरसके साथ मिलकर ज्ञानेन्द्रिय और मनको विकृत करे तो अति भयङ्कर कष्टसाध्य अभिन्यास नामक ज्वर उत्पन्न होता है। इस ज्वरमें रोगी निश्चेष्ट और दर्शन, स्पर्शन, श्रवण और घ्राणशक्ति रहित हो जाता है, पासके बैठनेवालोंको रोगी पहचान नही सकता है, किसीकी कोई बात या शब्द कुछ नही समझता, खानेको नही मांगता, निरन्तर सूचिका बिद्धवत् (सूई गड़ानेकी तरह) यातना अनुभव करना, कोई बात न कहना, सर्व्वदा शिर इधर उधर फिराना, कांखना और करवट न लेना, ऐसा, ज्वर सर्व्वदा असाध्य है, पर कदाचित् कोई दैव अनुग्रहसे मुक्तिलाभ भी पाता है ; यह भी एक प्रकारका सन्निपात ज्वर है ।

आगन्तुकके कारण और लक्षण ।—आगन्तुक ज्वर शस्त्र, ढेला या डण्डा आदिसे आघात, अभिचार अर्थात् निरपराध मनुष्यको मारनेके लिये मन्त्रादि उच्चारण पूर्व्वक क्रियाविशेष, अभिसङ्ग अर्थात् भूत ग्रहादि या कामादि रिपु सम्बन्ध और ब्राह्मणादिका अभिशाप, यही सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर होता है। अभिघातादि कारण विशेषमें वातादि जिस दोषके प्रकोपकी सम्भावना है, उन सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर उत्पन्न होनेसे, उसमें वही दोष अनुबन्ध रहता है ।

विषज लक्षण ।—विषज ज्वरमें मुख काला होना, अतिसार, अरुचि, पिपासा, सूचीविद्धवत् वेदना और मूर्च्छा होती है ।

औषधी घ्राणज ज्वर ।—औषधि विशेषके सूंघनेसे ज्वर होनेपर मूर्च्छा, शिरमें दर्द और वमन आदि लक्षण प्रकाशित होते है ।

कामज लक्षण।—अभिलषित रमणी न मिलनेसे कामज ज्वर होता है, इसमें मनकी अस्थिरता, तन्द्रा, आलस्य और अरुचि, आदि लक्षण दिखाई देते है। भय, शोक या क्रोधसे ज्वर उत्पन्न होनेसे उसमें भी प्रलय और कम्प होता है।

अभिचारादि लक्षण।—अभिचारादि और अभिशाप जनित ज्वरमें मोह और तृष्णा तथा भूताभिषङ्गज ज्वरमें चित्तका उद्वेग, हास्य रोदन और कम्प प्रभृति लक्षण दिखाई देते है।

कामज, शोकज, और भयज ज्वरमें वायुका प्रकोप, क्रोधज ज्वरमें पित्तका प्रकोप और भूताभिषङ्गज ज्वरमें वात पित्त और कफ यह तीन दोषका प्रकोप होता है। और ज्वर भूतादिके संसर्गसे उत्पन्न होता है। उसमें भूतके आवेशकी तरह हंसना रोना आदि रूप होता है।

विषम ज्वर।—विषम ज्वर जिस ज्वरके आगमन या वृद्धिका नियम नही हैं और जिस ज्वरमें उष्णता या ज्वरके वेगकी भी समता नही है, उसको विषम ज्वर कहते है। इस ज्वरका प्रधान लक्षण मुक्तानुबन्धित्व, अर्थात् छूट छूट कर ज्वर आता है।

नये ज्वरकी यथाविधि चिकित्सा न कर, यदि उग्रवीर्य्य औषधादिसे निवृत्त किया जाय तो ज्वरोत्पादक कुपित वातादि दोष अच्छी तरह शान्त न हो हीन बल होता है। और रस रक्तादि कोई धातुके आश्रयसे विषम ज्वर उत्पन्न होता है। इसके सिवाय कभी कभी पहिलेहीसे विषम ज्वर उत्पन्न होता है।

अवस्था भेद।—विषम ज्वरके लक्षणके अनुसार सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थकादि नामसे अभिहित है। दोष रसस्थ होनेसे सन्तत, रक्तस्थ होनेसे सतत, मांसाश्रित होनेसे अन्येद्युष्क, मेदोगत होनेसे तृतीयक और अस्थि मज्जागत

होनेसे चातुर्थक ज्वर उत्पन्न होता है। यह पांच प्रकारके ज्वरमें चातुर्थक ज्वरही अधिक भयङ्कर है।

सन्तत ज्वर लक्षण।—सन्तत ज्वर लगातार सात दिन, दश दिन या द्वादश दिन तक बराबर भोगकर छूट जाता है।

द्वैकालीन ज्वरमें।—जो ज्वर दिन रातमें दो या चार बार अर्थात् दिनको एकबार रातको एकबार, अथवा दिनको दो बार या रातको दो बार हो उसको सततक या द्वैकालीन ज्वर कहते है।

अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थक लक्षण।—दिन रातमें एकबार ज्वर हो उसको अन्येद्युष्क कहते है। जो ज्वर तीसरे दिन अर्थात् एक दिन अन्तर देकर आता है उसको तृतीयक (तिजारी) और जो चौथें दिन अर्थात् दो दिन अन्तर पर आता है उसको चतुर्थक (चौथाईया) ज्वर कहते है तृतीयक (तिजारी) ज्वरमें पित और कफका आधिक्य रहनेसे ज्वरके आरम्भ होनेके वक्त त्रिक स्थान अर्थात् कमर पीठ मेरुदण्डकी सन्धिमें दर्द; वायु और कफ के आधिक्यसे पीठमें तथा वायु और पित्तके आधिक्यसे मस्तकमें दर्द होता है। चातुर्थक (चौथइया) ज्वरमें कफके आधिक्यसे पहिले दोनो जङ्घामें और वायुके आधिक्यसे पहिले मस्तकमें दर्द होता है; फिर सर्व्वाङ्गमें ज्वर होता है। जो ज्वर बीचका दो दिन नियत भोगकर आदि और अन्त यह दो दिन विरत रहता है, उसको चातुर्थक विपर्य्यय कहते है। यहभी एक प्रकारका विषम ज्वर है। कोई कोई भूताभिषङ्गज ज्वरको भी विषम ज्वर कहते है।

वातश्लेष्मक और प्रलेपक ज्वर लक्षण।—जिस ज्वरमें कफका आधिक्य मालूम हो, तथा रोगीका शरीर रूखा,

शोथ विशिष्ट, अवसन्न, और जड़ पदार्थकी तरह हो, तथा जो ज्वर नित्य मन्द मन्द होता रहे उसको वातवलासक ज्वर कहते है ; और जिस ज्वरमें शरीर भार बोध, सर्व्वदा शरीर पसीनेसे लिप्त मालूम हो, उसको प्रलेपक ज्वर कहते है, यह ज्वरभी मन्द मन्द भावसे होता है। यक्ष्मा रोगमें प्रायः इसी भांतिका ज्वर दिखाई देता है।

दूषित रस परीक्षा।—यदि आहारका रस परिपाक न होकर दूषित हो और यदि दुष्ट पित्त और दुष्ट कफ शरीरके ऊर्द्ध, अधः अथवा वाम दक्षिण विभागके अनुसार अर्द्धार्द्ध भागमें अवस्थित करे, तो शरीरके जिस भागमें पित्त रहता है उस भागमें उष्ण और जिस भागमें कफ रहता है वह भाग शीतल होता है। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् कोष्ठमें कफ और हाथ पैरमें पित्त रहनेसे शरीर शीतल और हाथ पैर गरम रहता है।

शीतपूर्व्व और दाहपूर्व्व लक्षण।--यदि दुष्ट कफ और दुष्ट वायु त्वकमें अथवा त्वक गत रसमें अवस्थित करे तो पहिले जाड़ा देकर ज्वर आता है ; फिर वायु और कफका वेग कम हो जानेपर पित्त दाह उत्पादन करता है, इसको शीतपूर्व्व ज्वर कहते है। यदि दुष्टपित्त त्वक गत हो तो पहिले दाह होकर ज्वर होता है, फिर पित्तका वेग कम होने पर कफ और वायु शीत उत्पादन करता है, इसको दाह पूर्व्व ज्वर कहते है। यह दोनो ज्वर वातादि दो दोष या तीन दोषके संसर्गसे उत्पन्न होता है। इसमें दाहपूर्व्व ज्वर कष्टसाध्य और कष्टप्रद है।

ज्वर पूर्णरूपसे रसादि सात धातुओं में से कोई एक का आश्रय ले तो उसको धातुगत ज्वर कहते है।

रक्त और मांसगत ज्वर लक्षण।—रस धातुगत

ज्वरमें शरीर भारबोध, वमनेच्छा, वमन, शारीरिक अवसन्नता, अरुचि, और चित्तमें क्लान्ति आदि लक्षण प्रकाशित होते है। रक्त-गत ज्वरमें अल्प रक्त वमन, दाह, मोह, वमन, भ्रान्ति, प्रलाप पिड़िका अर्थात् व्रण विशेषकी उत्पत्ति और तृष्णा आदि लक्षण दिखाई देता है। मांसगत ज्वरमें जङ्घोमें डण्डा मारनेकी तरह दर्द, तृष्णा, अधिक परिमाण मलमूत्र निकलना, बाहर सन्ताप, भीतर दाह, हाथ पैरका पटकना, और शारीरिक ग्लानि आदि लक्षण होते है। मेदोगत ज्वरमें बहुत पसीना आना, पिपासा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, शरीरमें दुर्गन्ध, अरुचि, और ग्लानि तथा असहिष्णुता आदि लक्षण दिखाई देते। अस्थिगत ज्वर में अस्थि समूहो में अस्थि भङ्गवत् दर्द, कुन्थन, श्वास, अधिक मल निकलना, वमन, और हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण होता है। मज्जागत ज्वर में आंखके सामने अंधियाला होना, हुचकी, कास, शीत, वमन, भीतर दाह, महाश्वास और हृदय काटनेकी तरह दर्द आदि लक्षण दिखाई देते है। शुक्रगत ज्वरमें लिङ्ग जड़वत् स्तब्ध हो जाता है तथापि शुक्र बराबर गिरता है। इस ज्वर में रोगीकी मृत्यु निश्चय जानना।

अन्तर्वेग और बहिर्वेग लक्षण।—जिस ज्वरमें अधिक अन्तर्दाह; अधिक तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान अस्थि समूहोमें दर्द, पसीना बन्द और वातादि दोष तथा मलको बद्धता आदि लक्षण हो तो उसको अन्तर्वेग ज्वर कहते है। तथा जिस ज्वरमें बाहर अधिक सन्ताप, किन्तु तृष्णा आदि उपद्रव अल्प हो तो उसको बहिर्वेग ज्वर कहते है।

प्राकृत और वैकृत।—वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें क्रमशः वातादि दोषत्रयसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको प्राकृत

ज्वर कहते हैं; अर्थात् वर्षाकालमें वातिक, शरत्में पैत्तिक वसन्त-कालमें श्लैष्मिक ज्वर होनेसे उसको प्राकृत ज्वर कहते है। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् वर्षामें श्लैष्मिक या पैत्तिक, शरत्में वातिक अथवा श्लैष्मिक, वसन्तमें वातिक या पैत्तिक ज्वर होनेसे उसको वैकृत ज्वर कहते है। प्राकृत ज्वरमें वातिक ज्वरके सिवाय और सब ज्वर साध्य है। वैकृत ज्वरमात्र दुःसाध्य है। प्राकृत ज्वरमें ऋतु विशेषके अनुसार एक एक दोष आरम्भक होनेपर भी बाकी दो दोष अनुबन्ध रहता है।

अपक्व।—अपक्व या तरुण ज्वर—जिस ज्वरमें मुहसे लार बहे, वमनेच्छा हृदयकी अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अपरि-पाक, मुखकी विरसता, शरीरका भारीपन, स्तब्धता, क्षुधानाश, अधिक पिशाव होना और ज्वरके प्रवलताका लक्षण दिखाई दे तो उसको अपक्व या आमज्वर कहते है।

पच्यमान ज्वर—ज्वरके वेगका आधिक्य, तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, प्रभृति और वमनेच्छा आदि लक्षण समूह पच्यमान ज्वरमें अर्थात् ज्वरके परिपाक अवस्थामें प्रकाशित होता है।

पक्वज्वर,—भूख लगना, देहकी लघुता, ज्वरकी न्यूनता, वायु, पित्त, कफ और मल का निकलना, तथा इसी रीतिसे आठ दिन अतिवाहित होना, यही सब पक्व ज्वरके लक्षण है।

ज्वरके उपद्रव।—ज्वरके उपद्रव,—कास, मूर्च्छा, अरुचि, कै, तृषा, अतिसार, मलबद्धता, हुचकी, श्वास और अङ्गवेदना, इसी दस को उपद्रव कहते है।

साध्य ज्वर,—जो ज्वर अल्प दोषसे हो, तथा उपद्रव शून्य ज्वरमें यदि बलकी हानि न होय तो साध्य जानना।

साध्य और असाध्य ज्वर लक्षण ।—जो ज्वर धातुगत पुराना अथवा अति बलवान और जिस ज्वरसे रोगी क्षीण हो शोथ उत्पन्न होता है; तथा जिस ज्वरमें रोगीका केश आपसे आप साफ सुथरे हो जाय यह असाध्य ज्वर लक्षण है। कई प्रवल कारणोंसे ज्वर होकर कई लक्षणयुक्त हो और जिस ज्वरमें इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाय उस ज्वरको घातक जानना। अन्तर्दाह, तृष्णा, मल बद्धता, कास और श्वासयुक्त प्रवल ज्वरको गम्भीर ज्वर कहते है। यह ज्वर भी असाध्य है; विशेषत: गम्भीर ज्वर होकर रोगीका देह क्षीण या रूक्ष होनेसे उसका प्राण नाश होता है। जो ज्वर पहिलेहीसे विषम या दीर्घकाल स्थायी हो, वह भी असाध्य है। बाहर शीत और भीतर दाहयुक्त ज्वर प्राण नाशक है। जिस ज्वरमें शरीर रोमाञ्चित, आंखें लाल या चञ्चल, मूर्च्छा, तृष्णा, हिक्का, श्वास, छातीमें सङ्गालिक शूलकी भांति दर्द और केवल मुखसे श्वास, प्रश्वास, निकलता रहे तो इससे भी रोगीकी मृत्यु होती है। जिस ज्वरमें रोगीकी कान्ति और इन्द्रिय समूहोंकी शक्ति नष्ट हो, बल और मांस क्षीण हो जाता है तथा अरुचि और ज्वर वेगमें गाम्भीर्य्य अथवा तीक्ष्णता मालूम हो वह भी असाध्य है।

त्याग लक्षण ।—सान्निपातिक ज्वर, अन्तर्वेग ज्वर और धातुगत ज्वर परित्याग होनेसे पहिले दाह, पसीना, भ्रम, तृष्णा, कम्प, मलभेद, संज्ञानाश, कुन्थन और मुखमें दुर्गन्ध आदि लक्षण प्रकाश होता है।

चिकित्सा ।—नये ज्वरमें पहिले उपवास कराना चाहिये; इससे वात-पित्त और कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीर की लघुता, ज्वरका उपशम और भोजनकी इच्छा होती

है। वातज ज्वरमें ; भय, क्रोध, शोक, काम, और परिश्रम जनित ज्वरमें ; धातुक्षय जनित ज्वरमें और राजयक्ष्मा जनित ज्वरमें उपवास नहीं कराना। वायु प्रधान मनुष्य, क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त, मुखशोषयुक्त, या भ्रमयुक्त और बालक, वृद्ध, गर्भिणी या दुर्व्वल इनको भी उपवास उचित नही है। उपवास विहित ज्वरमें भी अधिक उपवास देकर रोगीको दुर्वल करना उचित नही है। अधिक उपवास करानेसे अनिष्ट होता हैं, इससे सब गांठे और शरीरमें दर्द, कास, मुखशोष, क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, श्रवणेन्द्रिय और दर्शनेन्द्रियकी दुर्वलता, मनकी चञ्चलता या भ्रान्ति, अधिक उद्गार, मोह और अग्निमान्द्य होता है। उपयुक्त परिमाणसे यथा-रीति उपवास करानेसे अच्छी तरह मल, मूत्र और वायुका निकलना, शरीरकी लघुता, पसीना आना, मुख और कण्ठ साफ, तन्द्रा और क्लान्ति नाश, आहारमें रुचि, एक साथ भुख प्यास लगना, अन्त:करण प्रसन्न और साफ डकार आना आदि उपकार होता है।

दोष परिपाक व्यवस्था।—ज्वर होनेके पहिले दिनसे आठ दिन तक अपक्कावस्था रहती है इतने दिन तक ज्वरनाशक कोई काढ़ा या औषध देना उचित नही है। पर षड़ङ्ग पानी या दोष परिपाक के लिये धनिया १ तोला और परवलका पत्ता १ तोलाका काढ़ा अथवा शोंठ, देवदारु, धनिया, वृहती और कटेली इन सबका काढ़ा दे सकते है। ८ दिनके बाद ज्वर नाशक काढ़ा और औषध देना चाहिये। पर आज कलके समयमें जैसे ज्वर आतेही भयानक होजाता है, उसमें ८ दिनकी प्रतीक्षा न कर विचार पूर्व्वक उक्त समयके भीतर ही काढ़ा आदि औषध देना आवश्यक है।

अविच्छेद ज्वर।—अविच्छेद ज्वरमें इन्द्रयव, परवरका

पत्ता और कुटकी यह तीन औषधिका काढ़ा पिलानेसे २।३ बार दस्त हो ज्वर छूट जाता है। पित्तके आधिक्यमें इन्द्रयव के बदले धनिया या पित्तपापड़ा देना उचित है। रोगी दुर्बल हो तो यह दस्तावर काढ़ा न देकर ज्वराङ्कुश, स्वच्छन्द भैरव, हिंगुलेश्वर, अग्निकुमार और श्रीमृत्युञ्जय (लाल) आदि औषध सहतमें मिलाकर तुलसीके पत्तेका रस अथवा पानके रसके साथ देना। यह ज्वर विच्छेदके बाद भी दिया जा सकता है।

वातज ज्वर।—वातज ज्वरमें सतावर और गुड़िचका रस गुड़ मिलाकर पिलाना और पिपला मूल, गुड़िच और शोंठ, इस तीन द्रव्यका काढ़ा, अथवा विल्वादि पञ्चमूल; किरातादि, रास्नादि, पिप्पल्यादि, गुड़्च्यादि और द्राक्षादि प्रभृति काढ़ा देना।

पित्तज।—पित्तज ज्वरमें खेतपापड़ाका काढ़ा अथवा खेतपापड़ा, बाला और लाल चन्दन यह तीन द्रव्यका काढ़ा पिलाना। इसके सिवाय कलिङ्गादि, लोध्रादि, पटोलादि, दुरालभादि और त्रायमाणादि काढ़ा देना चाहिये।

श्लेष्मज।—श्लेष्मज ज्वरमें निर्गुण्डी पत्रका काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। दशमूल और अडूसेकी जड़का काढ़ा अथवा पिप्पल्यादिगण का काढ़ा, कटुकादि और निम्बादि काढ़ाभी इस ज्वरमें उपकारी है।

द्विदोषज।—द्विदोषज ज्वरमें जो दो दोष ज्वरका आरम्भक हो; उसका उपशम कारक द्रव्य विचार कर काढ़ा स्थिर करना उचित है। इसके सिवाय वातपित्त ज्वरमें नवाङ्ग, पञ्चभद्र, त्रिफलादि, निदिग्धिकादि और मधुकादि काढ़ा प्रयोग करना। वातश्लेष्मज ज्वरमें अडूसेका पत्ता और फलके रस में सहत और

चीनी मिलाकर पिलाना; रक्तपित्त और कामला ज्वरमें भी यह विशेष उपकारी है। गुड़ूच्यादि, मुस्तादि, दार्व्व्यादि, चतुर्भद्रक, पाठासप्तक और कण्टकार्य्यादि काढ़ा वातश्लेष्मज ज्वरमें देना। इसमें बालूका स्वेद विशेष उपकारी है। मिट्टीके हाड़ीमें बालू गरम करना, फिर एक टुकड़ा कपड़ेमें रेड़का पत्ता, अकवनका पत्ता, या पानका पत्ता रख उपर वही गरम बालू रखना, फिर उस में थोड़ी कांजी मिलाकर पोटली बांधना, इस पोटलीसे सर्वाङ्ग (छातीको छोड़कर) सेंकना। इसीको बालूका स्वेद कहते है, बालू का स्वेदसे वातश्लेष्मज ज्वर और तज्जन्य शिरःशूल और अङ्ग वेदना प्रभृति शान्त होता है।

पित्तश्लेष्मज।—पित्तश्लेष्मज ज्वरमें पटोलादि, अमृताष्टक और पञ्चतिक्त प्रभृति काढ़ा देना।

मग्नावस्थामें औषध।—उक्त नये ज्वर के मग्नावस्था में सर्व्वज्वराङ्कुशवटी, चण्डेश्वर रस, चन्द्रशेखर रस, वैद्यनाथ वटी, नवज्वरेभसिंह, मृत्युञ्जय रस, (काला) प्रचण्डेश्वर, त्रिपुरभैरव रस, शीतारिरस, कफकेतु और प्रताप मार्त्तण्ड रस प्रभृति औषध दोषानुसार अनुपान विचार कर देना। अतीसका चूर्ण ६ रत्ती मात्रा २।३ घण्टेके अन्त में ३।४ बार सेवन कराना, अथवा २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ ४ रत्ती नाटा बीजका चूर्ण सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है।

सन्निपातमें प्रथम कर्त्तव्य।—सन्निपातमें पहिले आमदोष और कफकी चिकित्सा करना चाहिये, फिर पित्त और वायुका उपशम करना। आमदोषके शान्तिके लिये पञ्चकोल और आरग्वधादि काढ़ा सेवन कराना। कफशान्तिके लिये सेंधानमक, शोंठ, पीपल और गोलमिरिचका चूर्ण आदीके रसमें मिलाकर

आकण्ठ मुखमें रखना तथा बार बार थूकना। दिन भरमें ऐसही ३।४ बार करनेसे हृदय, पार्श्व, मस्तक और गलेका सूखा गाढ़ा कफ निकल जाता है। बड़े नीबूका रस और अदरखके रसके साथ सेंधा, काला और सोचलनमक मिलाकर बार बार नास लेनेसेभी कफ पतला हो निकलता है। रोगी बेहोश हो तो पीपलामूल, सैन्धव, पीपल और महुये का फूल समान भाग चूर्ण करना, फिर उसके बराबर गोलमरिचका चूर्ण मिलाना, यह चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर नास देनेसे रोगी चैतन्य होता है और तन्द्रा, प्रलाप, मस्तक भार आदि दूर होता है। तन्द्रा दूर करनेके लिये सैंधा नमक, सैजनकी बीज, सफेद सरसो और कूठ समान भाग बकरीके मूत्रमें पीसकर नास देना। शिरिष बीज, पीपल, गोलमिरिच, सैन्धव लहसुन, मैनसिल और बच, समान भाग गोमूत्रमें पीसकर आंखमें अञ्जन करनेसे चैतन्य होता है। मस्तक अत्यन्त उष्ण, आंखे लाल और प्रबल शिरोवेदना होनेसे आधा तोला सोरा और आधा तोला नौसादर एक सेर पानीमें भिगोवें, गल जानेपर उसमें उनी कपड़ेका एक टुकड़ा भिगोंकर कनपटी और तालुमें पट्टी रखना; शिर:पीड़ा आदि आराम न होने तक इस पट्टीको उसी पानीसे तर रखना। फिर रोगको तकलीफ शान्त होने पर पट्टी निकाल डालना। इस ज्वरमें क्षुद्रादि, चातुर्भद्रक, पञ्चमूल, दशमूल, नागरादि, चतुर्दशाङ्ग, त्रिविध अष्टदशाङ्ग, भार्ग्यादि, शठ्यादि, वृहत्यादि, व्योषादि और त्रिवृत्यादि प्रभृति काढ़ा, स्वल्प और वृहत् कस्तुरीभैरव, श्लेष्म कालानल रस, सन्निपातभैरव और बैताल रस आदि औषध देना।

नाड़ीकी क्षीणावस्था में कर्त्तव्य।—सन्निपात ज्वर में देह शीतल और नाड़ी क्षीण होने पर मकरध्वज १ रत्ती,

कस्तुरी १ रत्ती और कर्पुर १ रत्ती एकत्र सहत में मिलाना, फिर २ तोला पानका रस या २ तोला अदरखका रस मिलाकर लगातार ३।४ बार पिलाना। मृगमदासव, मृतसञ्जीवनी सुरा और हमारा "कस्तुरीकल्प रसायन" इस अवस्था में विचार कर दिया जा सकता है, और जब दर्शन श्रवण और वाकशक्ति आदि क्रमशः लोप होने लगे, नाड़ी बैठ जाय तथा संज्ञानाश हो; तब सूचिकाभरण, घोर नृसिंह, चक्री और ब्रह्मरन्ध्र रस आदि उत्कट औषध प्रयोग करना चाहिये।

निउमोनिया में कर्त्तव्य।—सन्निपात ज्वर जिसको डाक्तर लोग "निउमोनिया" कहते है उस में सन्निपात ज्वरोक्त काढ़ा, लक्ष्मीविलास, कस्तुरी भैरव, कफकेतु और कास रोगोक्त कई औषध दोष आदि विचार कर देना चाहिये।

अभिन्यास ज्वरमें कारव्यादि और शृङ्गादि काढ़ा तथा स्वच्छन्द नायक और पूर्व्वोक्त सन्निपात ज्वरकी औषधों में विचार कर देना आवश्यक है।

उपद्रव चिकित्सा।—नये ज्वर में विशेषतः सन्निपात ज्वर में दोष समूहोंका आधिक्य और हठकारिताके लिये प्रायः नाना प्रकारके उपद्रव प्रकाश होते है। मूल रोग की अपेक्षा यह सब उपद्रव अधिक भयङ्कर है, कारण इससे हठात् प्राण नाशको सम्भावना हैं, इस लिये वही सब उपद्रवके चिकित्सा में विशेष मनोयोग देना उचित है।

सान्निपातिक शोथ चिकित्सा।—सान्निपातिक ज्वर में किसी किसीके कर्णमूल में शोथ होता है; इस शोथ से अकसर मृत्यु होती है। पर सन्निपात ज्वरके प्रथम अवस्था का शोथ साध्य और मध्य अवस्था का कष्टसाध्य है। शोथके प्रथम अवस्था में

जोंक लगाना ; गेरूमिट्टी, पांगा नमक, शोंठ, बच, और राई सम-भाग काञ्जी में पीसना, अथवा कुरथी, कटफल, शोंठ और काला जीरा समान भाग पानी में पीसकर, गरम लेप करनेसे आराम होता है। इससे यदि आराम न होकर क्रमशः बढ़ताही जाय तो उसको पकाना चाहिये। पानी में अलसी की पीस थोड़ा घी मिला गरम करना, यह गरम पट्टी बार बार लगानेसे शोथ पक जानेपर नश्तर करना। घाव सूखनेके लिये लहसुनका तेल अथवा हमारा "चतारि तैल" व्यवहार करना चाहिये।

ज्वर में तृष्णा निवारण।—कफके ज्वर में प्यास अधिक हो तो, बार बार पानी देना उचित नही हैं। गरम पानी ठण्ढा कर उस में सफेद चन्दन घिसकर मिलाना फिर उसी पानी में सौंफकी एक पोटली भिंगोना तथा वही पोटली बार बार चूसनेको देना अथवा थोड़ा बरफका पानी देना इससे प्यास क्रमशः शान्त होता है। षड़ङ्ग पानी पिलाना इस अवस्था में अच्छा है।

ज्वर में दाह निवारण।—अत्यन्त दाह होय तो कुकुरसोंका का रस बदन में लगाना, अथवा सेहुंड़के पत्तेके रस में अजवाईन पीसकर सर्ब्बाङ्ग में मालिश करना। कांजी में वस्त्र भिङ्गो निचोड़ लेना तथा उसी वस्त्र से थोड़ी देर बदन आच्छादन करना, बैरका पत्ता कांजी में पीस थोड़ी कांजी मिलाकर आगपर रखना जब उसमें से फेन निकलने लगे तब वही फेन सर्ब्बाङ्ग में मालिश करना। इसी प्रकार से नीमका फेन भी मालिश कर सकते है। कालिया काष्ठ, लाल चन्दन, अनन्तमूल, जेठीमधु, और बैरके बीजकी गूदो ; समान भाग कांजी में पीसकर शिर के तालू में लेप करनेसे दाह, तृष्णा दोनोकी शान्ति होती है।

घर्म्म निवारण।—पसीना अतिरिक्त हो तो भूञ्जी

कुरथीका चूर्ण अथवा अबीर सर्व्वाङ्गमें घिसना, चुलहेकी जली हुई मिट्टीका चूर्ण भी मालिश करने से पसीना बन्द होता है।

वमन उपद्रव निवारण।—ज्वरमें वमनका उपद्रव हो तो गुरिचका काढ़ा ठण्ढा कर उसमें सहत मिलाकर पिलाना। खूब महीन पीसा खस १ तोला तथा सफेद चन्दन घिसा आधा तोला, आध पाव बतासेके शर्व्वतमें मिलाकर, १ तोला मात्रा बार-बार पिलाना, अथवा खेतपापड़ा २ तोला आधा सेर पानी में औटाना आधा पाव पानी रहे तब उतार कर २।३ बार थोड़ा थोड़ा कर यह काढ़ा पिलाना। सहत, चन्दन अथवा चीनी के साथ मक्खीकी विष्ठा चाटनेसे; किम्बा तेलचट्टाकी विष्ठा ३।४ दाना ठण्ढे पानीमें भिगोकर पीनेसे वमन दूर होता है। छर्द्दी रोगोक्त एलादि भी वमन हिक्का दोनोंमें प्रयोग किया जाता है। अतिसारका उपद्रव हो तो ज्वरातिसारकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

ज्वरमें मलबद्ध होनेसे कर्त्तव्य।—मलबद्ध होनेसे रेड़ीका तेल २ तोला २॥ तोला गरम पानी या गरम दूधमें मिला-कर पिलाना; अथवा पूर्व्वोक्त इन्द्रयव, पटोल पत्र और कुटकी यह तीन द्रव्य का काढ़ा पिलाना। इसके सिवाय ज्वरकेशरी, ज्वर मुरारि, इच्छाभेदी रस भी दे सकते है। हमारी बनाई "सरल-भेदी वटिका" खिलानेसे सुन्दर मृदु विरेचन होता है।

ज्वरमें मूत्ररोध मेंकर्त्तव्य।—मूत्र रोध होने से वज्रक्षार २ रत्तीसे ६ रत्ती तक ठण्ढे पानीके साथ मिलाकर दो दो घण्टा अन्तर पर पिलाना। वज्रक्षारके अभावमें सोराका चूर्ण भी दे सकते है। खसकी जड़, गोखरू, जवासा, खीरेकी बीज, ककड़ीकी बीज, कबाबचीनी, और वरुणछाल, प्रत्येक चार २ आने भर आधा पाव

पानीमें २ घण्टा भिगोंना फिर वही पानी थोड़ा थोड़ा एक एक घण्टेके अन्तर पर पिलाना, इससे मूत्रका रोध और जलन दूर होता है। आधा तोला सोरा एक पाव पानी में भिगोंना फिर थोड़ी चीनी मिलाकर वही पानी थोड़ा २ पीनेको देना। इससे क्रमशः पिशाव साफ, नाड़ी स्वस्थ शरीरकी गर्मी कम होकर ज्वरका ह्रास होता है।

हिक्का निवारण।—हुचकीकी शान्तिके लिये निर्धूम अङ्गारे पर हींग, गोलमिरच, उरद, या घोड़ेकी सूखी लीद जलाकर धूंआ सूंघाना। राईका चूर्ण आधा तोला, आधा सेर पानीमें मिलाकर थोड़ी देर रख छोड़ना, फिर वही थिरा हुआ पानी आधी छटांक दो तीन घण्टेके अन्तर पर पिलाना। पेटके ऊपर तेल मर्द्दन कर गरम पानीमें सेंकना। पानीके साथ सेंधा निमक मिलाकर अथवा चीनीके साथ सोंठका चूर्ण मिलाकर नास लेना। पीपलकी सूखी छाल जलाकर पानीमें डूबोकर बुताना, फिर वही पानी छानकर पीनेसे हुचकी और के दोनों बन्द होता है। तेलचट्टा अर्द्धभाग और उसका आधा भाग गोलमिरच एकत्र पीसना, मात्रा चौथाई रत्ती ठण्डे पानीके साथ २।३ वार सेवन करानेसे प्रबल हिक्काभी शान्त होता है।

श्वास उपद्रव निवारण।—श्वास उपद्रव शान्तिके लिये (वृहती) बनभंटा, (कण्टकारी) रेंगनी, (दुरालभा) जवासा, पटोली, काकड़ाशिङ्गी, बभनेठी, कूट, कुटकी और शठी इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलाना। अथवा पीपल, कटफल और काकड़ाशिङ्गी सहतमें मिलाकर सेवन करना, अन्तर्धूममें भस्म किया हुआ मयूरपंख २ रत्ती और पीपलका चूर्ण २ रत्ती अथवा वहेड़ाकी गूदी किम्बा बैरके बीजकी गूदी २ रत्ती सहतमें मिलाकर चटाना, बनकण्डेकी

आगमें कुलहाड़ी गरम कर उसके अग्रभागसे पांजरमें दागनेसे अति उग्र श्वासभी आराम होता है।

कास उपद्रव निवारण।—कास उपद्रव में २।३ घण्टा अन्तरसे पीपला मूल, बहेड़ा, खेतपापड़ा और शोंठ इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटाना। अडूसेके रसमें सहत मिलाकर पिलाना। बहेड़ेमें घी लगाकर गोबरके गोलेमें रख आगमें सिजालेना। यह मुखमें रखनेसे कास बहुत जल्दी आराम होता है।

अरुचि।—अरुचिमें सेंधा नमक और आदीका रस, सेंधा नमक बड़े नीबूका जीरा, घी और सेंधा नमकके साथ बड़े नीबूका रस, अथवा आंवला और मुनक्केका कल्क मुखमें धारण करना।

जीर्ण और विषम ज्वरमें घुसड़ा प्रस्तुत विधि।—साधारण जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरमें हरसिंघारके पत्तेका रस सहतमें मिलाकर पिलाना। खेतपापड़ा, हरसिंघारका पत्ता और गुरिच, यह तीन द्रव्य अथवा गुरिच, खेतपापड़ा, भेकपर्णी, हिलमाचिका, (हुरहुच) और परवरका पत्ता; यह पांच द्रव्यका "घुसड़ा" बनाकर सेवन कराना। पांचों द्रव्य एक साथ थोड़ा कूटकर केलेके पत्तेसे लपेटना फिर माटीसे लेपकर आगमें उसको जलाकर रस निचोड़ कर निकालने से "घुसड़ा" कहते है। हाड़-कांकड़ाका मूल, छाल, पत्ता, फूल, और फल कूटकर वैसही जलाना, इसका रस २ तोले दो आने भर शोंठके चूर्णके साथ सेवन करानेसे जीर्ण ज्वर आराम होता है। भङ्गरैया की जड़का ७ टूकड़ा कर एक एक टूकड़ा अदरखके टूकड़ेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका जीर्ण ज्वर आराम होता है। गुग्गुलु, नीमका पत्ता, बच, कूठ, बड़ीहर्रे, यव, सफेद सरसो, और घी एकत्र

मिलाना, फिर इसका धूंआ रोगीके शरीरमें देने से विषम ज्वर प्रशमित होता है, इसका नाम अष्टाङ्गधूप है। बिल्लीके विष्ठाका धूप देनेसे कम्प ज्वर दूर होता है। गुग्गुलु, गन्धतृण अभावमें खस, बच, धूना, नीमका पत्ता, अकवनकी जड़, अगरू, चन्दन और देवदारू; इन सब द्रव्यों का धूप देने से सब प्रकार का ज्वर दूर होता है, इसको अपराजिका धूप कहते है। निदिग्धिकादि, गुड़ूच्यादि, द्राक्षादि, महौषधादि, पटोलादि, विषम ज्वरघ्न, भार्ग्यादि, बृहत् भार्ग्यादि, मधुकादि, दास्यादि और दार्व्वादि प्रभृति काढ़े को सब प्रकारके जीर्ण और विषम ज्वरमें दोष विचार कर देना। कारण विषम ज्वरमें तीन ही दोष आरम्भक है, इससे दोष विशेषकी आधिक्य और न्यूनता विचार कर औषध स्थिर करना चाहिये।

तृतीयक और चातुर्थक ज्वर चिकित्सा।—

तृतीयक (तिजारी) ज्वरमें महौषधादि, उशीरादि और पटोलादि; तथा चातुर्थक (चौथाईया) ज्वर में वासादि, मुस्तादि और पथ्यादि काढ़ा देना उचित है। काकजङ्घा, बरियारा, श्यामालता, बसनेठी, लज्जावती लता, चाकुला, चिरचिरी, या भङ्गरैया इसमें से कोई एक वृक्षका मूल पुष्य नक्षत्रमें उखाड़कर लाल सूतमें लपेट हाथमें बांधनेसे, किम्बा उल्लूके दहिने डैनेका एक पर सफेद सूतमें बांध बायें कानमें धारण करनेसे तृतीयक अर्थात् तिजारी ज्वर आराम होता है। शिरीष फूलके रसमें हरिद्रा और दारुहरिद्रा पीसना फिर या घी मिलाकर नास लेने से अथवा वकफूल के पत्तेके रसका नास लेनेसे चातुर्थक (चौथाईया) ज्वर दूर होता है। अश्विनीनक्षत्रमें सफेद अकवन या कनेलकी जड़ उखाड़ कर

६ रत्ती मात्रा अथवा चावलके धोवनमें पीसकर पीनेसे चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

रात्रिज्वर।—काकमाची (कवया कवई) की जड़ कानमें बांधनेसे रात्रिज्वर दूर होता है। निदिग्धिकादि काढ़ा ग्रासको पिलानेसे रात्रिज्वरमें विशेष उपकार होता है।

शीतपूर्व्व ज्वर।—शीतपूर्व्व ज्वरमें भद्रादि और घनादि काढ़ा और दाहपूर्व्व ज्वरमें विभीतकादि और महावलादि कषाय प्रयोग करना चाहिये।

जीर्ण और विषम ज्वरको महौषध।—उक्त जीर्ण ज्वर विषम ज्वरके दोष और वलावल विचार कर अनुपान विशेषसे सुदर्शन चूर्ण, ज्वरभैरव चूर्ण, चन्दनादि लौह, सर्व्वज्वरहर लौह, वृहत् सर्व्वज्वरहर लौह, पञ्चानन रस, ज्वराशनि रस, ज्वरकुञ्जर-पारीन्द्र रस, जयमङ्गल रस, विषमज्वरान्तक लौह, पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह, कल्पतरु रस, त्र्याहिकारि रस, चातुर्थकारि रस, मकरध्वज और अमृतारिष्ट आदि औषध देना।

हमारा वनाया "पञ्चतिक्त वटिका" सब प्रकारके नये और पुराने ज्वरको अकसीर दवा है।

जीर्ण ज्वरमें कफका संयोग न रहनेसे अंगारक तेल, वृहत् अङ्गारक तेल, लाक्षादि तेल, महालाक्षादि तेल, किरातादि तेल, वृहत् किरातादि तेल सर्व्वाङ्गमें मालिश करना। इस ज्वरमें दशमूल षटपलक घृत, वासादि घृत और पिप्पल्यादि घृत सेवन करा सकते हैं।

ज्वरमें दूध पान।—ज्वर में कई प्रकार संस्कृत दूधभी अमृतको तरह उपकार करता है। पर नये ज्वरमें वही दूध विषकी भांति अनिष्टकारक है।

सरिवन, चाकुला, वृहती, कटैली और गोक्षुर यह स्वल्प पञ्च-मूलके साथ दूध पाक कर पीनेसे कास, श्वास, शिरःशूल और पीनस संयुक्त जीर्ण ज्वर आराम होता है। गोक्षुर, बरियारा, बेलकी छाल और सोंठ; यह सब द्रव्यके साथ दूध पाक कर पीनेसे मल और पिसाब साफ हो शोथसंयुक्त जीर्ण ज्वर आराम होता है। सफेद गदहपुन्ना, बेलकी छाल और लाल गदहपुन्ना दूधमें पाक कर पीनेसे सब प्रकारका जीर्ण ज्वर आराम होता है। ज्वर रोगीके गुदामें काटनेकी तरह पीड़ा हो तो एरण्डमूलके साथ दूध पाक कर पिलाना।

ज्वरमें दुग्ध पाक विधि।—उक्त दूध पाक करनेकी विधि;—जितनी दवायोंके साथ दूध पाक करना हो, उन सबका समान भाग मिलाकर २ तोला होना चाहिये, मिली हुई दवायोंका आठ गूना अर्थात् १६ तोला दुध और पानी दुधका चौगूना अर्थात् ६४ तोले लेना चाहिये। सब दवा एकत्र कर आंच पर रखना, जब सब पानी जल कर केवल दूध रहजाय तब उतार कर थोड़ा गरम रहते ही सेवन करना।

आजकाल प्रायः सब जगह नये ज्वरको अपक्व अवस्थामें ज्वरको कुनैनसे बन्द करनेकी रीति है, इससे जीर्ण ज्वरमें भी कफका संस्रव बना रहता है; इस लिये घृत या तेल प्रयोगका उपयुक्त अवसर नहीं मिलता।

आगन्तुक ज्वरादि चिकित्सा।—आगन्तुक ज्वरमें वातादि जिस दोषके लक्षण प्रकाश हो उसी दोषकी चिकित्सा करना। इसके सिवाय और भी कई विशेष नियम है; जैसे—अभिघातज आगन्तुक ज्वरमें उष्ण वर्जित क्रिया और कषाय मधुर रसयुक्त स्निग्ध द्रव्यका पान भोजन कराना चाहिये। अभिचार और

अभिशाप जनित आगन्तुक ज्वरमें होम, पूजा और प्रायश्चित्त कराना। उत्पात और ग्रहवैगुण्य जनित आगन्तुक ज्वरमें दान, स्वस्त्ययन और अतिथि सत्कार करना चाहिये। औषधिगन्ध और विषभक्ष जनित आगन्तुक ज्वरमें विष तथा पित्तदोष नाशक औषधसे चिकित्सा करना और दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपत्ता, कर्पूर. शीतलचीनी, अगर, केशर, और लौंग इसका काढ़ा पिलाना; इन सब द्रव्यको सर्व्वगन्ध कहते है। क्रोधज ज्वरमें अभिलषित द्रव्य देना और हितवाक्य कहना, तथा काम, शोक और भयजनित ज्वरमें आश्वास वाक्य, अभीष्ट वस्तु प्रदान, हर्षोत्पादन और वायुको शान्त करना चाहिये। क्रोध उदय होनेसे काम ज्वर, और काम तथा क्रोध उदय होने से, भयज और शोकज ज्वर प्रशमित होता है। भूतावेश जनित ज्वरमें बन्धन ताड़नादि और मानसिक ज्वरमें रोगीका मन प्रसन्न रखना चाहिये।

आरोग्यके बादकी अवस्था।— ऐसही विविध चिकित्सासे ज्वर आरोग्य होने पर २।३ सप्ताह तक लौह भस्म २ रत्ती, बड़ीहर्रेका चूर्ण २ रत्ती और शोंठका चूर्ण २ रत्ती चिरायता भिंगोया पानीमें मिलाकर पिलानेसे शरीर सबल और रक्तकी वृद्धि होती है। इस अवस्थामें चिरायताके पानीके साथ मकरध्वज सेवन करनेसे भी उपकार होता है।

नये ज्वरमें पथ्यापथ्य।— नये ज्वरमें दोषका परिपाक न होने तक उपवास, फिर दोषका परिपाक और क्षुधाका परिमाण विचार कर मिश्री, बतासा, अनार, कसेरु, मुनक्का, सिंघाड़ा, इक्षु, धानका लावा, धानके लावाका मण्ड, पानीका साबुदाना, अरारुट और बार्लि आदि हलका भोजन कराना। पीनेको पानी गरम कर ठण्ढा होनेपर देना। कफज, वातश्लेष्मज,

और सन्निपात ज्वरमें पानी ठण्ढा नहीं करना। ज्वर त्यागके दो तीन दिन बाद यदि शरीरमें ग्लानि न रहे, तो पुराने चावलका भात, मूंग मसूरकी दाल, कटु तिक्त रसयुक्त तरकारी, छोटी मछली आदि भोजनको देना। नये ज्वरमें पेट साफ रखना नितान्त आवश्यक है।

सन्निपात ज्वरमें भी पथ्यादि ऐसही जानना; पर रोगी अत्यन्त दुर्ब्बल हो जाय तो, एक उफानका दूध और मूंग, मसूर या लघुपाक मांस रस के साथ थोड़ी मृतसञ्जीवनी सुरा मिलाकर बार बार देना चाहिये।

उक्त ज्वरमें ज्वर त्यागके पहिले भात खाना, सब प्रकार गुरुपाक और कफबर्द्धक द्रव्य भोजन, तेल मर्द्दन, व्यायाम, परिश्रम, मैथुन, स्नान, दिवानिद्रा, अति क्रोध, शीतल जल पान और हवामें फिरना आदि अनिष्टकारक है, अतएव इन सब कामोंको नहीं करना।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।—जीर्ण और विषम ज्वरमें ज्वर अधिक रहनेसे धानके लावाका मण्ड, साबूदाना, वार्लि, अरारूट और रोटी आदि विचार कर देना। ज्वरका आधिक्य न रहनेसे दिनको पुराने चावलका भात, मूंग और मसूरकी दाल, परवर, वेंगन, गुल्लर, मूली आदि की तरकारी; कवई, मागूर, शिङ्गी आदि छोटी मछलीका रस्सा और एक उफानका थोड़ा दूध आहार कराना। गरम पानी ठण्ढा कर पीनेको देना। रोगी अधिक दुर्ब्बल हो तो कबूतर, मुरगा और खस्सीके मांसका रस देना चाहिये। रातको, क्षुधाके अवस्थानुसार साबूदाना आदि या रोटी खाना उचित है। खट्टेमें पाती या कागजी नीबूका रस थोड़ा चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।— घृतपक्क आदि गुरुपाक द्रव्य भोजन,

दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, ठण्ढी हवामें फिरना, मैथुन और स्नान आदि अनिष्टकारक है। पर जिस रोगीको वाताधिक्य या पित्ताधिक्यका ज्वर हो और स्नान न करनेसे तकलीफ मालूम हो तो उसको गरम पानी ठण्ढा कर थोड़े पानीसे स्नान कराना ; अथवा उसी पानीमें अगोंछा भिंगोकर बदन पोंछना चाहिये।

प्लीहा

प्लीहाका कारण।—ज्वर अधिक दिन तक शरीरमें रहनेसे, मलेरिया ज्वरमें, अथवा मलेरिया दूषित स्थानमें वास करनेसे, किम्बा मधुर स्निग्धादि आहारसे रक्त बढ़कर प्लीहाको बढ़ाता है। इस सिवाय अतिरिक्त भोजनके बाद तेज चलनेवाली सवारीमें चढ़ना या व्यायामादि श्रमजनक कार्य्य करनेसे भी प्लीहा स्वस्थानसे च्युत हो बढ़ जाती है। पेटके बांये तरफ उपरकी प्लीहाका स्थान है, अविकृत अवस्थामें हाथमें मालूम नही होता, पर बड़ा होनेसे कुक्षिके बांये तरफ हाथ लगाते ही मालूम होती है। इस रोगमें सर्व्वदा मृदु ज्वर रहता है, और रोज किसी न किसी वक्त ज्वर बढ़ता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर कम्प-ज्वर होता है, तथा प्लीहा स्थानमें दर्द, जलन, कोष्ठबद्धता, अल्प

लाल मूत्र, श्वास, कास, अग्निमान्द्य, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, दुर्बलता, विवर्णता, पिपासा, वमन, मुखका बेस्वाद, चक्षु और हाथके अङ्गुलीयोंका पीला होना, आंखके सामने अन्धियाला मालूम होना, मूर्च्छा प्रभृति लक्षण प्रकाश होता है।

कष्टसाध्य प्लीहा के लक्षण।—प्लीहा अधिक बढ़नेसे रोग कष्टसाध्य होता है तथा नाक और दांतसे खून गिरता है तथा रक्तवमन, रक्तभेद, उदरामय, दांतके जड़में घाव, पैर, आंख और सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है, तथा पाण्डु और कामला आदिके लक्षणभी दिखाई देता है। यह सब लक्षण दिखाई देनेसे प्लीहा आराम होनेकी आशा नही रहती।

प्लीहाका दोष निर्णय।—प्लीहा रोगमें मलबद्धता, वायुका उर्द्धगमन और दर्द, अधिक हो तो वायुका आधिक्य जानना; पिपासा ज्वर और मूर्च्छा हो तो पित्तका आधिक्य और प्लीहा अधिक कठिन, शरीर भारी और अरुचि हो तो कफका आधिक्य जानना। रक्तके आधिक्यमें पित्ताधिक्यकेही लक्षण मालूम होती है; पर प्यास उससे भी अधिक होती है। तीन दोषके आधिक्यमें उक्त लक्षण सब मिले हुए मालूम होते है।

चिकित्सा।—प्लीहा रोगमें रोगीका पेट जिसमें साफ रहे पहिले इसका उपाय करना आवश्यक है। पुराना गुड़ और बड़ी हर्रैका चूर्ण समान भाग अथवा काला नमक और बड़ी हर्रैका चूर्ण समान भाग रोगी और रोगकी अवस्था विचार कर गरम पानीके साथ फांकनेसे प्लीहा और यकृत् दोनो रोगकी शान्ति होती है। पीपल प्लीहा रोगकी एक उत्तम औषध है, २।३ पीपल पानीमें पीसकर पिलानेसे अथवा गुड़के साथ मिलाकर खानेसे

प्लीहामें विशेष उपकार होता है। तालकूट (ताड़को जटा) एक हांड़ीमें रख मुख बन्द कर आगमें भस्म करना, यह भस्म पुराने गुड़के साथ उपयुक्त माचा सेवन करानेसे प्लीहा प्रशमित होता है। हींग, शोंठ, पोपल, गोलमरिच, कूट, जवाच्चार और सेंधा नमक सबका सम भाग चूर्ण नीबूके रसमें खल कर दो आनेसे चार आने भर मात्रा रोज खिलाना। अजवाइन, चोतामूल, जवाच्चार, पीपला मूल, पीपल, और दन्ती, सबका सम भाग चूर्ण आधा तोला माचा गरम पानी, दहीका पानी, सुरा या आसवके साथ पिलाना। चीतामूल पीसकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा वही गोली तीन पक्के केलेमें भरकर खिलाना। चीतामूल, हरदी, अकवनका पका पत्ता, अथवा धाईफुलका चूर्णकर पुराने गुड़के साथ खिलाना। लहसन, पिपला मूल, और हर्रे खाने और गोमूत्र पीनेसे प्लीहा आराम होता है। सरसोंका पीसकर आधा तोला मात्रा दहीके माठेके साथ पीनेसे प्लीहा उपशम होता है। शङ्खनाभिका चूर्ण आधा तोला बड़े नीबूके रससे मिला कर चाटनेसे कच्छूवेके समान प्लीहाभी आराम होता है। समुद्रको सीप भस्म प्लीहानाशक है। देवदारु, सेंधानमक और गन्धकका सम भाग भस्मकर सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और अग्रमांस रोग आराम होता है। रोहीतक और बड़ी हर्रेके काढ़ेके साथ २ आनेभर पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। सरिवन पिठवन, बनभण्टा, कटेली, गोचुर, हरीतकी और रोहीतकको छालका काढ़ा देना। निदिग्धिकादि काढ़ाभी इसमें देना चाहिये। इसके सिवाय माणिक्यादि गुड़िका, वृहन्मानकादि गुड़िका, गुड़पिप्पली, अभया लवण, महामृत्युञ्जय लौह, वृहल्लोकनाथ रस आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। प्लीहाके साथ श्लेष्म संसृष्ट ज्वर न रहनेसे चित्रक

घृत आदि सेवन कराना चाहिये। रोहितकारिष्टभी प्लीहाकी एक अकसीर दवा है।

प्लीहा ज्वरमें हमारी पञ्चतिक्त वटिका।— ज्वर प्रवल रहे या अकस्मात् प्रवल होनेसे उक्त औषधोंमें जो औषध ज्वरमें भी उपकारी हो वही औषध तथा ज्वरकी औषध दोनो मिलाकर प्रयोग करना। आवश्यक होनेसे प्लीहाका औषध बन्द कर केवल ज्वरहीकी चिकित्सा उस समय करना। हमारी "पञ्चतिक्त वटिका" प्लीहा ज्वरकी अति उत्कृष्ट औषध है। चिकित्सासे ज्वर कम होनेपर फिर प्लीहाका औषध प्रयोग करना उचित है।

जीर्ण प्लीहा रोगमें कर्त्तव्य।—पुराने प्लीहा रोगमें विरेचक औषध प्रयोग नही करना, कारण अकस्मात् उदरामय होनेसे उसका आराम होना कठिन होजाता है, उदरामय हो तो पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि ग्राही औषध देना। रक्तामाशय, शोथ या पाण्डु कामला आदि पीड़ा मिलित रहनेसे उन रोगोंकी औषधभी इसके साथ प्रयोग करना। प्लीहा रोग ग्रहणी रोगके साथ मिला रहनेसे आराम होना कठिन है। इस अवस्थामें चित्रकादि घृत और ग्रहणी रोगोक्त कनकारिष्ट और अभयारिष्ट प्रभृति औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

प्लीहा में मुखक्षत चिकित्सा।—मुखमें घाव होनेसे खदिरादि वटिका पानीमें घिसकर घावमें लगाना। बकुलकी छाल, जामुनकी छाल, गाबछाल, और अमरूतका पत्ता पानीमें औटाकर थोड़ी फिटकिरीका चूर्ण मिलाकर गरम रहते कुल्ला करनेसे मुख क्षतमें विशेष उपकार होता है।

वेदना चिकित्सा।—प्लीहामें दर्द हो तो बन आदा

पीसकर लेप अथवा गरम पानीका स्वेद देना। तथा कसकर फलालेन पेटमें बांधनेसेभी उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—जीर्ण ज्वरमें जो पथ्यापथ्य विधि लिखी गई है, प्लीहा रोगमेंभी वही सब पालन करना उचित है। इसमें साधारण दुध न देकर उसके साथ २।४ पीपल औटाकर वही दुध पान करनेको देना। इससे प्लीहाकी शान्ति होती है, सब प्रकारकी भुञ्जी वस्तु, गुरुपाक वस्तु, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन और परिश्रम, रातका जागना दिनका सोना और मैथुन आदि निषिद्ध हैं।

—०—

यकृत्।

—:०:—

निदान।—प्लीहा रोगके कारण जो उपर कह आये है, यकृत् रोगभी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसके सिवाय मद्यपान और अर्श आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द होना आदि कारणोंसे भी यकृत् वर्द्धित या सङ्कुचित होनेसे यकृत् विकृत होता है, अविकृत अवस्थामें हाथ लगानेसे मालूम नही होता, परन्तु वर्द्धित होनेसे दबाने पर मालूम होता है। विकृत अवस्थाके यकृत्में दर्द, मलरोध या कर्द्दमवत् अल्प मलस्राव, सब शरीर विशेष कर दोनो आंखे पीली, खांसी, दहिने तरफके पंसुलियोंके नीचेका भाग कसा मालूम होना औंर सूई गड़ानेकी तरह दर्द, दहिना कन्धा या दहिने सब अङ्गमें दर्द, मुखका स्वाद तीता, जीमचलाना

या के होना, नाड़ी कठिन, सर्ब्वदा ज्वरबोध, और प्लीहा रोगके अन्यान्य लक्षण समूह भी दिखाई देते है। इस रोगमें रोगी दहिने करवट सो नही सकता है। प्लीहा रोगोक्त लक्षणोंकी तरह इसमेंभी वातादि दोषोंकी वृद्धिका अनुभव करना चाहिये। यकृत् रोगभी बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहने पर पाण्डु, कामला, शोथ, आदि अनेक उत्कट रोग उत्पन्न होता है।

यकृदुदर रोग।—यकृत् अधिक वर्द्धित हो उदर तक बढ़नेपर उसको यकृदुदर रोग कहते है। उदर रोगमें इसका लक्षण लिखेंगे।

चिकित्सा।—यकृत् रोगकी चिकित्सा प्लीहा रोगकी तरह करना, इसमें सर्ब्वदा पेट साफ रखना आवश्यक है। प्लीहा रोगकी सब औषधें इस रोगमें प्रयोग कर सक्ते है। इसके सिवाय यकृदरि लौह, यकृत्प्लीहारि लौह, यकृत् प्लीहोदरहर लौह, वज्र-क्षार, महाद्रावक, और महाशङ्खद्रावक, आदि औषध विचार कर देना। यकृत्में दर्द हो तो तार्पिनका तैल मालिश कर गरम पानीसे सेंकना, अथवा गोमूत्र गरम कर बोतलमें भर किम्बा फलालेन भिगोंकर सेंकना चाहिये। राईका लेप चढ़ानेसेभी यकृत्में विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य प्लीहा रोगकी तरह पालन करना।

—०—

ज्वरातिसार।

—०:०:०—

संज्ञा और कारण।—ज्वर और अतिसार यह दोनो रोग एक साथ होनेसे उसको ज्वरातिसार कहते है। यह एक स्वतन्त्र रोग नही है, पर इसकी चिकित्सा विधि स्वतन्त्र है इससे अलग मालूम होता हैं। ज्वर और अतिसारके जो सब उत्पत्ति कारण निर्द्दिष्ट है, वह सब कारण एक साथ सङ्घटित होनेसे ज्वरातिसार उत्पन्न होता है। ज्वरमें कुपथ्य करना, पित्तकारक द्रव्य भोजन, दुषित जल पान, दुषित वायु सेवन और तेज विरेचन आदि कारणोंसेभी ज्वरातिसार रोग उत्पन्न होता है। जिस ज्वरमें पित्तका प्रकोप अधिक रहता है, उसमें ज्वरातिसार रोग होनेकी सम्भावना है।

चिकित्सा।—ज्वर और अतिसार यह दो रोगकी चिकित्सा एक साथ होनेका उपाय नही है, कारण ज्वरको प्रायः सब औषधें दस्तावर और अतिसारको औषधें सब मलरोधक है, इस लिये ज्वरनाशक औषध अतिसारका विरोधी और अतिसार निवारक औषध ज्वरका विरोधी है। इससे इसकी चिकित्साविधिभी स्वतन्त्र निर्द्दिष्ट है, इस रोगमें पहिले दस्त बन्द करना उचित नही है, कारण इससे कोष्ठका सञ्चित मल रुद्ध हो, अन्यान्य उत्कट रोग उत्पन्न होता है, पर जहां अतिशय अतिसारसे रोगीके अनिष्टकी सम्भावना मालूम हो वहां मलरोधक औषध प्रयोग करनाही उचित है। साधारणतः इस रोगके प्रथम अवस्थामें

पाचक और अग्निदीपक औषध प्रयोग करना। धनिया १ तोला और शोंठ एक तोला, एकत्र ३२ तोला पानीमें औटाना ८ तोला पानी रहने पर छानकर दिनको २।३ बार पिलाना। अथवा ह्रीवेरादि, पाठादि, नागरादि, गुड़च्यादि, उशीरादि, पञ्चमूलादि, कलिङ्गादि, मुस्तकादि, धनादि, बिल्वपञ्चक, और कुटजादि क्वाथ विचार कर व्यवस्था करना। इससेभी पीड़ाका उपशम नहीं हो, तो विचार कर अनुपान विशेषके साथ व्योषादि चूर्ण, कलिङ्गादि गुड़िका, मध्यम गङ्गाधर चूर्ण, वृहत् कुटजावलेह, सञ्जीवनी बटी, सिद्ध प्राणेश्वर रस, कनकसुन्दर रस, गगनसुन्दर रस, आनन्दभैरव और मृतसञ्जीवन रस आदि औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

पथ्यापथ्य।—रोगी सबल हो तो पहिले उपवास, फिर उत्पलषटकके साथ यवागू पाक कर थोड़ा अनारका रस मिलाकर पिलाना। अथवा धानके लावाका मण्ड, जौका मण्ड, सिंघाड़ेकी लपसी, एरारुट और वार्लि खानेको देना, इस अवस्थामें हमारा सञ्जीवन खाद्य विशेष उपकारी पथ्य है। रोगी दुर्व्वल हो तो उपवास न देकर उक्त हलका भोजन देना। पीड़ाका ह्रास और रोगीके परिपाक शक्तिके अनुसार क्रमशः पुराने चावलका भात, मसूरकी दाल, बैंगन, गुल्लर और केलेकी तरकारी, मागुर, सिङ्गी, कवई आदि छोटी मछलीका रस्सा; अवस्था विचार कर कोमल मांसका रस, बकरीका दूध, अनार और कच्चा बेल भूंज कर खानेको दे सकते हैं। गरम पानी ठंढा होनेपर पीनेको देना।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, गेहूं, जौ, उरद, चना, अरहर, मूंग, शाक, इक्षु, गुड़, मुनक्का, दस्तावर द्रव्य मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा, अधिक पानी या अन्यान्य

तरल द्रव्य पान, हिम, धूप, अग्निसन्ताप, तैल मर्दन, स्नान, व्यायाम, रात्रिजागरण और मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

—०—

अतिसार।

—:०:—

अतिसार संज्ञा।—जिस रोगमें शरीरका दूषित रस, रक्त, पानी स्वेद, (पसीना) मेद, मूत्र, कफ पित्त और रक्त आदि धातु समूह अग्निको मन्द और मलके साथ मिलाकर तथा वायुसे अधोभागमें प्रेरित हो थोड़ा थोड़ा निकलता है, उसको अतिसार कहते है।

निदान।—गुरुपाक, अति स्निग्ध, अति रूक्ष, अति उष्ण, अति शीतल, अति तरल और अति कठिन द्रव्य भोजन, क्षीर मत्स्यादिकी तरह संयोगविरुद्ध भोजन, पहिलेका खाया हुआ अन्न न पचनेपर भोजन, कच्चा अन्न भोजन, कोई दिन कम, कोई दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, वमन विरेचन, पिचकारी, निरूहण, या स्नेहादि क्रियाका अतियोग, अल्प योग, अथवा मिथ्या योग; स्थावर विष खाना, दुष्ट मद्य या दुष्ट पानीका अधिक पीना, विना अभ्यास और अनिष्टकारक आहार विहारादि; ऋतुका व्यतिक्रम करना, भय, शोक, अधिक जलक्रीड़ा, मल मूत्रका वेग रोकना और क्रिमिदोष; इन्हो सब कारणोंसे अतिसार रोग उत्पन्न होता है। यह रोग ६ भागमें विभक्त है;

जैसे—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज और अपक्व रस-जात; द्विदोषज, अतिसारमें दो दोष मिलित लक्षणके सिवाय और कोई लक्षण मालूम होनेसे वह स्वतन्त्र रूप निर्द्दिष्ट नहो होता।

प्रकाश पूर्व्व लक्षण।—सब प्रकारके अतिसारमें विशेष लक्षण प्रकाश होनेसे पहिले हृदय, नाभि, गुदा, उदर और कोंखमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द, शरीर अवसन्न, वायु और मलका रोध, पेटका फूलन और अपरिपाक आदि लक्षण पहिले मालूम होते है।

वातज लक्षण।—वातज अतिसारमें लाल या काला फेनयुक्त, रूखा और कच्चा मल थोड़ा थोड़ा बार बार निकालता है, और गुदामें दर्द मालूम होता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज अतिसारमें मल पीला या हरा अथवा लाल रंगका होता है, तथा इसमें तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और गुदामें जलन और घाव होता है।

कफज लक्षण।—कफज अतिसारमें सादा, गाढ़ा, कफ मिला, आमगन्धयुक्त शीतल मल निकालता है। इस अतिसारमें रोगीका शरीर प्रायः रोमाञ्चित होता रहता है।

सन्निपातज लक्षण।—त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अतिसारमें उक्त वातजादि त्रिविध अतिसारके लक्षण प्रकाशित होते है; विशेष कर इसमें शूकरके चर्बी अथवा मांसधौत पानीकी तरह मल होता है। यही त्रिदोषज अतिसार अत्यन्त कष्ट-साध्य है।

शोकज लक्षण।—कोई दुर्घटनाके कारण अत्यन्त शोक हो अल्पाहारी होनेसे शोकज वाष्प और ऊष्मा कोष्ठमें प्रवेश

कर जब जठराग्निको मन्दकर रक्तको स्वस्थानसे हटा देता है; तब शोकज अतिसार उत्पन्न होता है। इसमें घुंघुचोकी तरह लाल रक्त मिश्रित मल अथवा खाली रक्त गुदासे निकलता है। मल मिश्रित होनेसे रक्त अतिशय दुर्गन्धयुक्त, और मलशून्य होनेसे निर्गन्ध होता है। शोक त्याग न कर देनेसे यह अतिसारभी दुःसाध्य और कष्टप्रद होते देखा गया है।

आमातिसार लक्षण।— भुक्त द्रव्य न पचनेसे वातादि दोषत्रय विपथगामी हो मल और रक्तादि धातु समूहोंको दुषित कर नाना प्रकारके वर्णका मल बार बार निकलता रहता है। इसीको आमातिसार अर्थात् अपक्व रसजात अतिसार कहते है; इससे पेटमें बहुत दर्द होता रहता है।

अतिसारके मलकी परीक्षा।—सब प्रकारके अतिसारमें जबतक मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और चिकना हो तथा पानीमें फेंकनेसे डूब जाय; तब तक उसको आम अर्थात् अपक्व अतिसार कहते है, और जब मल दुर्गन्धयुक्त रुखा और पानीमें नही डूवे तो उसको पक्वातिसार कहते है। इस अवस्थामें देह और शरीर हलका मालूम होता है।

असाध्य और सांघातिक लक्षण।—जिस अतिसारमें रोगीका मल स्निग्ध, काला अथवा यकृत् खण्डकी तरह काला लाल रंग, साफ और घृत, तेल, चर्व्वी, मज्जा, बिना हड्डीका मांस, दुध, दही अथवा मांस धोत पानीकी तरह, चास नामक पक्षीके भांति रङ्ग नीलारुण वर्ण, अथवा ईषत् कृष्ण लालवर्ण, चिकना, नानावर्णयुक्त, किम्वा मयूरपुच्छकी तरह विविध वर्णयुक्त, तथा शवगन्धकी तरह दुर्गन्धयुक्त, मस्तिष्कको तरह गन्ध अथवा सड़ी बदबू, या परिमाणमें अधिक हो तो उस रोगीको

मृत्यु होती है। जिस अतिसार रोगमें तृष्णा, दाह, अन्धकार देखना, श्वास, हिक्का, पार्श्वशूल, अस्थिशूल, मूर्च्छा, चित्तकी अस्थिरता, गुह्यदेशके वलिमें घाव और प्रलाप आदि प्रकाशित हो तो वहभी लक्षण असाध्यही जानना। अथवा जिस अतिसार रोगमें गुह्यद्वार संवृत (बंद) नहो हो, रोगीका बल और मांस क्षीण हो जाय, और जिसके गुदामें घाव और शरीर शीतल रहता है, वह अतिसार रोगभी असाध्य जानना। उक्त सब लक्षण प्रकाशित होनेसे बालक, वृद्ध, युवा, किसीकेभी जीनेकी आशा नही रहती।

रक्तातिसार।—उक्त अतिसारोंके सिवाय "रक्तातिसार" नामक एक प्रकारका और अतिसार है। पित्तज अतिसार उत्पन्न होनेसे अथवा उत्पन्न होनेके थोड़े दिन पहिले यदि अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेमें आवे तो रक्तातिसार उत्पन्न होता है। इसमें मलके साथ मिला हुआ रक्त अथवा केवल रक्तही निकलता है। अन्यान्य अतिसारके प्राचीन अवस्थामेंभी कभी कभी मलके साथ थोड़ा रक्त दिखाई देता है।

आरोग्य लक्षण।—अतिसार अच्छी तरह आराम होनेसे मूत्र त्याग और अधो वायु निकलनेके साथ मल नही निकलना, अग्निकी दीप्ति और पेट हलका मालूम होता आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

अतिसारमें धारक औषध देनेका नियम।—किसी अतिसारके अपक्कावस्थामें धारक औषध प्रयोग करना उचित नही है। कारण अपक्कावस्थामें धारक औषध देनेसे सब दोष बन्द हो शोथ, पाण्डु, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, ज्वर, दण्डक, अलसक, आध्मान, ग्रहणी, और अर्श आदि विविध रोग उत्पन्न होता है। इसीलिये आमातिसारकी चिकित्सा स्वतन्त्र निर्दिष्ट है। परन्तु

जहां दोष अत्यन्त प्रवल हो बार बार दस्त हो, और उससे रोगीका धातु और बलादि क्रमशः क्षीण होने लगे, तब अपक्वावस्थामेंभी धारक औषध देना उचित है। छोटे बच्चे, वृद्ध या दुर्ब्बल मनुष्य-कोभी अपक्वातिसारमें धारक औषध देना चाहिये।

चिकित्सा।—आमातिसारमें अर्थात् अतिसारके अपक्व अवस्थामें आमशूल और मलको रोकना तथा दोष पाचन और अग्निदीप्तिके लिये धनिया, सोंठ, मोथा, बाला और बेलकी गूदी यह धान्यपंचकका काढ़ा पिलाना; पर पित्तज अतिसारमें यह पांच द्रव्यमें सोंठ बाद कर बाकी चार द्रव्यका काढ़ा देना, पेटमें दर्द और प्यास रहनेसे सोंठ, अतीस और मोथा यह तीन द्रव्य अथवा धनिया और सोंठ यह दो द्रव्यका काढ़ा देना; इससे कच्चे दोषका परिपाक और अग्निकी दीप्ति होती है। जिस अवस्थामें छोटी छोटी गांठकी तरह दस्त हो और पेटमें दर्द हो तो बड़ी हर्र और पीपल पानीमें पीसकर थोड़ा गरमकर पिलाना, यह दस्ता-वर औषध है। आकनादि, हींग, अजमोदा, बच, पीपल, पीपला-मूल, चाभ, चितामूल, सोंठ, और सेंधा नमक प्रत्येकका समान भाग चूर्ण एकमें मिलाकर एक आना भर मात्रा गरम पानीके साथ पिलानेसे अथवा उसी मात्रासे शुंठ्यादि चूर्ण और हरीतकी चूर्ण देनेसेभी आमातिसार आराम होता है। २० मोथा वजनमें जितना हो उसका अठगूना बकरीका दुध और बकरीका दुधका चौगुना पानी, एकमें औटाना दुध रहनेपर छानकर वही दुध पीनेसे आमदोष और पेटकी दर्द आदि दूर होता है। पिप्पल्यादि, वत्सकादि, पथ्यादि, यमान्यादि, कलिङ्गादि और त्र्यूषणादिका काढ़ाभी इस अवस्थामें देना चाहिये।

पक्वातिसारकी चिकित्सा।—अतिसारका आमदोष

निवृत्त होनेपर पहिले उपर कहे हुए पक्वातिसारके लक्षण प्रकाशित हुआ है या नहो इस विषयमें लक्ष्य रखना चाहिये। पक्वातिसारके लक्षण प्रकाशित होतेही वातादि दोषानुसार भेदका अनुमान कर चिकित्सा करना।

विभिन्न दोषज अतिसार चिकित्सा।—वातज अतिसारमें पूतिकादि, पथ्यादि और बचादि काढ़ा देना; पित्तज अतिसारमें मधुकादि, विल्वादि, कटफलादि, कंचटादि, किरात-तिक्तादि, और अतिविषादि काढ़ा देना। कफज अतिसारमें पथ्यादि, क्रिमिशत्त्वादि और चव्यादि काढ़ा तथा पाठादि चूर्ण, हिङ्गादि चूर्ण, वर्व्वलादि योग और पथ्यादि चूर्ण सेवन कराना। त्रिदोषज अतिसारमें समङ्गादि और पंचमूलीवलादि काढ़ा देना। शोकज और भयजनित अतिसारमें वातज अतिसारकी तरह चिकित्सा करना, इसके सिवाय पृश्निपर्णादि काढ़ाभी शोकज अतिसारमें प्रयोग करना चाहिये। पित्त कफातिसारमें मुस्तादि, समङ्गादि और कुटजादि, वात कफाति रमें चित्रकादि काढ़ा और वातपित्तातिसारमें कलिङ्गादि कल्क प्रयोग करना चाहिये।

रक्तातिसारकी चिकित्सा।—रक्तातिसारमें आमशूल और मलभेद होनेसे भूञ्जा कच्चा बेल गुड़के साथ मिलाकर दो तोले मात्रा खानेको देना। शल्लकी मूलकी छाल, वैरकी छाल, जामुनकी छाल, पियालकी छाल, आमकी छाल अथवा अर्जुनकी छाल पीसकर दुध और सहतके साथ सेवन कराना। सेंधा नमक अनारके फलकी छाल, कुरैयाकी छाल प्रत्येक १ तोला, ३२ तोला पानीमें औटाना ८ तोले रहनेपर छानकर दो आनेभर सहत मिलाकर पिलाना। आम, जामुन और आंवलेका नरम पत्ता कूटकर उसका रस दो तोले, सहत और बकरीके दुधके साथ पिलाना। ज्येष्ठा

का मूल २ मासे, चावलके धोवनके साथ पीसना फिर उसमें चीनी और सहत मिलाकर पिलाना। काली तिल पीसकर उसके चार भागका एक भाग चीनी मिलाकर बकरीके दुधके साथ देना। बड़की सोर चावलके धोवनमें पीसकर माठेके साथ मिलाकर पिलाना।

कुकुरसोंकाके ३।४ पत्तेका काढ़ा पिलाना। कुरैयाकी छालके काढ़ेको गाढ़ा औटाकर अतीसका चूर्ण २ आने भर मिलाकर पिलानेसे प्रबल रक्तातिसार और अन्यान्य अतिसारभी आराम होता है। कुरैयाकी छाल ८ तोले, ६४ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर छान लेना, ऐसही अनारके फलके छालका काढ़ा तयार करना। फिर दोनो काढ़ा एकत्र मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर १ तोला मात्रा दहीके माठेके साथ पिलाना। गुदामें दर्द हो तो अफीम ४ रत्ती, खैर ४ रत्ती और मैदा ८ रत्ती एकत्र मिलाकर घीसे बत्ती बनाना फिर वही बत्ती एक एक कर दो घण्टेके अन्तर पर अङ्गुलीसे गुदामें प्रवेश करना। घोंघा घीमें भूनकर सेंकनेसेभी दर्द आराम होता है।

जीर्णावस्थाकी चिकित्सा।—सब अतिसारके जीर्ण अवस्थामें अर्थात् जब आमदोष परिपाक होकर दर्द आराम हो जठराग्निकी दीप्ति होती है, तथापि नानाप्रकारका मल निकलता रहता है; उस वक्त वत्सकादि काढ़ा, कुटज पुटपाक, कुटज लेह, कुटजाष्टक, और षड़ङ्गघृत आदि प्रयोग करना। इस अवस्थामें कुरैयाकी छाल, मोथा, सोंठ, बेलकी गूदी, गोंद, सं.हागेका लावा, खैर, और मोचरस प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, अफीम आधा तोला एकत्र मिलाकर एक आना भर मात्रा, कुकुरसोंकेका काढ़ा

या ठंढे पानीके साथ दिन भरमें ३ बार सेवन करानेमें विशेष उपकार होता है।

प्रबल अतिसारमें मलभेद चिकित्सा ।—प्रबल अतिसारमें मलभेद बन्द करनेके लिये आंवला पानीमें पीसकर नाभिके चारो तरफ गोल मेंड़ी बनाना और बीचमें शुद्ध अदरखका रस भर देना ; इसमें प्रबल अतिसारका वेग और दर्द शान्त होता है। जायफल पीसकर उसका लेप अथवा आमकी छाल काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे भी वैसही उपकार होता है। माजूफल चूर्ण ५ रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती और गोंदका चूर्ण पांच रत्ती एकत्र मिलाना, फिर प्रत्येक दस्तके बाद ठंढे पानीसे सेवन कराना। दस्त बन्द होनेपर दिनको केवल एकबार सेवन कराना। अतिसारके साथ वमनका उपद्रव हो तो विल्वादि और पटोलादि काढ़ा देना। वमन, तृष्णा और ज्वर आदि कई उपद्रवमें प्रियङ्ग्वादि, जम्ब्वादि, ह्रीवेरादि और दशमूल शुण्ठी आदि व्यवस्था करना। गुदामें दाह या घाव होनेसे पटोलपत्र और जेटीमध औटाये पानीसे अथवा बकरीके गरम दुधसे गूदा सेंकना तथा पटोल पत्र और जेटीमध बकरीके दुधमें पीसकर गुदामें लेप करना।

शास्त्रीय औषध ।—उपर कहे सब अतिसारका दोष, रोगीका बल और अनुपान विचार कर नारायण चूर्ण, अतिसार वारण रस, जातीफलादि बटिका, प्राणेश्वर रस, अमृतार्णव, भुवनेश्वर रस, जातीफल रस, अभय नृसिंह, आनन्दभैरव, कर्पूर रस, कुटजारिष्ट और अहिफेनासव आदि औषध प्रयोग करना। इसके सिवाय ग्रहणी रोगोक्त कई औषध भी विचार कर दिया जा सकता है।

पथ्यापथ्य।—अपक्व अतिसारमें उपवासही प्रशस्त है। अतिसार रोगी दुर्ब्बल हो तो उपवास न देकर हलका पथ्य देना उचित है। धानके लावाका सत्तू पानीसे पतलाकर, अथवा पानीका साबूदाना, एरारुट, वार्लि, सिङ्घाड़ेके आटेका लपसी, किम्बा भातका मण्ड, और यवका मण्ड देना, यह सब बहुत हलका पथ्य है। उक्त पथ्यकी अपेक्षा औषधके साथ यवागू सिद्धकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। सरिवन, पिठवन, बनभण्टा, कटैली, बरियारा, गोखरू, बेलकी गूदी, आकनादि, शोंठ और धनिया, यह सब द्रव्यके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर सब अतिसार रोगमें पथ्य दिया जा सकता है। इसके सिवाय पित्तश्लेष्मातिसारमें सरिवन, बरियारा, बेलकी गूदी और पिटवनका काढ़ा; वातश्लेष्मातिसारमें धनिया, शोंठ, मोथा, बाला और बेलकी गूदीका काढ़ा अथवा केवल धनिया और शोंठका काढ़ा; वातपित्तातिसारमें, बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला, गनियारीके जड़का काढ़ा; और कफातिसारमें पीपल, पीपलमूल, चाभ, चितामूल और शोंठके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर पथ्य देना। गरम पानी ठण्ढा कर वही पानी पीनेको देना। प्यास अधिक होने पर बार बार पानी मांगेतो धनिया और बाला दोनोको पानीमें औटाकर वही पानी पीनेको देना, इससे प्यास, दाह और अतिसार शान्त होता है। पक्वातिसारमें पुराने महीन चावलका भात, मसूरकी दाल, परवर, बैगन, गुल्लर, केला आदिकी तरकारी, कवई, मागूर, सिङ्गी, आदि छोटी मछलीका रसा। चूनेके पानीके साथ मिलाकर अथवा अतिसार नाशक औषधके साथ औटाकर दुध आदि पथ्य देना चाहिये। अति जीर्ण अतिसारमें केवल दुधही उपकारी है। रक्तातिसारमें गो दुधके बदले बकरीका दुध विशेष उपकारी है।

भूंजा कच्चा बेल या बेलका मुरब्बा, अनार, कसेरू और सिङ्घाड़ा आदि पुराने अतिसारमें खानेको देना चाहिये।

निषिद्ध।—ज्वरातिसारके पथ्यापथ्यमें जो सब आहार विहार मना किया गया है अतिसार रोगमें भी वही सब मना है। पर रोगी बलवान हो तो २।३ दिन अन्तर पर गरम पानी ठण्ढाकर स्नान कर सकते है।

—०—

प्रवाहिका। (आमाशय रोग)।

—०—

निदान।—दूषित, शीतल, आर्द्र वायु सेवन, आर्द्र स्थान में वास, अपरिष्कृत जलपान; गुरुपाक, उग्रवीर्य्य और वायु जनक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, अतिरिक्त परिश्रम और अधिक मद्यपान आदि कारणोंसे प्रवाहिका रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें कुपित वायुसे बार बार मलके साथ थोड़ा थोड़ा कफ निकलता है। पहिले इसमें कफलिपटा अत्यन्त दुर्गन्ध और चिपकता हुआ मल निकलता है, फिर उसके साथ रक्तभी जारी होता है। तथा ज्वर, क्षुधामान्द्य, पिपासाधिक्य, पेटका ऐंठना, जीभ मैलसे लिपटी, जीमचलाना, मूत्र थोड़ा और लाल, पिशाब करती वक्त दर्द मुखमण्डल मलीन और उदास, जीभ सूखी, लाल, पिङ्गल और काली, नाड़ीकी गति कभी तेज कभी क्षीण आदि लक्षणभी प्रकाशित होता है। दस्तके वक्त प्रवाहन अर्थात् कांखना पड़ता है इससे इसका नाम प्रवाहिका है। चलित भाषामें इसको "आमाशय" और रक्त मिला रहनेसे "आमरक्त" कहते है।

दोषभेद लक्षण।—विरुद्ध आहार विहारादिके पार्थक्यानुसार तीन दोष और रक्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होता है। स्नेह पदार्थ सेवन करनेसे कफज, रुक्ष द्रव्य भोजन करनेसे वातज और उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य सेवनसे पित्तज तथा रक्तज प्रवाहिका उत्पन्न होता है। वायुजनित प्रवाहिकामें पेटमें अत्यन्त दर्द, पित्तजनितमें शरीर और गुदामें जलन, कफ जनितमें अधिक कफ मिश्रित मल आना और रक्तजनितमें रक्त मिला मल निकलता है। पीड़ाके प्रबल अवस्थामें अतिसारके लक्षण समूहभी प्रकाश होते है। इसकी अपक्व और पक्वावस्था अतिसारोक्त लक्षणके अनुसार स्थिर करना।

चिकित्सा।—साधारणत: इस रोगकी चिकित्साविधि प्राय: अतिसार रोगकी तरह जानना। विचार कर वही सब काढ़ा और औषध इस रोगमें भी देना, तथा और भी कई विशेष औषध इसमें दे सकते है। एक बरससे कम दिनके इसलीके पौधेकी जड़ दो आनेसे चार आनेभर मात्रा दहीके माठेमें पीसकर दिनको ३।४ बार पिलाना। इसलीके पौधेका नरम पत्ता २ तोले ३२ तोले पानीमें औटाना, ८ तोले रहते छानकर पिलाना। अनारका कच्चा फल या पत्तेका रस और कुरैयाके छालका रस या काढ़ा इस रोगमें विशेष उपकारी है। किन्तु रोगके प्रथम अवस्थामें कुरैयाकी छाल देना उचित नही है; पीपलका चूर्ण आधा तोला अथवा गोलमरिचका चूर्ण चार आने भर आधा पाव दूधके साथ पीनेसे पुराना प्रवाहिका रोगभी आराम होता है। बहुत छोटा कच्चा बेल भूनेकी गूदी और सफेद तिल समभाग दहीके साथ सेवन कराना, कच्चा बेल भूनेकी गूदी २ तोले, उखका गुड़ एक तोला, पीपल और सोंठका चूर्ण चार आनेभर थोड़े तिलके तेलके

साथ मिलाकर सेवन कराना। अकवनकी जड़की छालका चूर्ण ५।६ रत्ती मात्रा सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, मोथा, बाला, मोचरस, बेलकी गूदी, अतीस और अनारकी छाल, प्रत्येक चार आनेभर ३२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। आमाशयके प्रथम अवस्थामें रेड़ीका तेल आधा छटांक, अहिफेनासव १० बूंद १ छटांक पानीमें मिलाकर रोज एक दफे पिलाना। तथा थोड़े दिन तक शोंठका चूर्ण २ रत्ती, कुरैयाका चूर्ण ८ रत्ती, गोंदका चूर्ण ४ रत्ती और अफीम आधी रत्ती एकत्र मिलाकर दिनभरमें ३ बार सेवन करानेसे आमाशय रोग आराम होता है। सफेद रालचूर्ण और चीनी समभाग दो आनेभर मात्रा खिलानेसे आमाशय रोग बहुत जल्दी आराम होता है। पेटका दर्द आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल पेटपर मालिश करना, अथवा सेउड़ा पत्ता दो तोले, नरम कटहरिया केलेका दो टुकड़ा, अथवा चावल २ तोले और पानी एक पाव एकत्र एक पत्थरके बरतनमें मलकर छान लेना फिर उस पानीका चौथा भाग एक पीतलके बरतनमें औटाना आधा पानी जल जानेपर सेवन कराना। ऐसही ३ घण्टे अन्तर पर दिनभरमें ४ बार सेवन करानेसे पेटका दर्द आराम होता है। रोग और रोगीकी अवस्था विचार कर अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें प्रयोग कर सकते है।

पथ्यापथ्य।—पथ्यापथ्य अतिसार रोगकी तरह पालन करना। पुराने रक्तामाशयमें ज्वरादिका संस्रव न रहनेसे भैसकी दही या उसका मट्ठा दे सकते है, इससे विशेष उपकार होता है।

—०—

ग्रहणी रोग।

—:०:—

निदान।—अतिसार रोग आराम होनेपर अग्नि, बल, अच्छी तरह वृद्धि होनेके पहिलेही किसी तरहका कुपथ्य पदार्थ खा लेनेसे जठराग्नि अत्यन्त दुर्ब्बल हो ग्रहणी नामक नाड़ीको दूषित करता है। फिर अग्निमान्द्य आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो वही दूषित ग्रहणी नाड़ीको अधिक दूषित करता है। इस अवस्थामें कभी अपक्कयुक्त द्रव्य मलद्वारसे बार बार निकलता है, कभी पचकर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मल बार बार निकलता है, तथा कभी मल बन्द होजाता है। सब अवस्थामें पेटमें दर्द मालूम होता है। इसी रोगको ग्रहणी रोग कहते हैं। ग्रहणीकी नाड़ी अर्थात् पक्काशय दूषित होकर यह रोग उत्पन्न होता है, इसीसे ग्रहणी रोग कहते है। अतिसार रोग रहते अथवा अतिसार रोग न रहनेपरभी अकस्मात् ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

पूर्व्वरूप।—ग्रहणी रोग प्रकाश होनेसे पहिले प्यास, आलस्य, शरीरका भारीपन, और अग्निमान्द्यसे खाया हुआ पदार्थका खट्टा होना अथवा देरसे पचना आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

वातज ग्रहणी।—अतिशय कटु, तिक्त, कषाय और रुक्ष द्रव्य भोजन, संयोगादि विरुद्ध द्रव्य भोजन, अथवा अल्प भोजन, उपवास, पैदल अधिक चलना, मलमूत्रका वेग रोकना और अतिरिक्त मथुन आदि कारणोंसे वायु कुपित हो पाचकाग्नि दूषित

होकर वातज ग्रहणी उत्पन्न होती हैं। यही वातज ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ देरसे पचनेके सबब खट्टा हो जाता है, शरीर रुखा, कण्ठ सूखा, भूख, प्यास, आंखकी ज्योति कम, कानमें भीं भीं शब्द बोध; पार्श्व, ऊरु, दोनो पट्टा, गरदन आदिमें दर्द; विसूचिका अर्थात् कै दस्त दोनो एक साथ होना, अथवा कभी पतला, कभी सूखा थोड़ा फेनीला कच्चा मल बार बार तेज और कष्टसे होना, छातीमें दर्द, शरीर कृश और दुर्व्वल; मुख वेस्वाद, गुदामें काटनेकी तरह दर्द, मधुर (मीठा) आदि रसयुक्त भोजनकी इच्छा, मन अवसन्न और कास, श्वास आदि लक्षण प्रकाशित होते है। इस रोगमें खाया हुआ पदार्थ पचनेके वक्त अथवा पच जानेपर पेट फूलता है, पर आहार करनेके बाद शान्ति मालूम होती है। तथा इस रोगमें सर्व्वदा वातगुल्म, हृद्रोग अथवा प्लीहा रोग हुआ है ऐसी आशङ्का रोगीको बनी रहती है।

पित्तज ग्रहणी।—अम्ल, लवण, कटु रसयुक्त, अपक्व विदाही अर्थात् जो द्रव्य पचनेपर खट्टा होता है वही सब द्रव्य और तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्यके भोजनसे पित्त विगड़कर जठराग्नि बन्द होनेसे पित्तजग्रहणी उत्पन्न होता है। इसमें बदबू लिये खट्टी डकार आना, गला और छातीमें दर्द, अरुचि, प्यास, नीले या पीले रंगका दस्त आना, तथा रोगीका शरीर पीला होजाता है।

श्लेष्मज ग्रहणी।—अतिशय गुरुपाक, स्निग्ध, शीतल, लस्सेदार और मधुरादि रसयुक्त द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, तथा दिनको भोजनके बादही सोना आदि कारणोंसे कफ प्रकुपित हो जठराग्निको खराब करता है, इससे श्लेष्मज ग्रहणी उत्पन्न होता है। इस ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ कष्टसे पचता है, मुख कफसे

लिपटा और बेस्वाद मालूम होता है, किसी प्रकारके गाढ़े द्रव्यसे हृदय पूर्ण मालूम होना, दुर्ब्बलता, आलस्य, जीमचलना, वमन, अरुचि, कास, पीनस, पेट स्तब्ध और भारी मालूम होना, डकारमें मीठा स्वाद, अवसन्नता, मैथुनमें अनिच्छा, आम और कफयुक्त मलभेद आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

सन्निपातज ग्रहणी।—तीन दोष मिले हुये प्रकोपकारक द्रव्य सेवन करनेसे दो या तीन दोष प्रकुपित हो दो दोषज या सन्निपातज ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है। इससे उक्त सब लक्षण मिले हुये मालूम होते है।

संग्रह ग्रहणी।--ग्रहणी रोगके सिवाय संग्रह ग्रहणी नामक एक प्रकार और ग्रहणी रोग है इसमें किसीको रोज, किसीको १० या १५ दिन अथवा १ मास अन्तर पर पतला या गाढ़ा, शीतल, चिकना और अधिक मल जोरसे निकलता है। दस्तके समय आवाज, कमर और पेटमें दर्द, पेट बोलना, आलस्य, दुर्ब्बलता, अंग प्रभृतिमें अवसन्नता आदि लक्षण प्रकाशित होते है। दिनको यह दोष बढ़ता है और रातको कम होजाता है। आम और वायु इसका रोगका आरम्भक है। यह लक्षण अतिशय दुर्व्वोध और दुःसाध्य है।

अतिसार रोगके अपक्व और पक्व लक्षणकी भांति ग्रहणी रोगमें भी अपक्व और पक्व लक्षणका विचार करना चाहिये। वृद्धको ग्रहणी रोग होनेसे उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

चिकित्सा।—अतिसार रोगकी तरह ग्रहणी रोगमेंभी अपक्वावस्थामें मल रोधक न देकर पाचक औषध देना चाहिये। शोंठ, मोथा, इलायची और गुरिच, इन चार द्रव्योंका काढ़ा अथवा धनिया, अतीस, वाला, अजवाईन, मोथा, शोंठ, बरियारा, सरिवन,

पीठवन और बेलकी गूदी, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलानेसे आम-दोषका परिपाक और अग्निकी दीप्ति होती है। चित्रकगुड़िका नामक औषध इस अपक्वावस्थामें दिया जाता है।

दोषभेदसे व्यवस्था ।—अतिसारोक्त पक्व लक्षणोंके अनुसार इसकाभी पक्व लक्षण विचार कर वातादि दोषोंका बलाबल विवेचना पूर्व्वक रोगनाशक औषध स्थिर करना चाहिये। साधारणत: वातज ग्रहणी रोगमें बालपर्ण्यादि कषाय; पित्तज ग्रहणीमें तिक्तादि कषाय, श्रीफलादि कल्क, नागरादि चूर्ण, रसाञ्जनादि चूर्ण; श्लेष्मज ग्रहणीमें चातुर्भद्र कषाय, शठ्यादि चूर्ण, रास्नादि चूर्ण और पिप्पली मूलादि चूर्ण; वातपित्तज ग्रहणीमें मुस्तादि गुड़िका; वातश्लेष्मज ग्रहणीमें कर्पूरादि चूर्ण और तालिशादि वटी और कुटजावलेह, खेतपापड़का रस और सहतका साथ चटाना, फिर हींग, जीरा, शोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण समभाग दो आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ पिलाना। पित्तश्लेष्मज ग्रहणी रोगमें मूषल्यादि योग व्यवस्था करना उचित है। इसके सिवाय एक दोषज द्विदोषज, त्रिदोषज या संग्रह ग्रहणी रोगमें रोगी और रोगकी अवस्था और दोषका बलाबल विचार कर श्रीफलादि कल्क, पञ्चपल्लव, नागराद्य चूर्ण, भूनिम्बाद्य चूर्ण, पाठाद्य चूर्ण, स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण, वृहत् गङ्गाधर चूर्ण, स्वल्प और वृहत् लवङ्गादि चूर्ण, नायिका चूर्ण, जातिफलादि चूर्ण, जीरकादि चूर्ण, कपित्थाष्टक चूर्ण, दाड़िम्बाष्टक चूर्ण, अजाज्यादि चूर्ण, कञ्चटावलेह, दशमूल गुड़, मुस्तकाद्य मोदक, कामेश्वर मोदक, मदन मोदक, जीरकादि और वृहत् जीरकादि मोदक, मेथी और वृहन्मेथी मोदक, अग्निकुमार मोदक, ग्रहणीकपाट रस, संग्रह ग्रहणी कपाट रस, ग्रहणीशार्दूल वटिका, ग्रहणी गजेन्द्र वटिका, अग्निकुमार रस, जातीफलाद्य बटी, महा

गन्धक, महाभ्र बटिका, पीयूषवल्ली रस, श्रीनृपतिवल्लभ, वृहत् नृपतिवल्लभ, ग्रहणीवज्र कपाट, राजवल्लभ रस आदि औषध प्रयोग करना।

पुराने ग्रहणीकी चिकित्सा।—पुराने ग्रहणी रोगमें चाङ्गेरी घृत, मरिचाद्य घृत, महाषट्पलक घृत सेवन, और विल्व तैल, ग्रहणी मिहिर तल, वृहत् ग्रहणी मिहिर तैल और दाड़िमाद्य तेल मालिश करना।

पुराने ग्रहणी रोगमें शोथादि उपद्रव उपस्थित होनेसे दुग्धवटी, लौह पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, रस पर्पटी आदि औषध प्रयोग करना चाहिये। संग्रह ग्रहणी और किसो ग्रहणी रोगमें मल बन्द रहनेसे अजवाईन और काला नमक समभाग चार आने भर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना। गौका घी सेंधा नमकके साथ मिलाकर सेवन करानेसे भी बद्ध मल पतला हो निकलता है।

पथ्यापथ्य।—ग्रहणी रोगके अपक्क या पक्क अवस्थामें अतिसार रोगकी भांति पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना। कईअकी गूदी, वेलकी गूदी और अनारके फलकी छाल प्रत्येक २ तोले और उपयुक्त परिमाण दहीके माठेमें यवागू बनाकर पिलाना। बातज ग्रहणीमें स्वल्प पञ्चमूलीके काढ़ेके साथ यवागू मिलाकर पिलाना। सब प्रकारके ग्रहणी रोगमें तक्र अर्थात् दहीका मठा विशेष उपकारी है।

—०—

अर्शोरोग (बवासीर)।

—o—

बलिके समावेशका स्थान।—गुह्यद्वारके भीतरकी तरफ ४॥ अङ्गुल परिमित स्थानमें शंखावर्त्तकी तरह जो तीन आवर्त्त है, उसको बलि कहते है। भीतरकी तरफ १॥ डेढ़ अङ्गुल परिमित पहिले बलिका नाम प्रवाहणी, उसके नीचे १॥ डेढ़ अङ्गुल परिमित दूसरी बलिका नाम विसर्ज्जनी तथा उसके नीचे १ अङ्गुल परिमित तीसरी वलिका नाम सम्वरणी। बाकी आधी अङ्गुल परिमित गुह्यद्वारके अंशको गुदौष्ठ कहते है। वायु पित्त और कफ यह दोषत्रय, त्वक्, मांस और मेद धातुको दूषित कर पूर्व्वोक्त वलित्रयमें नाना प्रकार आकृति विशिष्ट मांसांकुर उत्पन्न होते है, इसी मांसांकुरको अर्श: कहते है; मलद्वारके बाहर जो सब मांसांकुर उत्पन्न होते है उसको वाह्यार्श: और भीतरके मांसांकुरको अभ्यन्तरार्श: कहते है। गुह्यद्वारके सिवाय लिङ्ग, नाभि, नासिका और कर्ण आदि स्थानोमें भी अर्शोरोग उत्पन्न होता है।

साधारण लक्षण।—इस रोगका साधारण लक्षण कोष्ठकाठिन्य, अजीर्ण, कठिन मल निकलते वक्त दर्द और रक्त-स्राव। रक्त २।४ बूंदसे आध सेर तक स्राव होते देखा गया है। पीड़ाके प्रवल अवस्थामें पिशाबके समय या उत्कट भावसे बैठने-परभी रक्त निकलता है।

प्रकार भेद।—साधारणत: अर्शोरोग ६ प्रकार:—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज, रक्तज और सहज। दो दोषके

मिलित लक्षण और मिलित चिकित्साके सिवाय द्विदोषज अर्श रोगका स्वतन्त्र कोई लक्षणादि रहनेसे पृथक् भावसे गिना नही जाता।

वातज अर्श:।—वातज अर्श:—कषाय, कटु तिक्त रस और रूक्ष, शीतल और लघु द्रव्य भोजन, अति अल्प भोजन, तीक्ष्ण मद्य पान अतिरिक्त मैथुन, उपवास, शीतल देशमें वास, व्यायाम, शोक, प्रवल वायु और आतप सेवन आदि कारणोंसे वातज अर्श उत्पन्न होता है। हेमन्तादि शीत काल इस अर्शके उत्पन्नका समय है। इस अर्श रोगमें किसी तरहका स्राव नही होता पर टप् टप् दर्द होता है। मांसांकुर समूहोंमें किसीकी आकृति खजुरकी तरह, किसीकी बेरकी तरह, किसीकी बनकपासके फूलकी तरह, कोई कदम्ब फलकी तरह, कोई सफेद सरसोकी तरह होता है। सबप्रकारके मांसांकुर म्लान, धूम्रवर्ण, कठिन धूलेकी तरह रूखा स्पर्श और गौ जीभकी तरह कर्कश स्पर्श, कटहरके छोटे फलकी तरह छोटा छोटा कांटा और हरेक कांटा भिन्न भिन्न आकृति और टेढ़ा तथा अग्रभाग सूक्ष्म और फटा होता है। इस रोगमें रोगीका मस्तक, पार्श्व, कन्धा, कमर, ऊरू और पट्टा आदि स्थानोंमें दर्द; छींक, डकार, पेट भारी मालूम होना, छातीमें दर्द, अरुचि, कास, श्वास, अग्निकी विषमता, कानमें सांय सांय आवाजका होना, भ्रम, अत्यन्त यातना, शब्दयुक्त चिकना और फेनयुक्त गठीला, थोड़ा थोड़ा मल आना; तथा त्वक, नख, मल, मूत्र, आंख, मुखका रङ्ग काला हो जाता है।

पित्तज अर्श:।—पित्तज अर्श:—कटु, अम्ल, लवण, उष्ण स्पर्श या उष्णवीर्य्य, अम्लपाक, और तीक्ष्ण द्रव्य भोजन; मद्य पान, अग्नि और धूपका सन्ताप, व्यायाम, क्रोध, असूया, उष्ण

देश और उष्ण कालमें पित्तज अर्श रोग उत्पन्न होता है। इस अर्श रोगमें मांसांकुर समूह लाल, पीला या काले रंग पर अग्रभाग नीले रङ्गका होता है, इसकी आकृति शुकके जीभ, यकृत् खण्ड या जोंकके मुखकी तरह होती है; पर मध्य भाग स्थूल, लम्बा और अल्प परिमाण, उष्ण स्पर्श और कोमल, आमगन्ध अर्थात् मछलीके बदबूकी तरह, मांसांकुरसे पतला रक्तस्राव, जलन और कभी कभी वह पकभी जाता है तथा इस रोगमें ज्वर, पसीना आना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, मोह और नीला पीला या लाल रङ्गका कच्चा पतला मलभेद होता है। रोगीका त्वक, नख, मल, नेत्र और मुख हरा, पीला अथवा हलदीके रङ्गका होता है।

श्लेष्मज अर्शः।—श्लेष्मज अर्शः—मधुर, स्निग्ध, शीतल, लवण, अम्ल और गुरु द्रव्य भोजन; शारीरिक परिश्रम-शून्यता, दिवानिद्रा, सुखकर बिछौनेमें शयन, सुखकर आसन पर बैठना, पूर्व्व वायु या सम्मुख वायु सेवन, शीतल देश, शीतकाल और चिन्ताशून्यता आदि कारणोंसे श्लेष्मज अर्शः उत्पन्न होता है। इसमें मांसांकुर महामूल अर्थात् बहुत दूर तक गहिरा, घना, अल्प वेदनायुक्त, श्वेतवर्ण, दीर्घाकृति, स्थूल, चिकना, कड़ा, (दबानेसे दबता नहीं), गुरू अर्थात् भारी, निश्चल, पिच्छिल, मसृण, अत्यन्त कण्डुयुक्त और सुखस्पर्श होता है। इसकी आकृति वंशांकुर, कटहरके बीज और गौ स्तनकी तरह होती है। इस अंकुरसे क्लेद रक्तादि स्राव और कठिन मल आनेपरभी मांसांकुर विदीर्ण नहीं होता। इस अर्शो रोगमें दोनो पट्टा बांधनेकी तरह पड़ा; गुह्य-देश, वस्ति और नाभि खीचनेकी तरह वेदना, श्वास, कास, बमन वेग, मुख और गुह्यस्राव, अरुचि, पीनस, मोह, मूत्रकृच्छ्र, शिरका भारीपन, शीतज्वर, रतिशक्ति हीनता, अग्निमान्द्य, अतिसार

और ग्रहणी आदि आमबहुल पीड़ाकी उत्पत्ति और प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, कफमिश्रित और चर्व्वीकी तरह बहुत मलका आना, आदि लक्षण प्रकाशित होते है। रोगीका त्वक्, नख, मल, मूत्र और नेत्र आदि चिकना, स्निग्ध और पाण्डुवर्ण होता है।

वातज, पित्तज और श्लेष्मज अर्शोरोगमें जो सब निदान लक्षणादि पृथक भावसे निर्द्दिष्ट है; मिलित भावसे वह सब निदान सेवित होनेसे, द्विदोषज, अर्थात् वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज अर्शोरोग उत्पन्न होनेसे वह सब लक्षण मिले हुये मालूम होते है।

त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अर्शोरोगका वही सब मिलित निदानसे उत्पन्न होनेसे तीन दोष मिले हुये लक्षण प्रकाशित होता है।

रक्तज अर्श:।—रक्तज अर्श:—पित्तज अर्शोरोगमें जो सब निदान है, रक्तज अर्शभी वही सब निदानसे उत्पन्न होता है। इसमें मांसांकुर समूह बड़के अङ्कुरकी तरह और घुंघुची या मूंगेकी तरह लालरंगका होता है। मल कठिन आनेसे वह अङ्कुर सब दब जानेपर उसमेंसे खराब और गरम खून निकलता है। इससे खुन अधिक जानेपर रोगी मेढ़ककी भांति पीला, रक्तक्षय जनित रोगसे पीड़ित, विवर्ण, कृश, उत्साह हीन, दुर्ब्बल और विकृतेन्द्रिय हो जाता है। इसमें मल काला, कठिन और रुखा आता है तथा अधोवायु नही खुलती। इसके सिवाय पित्तज अर्शरोगके लक्षण समूहभी विद्यमान रहते है।

सहज अर्श:।—सहज अर्श: पिता या माताको अर्शो रोग रहनेसे जन्मकालमें पिता माता कर्त्तृक अर्शोरोग कारक निदान सेवित होनेसे पुत्रकोभी अर्शोरोग होता है; इसीको सहज

अर्श: कहते हैं। इस रोगमें मांसांकुर कदाकार, कर्कश, अरुण वर्ण या पाण्डुवर्ण और मुह भीतरके तरफ होता है। इस रोगसे पीड़ित रोगी कृश, अल्पाहारी, धीमी आवाज, क्रोधित, शिराव्याप्त देह, अल्पप्रजा, तथा आंख, कान, नाक और शिरोरोगसे पीड़ित रहता है। तथा पेटमें गुड़ गुड़ शब्द, अन्त्रकूजन, हृदयमें उपलेप और अरुचि आदि उपद्रवभी दिखाई देते है। रोगीके शरीरमें वातादि दोषके आधिक्यानुसार वातजादि अर्शोरोगोक्त लक्षणभी इसमें प्रकाशित होते है।

रक्तज अर्शोरोगके साथ पित्तज अर्शके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको पित्तानुबन्ध रक्तार्श कहते है। वातानुबन्ध रक्तार्श अधिक रूक्षताके कारणसे उत्पन्न होता है और उसमें अरुणवर्ण फेनयुक्त पतला रक्तस्राव, कमर, ऊरू, गूदामें दर्द और शारीरिक दौर्ब्बल्य आदि लक्षण मालूम होते है। श्लेष्मानुबन्ध रक्तार्श गुरु और स्निग्ध से उत्पन्न होता है, तथा उससे स्निग्ध गुरु, शीतल, श्वेत या पीले रंगका पतला मलभेद, गाढ़ा खून या तन्तुविशिष्ट चिकना और पाण्डुवर्ण रक्तस्राव, गूदा चटचटी और गीला कपड़ा आच्छादनकी तरह अनुभव आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

दुःसाध्य रोगका कारण।—अर्शोरोग मात्रही प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पांच प्रकार वायु, आलोचक, रञ्जक, साधक, पाचक और भ्राजक यह पांच प्रकारका पित्त; अवलम्बक, क्लेदक, रोधक, तर्पक और श्लेष्मक, यह पांच प्रकार कफ तथा प्रवाहनी, विसर्ज्जनी और सम्बरणी गुह्य देशकी त्रिविध वलि, यह सब कुपित होनेसे उत्पन्न होता है। इससे स्वभावत: ही यह रोग दुःसाध्य, अति कष्टदायक, बहुरोगजनक और सर्व्व देहका पीड़ाकारक है।

सुखसाध्य अर्श: ।—जो अर्श वाह्यबलि अर्थात् सम्बरणी बलि या एक दोषसे उत्पन्न होता है और एक वर्षसे कम दिनका पुराना अर्श सुखसाध्य जानना ।

कष्टसाध्य अर्श: ।—इसके सिवाय जो अर्श मध्यवलि अर्थात् विसर्ज्जनीसे उत्पन्न हो, दो दोषज और एक बर्षसे अधिक दिनका पुराना कष्टसाध्य तथा जो सब अर्श सहज, अथवा त्रिदोषजात और अभ्यन्तर वलि अर्थात् प्रवाहनी बलिसे उत्पन्न होता है उस अर्शको असाध्य जानना ।

सांघातिक अर्श: ।—जिस अर्शमें रोगीका हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषमें शोथ, हृदय और पार्श्वमें शूल हो, अथवा जिस अर्शोरोगसे रोगीका हृदय और पार्श्वमें शूल, मूर्च्छा, के, सर्व्वाङ्गमें दर्द, ज्वर, तृष्णा, और गुदामें घाव आदि उपद्रव उपस्थित हो उससे उसका मृत्यु होती है, केवल तृष्णा, अरुचि, शूल, अत्यन्त रक्तस्राव, शोथ और अतिसार आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे भी रोगीको मृत्यु होती है। लिङ्गप्रभृति स्थानोंमें जो सब मांसांकुर उत्पन्न होता हैं उसका आकार कैंचुयेके मुखको तरह चिकना और कोमल होता है। गुह्यदेशके अर्शोरोगको तरह इसमें भी वातादि दोष भेदसे पृथक पृथक लक्षण लक्षित होते है ।

फुन्सी ।—"फुन्सी" नामक जो एक प्रकारका रोग देखने में आता है, वहभी अर्श जातीय है। संस्कृतमें इसको चर्म्मकील कहते है। व्यान वायु कफका आस्रय लेकर चमड़ेके उपर यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे उसमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द और कर्कश स्पर्श होता है। पित्तका आधिक्य रहनेसे स्निग्ध, गठीला और चमड़ेके समान वर्णविशिष्ट होता है ।

चिकित्सा।—जिस कार्य्यसे वायुका अनुलोम हो और अग्निबलकी वृद्धि हो, अर्शोरोग शान्तिके लिये पहिले वही सब उपाय अवलम्बन करना चाहिये। रोज सवेरे सफेद तिल १ तोला, मिश्री १ तोला, मक्खन ला मिलाकर खिलानेसे वायुका अनुलोम हो अर्शोरोग उपशम होता है। केवल सफेद तिल ४।५ तोले खाकर थोड़ा ठण्ढा पानी पिलानेसेभी उपकार होता है। इस रोगमें पतला दस्त होनेसे वातातिसारकी तरह और मलबद्ध होनेसे उदावर्त्तकी तरह चिकित्सा करना चाहिये। मल बद्ध होनेसे अजवाईनका चूर्ण और काला नमक मट्ठेके साथ पिलाना। एक सीसेके नलमें घी और सेंधा नमक लगाकर गुदामें रोज देनेसे मल-रोध दूर होता है। चीतामूलकी छाल पीसकर एक घड़ेके भीतर लेप करना, लेप सूख जानेपर उसी घड़ेमें दही जमाना तथा उस दहीका माठा पिलानेसे अर्शोरोग शान्त होता है। थोड़ा पीपल चूर्ण अथवा तेवड़ीके मूलका चूर्ण और दन्तीमूलके चूर्णके साथ बड़ी हर्रका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे भी अर्श आराम होता है। काला तिल एक तोला भेलावाकेमूटीका चूर्ण २ रत्ती एकत्र मिलाकर सेवन करानेसे अग्नि वृद्धि हो अर्शोरोग आराम होता हैं। हरीतकी, बिना छिलकेकी काली तिल, आंवला, किसमिस और जेठीमधका चूर्ण समभाग फालसेके छालके रसके साथ सेवन कराना। १ या २ दिन गोमूत्रमें हरीतकी भिङ्गोकर वही हरीतकी खिलानेसे अर्शोरोगमें उपकार होता है। जङ्गली-शूरण अभावमें ग्राम्य शूरणके उपर माटी लपेटकर पुट पाकसे भूञ्जा शूरण तेल और नमक मिलाकर खाना। सेंधा नमक, चीतामूल, इन्द्रयव, यवका चावल, डहरकरञ्जका बीज और थोड़ी नीमकी छाल सबका समभाग चूर्ण एकमें मिलाकर ॥)

आनेसे ।) आने तक माता रोज ठण्ढे पानीसे सेवन कराना। तोरईका चार ६ गूना पानीमें मिलाकर २।१ बार थौराकर छान लेना; फिर उस चार पानीमें बेगन उबालकर घीमें भूंज थोड़े गुड़के साथ भर पेट खाना और उपरसे मठा पीना। इसी तरह सात दिन खानेसे बहुत बढ़ा हुआ अर्श और सहज अर्श भी आराम होता है।

अर्शमें रक्तस्राव।—अर्शमें रक्तस्राव होनेसे एकदम बन्द करना उचित नहीं है, कारण खराब रक्त रुद्ध होनेसे मलद्वारमें दर्द, आनाह और रक्त विकृति आदि रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। पर जब अतिरिक्त स्रावसे रोगीके प्राण नाशकी आशङ्का हो तब तुरन्त बन्द करना चाहिये। बिना छिलकेकी तिल १ तोला आधा तोला चीनी एकत्र पीसकर एक छटांक बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द होता है तथा पद्मका नरम पत्ता पीसकर चीनीके साथ खाना अथवा सबेरे बकरीका दूध पीना। पद्मकेशर, सहत्, टटका मक्खन, चीनी और नागकेशर एकत्र मिलाकर खाना। आमरूल शाक, नागकेशर और नीलोत्पल इस तीन द्रव्यके साथ अथवा बरियारा और सरिवन इस दो द्रव्यके साथ धानके लावाका मण्ड बनाकर सेवन कराना। रोज सबेरे मक्खन बिना छिलकेको तिल प्रत्येक दो दो तोला अथवा मक्खन १ तोला नागकेशर या पद्मकेशरका चूर्ण चार आनेभर और चीनी चार आने भर एकत्र; किम्बा दहीकी मलाई मिला मट्ठा पीना। पोसी काली तिल १ तोला, चीनी आधा तोला और बकरीका दूध १ छटांक एकत्र मिलाकर पीना। वराह-क्रान्ता, नीलोत्पल, मोचरस लोध और लालचन्दन सम भाग २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले और पानी ६४ तोलेमें औटाना,

दूध बाकी रहने पर छानकर पिलाना, अनारका नरम पत्ता गेंदाका पत्ता, किम्बा कुकुरसोंकाके पत्तेका रस १ तोला और चीनी आधा तोला मिलाकर पीना; उपर लिखी सब दवायें रक्त रोधक है। कुरैयाकी छाल अथवा वेलके गुदीका काढ़ा शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। कुरैयाकी छाल आधा तोला पीसकर साठेके साथ, अथवा शतावरका रस २ तोले, बकरीके दूधके साथ पीना। यह सब योग रक्तार्श निवारक है तथा रक्त-पित्त रोगोक्त योग और औषध समूहभी विचार कर रक्तार्श रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

शास्त्रीय औषध।—उक्त योगोंके सिवाय चन्दनादि काढ़ा, और मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, कर्पूराद्य चूर्ण, विजय चूर्ण, करञ्जादि चूर्ण, भल्लातकामृत योग, दशमूल गुड़, नागराद्य मोदक, स्वल्प शूरण मोदक, वृहच्छूरण मोदक, कुटजावलेह, प्राणदा गुड़िका, चन्द्रप्रभा गुड़िका, जातिफलादि वटी, पञ्चानन बटी, नित्योदित रस, दन्त्यरिष्ट, अभयारिष्ट, चव्यादि घृत और कुटजाद्य घृत आदि औषध दोषका बलाबल विचार कर सब अर्शोरोगमें प्रयोग करनेसे आश्चर्य्यजनक उपकार होता है।

मांसांकुर गिरानेका उपाय।—दृश्यमान मांसांकुर अर्थात् जो सब मस्सा गुदाके बाहर दिखाई देता हो उसमें सेहुंड़के दूधके साथ हल्दीचूर्ण मिलाकर एक बिन्दु लगाना। तोरईका चूर्ण मस्सेपर घिसना। अकवनका दूध सेहुंड़का दूध, तित-लौकीका पत्ता और डहरकरञ्जकी छाल समभाग बकरीके मूत्रमें पीसकर मस्सेपर लेप करना। अथवा इसकी बत्ती तिल तेलमें भिंगोकर गूदामें रखना, इससे मस्सा बेमालूम गिर पड़ता है। पुराना गुड़ थोड़े पानीमें मिलाना फिर तोरईका चूर्ण

मिलाकर औटाना गाढ़ा होनेपर उसकी बत्ती बना वही बत्ती गुदामें रखना। तोरईकी जड़ पीसकर लेप करना। शूरण, हलदी, चीताकी जड़ और सोहागेके लावाका चूर्ण पुराने गुड़के साथ अथवा कांजीमें पीसकर लेप करना। बीज संयुक्त तितलौकी कांजीमें पीसकर गुड़ मिला प्रलेप देना। सेहुंढ़ या अकवनके दूधमें पीपल, सेंधा नमक, कूठ और शिरीष फलका चूर्ण मिला अथवा हलदी और तोरई चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर लेप करना। कपासके सूतमें हलदीका चूर्ण मिलाकर सेहुंड़का दूध बार बार लगाकर उसी सूतसे मस्सा बांध रखना। इन सब उपायोंमें मस्सा गिरकर अर्शोरोग आराम होता हैं। कसीस तेल और वृहत् कसीसतैल मांसांकुर निवारणका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, मूंग, चना या कुरथीकी दाल; परवर, गुल्लर, शूरण, छोटी मूली, कच्चा पपीता केलेका फल, सैजनका डण्डा, आदिकी तरकारी, दूध घी, मक्खन, घृतपक्व पदार्थ, मिश्री, किसमिस, अङ्गुर, पक्का पपीता, मट्ठा और छोटी इलायची पथ्य है। नदी या प्रशस्त तालावमें रहने पर स्नान और साफ हवा टहलना आदि उपकारी है।

इसके सिवाय जो सब आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम हो वही सब आहार विहारादि अर्शोरोगमें करना उचित है। अर्शोरोगमें अधिक रक्तस्राव हो तो रक्तपित्त रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—भूना, सेंका पदार्थ, गुरुपाक द्रव्य, दही, पिष्टक, उर्द, सेम, लौकी, आदि द्रव्य भोजन; धूप या अग्निका सन्ताप, पूर्व्व दिशाकी वायुका सेवन मलमूत्रादिका

वेग धारण, मैथुन, घोड़ा आदि सवारीमें चढ़ना, कड़े आसनपर बैठना और जिस कार्य्यसे वायु कुपित हो उसका अनुशीलन अर्शो रोगमें अनिष्टकारक हैं।

—:०:—

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

——०——

अग्निमान्द्यका निदान।——अधिक जल पान, अपरिमित आहार, सर्वदा गुरुपाक द्रव्य भोजन, अश्रद्धा पूर्व्वक आहार, मलमूत्रादिका वेग रोकना, दिनको सोना, रातको जागना, दुश्चिन्ता, अच्छी तरह चिबाकर न खाना, परिपाक यन्त्रका दोष, क्रिमि रोग, अधिक शीतल या आग धूप सेवन, अधिक जल-क्रीड़ा और अधिक पान खाना आदि कारणोंसे अग्निमान्द्य रोग उत्पन्न होता है। उक्त कारण और विषम भोजन अर्थात् कोई दिन थोड़ा, कोई दिन अधिक, अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, सूखा या सड़ा द्रव्य भोजन, अनिच्छा या घृणासे भोजन ; भोजनके वक्त भय, क्रोध, लोभ, शोक या और कोई कारणसे मानसिक तकलीफ और भोजनके बाद अतिरिक्त मानसिक परिश्रम आदि कारणोंसे भी अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है। साधारणत: अजीर्ण-रोग चार प्रकार,—आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण विष्टब्धाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण। कफ प्रकोपसे आमाजीर्ण, पित्त प्रकोपसे विदग्धाजीर्ण और खाये हुये पदार्थका पहिला रस रक्तादि रसमें परिणत न होनेसे रसशेषाजीर्ण उत्पन्न होता है।

प्रकारभेदसे लक्षण।—आमाजीर्णमें शरीर भारी, जीमचलाना, गाल और आंखके चारों तरफ शोथ, खाये हुए पदार्थके स्वादका डकार आना आदि लक्षण होता हैं। विदग्धाजीर्णमें भ्रम, मूर्च्छा, प्यास खट्टी वा धुंधैली डकार और पित्तजन्य अन्यान्य उपद्रव प्रकाशित होता हैं। विष्टब्धाजीर्णमें पेटका फूलना, दर्द, मल और अधोवायुका अनिर्गम, स्तब्धता, मूर्च्छा, सर्व्वाङ्गमें दर्द तथा वायु जन्य अन्यान्य कष्ट भी दिखाई देता है। रस शेषाजीर्णमें अन्न भोजनकी अनिच्छा, हृदयकी अशुद्धि और शरीर भारी मालूम होता है।

साधारण लक्षण।—सब प्रकारके अजीर्णमें ग्लानि, शरीर और पेटका भारीपन, पेटमें दर्द और वायु सञ्चय, कभी मलरोध, कभी अजीर्ण मलभेद और आहारके बाद वमन, यही कई एक साधारण लक्षण दिखाई देता है।

उपद्रव।—अजीर्ण रोगसे मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुखसे स्राव, अवसन्नता और भ्रम; यही सब उपद्रव उत्पन्न होता है।

अग्निमान्द्य चिकित्सा।—सुपथ्य भोजन करना ही अग्निमान्द्यकी साधारण चिकित्सा हैं। समभाग बड़ी हर्र और शोंठका चूर्ण गुड़ या सेंधा नमकके साथ रोज खानेसे अग्निमान्द्य रोग आराम होता हैं। रोज सबेरे जवाक्षार और शोंठका चूर्ण समभाग खानेसे अथवा शोंठका चूर्ण घीके साथ चाटकर थोड़ा गरम पानी पीनेसे भूख बढ़ती है। रोज भोजनके पहिले अदरख और नमक खानेसे अग्निमान्द्य दूर हो जीभ और कण्ठ साफ होता है। इसके सिवाय बाड़वानल चूर्ण, सैन्धवादि चूर्ण, सैन्धवाद्य चूर्ण हिङ्गाष्टक चूर्ण, स्वल्पाग्निमुख चूर्ण, वृहदग्निमुख चूर्ण, भास्कर लवण, अग्निमुख लवण, बड़वानल रस, हुताशन रस

और अग्नितुण्डी बटी आदि औषध सेवन करनेसे अग्निमान्द्य आराम होता है। अजीर्ण रोगोक्त औषध समूह भी अग्निमान्द्यमें दे सकते हैं।

अजीर्णकी साधारण चिकित्सा।—आमाजीर्णमें वमन, विदग्धाजीर्णमें लङ्घन अर्थात् उपवास, विष्टब्धाजीर्णमें स्वेद कार्य्य और रसशेषाजीर्णमें आहारके पहिले दिवा निद्रा; यही सब अजीर्ण रोगकी साधारण चिकित्सा है।

विशेष चिकित्सा।—आमाजीर्णमें बच १ तोला सेंधा नमक १ तोला १ सेर गरम पानीमें मिलाकर के कराना, पीपल सेंधा नमक, और बच समभाग ठण्ढेपानीमें पीसकर पिलाना। धनिया १ तोला और शोंठ १ तोलाका काढ़ा पिलाना, इससे पेटका दर्द तुरन्त आराम होता है। गुड़के साथ शोंठ, पीपल, बड़ी हर्र अथवा अनार इसमें कोई एक द्रव्यका चूर्ण सेवन करनेसे आमाजीर्ण, मलबद्धता और अर्शोरोग शान्त होता है सबेरे अजीर्ण मालूम होनेसे बड़ी हर्र, शोंठ, और सैंधा नमक प्रत्येकका समभाग चूर्ण ठण्ढे पानीके साथ सेवन कर आहार करनेसे किसी तरहके अनिष्टकी आशङ्का नही रहती है।

विदग्धाजीर्णमें ठण्ढा पानी पीनेको देना, इससे विदग्ध अन्न जलदी परिपाक होता है और पानीका ठण्ढापन तथा पतलेपनसे पित्त प्रशमित हो नीचे उतरता है। भोजन करतेही यदि अन्न विदग्ध हो हृदय, कोष्ठ और गलेमें जलन मालूम हो तो उपयुक्त मात्रा बड़ीहर्र और किसमिस समभाग एकत्र पीसकर चीनी और सहतके साथ चाटना। बड़ीहर्र १ तोला, पीपल एक तोला ३२ तोले काञ्जीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर एक आना भर

सेंधा नमक मिलाकर पीनेसे धुन्धैली डकार और प्रवल अजीर्ण आराम हो तुरन्त भूख लगती है।

विष्टब्धाजीर्णमें स्वेदक्रिया और लवण मिला कर पानी पिलाना चाहिये। रस शेषाजीर्णमें उपवास, दिवा निद्रा और प्रवल वायु युक्त स्थानमें बैठना आदि साधारण चिकित्सा हैं। हीङ्ग, शोंठ, पीपल, गोलमरिच, और सेंधा नमक, पानीमें पीसकर पेटपर लेप करना तथा भोजनके पहिले लेप लगाकर दिनको सोनेसे सब प्रकारका अजीर्ण रोग आराम होता है। बड़ीहर्र, पीपल और सौवर्चल नमक, सबका समभाग चूर्ण दोषानुसार दहीका पानी या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे चार प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य अरुचि, पेटका फूलना, वातज गुल्म और शूल रोगभी जल्दी आराम होता है। शोंठ, पीपल, गोलमिरच, दन्तीबीज, निशोथकी जड़, चीतामूल, और पीपला मूल, इन सबका समभाग चूर्ण पुराने गुड़के साथ सबेरे खानेसे सब प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, उदावर्त्त, शूल, प्लीहा, शोथ और पाण्डु रोगमें भी उपकार दिखाई देता है। उदराध्मान निवृत्तिके लिये गोलमिरच भिङ्गोया पानी अथवा गोलमिरच पानीमें पीसकर पीनेसे विशेष उपकार होता है।

सब प्रकारके अजीर्णमें अग्निमान्द्य नाशक औषध समूह और लवङ्गाद्य मोदक, सुकुमार मोदक, चित्रकादि मोदक, मुस्तकारिष्ट क्षुधासार रस, शङ्खवटी, महाशङ्ख वटी, भास्कर रस, चिन्तामणि रस और अग्निघृत प्रभृति औषध अवस्थानुसार प्रयोग करना। ग्रहणी रोगोक्त कई प्रकारके औषध भी दिया जाता हैं।

पथ्यापथ्य।—अजीर्णके प्रथम अवस्थामें उपवास कराना चाहिये, फिर बार्लि, अरारूट, जौका मण्ड, सिंघाड़ेकी लपसी

आदि हलका पथ्य देना। क्रमशः अजीर्णका उपशम और अग्नि-बलकी वृद्धि होनेसे, दिनको पुराने चावलका भात, मसूरको दाल, मागुर, शिङ्गी, कवई आदि मछलोका रस्सा, परवल, बैगन, कच्चा केला आदिकी तरकारी, मट्ठा, और कागजी या पाती नीबू, आहार करनेको देना। रातको बार्लि आदि हलकी वस्तु खानेको देना। भूख अधिक होनेसे और दोनो वक्त परिपाककी शक्ति बढ़ने पर रातको भी दिनकी तरह अन्न खानेको देना। भूंना कच्चा बेलका मुरब्बा, अनार, मिश्री आदि द्रव्य उपकारी है। अजीर्ण या अग्निमान्द्य रोगमें भोजनके २।३ घण्टा बाद पानी पीना चाहिये। सबेरे बिछौनेसे उठतेही थोड़ा ठण्ढा पानी पीना इस रोगमें सुपथ्य है चलित भाषामें इसको "उषापान" कहते है।

निषिद्ध कार्य्य।—घृतपक्व द्रव्य, मांस, पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, भूंजा, सेंका द्रव्य, अधिक जल या तरल पदार्थ पीना, यव, गोधूम, उरद, शाक, इक्षु, गुड़, दूध, दही, घी, खोवा, मलाई, नारियल, मुनक्का, दस्तावर, वस्तु मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा आदि भोजन, तैल मर्द्दन, रातको जागना, मैथुन, स्नान इस रोगमें अनिष्टकारक है। वस्तुतः जो द्रव्य जलदी हजम नहो होता अथवा जिस द्रव्यके पचनेमें देर लगता है वैसा पदार्थ परित्याग करना चाहिये।

विसूचिका।

विसूचिका या हैजेका निदान।—आयुर्व्वेद शास्त्र में विसूचिकाभी अजीर्ण रोगके अन्तर्गत निर्द्दिष्ट है। इसकी संक्रामकताशक्ति इतनी अधिक है कि एक आदमीको अजीर्णके सबब विसूचिका रोग उत्पन्न हो क्रमश: उस देशके अधिकांश मनुष्यको आक्रमण करता है। रोगभी अति भयङ्कर और जल्दी प्राण नाशक है। इन्ही सब कारणोंसे इसको स्वतन्त्र रोगमें गिनना उचित जानकर अलग लिखते है। चलित भाषामें इसको "हैजा" और अङ्गरेजोमें "कलेरा" कहते है। अतिवृष्टि, वायुकी आर्द्रता या स्थिरता, अतिशय उष्ण वायु, अपरिष्कृत जल वायु, अतिरिक्त परिश्रम, आहारका अनियम, भय, शोक या दुःख आदि मानसिक पीड़ा, अधिक जनतापूर्ण स्थानमें वास, रातका जागना और शारीरिक दौर्व्वल्य आदिको इस रोगका निदान कहते है। जिस आदमीको बिना पेटकी बिमारीके हैजा होता है, उसको पहिले शारीरिक दुर्व्वलता, वदन कांपना, मुखश्रीकी विवर्णता, पेटके उपरी भागमें दर्द, कानमें कई तरहके शब्द सुनाई देना, शिर:पीड़ा और शिर घूमना आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होता हैं।

साधारण लक्षण।—इसका साधारण लक्षण लगातार दस्त और वमन है। पहिले २।१ बार उदरामयकी तरह दस्त और खाया हुआ पदार्थ वमन हो, फिर पानीकी तरह और जौ या चावलके काढ़ेकी तरह अथवा सड़ा सफेद कोंहड़ेके पानीकी तरह दस्त और पानी वमन होता है। कभी कभी लाल रङ्गका

दस्त होते भी दिखाई देता है। पेटमें दर्द, सड़ी मछलीकी तरह दुर्गन्ध और पिशाब बन्द होता है। फिर क्रमशः आंखोंका बैठ जाना, दोनो ओष्ठका नीला होना, नाक ऊंचो, हाथ पैर ठंढा सिंकुड़न और ऐठन, अङ्गुलीके अग्रभाग सूख जाना, शरीर रक्तशून्य और पसीना होना; नाड़ीहीन, शीतल और क्रमशः लुप्त, हुचकी, अत्यन्त प्यास, मोह, भ्रम, प्रलाप ज्वर, अन्तर्दाह, स्वरभङ्ग, बेचैनी, अनिद्रा, शिरका घूमना, शिरमें दर्द, कानमें विविध शब्द सुनाई देना; आंखसे नाना प्रकार मिथ्यारूप दिखाई देना; जीभ ठंढी, श्वास शीतल और दांतोका बाहर निकल आना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

दोष प्रकोपके लक्षण।—इस रोगमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे दस्त वमनकी अल्पता पेटमें दर्द, अङ्गमें दर्द, मुख-शोष, मूर्च्छा, भ्रम और शिरा संकोच आदि लक्षण प्रकाशित होता है। पित्तके आधिक्यमें अधिक दस्त, ज्वर अन्तर्दाह प्यास, मोह और प्रलाप आदि लक्षण और कफके आधिक्यमें अधिक वमन, आलस्य, शरीर भारी, शीतज्वर और अरुचि, आदि लक्षण विशेष रूपसे लक्षित होता हैं।

शारीरिक सन्ताप।—इस अवस्थामें शारीरिक सन्ताप बहुत कम हो जाता है। तापमान यन्त्रसे परीक्षा करने पर ८६ डिग्री तक सन्ताप रहता है। किसीको मृत्युके दो एक घण्टा पहिले कपाल, गाल और छातीमें सन्ताप अधिक होता है। उपर कहे लक्षणोंमें मूर्च्छा, गात्रदाह, निद्रानाश, शारीरिक विवर्णता, उदर, मस्तक और हृदयमें अत्यन्त दर्द, भ्रान्ति प्रलाप, स्वरभङ्ग, कम्प और बेचैनी आदि लक्षण प्रकाश होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नही करना। यदि क्रमशः भेद वमनकी अल्पता,

पित्त मिला मलभेद, शारीरिक सन्ताप वृद्धि, पेटके दर्दका नाश, नियमित निःश्वास प्रश्वास, प्यास कम, निद्रा स्वाभाविक, वर्ण प्रकाश और पिशाब होना आदि लक्षण दिखाई दे तो आराम होनेकी आशा है। इस रोगका हमला अकसर सवेरे और रातको होता है। पर कभी कभी और वक्त भी इसका हमला देखनेमें आता है। इसके मृत्युका काल निश्चय नही है, किसीकी तो २।४ घण्टेहीमें मृत्यु होती है और बहुतेरोंको २।४ दिन तक कष्टभोगकर मृत्युमुखमें पतित होना पड़ता है।

चिकित्सा।—यह रोग उपस्थित होतेही चिकित्सा (इलाज) करना चाहिये। पर पहिलेही तेज धारक औषध देना उचित नही है; इससे दस्त बन्द होनेपर भी वमन वृद्धि और पेटका फुलना आदि उपसर्ग उत्पन्न होता है। तथा थोड़ी देरके लिये दस्त बन्द हो फिर अधिक परिमाणसे दस्त होनेकी आशङ्का बनी रहती है। इससे प्रथम अवस्थामें धारक औषध अल्प मात्रासे थोड़ी थोड़ी देना चाहिये। अजीर्णसे रोग उत्पन्न होनेपर पहिले पाचक और अल्प धारक औषध देनाही सद्व्यवस्था है। अजीर्णके विसूचिकामें नृपवल्लभ आदि औषध विशेष उपकारी है। दूसरे विसूचिका रोगमें पहिले दालचिनी ॥) आनेभर, जाफरान ॥) आनेभर, हींग ।≠) आनेभर और छोटी इलायचीका दाना ।) आनेभर अलग अलग अच्छी तरह पीसकर फिर २५ तोले चीनीमें मिलाना; सब मिलाकर जितना वजन हो उसके तीन भागका एक भाग सफेद मिट्टीका चूर्ण उसके साथ मिलना तथा रोग रोगीके बलानुसार १० रत्तीसे ३० रत्ती तक मात्रा बार बार देना। २० वर्षके जवानसे लेकर ५० वर्षके बूढ़े तकको २० रत्ती चूर्णके साथ आधी रत्ती अफीम मिलाकर देना, इससे कम

उमरवालेको खालीचूर्ण देना। रोगीके उमरके हिसाबसे दवाकी मात्राभी आधो या चौथाई करना चाहिये अथवा अफीम आधी रत्ती, गोलमरिचका चूर्ण चौथाई रत्ती हींग चौथाई रत्ती और कपूर १ रत्ती एक सङ्ग मिलाकर एक आनाभर मात्रा प्रत्येक दस्तके बाद देना, दस्त बन्द हो जानेपर २।३ दिनतक दिनभरमें तीन बार देना, अफीम आदि ४ द्रव्य समभाग ले २ रत्ती वजनकी गोली बनाकर देना अथवा हमारा कर्पूरारिष्ट १०।१२ बूंद थोड़ी चीनीमें मिलाकर आधा घण्टाके अन्तर पर देना। अहिफेनासवभी इस रोगका प्रशस्त औषध है ५से १० बिन्दु मात्रा विचार कर ठण्ढे पानीके साथ देना। मुस्तादा वटी, कर्पूर रस, ग्रहणी कपाट रस और प्रबल अतिसार नाशक, अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें दे सकते हैं। यह सब औषध व्यवहार करनेके साथ साथ थोड़ी मृतसञ्जीवनी सुरा पानीमें मिलाकर देनेसे विशेष उपकार होता है, पर कै और हुचकीका वेग रहनेसे सुरा न देकर सीधू अर्थात् सिर्का पानीमें मिलाकर देना चाहिये इससे हुचकी कै, प्यास और पेटका फूलना आराम होता है। एक छटांक इन्द्रयव १ सेर पानीमें औटाना एक पाव रहते उतार कर १ तोला मात्रा आधा घण्टा अन्तर पर देनेसे विशेष उपकार होता है।

अपामार्ग (चिरचिरा)की जड़ पानीमें पीसकर सेवन करानेसे हैजा आराम होता है; छोटी करेलीके पत्तेके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे हैजा आराम होता है और भूख बढ़ती है। बेलकी गुदी और शोंठका काढ़ा; अथवा बेलकी गुदी, शोंठ और जायफल इस तीन चीजका काढ़ा पीनेसेभी हैजा आराम होता है।

वमन और मूत्ररोध निवारक उपाय।—एक अंजुली

धानका लावा और १ तोला चोनी डेढ़ पाव पानीमें थोड़ी देर भिंगोकर छान लेना, फिर उसमें खस १ तोला, छोटी इलायची आधा तोला, सौंफ एक तोला पीसकर और सफेद चन्दन घिसा १ तोला मिलाना। यह पानी आधा तोला मात्रा आधा घण्टा अन्तर पिलानेसे कै (वमन) बन्द होता है। सरसो पीसकर पेटपर लेप करनेसेभी कै बन्द होता है। तथा अन्यान्य औषधभी वमन बन्द करनेके लिये विचार कर देना चाहिये। पिशाब करानेके लिये पत्थरचूर, हिमसागर या लोहाचूर नामक पत्तेका रस १ तोला पिलाना। अथवा गोक्षुर बोज, कङ्कड़ीको बोज और जवासा, इसके काढ़ेके साथ दो आनेभर सोरा चूर्ण मिलाकर पिलाना, किम्बा कुश, काश, शर, खस और काला ऊख यह तृणपञ्चमूलका काढ़ा पिलाना। रामतरोई उवाला पानी आधा छटांक ३।४ बार पिलानेसे अथवा स्थलपद्मके पत्तेका रस १ तोला थोड़ो चीनी मिलाकर पिलानेसे पिशाब उतरता है। पत्थरचूरका पत्ता और सोरा एकत्र पीसकर बस्तिपर लेप करनेसे भी पिशाब होता है। हाथ पेरका गोला आराम करनेके लिये तार्पिनका लेप और सुरा एकत्र मिलाकर मालिश करना। केवल शोंठका चूर्ण मालिश करनेसेभी उपकार होता है। कूठ और सेंधा नमक कांजी और तिलके तेलमें पीसकर थोड़ा गरम कर मालिश करना। दालचिनी, तेजपत्ता, रास्ना, अगरू, शेजनको छाल, कूठ, वच और सोवा यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर थोड़ा गरम कर मालिश करनेसे भी गोला आना बन्द होता है। हुचकीके लिये सन्निपात ज्वरोक्त हिक्का नाशक औषध समूहोंको व्यवस्था करना, अथवा केलेके जड़के रसका नास लेना। राई पीसकर गरदन और मेरुदण्ड पर लेप करना। पेटका दर्द शान्तिके लिये जोका चूर्ण और जवाक्षार

मट्ठेके साथ पीस कर थोड़ा गरम कर पेटपर लेप करना, अथवा तार्पिनका तेल पेटपर मालिश कर सेंकना। गरम पानीमें ऊनी वस्त्र भिंगो निचोड़ कर सेंकनेसे भी उपकार होता है। प्याससे जी व्याकुल हो तो कर्पूर मिला पानी अथवा बरफका पानी पीनेको देना। कबाबचिनीका चूर्ण ३ तोला, जेठीमधका चूर्ण आधा तोला और कज्जली चार आनेभर सहतके साथ थोड़ा थोड़ा चटानेसे पिपासा शान्त होती है। लौंग, जायफल या सोंथिका काढ़ा पिलानेसे प्यास और वमन बन्द होता है। पसीना अधिक हो तो अबीर मालिश करना ; अथवा मूंगेका भस्म सहतके साथ चटाना। शिरःशूलके लिये ठण्ढे पानीकी पट्टी शिरपर रखना, बेहोशी हो तो हाथ पैर सेंकना।

सूचिकाभरण रस और हमारा कस्तुरीकल्प रसायन प्रयोग।—जीवनकी आशा कम होनेसे और सन्निपातकी तरह दोनो आंखे लाल, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम आदि उपसर्ग उपस्थित होनेसे सूचिकाभरण रस प्रयोग करना उचित है। कच्चे नारियलके पानीके साथ २।३ गोली अवस्था विशेषमें २।३ बार तक सेवन करा सकते हैं। इससे उपकार न हो तो फिर सेवन कराना वृथा है। अन्तकालके हिमाङ्ग अवस्थामें हमारा "कस्तुरी-कल्प रसायन" देनेसे विशेष उपकार होता है।

इस रोगकी चिकित्सामें हर वक्त सतर्क रहना चाहिये, कारण किसवक्त कौन आफत आवेगी इसका ठिकाना नहीं है और न अनुमानसे जानने लायक इसका कोई उपाय है। रोगीका घर, बिछौना और पहिरनेका कपड़ा आदि हरवक्त साफ रखना चाहिये कर्पूर, धूना और गन्धकका धूआं घरमें देना। मल आदि दूर फेंकना चाहिये।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य ।—पीड़ाके प्रबल अवस्थामें उपवासके सिवाय कोई पथ्य नही देना। पीड़ा कम हो रोगीको भूख लगे तो सिङ्घाड़ेकी लपसी, एरारुट या साबूदाना पानीमें औटाकर खानेको देना। अतिसारोक्त यवागूभी इस अवस्थामें विशेष उपकारी है। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" भी इस अवस्थामें सुपथ्य है। उक्त पथ्यके साथ कागजी या पाती नीबूका रसभी मिलाकर दे सकते हैं। पीड़ा अच्छी तरह आराम हो अधिक भूख बढ़नेसे पुराने चावलका मण्ड, कवई, मांगुर आदि छोटी मछलीका शुरुवा और नरम मांसका शुरुवा पीनेको देना। फिर अन्न परिपाकका उपयुक्त बल होनेसे पुराने चावलका भात, मसूरकी दालका जूस, पूर्व्वोक्त मछली और मांसका रस, गुल्लर, नरम परवल आदिको तरकारी थोड़ा खानेको देना, मिश्री बतासाके सिवाय दूसरी मिठाई नही देना। शारीरिक बलकी वृद्धि होनेसे ३।४ दिनके अन्तर पर गरम पानीसे स्नान कराना।

निषिद्ध कर्म्म ।—सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ न होने तक गुरुपाक द्रव्य घी या घीसे बनाई वस्तु, भूना, सेंका पदार्थ भोजन, स्नान, मैथुन, आग और धूपका सन्ताप व्यायाम या अन्यान्य श्रमजनक कार्य्य नही करना। पहिलेही कह आये है, कि साधारणतः अजीर्णही इस रोगका मूल कारण हैं, अतएव जो सब कारणोंसे अजीर्णकी आशङ्का हो उसको सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये। शहर या गांवमें अथवा अपने परिवारमें किसीको यह रोग उपस्थित हो तो किसी तरहसे डरना नही, कारण भयसे अजीर्णमें हैजा उत्पन्न होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना रहती है।

—०—

अलसक और विलम्बिका।

रोगका कारण।—यह दो प्रकारका रोग अजीर्ण रोगका भेदमात्र है। दुर्ब्बल, अल्पाग्नि, बहुश्लेषयुक्त, मल-मूत्र-वात वेगका रोकना और जो मनुष्य गुरु, कठिन, अधिक रुखा, शीतल, सूखा द्रव्य भोजन करता है उसका वायु कुपित और कफसे रुद्ध-गति होनेसे उक्त दो प्रकारका रोग उत्पन्न होता है।

अलसक रोगमें अतिशय कष्टदायक उदराध्मान होता है, रोगी तकलीफसे छटपट करते करते मुर्च्छित हो जाता:है; और अजीर्णसे उसके कोंखकी वायुका अधोगति बन्द हो वही वायु हृदय और कण्ठ आदि उपरकी तरफ चढ़ता है; सुतरां हुचकी और डकार इस रोगमें अधिक होता है। दस्त कै के सिवाय विसूचिका रोगके अन्यान्य लक्षणभी इसरोगमें दिखाई देता है। खाया हुआ पदार्थ नीचे या उपर न जाकर अपक्कावस्थाहीमें आमाशयमें अलस भावसे रहता है; इसले इस रोगको अलसक कहते हैं। विलम्बिका रोगका लक्षण पृथक भावसे निर्द्दिष्ट नही है पर उक्त लक्षण सब अधिक प्रकाशित होनेसे उसको विलम्बिका कहते है। अलसकको अपेक्षा विलम्बिका रोग अधिक कष्टसाध्य है।

चिकित्सा।—अलसक और विलम्बिका दोनो रोगकी चिकित्सा एकही प्रकार है, दोनो रोगमें पहिले नमक मिला गरम पानीसे वमन करना। अथवा डहरकरञ्जका फल, नीमकी छाल, अपामार्गकी बीज, गुरिच, सफेद तुलसो और इन्द्रयव, इन सब द्रव्यका काढ़ा आकण्ठ पिलाना, इससे वमन होतेही अलसक

और विलम्बिका रोग आराम होता है उदराध्मान और पेटका दर्द शान्तिके लिये देवदारु, सफेद जौ, कूट, सोवा, हींग और सेंधा नमक काञ्जीमें पीसकर पेटपर लेप करना। जौका चूर्ण और जवाचार मट्ठामें पीसकर लेप करनेसे भी उपकार होता है। गरम काञ्जी बोतलमें भर अथवा उसमें उनी वस्त्र भिङ्गो निचोड़कर सेंकनेसेभी उदराध्मान और पेटका दर्द आराम होता है। हुचकी-के लिये केलाके जड़के रसको नास लेना। अथवा राई पीसकर गरदन और राढ़पर लेप करना। अग्निवर्द्धक और अजीर्ण नाशक औषध इस रोगमें विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—इस रोगके प्रथमावस्थामें उपवास कराना चाहिये। फिर क्षुधा और अग्नि बलके अनुसार लघु पथ्य देना। अन्यान्य सब नियम विसूचिका रोगकी तरह पालन करना चाहिये।

क्रिमिरोग।

प्रकार भेद।—क्रिमि दो प्रकार, आभ्यन्तर दोषजात और वहिर्म्मल जात। आभ्यन्तर क्रिमि तीन भागमें विभक्त है; पुरीषज, कफज, और रक्तज। अजीर्ण रहनेपर भोजन, सर्व्वदा मधुर और अम्ल रस भोजन, अतिशय पतला पदार्थ पीना, अपरिष्कृत जल पान, गुड़, पिष्टक, मांस, उरद और दही आदि द्रव्य अधिक भोजन, क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, व्यायाम शून्यता, दिवा निद्रा आदि कारणोंसे आभ्यन्तर क्रिमि उत्पन्न होता है। यह क्रिमि उत्पन्न होनेसे ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग,

अवसन्नता, भ्रम, आहारमें अनिच्छा, जीमचलाना, कै, मुहसे थूक अधिक आना, अजीर्ण, अरुचि, नासिका कण्डू, सोतेमें दांत पीसना, छींक आना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

पूरीषज क्रिमि लक्षण।—पूरीषज क्रिमि पक्काशयमें जन्मती है, यह अकसर नीचेही रहती है। कभी कभी आमाशयका तरफ भी उठती है। उपर उठने पर रोगीके निश्वासमें विष्ठाकी तरह बदबू आती है। पूरीषज क्रिमि नाना प्रकारकी होता है। सूक्ष्म, स्थूल, दीर्घ, गोल और श्याम, पीली, सफेद या काला आदि नाना प्रकार आकृतिगत विभिन्नता मालूम होता है। बहुतेरी धानके अङ्कुरकी तरह सूक्ष्म, बहुतेरी केचुवेकी तरह लम्बी और स्थूल, कई गोल, कीतनी चर्म्मलताकी तरह आकृतियुक्त नाना प्रकार पूरीषज क्रिमि होती है। तूम्बी बीजकी तरह और एक प्रकार क्रिमि है वह १२ हाथ तक लम्बी होती है। अतिरिक्त मांस भोजन, अथवा कच्चा मांस भोजन और अधिक शूकर मांस भोजन करनेसे प्राय: ऐसही क्रिमि उत्पन्न होता है। इसको वाहर निकलती वक्त खींचना पड़ता है। यही सब क्रिमि विसार्ग गामी होनेसे मलभेद, शूल, पेटकी स्तब्धता, शारीरिक कृशता; कर्कशता, पाण्डुवर्णता, रोमाञ्च, अग्निमान्द्य और गुदामें कण्डु आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

कफज क्रिमि लक्षण।—कफज क्रिमि आमाशयमें उत्पन्न हो, पेटके चारो तरफ फिरती है, इसकी भी आकृति पूरीषज क्रिमिकी भांति नाना प्रकार, और वर्ण भी वैसही बिभिन्न दिखाई देता है। कफज क्रिमि उत्पन्न होनेसे, जीमचलाना मुखसे पानी जाना, अजीर्ण, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, मलमूत्र रोध, कृशता, छींक, पीनस आदि लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

रक्तज क्रिमि।—रक्तज क्रिमि रक्तवाहिनी शिरायोंमें रहती है। चोर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य, भोजन, अजीर्णमें भोजन और शाकादि द्रव्य अधिक भोजन करनेसे रक्तज क्रिमि उत्पन्न होती हैं। यह सब क्रिमि अतिशय सूक्ष्म, पदशून्य, गोल और ताम्रवर्ण होती है।

बाह्य मलजात क्रिमि लक्षण।—बाह्य मलजात क्रिमि गात्रमल और पसीनेसे उत्पन्न होती है, अतएव अपरिच्छन्नता ही इसका मुख्य कारण है। इसकी आकृति और परिमाण तिलकी तरह, बाह्यक्रिमि यूक और लिख्य भेदसे दो प्रकार, यूक अर्थात् जूं नामक क्रिमि बहुपदयुक्त, कृष्णवर्ण और केश बहुल स्थानमें उत्पन्न होता है लिख्य सूक्ष्म श्वेतवर्ण और यह कपड़ेमें उत्पन्न होती है।

चिकित्सा।—आभ्यन्तर क्रिमि नाशके लिये घेंटका पत्ता अथवा अनारसके नरम पत्तेका रस थोड़ा सहत मिलाकर पीना। विड़ङ्ग चूर्ण एक आनाभर पानीके साथ अथवा विड़ङ्गका काढ़ा २ तोले पिलाना; विड़ङ्ग क्रिमि नाश करनेके हकमें अति श्रेष्ठ औषध है, खजूरके पत्तेका रस बासी कर पीनेसे अथवा खजूरके जड़की नरम गूदी खानेसे क्रिमि नष्ट होती है। पालिधा पत्रका रस, केउपत्रका रस, पालिधा शाकका रस, पलाश बीजका रस, अनारके जड़का काढ़ा आदि द्रव्य भी क्रिमिनाशक है। खुरासानी अजवाईन, सेंधा नमकके साथ सबेरे खानेसे क्रिमि रोग अजीर्ण और आमवात आराम होता है। तितलौकीका बीजका चूर्ण मट्ठा या कच्चे नारियलके पानीके साथ अथवा कमलागुड़ि चार आनेभर गुड़के साथ सेवन करना। सोमराजी आधा तोला एक छटांक पानीमें ५।६ घण्टा भिंगोकर वह पानी पीना। विड़ङ्ग,

सेंधा नमक, जवाखार कमलागुड़ो और हर्र मट्ठेमें पीसकर पिलाना। आधा पानी और आधी दहीके मट्ठेमें विड़ङ्ग, पीपलामूल, सैजन की बीज और गोल मिरचका यवागू बनाना फिर जवाखार मिलाकर पीना। उक्त औषध सब क्रिमिनाश करनेमें उत्तम है। इसके सिवाय पारसीयादि चूर्ण, मुस्तादि कषाय, क्रिमिमुद्गर रस, क्रिमिघ्न रस, विड़ङ्ग लौह, क्रिमिघातिनी वटिका, त्रिफलाद्य घृत, विड़ङ्ग घृतादि औषध प्रयोग करना। हमारी बनाई "क्रिमिघातिनी वटिका" सेवन करनेसे सब प्रकारका क्रिमिरोग आराम होता है।

वाह्य क्रिमि विनाशके लिये धूतूरेका पत्ता या पानके पत्तेके रसमें कर्पूर मिलाकर लेप करना, नालिताकी बीज कांजीमें पीस कर शिरमें लगानेसे केशकी क्रिमि दूर होती है। विड़ङ्ग तेल और धुस्तुर तैल वाह्य क्रिमिका उत्कृष्ट औषध।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका शुरुवा, परवर, करेला, गुल्लर आदिकी तरकारी, कांजी, बकरीका दूध; तिक्त, कषाय और कटुरसयुक्त द्रव्य और पाती या कागजी नीबूका रस इस रोगमें उपकारी है। दोनो वक्त भात न खाकर रातको साबूदाना, बार्लि एरारुट आदि हलका भोजन करना। कारण क्रिमि रोगमें जिसमें अजीर्ण न हो उसका ख्याल विशेष रखना चाहिये।

पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, मिष्ट द्रव्य, गुड़, उरद, दही, अधिक घृत, अधिक पतला पदार्थ और मांसादि द्रव्य भोजन तथा दिवानिद्रा और मलमूत्रका वेग रोकना विशेष अनिष्टकारक है।

—०—

पाण्डु और कामला।

निदान।—अतिरिक्त व्यायाम, मैथुन, अथवा अधिक अम्ल, लवण, मद्य, लाल मिरचा, राई आदि तीक्ष्णवीर्य्य और मिट्टी आदि द्रव्य खानेसे वातादि दोषत्रय रक्तको दूषित कर पाण्डु रोग उत्पन्न होता है। यह रोग प्रकाशित होनेसे पहिले त्वक फटा, मुखसे पानी गिरना, शरीर अवसन्न, मिट्टी खानेकी इच्छा, आंखके चारो तरफ शोथ, मल मूत्रका पीला होना और अपरिपाक आदि पूर्व्व-रूप प्रकाशित होता है। पाण्डुरोग पांच प्रकार। जैसे- वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मृत्तिकाभक्षण जात।

वातज, पित्तज और कफज पाण्डुरोग।—वातज पाण्डु रोगमें त्वक, मूत्र, चक्षु, काला या अरुण वर्ण और रुखा। शारीरिक कम्प, सूची विद्धवत् पीड़ा, आनाह और भ्रम आदि लक्षण होता है। पित्तज पाण्डु रोगमें सब देह विशेष कर मल, मूत्र, नख पीला और दाह, प्यास, ज्वर तथा थोड़ा थोड़ा मल आना आदि लक्षण होता है। कफज पाण्डु रोगमें त्वक, मूत्र, आंख और मुख सफेद, मुख और नाकसे रक्त-स्राव, शोथ, तन्द्रा, आलस्य, देहकी अत्यन्त गुरुता आदि लक्षण प्रकाशित होता है। सन्निपातज पाण्डु रोगमें उक्त वातादि पाण्डु रोगमें लक्षण सह मिले हुये मालूम होता है। सन्निपातज पाण्डु रोगमें ज्वर, अरुचि, जीमचलाना, वमन, प्यास, क्लान्ति और इन्द्रिय शक्तिका नाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य जानना। मृत्तिका भक्षण जात पाण्डु रोगमें खाई मिट्टीके

गुणानुसार कोई एक दोष कुपित हो वही आरम्भक होता है। कषाय रसयुक्त मिट्टी खानेसे वायु, क्षारयुक्त मिट्टीसे पित्त और मधुर रसयुक्त मिट्टीसे कफ कुपित हो पूर्व्वोक्त लक्षण समूहोंमें अपना अपना लक्षण प्रकाश करता है। जली हुई मिट्टी खानेसे उस मिट्टीके रुक्ष गुणके कारण रसादि धातु समूह और भुक्त अन्नभी रुक्ष होता है। तथा खाई हुई जली मिट्टी अजीर्ण अवस्थाहीमें रसवहादि स्रोत समूहोंको पूर्ण और रुद्धकर इन्द्रिय शक्ति, दीप्ति, वीर्य्य और ओज पदार्थका विनाशकर सहसा बल, वर्ण और अग्नि विनष्ट कर पाण्डु रोग उत्पन्न होता है। पाण्डु रोगीके पेटमें क्रिमि पैदा होनेसे, आंखके चारो तरफ, गाल, भौं, पैर नाभि, और लिङ्गमें शोथ तथा रक्त और कफमिश्रित दस्त होता है।

साध्यासाध्य लक्षण।—पाण्डु रोग बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे असाध्य हो जाता है। तथा जो पाण्डु रोगी शोथयुक्त हो, सब वस्तु पीली देखताहो तो वह पाण्डु रोग भी असाध्य जानना, अथवा पाण्डु रोगीका मल कठिन, थोड़ा हरा और कफयुक्त होनेसे भी असाध्य समझना।

सांघातिक लक्षण।—पाण्डु रोगीका शरीर यदि किसी सफेद पदार्थसे लिपटा हुआ मालूम हो और शारीरिक ग्लानि, वमन, मूर्च्छा, पिपासा आदि उपद्रव लक्षित हो तो उसकी मृत्यु होती है। रक्त क्षयके कारण जिसका शरीर एक दम सफेद हो गया हो उसके भी जीवनकी आशा कम है। अथवा जिस पाण्डु रोगीका दांत, नख, आंख पाण्डुवर्ण तथा सब वस्तु उसको पाण्डुवर्ण दिखाई दे तो उसकी भी मृत्यु निश्चय जानना। पाण्डु रोगीका हाथ, पैर, मुख फूला और मध्यभाग क्षीण होनेसे अथवा मध्यभाग फूला और हाथ पैर क्षीण होनेसे उसकी मृत्यु होती है।

जिस पाण्डु रोगीका गुदा, लिङ्ग और अण्डकोषमें शोथ, मूर्च्छा, ज्ञाननाश, अतिसार और ज्वर आदि उपद्रव उपस्थित होता है, उसकी भी मृत्यु होती है।

कामला रोगका निदान।—पाण्डु रोग उत्पन्न होनेके बाद अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेसे पित्त अधिकतर कुपित हो रक्त और मांसको दूषित करता है, इसीसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत् रोग पैदा होकर क्रमशः यह रोग उत्पन्न होते दिखाई देता है। पाण्डु रोगके जो सब निदान कह आये है, वही सब निदान और अतिरिक्त दिवा निद्रा आदि कारणोंसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत्से पित्त बाहर हो सब पाकस्थलीमें न जाकर थोड़ा अंश रक्तके साथ मिलता है। इसी रीतिसे कामला रोग सञ्चारित होता है।

लक्षण।—इस रोगमें पहिले केवल दोनो आखें पीली हो फिर त्वक, नख, मुख, मल, मूत्र प्रभृति समस्त शरीर बर्सातकी मेड़ककी तरह पीला होता है। किसीका मल मूत्र लाल रंगकाभी दिखाई देता है। इस रोगमें मल सफेद, कठिन, बदनमें खुजली, जोमचलाना, इन्द्रिय शक्तिका नाश, दाह, अपरिपाक, दुर्ब्बलता, अरुचि और अवसाद आदि लक्षण लक्षित होते है।

सांघातिक लक्षण।—कामला रोगमें अत्यन्त शोथ, मूर्च्छा, मुख और दोनो आखें लाल, मल मूत्र काला, पीला या लाल और दाह, अरुचि, पिपासा, आनाह; तन्द्रा, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य और संज्ञानाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

कुम्भकामला।—कामला रोग बहुत दिन तक शरीरमें रहनेसे पूर्व्वोक्त लक्षण समूह अधिकतर प्रकाश होनेपर उसको

कुम्भकामला कहते हैं। यह अवस्था स्वभावत: कष्टसाध्य है। विशेषत: इसमें अरुचि, वमन वेग, ज्वर, दोषज ग्लानि, श्वास, कास, और मलभेद आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा नही रहती है।

हलीमक।—पाण्डु या कामला रोग उत्पन्न होनेके बाद क्रमश: शरीरका रंग हरा, श्याव और पीला होनेसे तथा साथही बल और उत्साहका ह्रास, तन्द्रा, अग्निमान्द्य, मृदु ज्वर, स्त्री सहवासमें अनिच्छा, अङ्गवेदना, दाह, तृष्णा, अरुचि और भ्रम आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे उसको हलीमक रोग कहते हैं।

चिकित्सा और हमारी सरलभेदी वटिका।—जिस कार्य्यसे यकृत्‌की क्रिया सम्पूर्ण रूपसे होती रहे वैसही कार्य्य करनाही इस रोगकी चिकित्सा है। हमारी "सरलभेदी वटिका" रोज रातको सोती वक्त उचित मात्रासे खानेपर दस्त साफ हो यकृत्‌की क्रिया अच्छी तरह होती है और पाण्डु कामला आदिमें भी विशेष उपकार होता है। पाण्डु रोगमें हलदीका काढ़ा या कल्कके साथ औटाया हुआ घी, अथवा आंवला, बड़ी हर्र और बहेड़ा इस तीन द्रव्यका काढ़ा या कल्कके साथ पकाया घी किम्बा वातव्याधि प्रसङ्गका तिन्दुक घृत सेवन कराना उचित है। कोष्ठ बद्ध हो तो घीके साथ रेचक औषध मिलाकर सेवन कराना चाहिये। वातज पाण्डुरोगमें घी और चीनीके साथ त्रिफलाका काढ़ा पिलाना। पित्तज पाण्डुरोगमें २ तोले ५ मासे ४ रत्ती चीनीके साथ १० मासा ८ रत्ती त्रिवृत्‌का चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। कफज पाण्डुरोगमें बड़ी हर्र गोमूत्रमें भिंगोना फिर गोमूत्रमें मिलाकर सेवन कराना। अथवा गोमूत्रके साथ शोंठका चूर्ण ४ मासे और लौहभस्म १ मासा; किम्बा गोमूत्रके साथ

पीपलका चूर्ण ४ मासे और शोंठका चूर्ण ४ मासे ; अथवा गोमूत्रके साथ शोधित शिलाजीत २ मासे ; किम्बा घृतपिष्ट गुग्गुलु ८ मासे सेवन कराना। लौहचूर्णको ७ दिन गोमूत्रको भावना दे फिर दूधके साथ सेवन करानेसे भी कफज पाण्डुरोगमें विशेष उपकार होता है।

पाण्डुरोगमें शोथ चिकित्सा।—गुड़के साथ बड़ी हर्र रोज खानेसे सब प्रकारका पाण्डुरोग आराम होता है। लौह-चूर्ण, काली तिल, शोंठ, पीपल, गोलमरिच और बैरको गूदो हरिकका चूर्ण समभाग और सब चूर्णके समान स्वर्णमाक्षिक चूर्ण मिला सहतके साथ मोदक बनाना। यह मोदक मट्ठेके साथ सेवन करानेसे अति कठिन पाण्डुरोग भी आराम होता है। पाण्डु-रोगीको शोथ हो तो मण्डुर सात बार आगमें गरमकर गोमूत्रमें बुताना, फिर वही शोधित मण्डुरका चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर अन्नके साथ सेवन करानेसे पाण्डु और शोथ आराम हो भूख बढ़ती है।

कामला चिकित्सा।—कामला रोगमें गुरिचका पत्ता पीसकर मट्ठेके साथ पीना। गोदुधमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। हलदीका चूर्ण १ तोला ८ तोले दहीके साथ सवेरे सेवन कराना। त्रिफला, गुरिच, दारुहलदी और नीमकी छालका रस सहतके साथ रोज सवेरे पीना। लौहचूर्ण, शोंठ, पीपल, गुरिच और विड़ङ्ग चूर्ण ; अथवा हलदी, आंवला, बड़ा हर्र और बहेड़ेका चूर्ण सेवन कराना। सहस्रपुटित या पांच सौ बार पुटित लौहचूर्ण सहत और घीके साथ सेवन कराना। वही लौहचूर्ण हरीतकी और हलदीका चूर्ण, घी और सहतके साथ अथवा हरीतकी चूर्ण गुड़ और सहतके साथ सेवन कराना। लौहचूर्ण, आंवला, शोंठ, पीपल, गोलमरिच

और हलदीका चूर्ण घी, सहत और चीनीके साथ सेवन करानेसे भी कामला रोग आराम होता है।

कुम्भकामला और हलीमक चिकित्सा।—कुम्भ कामला और हलीमक रोगमें पाण्डु और कामला रोगकी तरह चिकित्सा करना। विशेषतः कुम्भकामलामें बहेड़ाके लकड़ीकी आंचमें मण्डुर गरम कर क्रमशः ८ बार गोमूत्रमें बुताना; फिर मण्डुर चूर्ण सहतके साथ चटाना; और हलीमक रोगमें जारित लौहचूर्ण, खैरका काढ़ा और सोंठके चूर्णके साथ चटाना। कुटकी, बरियारा, जेठीमध, आंवला, बहेड़ा, हलदी और दारहलदीका समभाग चूर्ण सहत और चीनीके साथ चटानेसे भी हलीमक रोग आराम होता है। फलत्रिकादिकषाय, वासादि कषाय, नवायस लौह, त्रिकत्रयाद्य लौह, धात्रीलौह, अष्टादशाङ्ग लौह, पूनर्नवादि मण्डुर, पञ्चानन रस और हरिद्राद्य घृत, व्योषाद्य घृत तथा पुनर्नवा तैल विवेचना पूर्व्वक पाण्डु, कामला, कुम्भकामला, और हलीमक रोगमें प्रयोग करना।

चक्षुद्वयका पीलापन दूर करनेके लिये द्रोणपुष्पके पत्तेका रस आंखमें देना, अथवा हलदी गेरूमिट्टी और आंवलेका चूर्ण सहतके साथ मिलाकर आंखमें लगाना। कांकरोलके जड़का रस या घृतकुमारीका रस, अथवा पीत घोषाफल पानीमें घिसकर नास लेनेसे भी आंखे साफ होती है।

पथ्यापथ्य।—उक्त रोगोंमें जीर्ण ज्वर और यकृत् रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। किसी प्रकारका उत्तेजक पानाहार सेवन नही करना।

रक्त-पित्त।

—:०:—

निदान।—अग्नि और आतप आदि सेवन, व्यायाम, शोक, पथ पर्य्यटन, मैथुन और गोलमरिच आदि तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य आहार, लवण और कटुरसयुक्त द्रव्य अधिक भोजन करनेसे पित्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होता। स्त्रियोंका रजोरोध होनेसे भी यह रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। इस रोगमें मुख, नासिका, चक्षु और कान यह ऊर्द्ध्वमार्ग और गुदा, योनि और लिङ्ग अधोमार्गसे रक्तस्राव होता है। पीड़ाको वृद्धिमें समस्त रोमकूपसे भी रक्तस्राव दिखाई देता है।

दोषभेदसे पूर्व्व लक्षण।—रक्तपित्त रोग उत्पन्न होनेसे पहिले शारीरिक अवसन्नता, शीतल द्रव्यपर अभिलाष, कण्ठसे धूमनिकलनेकी तरह अनुभव, वमन और निश्वासमें रक्त या लोहेके गन्धकी तरह गन्ध आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होता है। रोग उत्पन्न होनेपर वातादि दोषके आधिक्यानुसार पृथक पृथक लक्षण प्रकाश होता है। रक्तपित्तमें वायुका आधिक्य रहनेसे रक्त श्याव या अरुणवर्ण, फेनिला, पतला और रूखा होता है और इसी रक्तपित्त रोगमें गुदा, योनि या लिङ्ग इन्हो सब अधोभागोंसे रक्त निकलता है। पित्तके आधिक्यमें रक्त वटादि छालके काढ़ेकी तरह रङ्ग, काला, गोमूत्रकी तरह चिकना, कृष्णवर्ण, जालेके रङ्गकी तरह अथवा सौवीराञ्जनकी तरह वर्णबिशिष्ट होता है। कफके आधिक्यसे खून गाढ़ा, थोड़ा पाण्डुवर्ण, थोड़ा चिकना और

पिच्छिल होता है, तथा मुख, नाक, आंख और कान इन सब ऊर्द्ध मार्गोंसे रक्तस्राव होता है। केवल इसी दोषका या तीनों दोषका आधिक्य रहनेसे, उसी दो दोष या तीन दोषके लक्षण मिले हुये मालूम होते है। द्विदोषज रक्तपित्तमें वात कफके रक्तपित्तसे ऊर्द्ध और अधः उभय मार्गोंसे रक्त निकलता है।

साध्यासाध्य।—उक्त रक्तपित्तमें जो रक्तपित्त ऊर्द्ध मार्गगत अर्थात् मुख, नासिका आदिसे निकलता है या वेग कम, उपद्रव शून्य, तथा हेमन्त और शीतकालमें प्रकाशित हो उसको साध्य जानना। जो रक्तपित्त अधोमार्गगत अर्थात् गुदा, योनि, और लिङ्गसे रक्तस्राव तथा दो दोषसे उत्पन्न होता है, वह याप्य और जिस रक्तपित्तमें ऊर्द्ध और अधो दोनो मार्गसे रक्तस्राव होता है अथवा तीनो दोषका रक्तपित्त असाध्य है। रोगी वृद्ध, मन्दाग्नि आहार-शक्तिहीन या अन्यान्य व्याधियुक्त होनेसे भी रक्तपित्त असाध्य जानना।

उपसर्ग।—दुर्ब्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, मत्तता, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, खाया हुआ पदार्थका अम्लपाक, सर्व्वदा अधैर्य्य, हृदय वेदना, प्यास, मलभेद, मस्तकमें दाह, शरीरसे सड़ी दुर्गन्ध आना, आहारसे अनिच्छा, अजीर्ण और रक्तमें सड़ी बदबू, रक्तका रङ्ग मांसधोये पानीकी तरह, या कर्द्दमवत् भेद, पीप, यकृत् खण्ड, पक्का जामुनकी तरह काला किम्वा इन्द्रधनुकी तरह नाना रङ्ग होना, यही रक्तपित्तका उपसर्ग है। इन सब उपसर्गयुक्त रक्तपित्तसे रोगीकी मृत्यु होती है। जिस रक्तपित्तमें रोगीकी आंखे लाल और जो रोगी अपने उद्गारमें लाल देखता है अथवा सब पदार्थ लाल दिखाई देता है, किम्वा अधिक परिमाण रक्त वमन होती उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

अवस्था भेदसे चिकित्सा।—रोगी बलवान हो तो रक्तस्राव बन्द करना उचित नही है। कारण वही दूषित रक्त देह में रुद्ध हो रहनेसे पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वर आदि नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। किन्तु रोगी दुर्ब्बल, अथवा अतिरिक्त रक्तस्रावसे जिसके अनिष्टको आशङ्का है, उसका रक्त बन्द करनाही उचित है। दूबका रस, अनारके फूलका रस, गोबर या घोड़ेकी लीदका रस, चीनी मिलाकर पीनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। अड़ूसेके पत्तेका रस, गुल्लरके फलका रस और लाह भिंगोया पानी पीनेसेभी रक्तस्राव बन्द होता है। एक आनाभर फिटकिरीका चूर्ण दूधमें मिलाकर पीनेसे रक्तस्राव तुरन्त बन्द होता है। रक्तातिसार और रक्तार्श निवारक अन्यान्य योग समूह भी इस रोगमें विचार कर प्रयोग कर सकते हैं। नाकसे रक्तस्राव हो तो, आंवला घीमें भूंजकर कांजीसे पीस मस्तक पर लेप करना। चीनी मिलाया दूधको नास अथवा दूर्व्वाका रस, अनारके फूलका रस, पियाजका रस, गोबर या घोडेकी लीदका रस, महावरका पानी या हरीतकी भिंगोया पानीका नास लेना। कानसे रक्तस्राव हो तो यही सब औषध कानमें छोड़ना। मूत्र मार्गसे रक्तस्राव हो तो काश, शर, काला ऊख और कण्डेकी जड़ सब मिलाकर २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले १ सेर पानीके साथ औटाना, दूध शेष रहने पर नीचे उतार कर पीना। शतमूली और गोक्षुरके साथ अथवा शरिवन, पिठवन, मुगानि और माषानिके साथ दूध पकाकर पिलाना। योनिसे रक्तस्राव हो तो यही सब औषध और प्रदर रोगोक्त अन्यान्य औषधभी विचार कर देना। लाल चन्दन, बेलकी गूदी, अतीस, कुरैयाकी छाल और बबूलका गोंद सब २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले, एक सेर पानीमें औटाना

दूध बाकी रहने पर उतार छानकर पीनेसे गुदा, योनि और लिङ्गसे रक्तस्राव जल्दी आराम होता है। किसमिस, लाल चन्दन, लोध और प्रियङ्गु सबका चूर्ण अडूसेके पत्तेका रस और सहतके साथ पीनेसे मुख नासिका गुदा, योनि और लिङ्गसे निकलता हुआ खून तुरन्त बन्द होता है। रक्तकी गांठ गिरनेसे कबूतरका बीट अति अल्प मात्रा सहतके साथ चाटना। इसके सिवाय धान्यकादि हिम, ह्रीवेरादि क्वाथ आरुषकादिक्वाथ, एलादि गुड़िका, कुष्माण्ड खण्ड, वासाकुष्माण्ड, खण्डकाद्य लौह, रक्तपित्तान्तक लौह, वासा-घृत, सप्तप्रस्थ घृत और ह्रीवेराद्य तेल विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना।

रक्तपित्तज ज्वर चिकित्सा।—रक्तपित्तमें ज्वर रहनेसे लाल त्रिवृत, काला त्रिवृत, आंवला, बड़ी हर्र, बहेड़ा और पीपलका चूर्ण प्रत्येकके समभागकी दूनी चीनी और सहत मिला मोदक बनाना, इस मोदकसे रक्तपित्त और ज्वर दोनोंकी शान्ति होती है। इसके सिवाय रक्तपित्त नाशक और ज्वर नाशक यह दोनो औषध मिलित भावसे इस अवस्थामें प्रयोग करना। श्वास, कास, स्वरभङ्ग आदि अन्यान्य उपद्रव उपस्थित होनेसे राजयक्ष्मा की तरह चिकित्सा करना। अडूसेके पत्तेके रसमें तालीश पत्रका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे श्वास, कास और स्वरभङ्गमें उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—ऊर्द्धग रक्तपित्तमें रोगीका बल, मांस और अग्निबल क्षीण न होनेसे पहिले उपवास कराना उचित है। किम्वा बलादि क्षीण होनेसे तृप्तिकर आहारादि देना चाहिये। घी सहत और धानके लावाका खाद्य बनाकर खानेको देना। अथवा पिण्ड खर्जूर, किसमिस, जेठीमध और फालसा इसका काढ़ा ठण्ढाकर

चीनी मिलाकर पिलाना। अधोगत रक्तपित्तमें तर्पिकर पेयादि पीनेको देना। शालिवन, पिठवन, बृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह स्वल्प पञ्चमूलकी काढ़ेके साथ पेया बनाकर पीनेसे रक्तपित्तमें विशेष उपकार होता है। अतिरिक्त रक्तस्राव बन्द होनेसे और अन्नादि पचानेको ताकत होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मूंग मसूर और चनेकी दालका जूस, परवल, गुल्लर, पक्का सफेद कोहड़ा और कचलेकी तरकारी, छाग, हरिण, खरगोश, कबूतर, बटेर और बगुलेके मांसका रस, बकरीका दूध, खजूर अनार सिङ्घाड़ा, किसमिस, आंवला मिश्री नारियल, तिल तेल या घृत पक्क वस्तु इस रोगमें आहार कराना। रातको गेहूं या जौके आटे-की रोटी या पूरी और पूर्व्वोक्त तरकारी। सूजी, चनेका वेसन, घी और कम मोठेका बनाया पदार्थ खानेको देना। गरम पानी ठण्ढाकर पिलाना।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक तीक्ष्णवीर्य्य और रूक्ष द्रव्य समूह, दही, मछली, अधिक सारक पदार्थ, सरसोंका तेल, लाल मिरचा, अधिक नमक, सेम, आलु, शाक, खट्टा, उरदको दाल और पान आदि खाना; मल मूत्रको वेग धारण, दतुवनसे मुह धोना, व्यायाम, पथ पर्य्यटन, धूमपान, धूलि और धूपमें बैठना, ओस लगाना, रातका जागना, स्नान, सङ्गीत या जोरसे बोलना, मैथुन, अश्वादि सवारीमें चढ़ना आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है। स्नान न करनेसे विशेष कष्ट हो तो गरम पानी ठंढा होनेपर किसी किसी दिन स्नान करना उचित है।

——०——

राजयक्ष्मा और क्षतक्षीण ।

निदान ।---मल मूत्रादिका वेग धारण, अतिरिक्त उपवास, अति मैथुन आदि धातुक्षय कारक कार्य्योंसे तथा बलवान मनुष्यसे कुश्ती लड़ना और किसी दिन कम किसी दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन करना आदि कारणोंसे राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। रक्तपित्त पीड़ा बहुत दिनतक बिना चिकित्साके रहनेसे भी क्रमशः राजयक्ष्मा रोगमें परिणत होते दिखाई देता है। वायु, पित्त, कफ, यह तीन दोष जब कुपित हो रसवाही शिराओंको रुद्ध करता हैं, तब उससे क्रमशः रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र क्षीण होता है। कारण रसही सब धातुओंका सृष्टिकर्त्ता है। उसी रसकी गति रुद्ध होनेसे किसी धातुकी पोषण नही हो सकता। अथवा अतिरिक्त मैथुनसे शुक्रक्षय होनेपर उसकी क्षीणता पूर्ण करनेके लिये भी अन्यान्य धातु क्रमशः क्षयको प्राप्त होता है। इसीको क्षयरोग या राजयक्ष्मा कहते है।

पूर्व्वलक्षण ।—यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले, श्वास, अङ्गमें दर्द, कफ निष्ठीवन, तालुशोष, कै, अग्निमान्द्य, मत्तता, पीनस, कास, निद्राधिक्य, आंखोंका सफेद होना, मांस भक्षण और मैथुनकी इच्छा आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है, तथा इस रोगमें रोगी यही स्वप्न देखता है कि मानो पक्षी, पतङ्ग और श्वापद जन्तु उनको आक्रमण कर रहे हैं। केश, भस्म और हड्डी (अस्थि), स्तूपके उपर वह खड़ा है, जलाशय सूख गया है, पर्व्वत टूट पड़ा है और आकाशके तारे सब गिर रहे है।

पूर्व लक्षण—रोग प्रकाशित होनेपर प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वद्वयका सङ्कोच और दर्द, रक्त वमन, और मलभेद यही सब लक्षण लक्षित होता है। वाताधिक्यसे इसमें स्वर-भङ्ग, कन्धा और दोनो पसुलियोंका सङ्कोच या दर्द होता हैं। पित्ताधिक्यसे ज्वर, सन्ताप, अतिसार और निष्ठीवन तथा शिरो-वेदना, अरुचि, कास, प्रतिश्याय और अङ्गमर्द कफाधिक्यका लक्षण है। जिसको जिस दोषका आधिक्य रहता है, उसको उन्ही सब लक्षणोंमें उसी दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—क्षय, यक्ष्मारोग साधारणत: दु:साध्य है, रोगीका बल और मांसक्षीण न होनेसे, उक्त प्रतिश्याय आदि एकादश रूप प्रकाशित होनेपर भी आरोग्य होनेका आशा कर सकते है, पर यदि बल मांस क्षीण हो जाय और उक्त एका-दशरूप प्रकाशित न हो, कास, अतिसार, पार्श्ववेदना, स्वरभङ्ग, अरुचि और ज्वर यह छ लक्षण दिखाई दे अथवा श्वास, कास और रक्त निष्ठीवन यही तीन दोष प्रकाशित होय तो रोग असाध्य जानना।

सांघातिक लक्षण।—यक्ष्मा रोगी प्रचुर आहार करने परभी क्षीण होता जाय अथवा अतिसार उपद्रवयुक्त हो किम्बा अण्डकोष और पेटमें शोथ हो तो उसको असाध्य समझना। दोनो आंखे सफेद, अन्नसे द्वेष, ऊर्द्ध श्वास, कष्टसे शुक्र जाना इससें कोई एक उपद्रव यक्ष्मा रोगीको होनेसे मृत्यु लक्षण जानना।

उर:क्षत निदान।—गुरुभार वहन, बलवानसे कुश्ती लड़ना, ऊंचे स्थानसे गिरना ; गौ, अश्वादि जन्तु दौड़ते वक्त उसके गतिको जोरसे रोकना, पत्थर आदि पदार्थको जोरसे दूर फेकना, तेजोसे बहुत दूर तक चलना, ऊंचो आवाजसे पढ़ना, अधिक

तैरना और कूदना आदि कठोर कार्य्योंसे और अतिरिक्त स्त्री सहवाससे भी छातीमें घाव होता है। उक्त कार्य्योंके साथ सर्व्वदा अधिक और कम आहार करनेवालेको भी छातीमें घाव होनेकी अधिक सम्भावना है। इन्ही सब कारणोंसे छातीमें घाव होनेसे उसको उरःक्षत रोग कहते है। इस रोगमें वक्षस्थल विदीर्ण या टूटकर गिर पड़नेकी तरह मालूम होना तथा दोनो पसुलियोंमें दर्द, अङ्गशोष और कम्प होता है। फिर क्रमशः बल, वीर्य्य, वर्ण, रुचि, अग्निहीनता, ज्वर, कष्ट, मन उदास, मलभेद, खांसीके साथ सड़ी दुर्गन्ध, श्याम या पीला, गठीला और रक्तमिला कफ सर्व्वदा बहुत निकलता रहता है। अतिरिक्त कफ और रक्त वमनसे भी क्रमशः शुक्र और ओज क्षीण हो रक्तस्राव और पार्श्व, पृष्ठ, कमरमें दर्द होता है। उरःक्षत रोगभी राजयक्ष्माका अन्तर्भूत है। जबतक इसके सब लक्षण प्रकाशित न हो तथा रोगीका बल, वर्ण सम्यक् वर्त्तमान रहे और रोग पुराना न हो तभीतक यह साध्य है। एक वर्षका पुराना रोग याप्य, और समस्त रूप प्रकाश होनेसे असाध्य होता है।

क्षीणरोग लक्षण।—यही उरःक्षत रोग और अतिरिक्त मैथुन, शोक, व्यायाम और पैदल चलना आदि कारणोंसे शुक्र, ओज और बल वर्णादि क्षीण होनेसे उसको क्षीणरोग कहते है। रोज यक्ष्माके साथ इसको चिकित्सामें कोई प्रभेद नही है इससे एक साथही सन्निवेशित किया गया है।

चिकित्सा।—राजयक्ष्माकी चिकित्सा करना अत्यन्त कठिन है। बल और मलको इस रोगमें सर्व्वदा रक्षा करना चाहिये। इसीसे विरेचनादि इस रोगमें न करनाही उचित है। पर मल एक दम बद्ध होनेसे मृदु विरेचन देना। छाग मांस भक्षण,

छाग दूध पान, चीनीके साथ छाग घृत पान, छाग और हरिण गोदमें लेना और बिछौनेके पास छाग या हरिण रखना यक्ष्मा रोगीके हकमें विशेष उपकारी है। रोगी दुर्ब्बल होनेसे चीनी और सहतके साथ मक्खन खानेको देना। मस्तक, पार्श्व या कंधेमें दर्द हो तो सोवा, जेठीमध, कूठ, तगरपादुका और सफेद चन्दन एकत्र पीसकर घी मिला गरम कर लेप करनेसे दर्द शान्त होता है। अथवा बरियारा, रास्ना, तिल, जेठीमध, नीला कमल और घृत, अथवा गुग्गुलु, देवदारु, सफेद चन्दन, नागकेशर और घृत किम्बा चीरकाकोली, बरियारा, विदारीकन्द, एलबालुका और पुनर्नवा यह पाचों द्रव्य किम्बा शतमूली, चीरकाकोली, गन्धतृण, जेठीमध और घृत यह सब द्रव्य पीसकर गरम लेप करनेसे मस्तक पार्श्व और कन्धेका दर्द आराम होता है। रक्त वमनके लिये महावरका पानी २ तोले आधा तोला सहतके साथ या कुकुरसोंकेका रस २ तोले पिलाना। रक्तपित्तमें जो सब योग और औषध रक्त वमन निवारणके लिये कह आये है, उसमें जो सब क्रिया ज्वरादिकी अविरोधी है वह भी प्रयोग कर सकते है। पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास और पीनस आदि उपद्रवमें धनिया, पीपल, शोंठ, सरिवन, कण्टकारी, वृहती, गोक्षुर, बेलकी छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी, पाटला छाल, और गनियारीकी छाल; इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलाना। ज्वर, कास, स्वरभङ्ग और रक्तपित्त आदि रोग समूहोंकी औषधें लक्षनानुसार विचार कर इस रोगमें मिलित भावसे प्रयोग कर सकते है। इसके सिवाय लवङ्गादि चूर्ण, सितोपलादि लेह, वृहद्वासावलेह, च्यवनप्राश, द्राक्षारिष्ट, वृहत् चन्द्रामृत रस, चयकेशरी, मृगाङ्क रस, महा मृगाङ्क रस, हेमगर्भपोट्टली रस, राजमृगाङ्क रस, काञ्चनाभ्र, वृहत्

काञ्चनाभ्र, रसेन्द्र और वृहत् रसेन्द्र गुड़िका, रत्नगर्भ पोट्टली रस, सर्व्वाङ्गसुन्दर रस, अजापञ्चक घृत, बलागर्भ घृत, जीवन्त्याद्य घृत, और महाचन्दनादि तेल यक्ष्मा रोगके प्रशस्त औषध है। हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करानेसे कास, श्वास और छातीका दर्द आदि उपद्रव जल्दी आराम होता है। रक्त वमन हो तो कस्तुरी संयुक्त कोई औषध प्रयोग करना उचित नही है। ज्वर हो तो घृत और तेल प्रयोग नही करना चाहिये।

उरःक्षत रोगमें यही सब औषध विचार कर प्रयोग करना। क्षीण रोगमें जिस धातुकी क्षीणता अनुभव हो, उसी धातुका पुष्टि-कारक पान भोजन और औषध व्यवहार करना चाहिये। अमृत-प्राश और श्वदंष्ट्रादि घृत आदि पुष्टिकारक औषध क्षीण रोगमें प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य ।—रोगीका अग्निबल क्षीण न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूंगकी दाल, छाग, हरिण, कबूतर और मांसभोजी जीवका मांस, परवर, वेगन, गुल्लर, सजन-का डण्टा, पुराना सफेद कोंहड़ा आदिकी तरकारी खानेको देना। तरकारी आदि घृत और सेंधा नमकसे सिद्धकर देना चाहिये। रातको जौ या गेहूंके आटेकी रोटी, मोहनभोग, और उपर कही तरकारी, छाग दूध अथवा थोड़ा गोदूध देना। कफके प्रकोपमें दिनको भात न दे रोटी खानेको देना। अग्नि बल क्षीण होनेसे दिनको भात या रोटी और रातको थोड़ा दूध मिला सागु, एरारुट और बार्लि आदि खानेको देना। यहभी अच्छी तरह जीर्ण न होनेसे दोनो वक्त सागु आदि हलका पथ्य देना। इस अवस्थामें जौ दो तोले, कुलथी २ तोले, छाग मांस ८ तोले, पानी ९६ तोले एकत्र औटाना २४ तोले रहते उतार कर छान लेना।

फिर २ तोले गरम घीसे उस काढ़ेकी छौंक कर थोड़ा हींग, पीपलका चूर्ण और सोंठका चूर्ण मिलाकर थोड़ी देर औटालेना, फिर अनारका रस थोड़ा मिलाकर पिलाना। यह जूस यक्ष्मा रोगमें विशेष हितजनक और पुष्टिकारक है। गरम पानी ठण्ढाकर पिलाना। इस रोगमें शरीर सर्व्वदा कपड़ेसे ढका रखना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—ओसमें बैठना, आग तापना, रातको जागना, सङ्गीत, चिल्लाकर बोलना, घोड़ा आदिकी सवारी पर चढ़ना, मैथुन, मलमूत्रका वेग रोकना, कसरत, पैदल चलना, श्रमजनक कार्य्य करना, धूमपान, स्नान और मछली, दही, लाल मिरचा, अधिक लवण, सेम, मूली, आलु, उरद, शाक, अधिक हींग, पिआज, लहसन, आदि द्रव्य भोजन इस रोगमें अनिष्ट कारक है। शुक्रक्षयसे हुई पीड़ामें विशेष सावधान रहना चाहिये। जिस कामसे मनमें कामवेग उपस्थित होनेकी सम्भावना हो, उससे हर वक्त अलग रहना।

—०—

कासरोग।

—:०:—

निदान और लक्षण।—मुख या नाकसे धूम या धूलि प्रवेश, वायुसे अपक्व रसकी ऊर्द्ध गति, अति द्रुत भोजन करना आदिसे श्वासनलीमें भुक्तद्रव्यका प्रवेश; मल, मूत्र और छींकका

वेग रोकना आदि कारणोंसे वायु कुपित हो, पित्त कफको कुपित करनेसे कास रोग उत्पन्न होता है। कांसेके बरतनसे चोट लगनेसे जैसी आवाज होती है मुखसे वैसही शब्द निकलना कास रोगका साधारण लक्षण है। कासरोग उत्पन्न होनेसे पहिले मुख और कण्ठनाली जो आदिके छिलकेसे भरा मालूम होना, गलेके भीतर खुजलाहट और कोई पदार्थ निगलती वक्त कण्ठमें दर्द मालूम होता है। कासरोग पांच प्रकार।—जैसे—वातज, पित्तज, कफज, उरःक्षतज और क्षयजात।

वात, पित्त और कफज कास लक्षण।—वातज कासमें हृदय, ललाट, पार्श्वद्वय, उदर और मस्तकमें शूलवत् वेदना, मुख सूखना, बलक्षय, सर्व्वदा कास वेग, स्वरभङ्ग और कफादि शून्य शुष्क कास, यही सब लक्षण लक्षित होता है। पित्तज कासमें छातीमें दाह, ज्वर, मुख शोष, मुखका स्वाद कड़वा होना, पिपासा, पीतवर्ण और कटुस्वादयुक्त वमन, देहको पाण्डुवर्णता और कासके वक्त कण्ठमें दाह, यह सब लक्षण प्रकाशित होता है। कफज कासमें रोगीका मुख कफसे लिपटा, देह अवसन्न, शिरोवेदना, सर्व्व शरीरमें कफ पूर्णता, आहारमें अनिच्छा, देहका भारीपन, कण्डु, निरन्तर कास वेग और कासके साथ गाढ़ा कफ निकलना, यही सब लक्षण दिखाई देता है।

क्षयज कास निदान और लक्षण।—उरःक्षत रोगमें जो सब कारण लिख आये है, क्षयज कासभी उन्ही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसमें पहिले कफहीन शुष्क कास होता है, फिर कास वेगसे क्षतस्थान विदीर्ण हो खून जाना, कण्ठमें अत्यन्त दर्द, छाती तोड़नेकी तरह दर्द तीक्ष्ण सूची विद्धवत् कष्ट और असह्य क्लेश; पार्श्वद्वय भङ्गवत् शूलवेदना, सन्धिस्थान

समूहोंमें दर्द, ज्वर, श्वास, तृष्णा, स्वरभङ्ग और खोखनेके समय कबूतरके शब्दकी तरह कण्ठस्वर होना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

क्षयज कासका निदान और लक्षण।—अपथ्य भोजन, विषम अर्थात् किसी दिन कम, किसी दिन अधिक अथवा अनिर्द्दिष्ट समयमें भोजन, अति मैथुन, मल मूत्रादिका वेग धारण और आहारके अभावसे अपनेको धिक्कार देना वा तज्जन्य शोकाभिभूत होना आदि कारणोंसे पाचकाग्नि दूषित होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो क्षयज कास उत्पन्न होता है। इससे बदनमें दर्द, दाह, मूर्च्छा, क्रमशः देहकी शुष्कता दुर्बलता, बलक्षीण मांसक्षीण और खांसीके साथ पीप रक्तका निकलना आदि लक्षण दिखाई देता हैं।

प्रतिश्यायज कास।—उक्त कारणोंके सिवाय प्रतिश्याय अर्थात् "सर्दी"से भी अकसर कास रोग उत्पन्न होते देखा गया है। नासारोगाधिकारमें प्रतिश्यायके लक्षण और चिकित्सा लिखेंगे। तथापि यहां इतना अवश्य कहना चाहिये कि सामान्य सर्दी खांसीको भी उपेक्षा न कर उसकी चिकित्सा करना उचित है।

कासरोगकी साध्यासाध्यता।—क्षतज और क्षयज कास स्वभावतः ही असाध्य है। पर रोगीका बल, और मांस क्षीण न होनेसे तथा रोग थोड़े दिनका होतो आराम होनेकी आशा है। बुढ़ापेमें जो कास उत्पन्न होता है वह भी असाध्य है, पर औषधादि व्यवहारसे याप्य होजाता है। दूसरा कोई कास साध्य नही है; सुतरां रोग उत्पन्न होते ही चिकित्सामें मनोयोगी होना चाहिये।

चिकित्सा।—वातज कासमें बेलकी छाल, श्योनाककी छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल और गनियारीकी छाल, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। शठी, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, बभनेठी, मोथा, जवासा और पुराना गुड़, अथवा शोंठ, जवासा, काकड़ाशिङ्गी, मुनक्का, शठी और चीनी किम्वा बभनेठी, शठी, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, शोंठ और पुराना गुड़, यह तीन प्रकारके योगोंमेंसे कोई एक योग तिलके तेलमें मिलाकर चाटनेसे वातज कास आराम होता है। पित्तज कासमें वृहती, कण्टकारी, किसमिस, अडूसा, कर्पूर, बाला, शोंठ और पीपल इन सबका काढ़ा चीनी और सहत मिलाकर पिलाना। वृहती, बाला, कण्टकारी, अडूसा और द्राचा; इन सबके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसेभी पित्तज कास उपशम होता है। पद्मबीजका चूर्ण सहतके साथ चाटनेसे पित्तज कास शान्त होता है। कफज कासमें पीपल, पीपला मूल और चाभ, चितामूल और शोंठ, इसका काढ़ा दूधमें औटाकर पिलाना। इससे कास, श्वास और ज्वरका उपशम हो बल और अग्निकी वृद्धि होती है। कूठ कटफल, बभनेठी शोंठ और पीपल इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीनेसे कफज कास, श्वास और हृद्रोग आराम होता है। सहत और आदीका रस चाटनेसे भी कास श्वास और सर्दी खांसी आराम होता है। दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे भी कफज कास, ज्वर और पार्श्ववेदना दूर होता है। क्षयज कासमें, इक्षु, इक्षुवालिका, पद्मकाष्ठ, मृणाल, नीलकमल, सफेद चन्दन, जेठीमध, द्राचा, लाचा, काकड़ाशिङ्गी और दशमूली सबका समभाग लेना फिर कोई एक वस्तुका दूना वंशलोचन और सर्व्व समष्टिकी चौगूनी चीनी, वह सब द्रव्य एकत्र मिला घी और

सहतमें मिलाकर चाटना। क्षयज कासमें अर्ज्जुन वृक्षके छालके चूर्णको अडूसेके रसको ७ बार भावना दे सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटनेसे क्षयज कासका रक्तस्राव बन्द होता है।

शास्त्रीय औषध।—पीपलके चूर्णके साथ कण्टकारीका काढ़ा पीनेसे अथवा कण्टकारीका चूर्ण और पीपलका चूर्ण समभाग सहतमें मिलाकर चाटनेसे सबप्रकारका कास आराम होता है। वहेड़ामें घी लगाकर गोबरसे लपेट पूट पाकमें सिजाना फिर वही बहेड़ा मुखमें रखनेसे कास रोग आराम होता है। अडूसेका पत्ता पुटमें दग्धकर अर्थात् अडूसेके पत्तेको केलेके पत्तेसे लपेटना फिर कपड़मिट्टीकर सिजाना इस पत्तेका रस, पीपलका चूर्ण और सहतके साथ पिलाना। अथवा अडूसेके छालका काढ़ा पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। यह दोनो दवा कास निवारक है। जेठीमधका काढ़ा सामान्य खांसीमें विशेष उपकारी है। कटफलादि काढ़ा, मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, वासावलेह, तालीशाद्य मोदक, चन्द्रामृत रस, कासकुठार रस, वृहत् रसेन्द्र-गुड़िका, शृङ्गाराभ्र, वृहत् शृङ्गाराभ्र; सार्व्वभौम रस, कासलक्ष्मी-विलास, समशर्कर लौह, वसन्ततिलक रस, वृहत् कण्टकारी घृत, दशमूल षटपलक घृत, चन्दनाद्य तैल, वृहत् चन्दनाद्य तैल कास रोगके प्रशस्त औषध है। अवस्थानुसार उक्त औषध देनेसे अति सुन्दर फल मिलता है। हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करनेसे दुरा-रोग्य खांसी भी थोड़ेही दिनमें आराम होता है।

पथ्यापथ्य—रक्तपित्त राजयक्ष्मारोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, कास रोगमें भी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। पर इस रोगकी प्रथम अवस्थामें कवई, मागुर आदि छोटी मछलीका शुरुवा, मिश्री और काकमाचीको शाक खानेको देना।

हिक्का और श्वास निदान ।

हिक्का और श्वास निदान ।—खाया हुया पदार्थ उपयुक्त समयमें हजम न हो पेटमें स्तब्ध होकर रहे, अथवा जो सब द्रव्य भोजन करनेसे छाती और कण्ठमें जलन पैदा हो वही सब द्रव्य भोजन, गुरुपाक, रुक्ष, कफजनक और शीतल द्रव्य भोजन, शीतल स्थानमें वास, नासिका आदि रास्तेसे धूम और धूलि प्रवेश, धूप और ओसमें फिरना, छातीमें चोट लगे ऐसी कसरत, अधिक बोझा उठाना, बहुत दूर तक पैदल चलना, मलमूत्रका वेग रोकना, अनशन (उपवास) और रुक्षकारक कार्य्यादिसे हिक्का और श्वास उत्पन्न होता है ।

लक्षण और प्रकार भेद ।—हिक्का रोगका साधारण लक्षण, प्राण और उदान वायु कुपित हो बार बार उपरकी तरफ जाता है और इसीसे हिक्‌हिक् शब्दके साथ वायु निकलता रहता है । यह रोग प्रकाश होनेसे पहिले कण्ठ और छातीमें भारबोध, मुखका स्वाद कसैला और पेटमें गुड़ गुड़ शब्द होना आदि लक्षण मालूम होता है । हिक्का रोग पांच प्रकार,—अन्नज, यमल, क्षुद्र, गम्भीर और महा हिक्का । अपरिमित पान भोजनसे सहसा वायु कुपित और ऊर्द्धगामी होनेसे जो हिक्का उत्पन्न होती है, उसका नाम अन्नज हिक्का । मस्तक और गरदन कपाते हुए दो दो बार निकलती है, उसका नाम यमल । कण्ठ और छातीके सन्धिस्थानसे उत्पन्न हो जो हिक्का मन्दवेग और देरसे निकले उसका नाम क्षुद्र । जो हिक्का नाभिस्थलसे उत्पन्न हो गम्भीर स्वरसे निकले और

तृष्णा, ज्वर आदि नाना प्रकार उपद्रव उपस्थित हो तो, उसका गम्भीर हिक्का कहते है, जो हिक्का निरन्तर आती रहे, तथा आती वक्त सब शरीरमें कम्प हो और जिससे वस्ति, हृदय तथा मस्तक आदि प्रधान मर्म्मस्थान समूहोंका विदीर्ण होना मालूम हो उसको महाहिक्का कहते है।

प्राणनाशक हिक्का।—गम्भीर और महाहिक्का उपस्थित होनेसे रोगीको मृत्यु निश्चय जानना। अन्यान्य हिक्कासें जिसका सब शरीर विस्तृत या आकुञ्चित और दृष्टि उर्द्धगत हो; अथवा जिस हिक्कासे रोगी क्षीण और हिक्का अत्यन्त आती हो तो मृत्यु होती है, जिस व्यक्तिके वातादि दोष अत्यन्त सञ्चित हो, किम्बा वृद्ध या अतिशय मैथुनासक्त मनुष्यको कोई एक हिक्का उपस्थित होनेसे वह प्राणका नाश करती है। यमल हिक्काके साथ प्रदाह, दाह, तृष्णा और मूर्च्छा आदि उपद्रव रहनेसे वहभी घातक है। किन्तु यदि रोगीका बल क्षीण न होकर मन प्रसन्न रहे, धातु समूह स्थिर और इन्द्रियोंमें शक्ति भरपूर हो तो इस अवस्थामें भी आराम होनेकी आशा कर सकते है।

श्वासरोगका पूर्व्वलक्षण।—पूर्व्वोक्तकारणोंसे कुपित वायु और कफ मिलाकर जब प्राण और उदान वायुवाही स्रोत समूहोंको बन्द करता है और कफ-कर्त्तृक वायु अवरुद्ध और विमार्गगामी हो इधर उधर फिरता है, तब श्वासरोग उत्पन्न होता है। श्वासरोग प्रकाशित होनेसे पहिले छातीमें दर्द, पेट फूलना, शूल, मल मूत्र थोड़ा निकलना या रोध, मुख बेस्वाद होना, और मस्तक या ललाटमें दर्द आदि पूर्व्वरूप दिखाई देता है। श्वास रोग पांच प्रकार, क्षुद्रश्वास, तमक श्वास, प्रतमक श्वास, छिन्न श्वास, ऊर्द्धश्वास और महाश्वास।

क्षुद्रश्वास।—रूक्षद्रव्य सेवन और अधिक परिश्रमसे कोष्ठस्थित वायु कुपित हो ऊर्द्धगत होनेसे क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है। यह अन्यान्य श्वासकी तरह कष्टदायक या प्राणनाशक नही हैं।

तमक और प्रतमक श्वास लक्षण।—जब वायु ऊर्द्धगत स्रोत समूहोंमें जाकर कफको बढ़ाता है तथा उसी कफकी गति रुद्ध होनेसे तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस श्वासके पहिले ग्रीवा और मस्तकमें दर्द होता है; फिर कण्ठसे घर घर शब्द निकलना, चारो तरफ अन्धियाला देखना, तृष्णा, आलस्य, खांसते खांसते मूर्च्छा, कफ निकलनेसे थोड़ा आराम मालूम होना, गलेमें सुरसुराहट, कष्टसे बोलना, नींद न आना, सोनेसे अधिक श्वास आना, बैठनेसे थोड़ा आराम बोध, दोनो पशुलियोंमें दर्द, उष्णद्रव्य और उष्ण स्पर्शका इच्छा, दोनो आंखोंसें शोथ, ललाटमें पसीना, अत्यन्त कष्ट, मुह रूखा, बार बार तीव्र वेगसे दम फूलना और शरीर हिलना, यह सब लक्षण प्रकाशित होता है। इस श्वासके साथ ज्वर और मूर्च्छा रहनेसे उसको प्रतमक श्वास कहते हैं। प्रतमक श्वासको कोई सन्तमक श्वास भी कहते है।

छिन्न श्वास।—अति कष्ट और अत्यन्त जोरसे विच्छिन्न भाव अर्थात् ठहर ठहर कर दम फूलना अथवा जिस श्वाससे एक दम निश्वास बन्द हो जाता है उसको छिन्न श्वास कहते है। इस श्वासमें अत्यन्त कष्ट, हृदय विदीर्ण होनेकी तरह दर्द, आनाह, पसीना आना, मूर्च्छा, वस्तिमें दाह, नेत्रद्वयकी चञ्चलता और पानी जाना, अङ्गकी कृशता और विवर्णता, एक आंख लाल होना, चित्तमें उद्वेग, मुख शोष और प्रलाप, यह सब लक्षण उपस्थित होता है।

ऊर्द्धश्वास लक्षण।—ऊर्द्धश्वासमें रोगी जैसे जोरसे श्वास लेता है वैसे वेगसे श्वास निकाल नही सकता। रोगीका मुख और स्रोत: समूह कफसे आवृत रहनेसे वायु कुपित हो विशेष कष्ट होता है, तथा इसी श्वासमें ऊर्द्धदृष्टि, विभ्रान्त चक्षु, मूर्च्छा, अङ्गवेदना, मुखका सफेद होना, चित्तकी विकलता आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

महाश्वास लक्षण।—मत्त वृषको अटका रखनेसे जैसा वह कूदता और चिल्लाता है, महाश्वास रोगमें वायु ऊर्द्धगत होनेसे वैसे ही शब्दके साथ दीर्घश्वास निकलता है। दूरसे भी श्वासका शब्द सुनाई देता है, तथा इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्लिष्ट और उसका जी ठिकाने नही रहता। दोनों आंखे चञ्चल, विस्तृत, मुख विकृत, मल मूत्र रोध, बोली धीमी और मन क्लान्त रहता हैं।

सांघातिकता।—इस पांच प्रकारके श्वासमें छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वास स्वभावत: ही घातक है। इसमें से कोई एक उत्पन्न होनेसे मृत्यु होती है, तमक श्वासकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा होनेसे आराम होता है किम्वा चिकित्सासे एक दम आराम न हो तो याप्य रहता है। छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वासके प्रथम अवस्थाहीमें चिकित्सा करना चाहिये, रोगीके भाग्यसे यहभी आराम होते देखा गया है।

चिकित्सा।—वायुका अनुलोमक या वायु नाशक तथा उष्णवीर्य्य कोई क्रिया हिक्का और श्वास रोगमें उपकारी है। हिक्का रोगमें पेटमें और श्वास रोगमें हृदयमें तेल मर्द्दन कर स्वेद देनेसे और वमन करानेसे उपकार होता है। किन्तु रोगीका वल आदि क्षीण होनेसे वमन कराना उचित नही है। अकवनके जड़का

चूर्ण दो आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करानेसे वमन होता है।

हिक्का चिकित्सा।—हिक्का रोगमें बेरके गुठलीकी गूदो, सौवीराञ्जन और धानका लावा अथवा कुटकी और स्वर्ण-गेरू, किम्वा पीपल, आंवला, चीनी और शोंठ; अथवा हीराकस और कैथकी गूदो; किम्बा पटलका फूल, फल और खजूरका गूदो; इन ६ योगोंमें से कोई एक सहतके साथ सेवन करना। जेठमधका चूर्ण, सहतके साथ, पीपल चूर्ण चीनीके साथ, किम्बा शोंठका चूर्ण गुड़के साथ मिलाकर नास लेना। मक्खीका बीट स्तनदूधके साथ अथवा महावरके पानीमें मिलाकर अथवा स्तनदूध में लाल चन्दन घिसकर नास लेना। शोंठ २ तोले बकरीका दूध १ पाव और पानी एक सेर एक साथ औटाना दूध रहने पर छान-कर पीना। मूगाभस्म, शङ्खभस्म, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, और गेरूमिट्टीका चूर्ण, घी और सहतमें मिलाकर चाटना। बड़ी इलायचीका चूर्ण और चीनी एकत्र मिला सेवन करना। केलेके जड़के रसमें चीनी मिला पीना अथवा नास लेना। पीसी हुई राई पानीमें मिला रख छोड़ना फिर पानी उपर और राई नीचे बैठ जानेपर वही पानी बार बार पिलाना। चीनी और गोलमिरचका चूर्ण सहतके साथ चाटना। हींग उरदका चूर्ण और गोल-मिरचका चूर्ण निर्धूम कोयलेकी आंचपर रख धूम नाकसे खींचना।

श्वासवेग शान्तिका उपाय।—श्वास रोगमें कनक धतुरेका फल, डाल और पत्ता टूकड़ा २ कर सुखा लेना, फिर चिलममें रख धूम पीनेसे प्रबल श्वास (मे) आराम होता है। थोड़ा

सोरा पानीमें भिंगोना, तथा उसी पानीमें सफेद कपड़ेका एक टुकड़ा भिंगोकर सूखा लेना, फिर उसी टुकड़ेको लपेट कर चुरुटकी तरह पीना, अथवा देवदारु, बरियारा और जटामांसी समभाग पीसकर एक सच्छिद्र बत्ती बनाना; सूख जाने पर उसमें घी लगा चुरुटकी तरह पीना, यह दो प्रकारके धूम पानसे श्वासका वेग जल्दी शान्त होता है। मोरका पङ्ख बन्द बरतनमें भस्मकर उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर चटानेसे श्वासवेग और प्रबल हिक्का रोग आराम होता है। हरीतकी और शोंठ किम्बा गुड़, जवाक्षार और गोलमिरच एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ पीनेसे श्वास और हिक्का रोग आराम होता है। श्वासका वेग शान्त होनेपर रोग नाश करनेके लिये, हलदी, गोलमिरच, किसमिस, पुराना गुड़, रास्ना, पीपल और शठीका चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर चाटना। पुराना गुड़ और सरसोंका तेल समभाग मिलाकर पीना। पुराना सफेद कोहड़ेकी गूदीका चूर्ण आधा तोला थोड़े गरम पानीमें मिलाकर पीनेसे कास श्वास दोनो आराम होता है। आदीके रसमें पीपल चूर्ण ⁄) आनेभर, सेंधा नमक ⁄) आनेभर मिलाकर पीना। शोधित गन्धक चूर्ण घीके साथ; अथवा शोधित गन्धक चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण घीके साथ सेवन करना। बेल पत्तेका रस, अडूसेके पत्तेका रस, सरसोंके तेलके साथ पीना। गुरिच, शोंठ, बमनेठी, कण्टकारी और तुलसी इन सबका काढ़ा पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। दशमूलके काढ़ेमें कूठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कास, पार्श्वशूल और छातीका दर्द आराम होता है।

शास्त्रीय औषध और हमारा श्वासारिष्ट।—

उक्त साधारण औषधसे पीड़ाका उपशम न हो तो भार्गी गुड़,

भार्गी शर्करा, शृङ्गी गुड़ घृत, पिप्पलाद्य लौह, महाश्वासारि लौह, श्वासकुठार रस, श्वासभैरव रस, श्वासचिन्तामणि, हिंस्राद्य घृत, वृहत् चन्दनादि तैल और कनकासव; यह सब औषध अवस्था विचार कर प्रयोग करना। हमारा "श्वासारिष्ट" सब प्रकारके श्वास रोगकी उत्कृष्ट औषध है, इसके पीतेही श्वासका वेग कम हो क्रमशः रोग निर्मूल आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—जिस प्रकारके आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम हो हिक्का और श्वास रोगमें वही साधारण पथ्य है। रक्तपित्त रोगमें जो सब आहारीय द्रव्योंका नाम लिख आये है, इसमें भी वही सब पानाहार व्यवहार करना। वायुका उपद्रव अधिक हो तो, पुरानी इमली भिंगोया पानी पीनेसे उपकार होता है। मिश्रीके शरबतमें नीबूका रस मिलाकर पीना और नदी या प्रशस्त तालावमें स्नान इस अवस्थामें हितकारक है। पर कफके आधिक्यमें शर्ब्बत पीना या स्नान करना मना है। कफज श्वासमें मुहमें सुरती रख थोड़ा थोड़ा रस पीनेसे बहुत उपकार होता है। रातको लघु आहार करना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—गुरुपाक, रुक्ष और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, दही, मछली और मिर्चा आदि द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, अधिक परिश्रम, अग्नि या रौद्र सन्ताप, अधिक परिमाण भोजन, दुश्चिन्ता, शोक, क्रोध प्रभृति मनोविकार इस रोगमें सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

स्वरभेद।

निदान।—बहुत जोरसे बोलना, विषपान और कण्ठमें चोट लगना आदि कारणोंसे वातादि दोषत्रय स्वर वहा नाड़ियोंका आश्रय लेनेसे स्वरभेद या स्वरभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। यक्ष्मासे भी यह रोग उत्पन्न होता है। स्वरभङ्ग ६ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मेदोज और क्षयज।

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपताज लक्षण।—वातज स्वरभेदसे गदहेके स्वरको तरह कण्ठस्वर और मल, मूत, चक्षु और मुख कृष्णवर्ण होता है। पित्तज स्वरभेदमें कण्ठ सर्व्वदा कफसे भरा रहनेके कारण शब्द बहुत धीमा निकलता हैं, और रातको अपेक्षा दिनको शब्द कुछ साफ मालूम होता है। सन्निपातज स्वरभेदमें उक्त तीन दोषजात स्वरभङ्गके लक्षण समूह मिले हुये मालूम होता है। मेदोज स्वरभेदमें गला कफ या मेदसे लिप्त रहता है, इससे कण्ठस्वर साफ नही निकलता तथा इस रोगमें रोगीको प्यास बहुत लगती हैं। क्षयज स्वरभेदमें स्वर बहुत क्षीण और शब्द धूमके साथ निकलना रोगीको मालूम होता है अर्थात् वैसीही तकलीफ होती है। क्षयज और सन्निपातज स्वरभेद स्वभावतः दुःसाध्य है। दुर्ब्बल, कृश, और वृद्ध व्यक्तिका स्वरभेद, पुराना स्वरभेद, आजन्म जात स्वरभेद, अति स्थूल व्यक्तिका स्वरभेद और सम्पूर्ण लक्षणयुक्त सन्निपातज स्वरभेद असाध्य है। क्षयज स्वरभेदमें एक दम शब्द उच्चारण बन्द हो जानेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

चिकित्सा ।—स्वरभङ्ग रोगमें तेल मिला खैर अथवा हरीतकी और पीपलका चूर्ण ; किम्बा हरीतकी और शोंठका चूर्ण मुखमें रखनेमें विशेष उपकार होता है। अजमोदा, हलदी, आंवला, यवक्षार और चाभकी जड़ सबका समभाग चूर्ण घी और सहतके साथ चाटनेसे स्वरभेद आराम होता है। बैरका पत्ता पीस घीमें भूंजकर खानेसे स्वरभेद और कासरोग उपशम होता है। मृगनाभ्यादि अवलेह, चव्यादि चूर्ण, निदिग्धिकादि अवलेह, चाम्ब-काम्ब, सारस्वत घृत और भृङ्गराजाद्य घृत स्वरभेद रोगका प्रशस्त औषध है। उक्त औषधोंके सिवाय कास और श्वास रोगके कई औषध भी विचारकर इसमें दे सकते है।

पथ्यापथ्य ।—वातज स्वरभेदमें घृत और पुराने गुड़के साथ अन्न भोजन कर थोड़ा गरम पानी पीना ; पित्तज स्वरभेदमें दुग्धान्न भोजन और मेदोज तथा कफज स्वरभङ्गमें रुक्ष अन्न पान उपकारी है। अन्यान्य पथ्यापथ्यके नियम कास और श्वास रोगकी तरह प्रतिपालन करना आवश्यक है।

अरोचक (अरुचि)।

—*—

संज्ञा निदान और प्रकारभेद ।—भूख रहते जिस रोगमें खाया नही जाता और कोई वस्तु जिसमें खानेकी जी नही चाहता, उसको अरोचक रोग कहते है। यह रोग पांच

प्रकारका है ; वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुक। भय, शोक, अति क्रोध, अति लोभ, घृणाजनक भोज्य द्रव्य, घृणा जनक रूपदर्शन या घृणाजनक गन्ध आघ्राण आदि कारणोंसे जो अरोचक रोग उत्पन्न होता है, उसको आगन्तुक अरोचक कहते हैं।

भिन्न दोषज लक्षण।—वातज अरोचक रोगीके मुखका स्वाद कसैला और दांत खट्टा खायेकी तरह और छातीमें दर्द होता है। पित्तज अरोचकके मुखका स्वाद तिक्त, अम्ल, बेस्वाद, दुर्गन्धयुक्त, उष्ण स्पर्श और तृष्णा, दाह, तथा चूसनेकी तरह पीड़ा होती है। कफज अरोचकसे मुखका स्वाद मधुर या लवण रस, चटचटा, शीतल और कफलिप्त तथा कफ निकलता रहता है। सन्निपातज अरोचकमें वही सब लक्षण मिले हुये मालूम होता है, अर्थात् मुखका स्वाद बदलता रहता है। आगन्तुक अरोचकमें मुखका स्वाद बदलता नही तथापि अरुचि रहती है, इसमें चित्तकी व्याकुलता, मोह और जड़ता आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

चिकित्सा।—वातज अरोचकमें वस्तिकर्म्म (पिचकारी) पित्तजमें विरेचन, कफजमें वमन और आगन्तुक अरोचकमें मनको प्रसन्न रखना ही साधारण चिकित्सा हैं। दिनको भोजनके पहिले नमक और आदी खानेसे सब प्रकार अरुचि आराम हो अग्निकी दीप्ति और कण्ठ शुद्ध होता है। कूठ, सौचल नमक, जीरा, चीनी, गोलमिर्च और काला नमक ; अथवा आंवला, बड़ी इलायची, पद्मकाष्ठ, खस, पीपल चन्दन, और नीलाकमल ; किम्बा लोध, चाभ, हरीतकी, शोंठ, पीपल, गोलमिर्च और जवाक्षार ; अथवा नरम अनारके पत्तेका रस जीरा और चीनी, इन

चार योगोंमें से कोई एकका चूर्ण सहत और तेलमें मिलाकर मुखमें रखनेसे सब प्रकारका अरोचक रोग आराम होता है। अथवा कालाजीरा, जीरा, गोलमिरच, मुनक्का, इमली, अनार, सोंचल नमक, गुड़ और सहत एकत्र मिलाकर मुहमें धारण करना। दालचीनी, मोथा, बड़ी इलायची और धनिया, अथवा मोथा आंवला और दालचीनी, किम्वा दारुहलदी और अजवाईन; अथवा पीपल और चाभ; किम्वा अजवाईन और इमली; इन पांच प्रकारके योगको मुखमें रखना। पुरानी इमली और गुड़ पानीमें घोलकर दालचीनी, बड़ी इलायची और गोलमिरचका चूर्ण मिलाकर कुल्ला करनेसे अरोचक आराम होता है, अथवा काला नमक और सहत अनारके रसमें मिलाकर कुल्ला करना। राई, जीरा और हींग भूनकर चूर्ण करना फिर उसके साथ शोंठका चूर्ण और सेंधा नमक मिलाना, सबके समान गायकी दही मिला-कर खूब फेटकर छान लेना तथा सबका समभाग मट्ठा मिलाकर पीना यह रुचिकर और अग्नि वर्द्धक है। अनारका चूर्ण २ तोले, खांड २ तोले और दालचीनी, इलायची और तेजपत्ताका चूर्ण १ तोला, सब द्रव्य एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे अरुचिका नाश, अग्निकी दीप्ति और ज्वर, कास, पीनस रोग शान्त होता है। इसके सिवाय यवानीषाड़व, कलहंस, तिन्तिड़ी पानका रसाला और सूलोचनाभ्र नामक औषध अरोचक रोगमें देना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—जो सब आहार रोगीका अभिलषित तथा लघुपाक और वातादि दोषत्रयमें उपकारी है, वही सब आहार अरोचक रोगीको देना। आहार करते करते बीच बीचमें ३।४ बार पूर्व्वोक्त कुल्ला करना चाहिये। ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे

बहती नदी या प्रशस्त तलावमें स्नान करना। उपवन या वैसही सुन्दर स्थानमें घूमना सङ्गीतादि सुनना आदि जिस कामसे मन प्रसन्न रहे वही सब काम करना हितकारी है। खानेकी चीज, भोजनका स्थान, पात्रादि, पाचक, परिवेशक आदि सब साफ सुथरा रहनाभी इन रोगमें विशेष आवश्यक हैं।

निषिद्ध कर्म्म।—जिस कारणसे मन विकृत हो और जो सब आहार मनका विघात कारक है, उसका त्याग करना चाहिये।

छर्द्दि अर्थात् वमन।

वमन लक्षण और प्रकारभेद।—अतिरिक्त तरल वस्तु पान, स्निग्ध द्रव्य अतिरिक्त भोजन, घृणाजनक वस्तु भोजन, अधिक लवण भक्षण, असमयमें भोजन, अपरिमित भोजन और भ्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, क्रिमिदोष, गर्भावस्था और कोई घृणा-जनक कारण समूहोंसे वायु, पित्त और कफ कुपित हो वमन रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें दो वेग उपस्थित होनेसे मुखकी जड़ता और आच्छादित तथा सर्व्वाङ्गमें भङ्गवत् पोड़ा होती है वमन रोग पांच प्रकार,—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुक। वमन होनेसे पहिले जोमचलाना, उद्गार रोध, मुखसे लवणाक्त पतला जलस्राव और पान भोजनकी अनिच्छा, यही सब लक्षण लक्षित होता है।

वातज लक्षण।—वातज वमन रोगमें हृदय और पार्श्व-

में दर्द, मुखशोष, मस्तक और नाभिमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द कास, स्वरभेद, अङ्गमें सूचोविद्धवत् वेदना, प्रवल उद्गार और फेनोला, पिच्छिल, पतला, कसैला और तेज वमन होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज वमन रोगमें मूर्च्छा, पिपासा, मुखशोष, मस्तक, तालु, और चक्षुद्वयमें सन्ताप, अन्धकार दर्शन और पीला, हरा या धूम्रवर्ण, थोड़ा कड़ूआ, अति उष्ण पदार्थ वमन और वमनके समय कण्ठमें जलन ; यही सब लक्षण दिखाई देता है।

कफज लक्षण।—कफज वमन रोगमें तन्द्रा, मुखका स्वाद मीठा, कफस्राव, भोजनको अनिच्छा, निद्रा, अरुचि, देहका, भारोपन और स्निग्ध, घना, मधुर रसयुक्त सफेद वमन, वमनके साथ शरीर रोमाञ्च और अतिशय कष्ट होता है।

सन्निपातज लक्षण।—सन्निपातज वमन रोगमें शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, पिपासा, श्वास, मूर्च्छा और स्वेद लवण रसयुक्त, उष्ण, नील या लाल रङ्गका घना पदार्थ वमन होना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

आगन्तुक वमन।—कुत्सित द्रव्य भोजन, किसी प्रकारके घृणाजनक वस्तु सूङ्घने या देखनेसे जो वमन होता है तथा गर्भावस्था, क्रिमिरोग और खट्टा खानेसे जो वमन होता है उसको आगन्तुक वमन कहते हैं। इस वमन रोगके वातादि दोषत्रयमें जिस दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित हो उसी दोषके वमन रोगमें उसको मिलाना चाहिये। केवल क्रिमिके वमन रोगमें अत्यन्त वेदना, अधिक वमन वेग और क्रिमिसे हृद्रोगके कई लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

रोगका उपद्रव और साध्यासाध्यता।—वमन रोगमें यदि कुपित वायु, मल, मूत्र और जलवाही स्रोत समूहोंको बन्दकर ऊर्द्धगत हो और उससे यदि रोगीके पेटका पूर्व्व सञ्चित पित्त, कफ या वायु दूषित स्वेदादि वमन हुआ करे; और वस्तिमें मल मूत्रको तरह गन्ध हो तथा रोगी तृष्णा, श्वास और हिक्कासे पीड़ित हो तो उसकी मृत्यु जानना। जिस वमन रोगमें रोगी क्षीण हो जाय और सर्व्वदा रक्तपित्त मिला पदार्थ वमन करे, अथवा वान्त पदार्थमें यदि मयूरपुच्छकी तरह आभा दिखाई दे, किम्बा वमन रोगके साथ हो यदि कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, भ्रम, हृद्रोग और तमक श्वास यह सब उपद्रव उपस्थित होनेसे भी रोग असाध्य होता है।

चिकित्सा।—कच्चे नारियलका पानी, फरुही या जली रोटी भिंगोया पानी और बरफका पानी वमन निवारणके हकमें उत्कृष्ट औषध है। बड़ीलायचीका काढ़ा पीनेसे भी वमन रोग आराम होता है। रातको गुरिच भिंगो रखना, सवेरे वही पानी थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे भी वमन आराम होता है। पीपल वृक्षकी सूखी छाल जलाकर किसी पात्रमें पानीमें डूबा रखना, फिर वही पानी पीनेसे अति दुर्निवार वमन भी आराम होता है। खेतपापड़ा, बेलकी जड़, या गुरिचका काढ़ा सहतके साथ अथवा मूर्व्वाकी जड़का काढ़ा चावलके धोवनके साथ पीनेसे सब प्रकारका वमन दूर होता है। जेठीमध और लाल चन्दन दूधमें पीसकर पीनेसे रक्त वमन आराम होता है। सहतके साथ हरीतकी चूर्ण चाटनेसे दस्त हो वमन आराम होते देखा गया है। आंवलेका रस १ तोला और कईथका रस १ तोला, थोड़ा पीपलका चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटनेसे प्रवल वमन

भी आराम होता है। सौचल नमक चीनी और गोलमिरचका चूर्ण समभाग सहतके साथ चाटनेसे वमन रोग आराम होता है। समभाग दूध और पानी ; किम्बा सेंधा नमक और घी एकत्र पान करनेमें बातज वमनमें विशेष उपकार होता है। जामुनकी गुठली और बेरकी गुठलीकी गूदी अथवा मोथा और काकड़ाशिङ्गी ; सहतके साथ चाटनेसे कफज वमन आराम होता है। तिलचट्टेका बीट ३।४ दाना थोड़ा पानीमें भिंगोकर पीनेसे अति दूर्निवार वमन भी आराम होता है। एलादि चूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वज रस और पद्मकाद्य घृत वमन रोगका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—सब प्रकारके वमन रोगमें आमाशयका उत्क्लेश रहता है, इससे पहिले उपवास करना ही उचित है। वेग शान्त होनेपर लघुपाक, वायु अनुलोमक और रुचिकर आहारादि क्रमशः देना चाहिये, वमन वेग रहते आहार देनेकी आवश्यकता हो तो भूंजे मूंगके साथ धानके लावाका चूर्ण, सहत और चीनी मिलाकर खानेको देना ; इससे वमन, भेद, ज्वर, दाह और पिपासाकी शान्ति होती है। वमन वेग शान्त होनेपर सब वस्तु आहार और ज्वरादि उपसर्ग न रहनेसे अभ्यासके अनुसार स्नान कर सकते है। साफ पानाहार, साफ स्थानमें वास, सुगन्ध सूंघना और मनकी प्रसन्न रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

जिस कारणसे घृणा उत्पन्न हो, वही सब कारण और रौद्रादि आतप सेवन प्रभृति वमन रोगमें विशेष अनिष्टकारक हैं।

तृष्णारोग।

—-०—-

निदान।—भय, भ्रम, बलादि क्षयसे वायु कुपित होता है, तथा यही सब कारणोंसे वायु; कटु या अम्लरस भोजन, क्रोध और उपवास आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। जलवाही स्रोत समूह वायु प्रभृति दोषत्रयसे कुपित होनेपर भी तृष्णा रोग उत्पन्न होता हैं। इस रोगके उत्पन्न होनेसे पहिले तालु, कण्ठ, ओष्ठ और मुख सूखना, दाह, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम और सन्ताप, यह सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। तृष्णा रोग सात प्रकार,—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, आमज और अन्नज।

भिन्न २ दोषज रोग लक्षण।—वातज तृष्णा रोगमें मुंह सुखा और म्लान; ललाट और मस्तकमें सूची विद्धवत् वेदना, रस और जलवाही स्रोत समूहोंका रोध और स्वादका बिगड़ना यही सब लक्षण लक्षित होता है। पित्तज तृष्णामें मूर्च्छा, आहारमें अनिच्छा, प्रलाप, दाह, दोनो आखें लाल, अत्यन्त प्यास, शीतल द्रव्यपर इच्छा, मुखका स्वाद कड़वा और अनुताप, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। कफज तृष्णामें अधिक निद्रा, मुखका स्वाद मीठा और शरीर शुष्क आदि लक्षण दिखाई देता है। शस्त्रादिसे शरीर क्षत हो अधिक रक्तस्राव होनेसे या क्षतज वेदनासे जो तृष्णा होती है उसको क्षतज तृष्णा कहते हैं। रसक्षयसे जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको क्षयज तृष्णा कहते हैं। इस तृष्णासे रोगी बार बार पानी पीने परभी तृप्त नही

होता । तथा छातीमें दर्द, कम्प और मनकी शून्यता आदि लक्षण प्रकाशित होता है। आमज तृष्णा में छातीमें शूल, निष्ठीवन, शारीरिक अवसन्नता और तीन दोषजात तृष्णाके भी लक्षण समूह प्रकाशित होता है। घृत, तैल प्रभृति अधिक चिकना पदार्थ, अम्ल, लवण और कटु रस तथा गुरुपाक अन्न भोजन करनेसे जो जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको अम्लज तृष्णा कहते हैं। दूसरे कोई रोगके उपसर्गसे तृष्णा होनेसे उसको उपसर्गज तृष्णा कहते है। यह वातादि दोषजात तृष्णाके अन्तर्गत है इससे इसको अलग नहीं किया गया। इसमें स्वरकी क्षीणता, मूर्च्छा क्लान्ति और मुख, कण्ठ, तालु बार बार सूखता है, इससे शरीर बहुत सूख जाता है और यह अति कष्टसाध्य है।

सांघातिक लक्षण।—ज्वर, मूर्च्छा, क्षय, कास, श्वास आदि रोगोंमें पीड़ित मनुष्यको कोई एक तृष्णा रोग प्रबल होनेसे और साथही वमन और मुख शोष आदि उपद्रवयुक्त होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

चिकित्सा।—वायुकी तृष्णारोगमें गुरिचका रस उपकारी है, पित्तज तृष्णामें गुलरके पक्का फलका रस या काढ़ा सेवन उपकारी है। गाम्भारी फल, चीनी, लाल चन्दन, खस, पद्मकाष्ठ, द्राक्षा और जेठीमध, यह सब द्रव्य मिला २ तोले, आधा पाव गरम पानीमें पहिले दिन शामको भिंगोकर दूसरे दिन सवेरे छानकर पीना पित्तज तृष्णामें यह उपकारी है। तथा यह सब द्रव्य पीसकर पीनेसे भी फायदा होता है। मोथा, खेतपापड़ा, बाला, धनिया, खस और लाल चन्दन प्रत्येक साढ़े पांच आनेभर एकत्र मिला २ सेर पानीमें औटाना एक सेर पानी रहते छानकर थोड़ा थोड़ा पीनेसे तृष्णा, दाह और ज्वर आराम होता है।

बेलकी छाल, अरहरका पत्ता, धवईफूल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ और कुशमूल, यह सब द्रव्य २ तोले २ सेर पानीमें औटाना एक सेर रहते छानकर थोड़ा थोड़ा पीनेसे कफज तृष्णा शान्त होती है। नीमकी छाल या पत्ता अथवा फलका काढ़ा गरम पीकर कै करनेसेभी कफज तृष्णा शान्त होती है। आम जन्य तृष्णा रोगमें पीपल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, अम्लवेतस, गोलमिरच, अजवाईन, भेलावेके गुठली प्रभृति अग्नि-दीपनीय द्रव्यका काढ़ा बनाकर बेलकी गूदी, बच और हींगका चूर्ण मिलाकर पीना। क्षतज तृष्णामें मांस रस और रक्तपान विशेष उपकारी है। क्षयज तृष्णामें दूध और मधु मिला पानी और मांस रस हितकारी है। अन्नज तृष्णामें वमन कराना ही प्रशस्त चिकित्सा है। आंवला, पद्ममूल, कूठ, धानका लावा और बड़कीसोर इन सबका समभाग चूर्ण सहतमें मिला मुहमें रखनेसे सब प्रकारकी तृष्णा और मुखशोष आराम होता है। आम और जामुनके पत्तेका किम्वा आम जामुनके छालका काढ़ा अथवा आम जामुनके गुठलीकी गूदी औटाकर सहत मिलाकर पीनेसे वमन और तृष्णा आराम होता हैं। धनियाका काढ़ा बासीकर पीनेसे तृष्णा आराम होते देखा गया है। बड़कीसोर, चीनी, लोध, अनार जेठीमध और सहत; अथवा चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे तृष्णा आराम होती है। द्राक्षारस, इक्षुरस, दूध, जेठीमधका काढ़ा सहत या सुंदी फूलका रस नाकसे पान करनेसे प्रबल पिपासा शान्त होती है। बड़े नीबूका जीरा, सहत और अनार एकत्र पीसकर कुल्ला करनेसे सब प्रकारकी तृष्णा आराम होती है। तालु शोष रोगमें दूध, इक्षुरस, गुड़ या कोई अम्ल द्रव्य पानीमें घोलकर कुल्ला करना। कुमुदेश्वर रस सब प्रकारके तृष्णा रोगका अति उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—रुचिजनक, मधुर रस विशिष्ट और शीतल द्रव्य तृष्णा रोगमें सुपथ्य है। उग्रवीर्य्य और शारीरिक उद्वेग कारक, तृष्णा रोगमें यही सब पानाहारादि सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

—०—

मूर्च्छा, भ्रम और सन्यास।

निदान।—विरुद्ध द्रव्य पान, भोजन, मल मूत्रादि वेग धारण, अस्त्र शस्त्रादिसे शरीरमें आघात प्राप्ति और सत्वगुणकी अल्पता आदि कारणोंसे वातादि उग्रदोषत्रय मनोधिष्ठान अथवा शिराधिष्ठान स्रोत समूहोंमें प्रविष्ट होनेसे मूर्च्छारोग उत्पन्न होता है। अथवा शिरा, धमनी आदि जिस नाड़ीके अवलम्बनसे मन इन्द्रिय समूहोंमें जाता आता है, वही नाड़ी वातादि दोषोंसे आच्छादित होनेपर, तमोगुण वर्द्धित हो मूर्च्छा रोग उत्पन्न होता है। सुख दुःखादि अनुभव शक्तिहीन हो, काष्ठादिके तरह बेहोश हो जमीनपर गिर पड़नाही इस रोगका साधारण लक्षण हैं। मूर्च्छा उपस्थित होनेसे पहिले हृदयमें पीड़ा, जृम्भा, ग्लानि और ज्ञानकी कमी यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। मूर्च्छा रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मद्यज और विषज। भिन्न भिन्न मूर्च्छामें पृथक पृथक दोषका आधिक्य रहनेपर भी मूर्च्छा रोग मात्रमें पित्तका आधिक्य रहता है, कारण पित्त और तमोगुण ही मूर्च्छारोगका आरम्भक है।

भिन्न भिन्न दोषभेदके लक्षण।—वातज मूर्च्छामें रोगी नील, कृष्ण अथवा अरुणवर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होता है और थोड़ेही देरमें होशमें आता है, तथा कम्प, अङ्गमें दर्द, हृदयमें पीड़ा, शारीरिक कृशता और देहका वर्ण श्याम या अरुण वर्ण होता है। पित्तज मूर्च्छामें रोगी लाल, पीला, अथवा हरित् वर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होता है। होश आनेपर पसीना, पिपासा, सन्ताप, दोनो आंखे लाल या पीतवर्ण, मलभेद और देह पीला होता है। कफज मूर्च्छामें रोगी साफ आकाशमें मेघकी आभा, मेघाच्छन्न या अन्धकारयुक्त देखते देखते मूर्च्छित होता है और देरसे होशमें आता है। होश आनेपर सर्व्वाङ्ग गीले चमड़ेसे आच्छादितकी तरह भारी, मुखसे स्राव और जीमचलाता है। सन्निपातज मूर्च्छामें वातादि त्रिविध मूर्च्छाके लक्षण समूह मिले हुये मालूम होते है और अपस्मार रोगकी तरह प्रवल वेगसे पतित हो देरसे होशमें आता है, पर अपस्मारकी तरह फेन वमन, दांती लगाना और नेत्रविकृति आदि भयानक अङ्गविकृति समूह इसमें प्रकाशित नही होता। रक्तज मूर्च्छामें अङ्ग और दृष्टिस्तब्ध तथा श्वास बहुत काम चलती है। मद्यपान जनित मूर्च्छामें ज्ञानशून्य और विभ्रान्तचित्त हो जमीनपर गिरकर हाथ पैर पटकना और प्रलाप बकते बकते मूर्च्छित होता है। मद्य जीर्ण न होनेतक होशमें नही आता। विष मूर्च्छामें कम्प, निद्रा, तृष्णा, आंखके सामने अन्धियाला देखना और विष भक्षण जनित अन्यान्य लक्षण भी प्रकाशित होता है।

भ्रम रोगका निदान और लक्षण।—वायु, पित्त और रजोगुण मिलाकर भ्रम रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें रोगीको अपना शरीर और सब पदार्थ घूमता हुआ मालूम होता

है, इससे खड़ा नही रह सकता तथा खड़ा होनेपर गिर पड़ता है।

सन्न्यास रोग।—वातादि दोष समूह अत्यन्त कुपित हो जब प्राणाधिष्ठान हृदयको दूषित करता है तथा दुर्ब्बल रोगीका मन और इन्द्रिय समूहोंका कार्य्य बन्दकर मूर्च्छित करता है, तब उसको सन्न्यास रोग कहते है। यह रोग अतिशय भयानक है। सूचीवेध, तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण नस्य, आदि तुरन्त होशमें लानेवाले उपाय न करनेसे होशमें नही आता, रोगी भी थोड़ी ही देरमें प्राणत्याग देता है।

चिकित्सा।—मूर्च्छा रोगके आक्रमण कालमें आंख और मुख आदि स्थानोंमें ठण्ढे पानीका छींटा देकर होशमें लाना चाहिये, फिर थोड़ा देर नरम बिछौने पर सुलाकर ताड़के पंखेसे हवा करना उचित है। दांती लगजाने पर उसके छुड़ानेका उपाय करना। पानी छींटेसे होशमें न आवे तो नौसादरका टुकड़ा २ भाग और सूखा चूना १ भाग शीशीमें भरकर सूङ्घनेको देना। अथवा सेंधा नमक, बच, गोलमिरच और पीपल समभाग पानीसे पीसकर नास देना। शिरीष बीज, पीपल, गोलमिरच, सेंधा नमक, लहसन, मैनसिल और बच; यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर अथवा सेंधा नमक, गोलमिरच और मैनसिल; यह तीन द्रव्य सहतके साथ पीसकर आंखमें अञ्जन करनेसे भी मूर्च्छा दूर होती है। हमारा "कुमुदासव" सेवन करानेसे मूर्च्छा आराम हो रोगी अच्छी तरह होशमें आता है।

भ्रम चिकित्सा।—भ्रम रोगमें शतमूली, बरियारेकी जड़ और किसमिस दूधमें औटाकर वही दूध पीना। बरियारेके बीजका चूर्ण और चीनी एकत्र मिलाकर सेवन कराना। रातको सहत और त्रिफलाका चूर्ण, सबेरे गुड़का साथ अदरख सेवन करने-

से भ्रम, मूर्च्छा, कास, कामला, और उन्माद रोग आराम होता हैं। शोंठ, पीपल, सोवा और हरीतकी प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, गुड़ ६ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्राकी गोली बना रखना, यह गोली सेवन करनेसे भ्रम रोग दूर होता है। जवासाके काढ़ेके साथ ताम्रभस्म २ रत्ती और घी एक आनाभर मिलाकर पीनेसेभी भ्रम रोग आराम होता है। शिलाजीत आदि रसायन अधिकारके औषध समूहोंका सेवन और १० वर्षका पुराना घृत मर्दन इस रोगमें विशेष उपकारी है।

सन्यासमें चेतना सम्पादन।—सन्यास रोगको वेहोशी छुड़ानेके लिये अपस्मार रोगोक्त तेज अञ्जन, नास, धुंआ, सूई गड़ाना, गरम लोहेको सलाई नखके भीतर दागना, केश लोमादि खींचना, दांतसे काटना और बदनमें आलकुशी मलना आदि कार्य्योंसे होशमें आनेपर मूर्च्छा रोगोक्त औषध देना। बच्चोंके सन्यास रोगमें रेंड़ीका तेल अथवा रसाञ्जन चूर्णसे विरेचन करानेके बाद पेटमें स्वेद करना उचित है। क्रिमिजन्य सन्यास रोगमें क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना चाहिये।

हमारा मूर्च्छान्तक तैल।—मूर्च्छा, भ्रम और सन्यास रोगमें सुधानिधि, मूर्च्छान्तक रस, अश्वगन्धारिष्ट तथा अपस्मार और उन्माद रोगोक्त अन्यान्य औषध, घृत, तैल आदि प्रयोग करना चाहिये। हमारा "मूर्च्छान्तक तैल" इस रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—मूर्च्छा आदि रोगमें पुष्टिकर और बल-कारक आहार आदि देना। दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, चना और उड़दको दाल; कवई, मागुर, शिंगी, खालिशा आदि मछलीका शुरुवा, बकरीका मांस, गुल्लर, परवर,

सफेद कोंहड़ा, बैगन, केलेका फुल, आदिकी तरकारी, मक्खन, मट्ठा, दही, द्राक्षा, अनार, पक्का आम, पक्का पपीता, शरीफा, कच्चा नारियल आदि फल खानेको देना। रातको पूरी या रोटी, मोहनभोग, मिठाई, खुरमा, दुध, घी, मैदा, सूजी और घीसे बनाया कोई वस्तु खानेको देना। सबेरे धारोष्ण दूध और शरबत पीना विशेष उपकारी हैं। तिलतेल मर्द्दन, बहती नदी या प्रशस्त तलाव स्नान, सुगन्ध द्रव्य, साफ हवा और चन्द्रकिरण सेवन सन्तोषजनक बातें गीतवाद्य श्रवण और अन्यान्य कार्य्य जिससे मन स्थिर रहे इस रोगमें वही सब करना उचित है।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक, तीक्ष्ण वीर्य्य, रुक्ष और अम्लद्रव्य भोजन, मेहनतका काम करना, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग मद्यपान, रात दिन बैठे रहना, धूपमें बैठना और आग तापना, इच्छाके प्रतिकूल कार्य्यादि, घोड़ा आदिकी सवारीपर चढ़ना, मल, मूत्र, तृष्णा, निद्रा, क्षुधा आदिका वेग रोकना, रात जागना, मैथुन और दतुवनसे मुख धोना आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

—०—

मदात्यय।

—०—

निदान और प्रकारभेद।—अवैध नियम और अपरिमित मात्रासे तथा बल और विचार न कर मद्यपान करनेसे

मदात्यय रोग उत्पन्न होता है*। इसके सिवा क्रोध, भय, शोक, पिपासा, भारवहन, पैदल चलते २ थक जानेपर किम्बा मल मूत्रके वेगमें, अजीर्ण अवस्थामें, भोजनके बाद, दुर्व्वल अवस्थामें मद्यपान करनेसे भी मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। यह रोग चार भागमें विभक्त है।—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पान विभ्रम।

वात, पित्त और कफाधिक्य रोग लक्षण।— वाताधिक्य मदात्यय रोगमें हिक्का, श्वास, शिर:कम्प, पार्श्वशूल निद्रानाश अत्यन्त प्रलाप होता है। पित्ताधिक्य मदात्यय रोगमें तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम और शरीर पीले रङ्गका होजाता है। कफाधिक्य मदात्ययमें कै, जीमचलाना, अरुचि, तन्द्रा, शरीर भारी मालूम होना अतिशय शीत और शरीर गीले वस्त्रसे लिपटा हुआ अनुभव होता है। सान्निपातिक मदात्ययमें यही सब लक्षण मिले हुये मालूम होता है।

परमद लक्षण।— परमद रोगमें कफके आधिक्यसे नाकसे कफस्राव, देह भारी, मुख बेस्वाद, मल मूत्रका रोध, तन्द्रा, अरुचि, तृष्णा, मस्तकमें दर्द, और शरीरके सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है।

* स्निग्ध अन्न और मांस आदि भक्ष्य द्रव्यके साथ ग्रीष्म ऋतुमें शीतल मधुर रसयुक्त माध्वीकादि मद्य और शीत ऋतुमें तीक्ष्ण और उष्णवीर्य्य गौड़िक या पिष्टकादि मद्य प्रसन्न चित्तसे पीना यही मद्यपानका नियम है। जिस मात्रासे बुद्धि, स्मृति, प्रीति, स्वर, अध्ययन या सङ्गीत शक्ति वर्द्धित हो और पान भोजन, निद्रा, मैथुन और अन्यान्य कार्य्योंमें आसक्ति हो वही उचित मात्रा हैं। इस रीतिसे मद्यपान करनेसे उपकार होता है। विपरीत पान करनेसे उत्कट रोग उत्पन्न हो शरीरमें अनिष्ट होता है!

पानाजीर्ण लक्षण।—पानाजीर्ण रोगमें अत्यन्त उदराध्मान, उन्माद, कै, पेटमें जलन, पीये हुए मद्यका अपरिपाक, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पान विभ्रम लक्षण।—पान विभ्रम रोगमें सब शरीर विशेष कर हृदयमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द, कफस्राव, कण्ठसे धूम निकलनेकी तरह दर्द, मूर्च्छा, कै, ज्वर, शिरःशूल, दाह और सुरा या सुरासे बनाया कोई खाद्य और पिष्टकादि भोज्य द्रव्यसे द्वेष, यही सब लक्षण दिखाई देता है।

सांघातिक मदात्यय।—जिस मदात्यय रोगमें रोगीका ओष्ठ नीचेको झुक जाता है और ऊपर शीत तथा भीतर दाह, मुख तेल लगाकी तरह चिकना, जिह्वा, ओष्ठ, तथा दांत काला, नीला या पीले रंगका होना, तथा आंखे लाल होनेसे रोगीको मृत्यु होती हैं।

उपद्रव।—हिक्का, ज्वर, कै, कम्प, पार्श्वशूल, कास, और भ्रम इन सबको मदात्यय रोगका उपद्रव कहते हैं।

चिकित्सा।—मद्यपान न करनाही मदात्यय रोगका श्रेष्ठ औषध है, अत्यन्त मद्यपान करनेवालेको मदात्यय रोग होनेसे कम मात्रा यथाविधि मद्यपान कराना। वातिक मदात्ययमें पहिलेका पीया हुआ मद्य जीर्ण होने पर सौचल नमक, शोंठ, पीपल, गोलमिरच चूर्ण और थोड़े पानीके साथ मद्यपान कराना। पैत्तिक मदात्ययमें चीनी, द्राक्षा और आंवलेके रसमें पुराना शीतवीर्य्य (ठण्ढा) मद्यपान कराना। सुगन्धित मद्य या अधिक जल मिश्रित मद्य किम्बा चीनी और सहत संयुक्त मद्य पैत्तिक मदात्ययमें हितकारी। मद्यके साथ खजूर, किसमिस, फालसा, अनारका रस और सत्तु मिलाकर पीनेसे पैत्तिक मदात्यय आराम

होता है। अथवा अधिक इक्षुरस मिश्रित मद्य पिलाकर थोड़ी देर बाद कै करानेसे भी पैत्तिक मदात्यय आराम होता है। श्लैष्मिक मदात्ययमें वमन कारक द्रव्य संयुक्त मद्य पिलाकर वमन कराना, फिर रोगीके बलानुसार उपवास कराना चाहिये। इस मदात्ययमें तृष्णा हो तो बाला, बरियारा, पाटला, कण्टकारी, अथवा शोंठका काढ़ा ठण्ढाकर पिलाना। चाभ, सौचल नमक, हींग, बड़े नीबुकी छाल, शोंठ और अजवाईनका चूर्ण मिलाकर मद्यपान करानेसे सब प्रकारका मदात्यय रोग आराम होता है। सब प्रकारके मदात्यय रोगका दोष परिपाकके लिये जवासा, मोथा और खेतपापड़ा, किम्बा सिर्फ मोथेका काढ़ा पिलाना। अष्टाङ्ग लवण कफज मदात्ययका श्रेष्ठ औषध है। धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाना फिर पिंड खजूर, किसमिस, मुनक्का, इमली, अनार और आंवलेका रस मिलाकर पीनेसे मद्यपान जनित सब प्रकारका रोग प्रशमित होता है।

शास्त्रीय औषध।—मदात्ययका दाह दूर करनेके लिये दाह नाशक योग समूह प्रयोग करना। फलत्रिकाद्य चूर्ण, एलाद्य मोदक, महाकल्याण वटी, पुनर्नवा घृत, वृहत् धात्री तेल और श्रीखण्डासव सब प्रकारके मदात्ययमें विचार कर प्रयोग करना।

मत्तता निवारणोपाय।—मद्यपान कर तुरन्त घी चीनी मिलाकर चाटनेसे नशा नही होती। कोदो धानकी नशा सफेद कोहड़ेका पानी गुड़ मिलाकर पीनेसे दूर होती है। सुपारीकी नशा पानी पीनेसे उतरती है; सुखा गोबर संघना और नमक खानेसेभी सुपारीकी नशा दूर होती है। चीनी मिलाया दूध पीनेसे धतुरेकी नशा शान्त होती है। गरम घी, कट-

हरके पत्तेका रस, इमलीका पानी या कच्चे नारियलका पानी पीनेसे भाङ्गकी नशा दूर होती है। थोड़ी शराब पीनेसेभी भाङ्गकी नशा तुरन्त छुट जाती है तथा शराबकीभी नशा नही होती।

पथ्यापथ्य।—वातिक मदात्ययमें स्निग्ध और उष्ण भात, तित्तिर, वटेर, मुरगा, मोर या पानीके पास रहनेवाले जीवोंके मांसका रस, मछलीका रस्सा, पूरी, खट्टा और नमकयुक्त द्रव्य उपकारी है। ठण्ढा पानी पीना, स्नानभी करना। पैत्तिक मदात्ययमें ठण्ढाभात, चीनी मिलाया मूङ्गका जूस, मांसका रस पीनेको देना, शीतल शयन, उपवेशन, शीतल वायु सेवन, शीतल जलसे स्नान और चन्दनादि शीतल द्रव्य अनुलेपन स्त्रीका आलिङ्गन उपकारी है। कफज मदात्ययमें पहिले उपवास, फिर सूखा अर्थात् घृतशून्य छागमांसका रस अथवा दाड़िमादि अम्लरसयुक्त जङ्गली मांसका रस किम्वा घृतादि शून्य केवल गोलमिरच और अनारके रसमें मांस भूनकर उसी मांसके साथ अन्न भोजन उपकारी है; तथा जिस कार्य्यसे कफ शान्त रहे, कफज मदात्ययमें वही सब कार्य्य करना। गरम पानी पीनेको देना, स्नान बन्द करनाही अच्छा है, किसी किसी दिन गरम पानीसे स्नान करना चाहिये।

दाह।

—※—

संज्ञा और लक्षण।—विविध कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो, हाथ पैरका तरवा, आंख या सर्व्वाङ्गमें जलन उत्पन्न होता

है। इसीको दाह रोग कहते है। दाह पित्तहीसे उत्पन्न होता है इस लिये रोग मात्रमें पित्तका आधिक्य होनेहीसे दाह होता है। शरीरमें रक्तकी अत्यन्त वृद्धि होनेपरभी दाह रोग उत्पन्न होता है। इसमें रोगीको प्यास, दोनो आंखे या सब शरीर ताम्रवर्ण, शरीर और मुखसे लोहेकी तरह गन्ध ; यह सब लक्षण प्रकाशित होता है और रोगी अपने चारो तरफ आग जलानेकी तरह कष्ट अनुभव करता है। प्यास लगने पर पानी न पीनेसे शरीरके सब पतले धातु क्रमशः क्षीण होता है, इसमें पित्तश्लेष्म वर्द्धित हो देहके भीतर अधिक दाह उत्पन्न होता है। इस दाहसे गला, तालु और ओष्ठ सूखता है तथा रोगी जीभ बाहारकर हांफने लगता है। इस रक्तादि धातुक्षय होनेसे भी एक प्रकारका दाह होता है ; इसमें रोगी मूर्च्छित, तृष्णार्त्त, क्षीणस्वर और चेष्टाहीन हो जाता है। उपयुक्त चिकित्सा न करानेसे इस दाहमें मृत्युकी सम्भावना है। अस्त्राघातादि कारणोंसे हृदयादि कोष्ठ रक्तपूर्ण होनेसे भयङ्कर दाह उत्पन्न होता है। मस्तक या हृदय प्रभृति मर्म्मस्थानमें आघात जन्य दाह असाध्य हैं। जिस दाहमें भीतर दाह और बदन ठण्ढा हो वह दाह रोग भी असाध्य है।

चिकित्सा।—दाह रोगमें पेट साफ रखना बहुत जरूरी है ; धनिया २ तोले आधा पाव पानीमें पहिले दिन शामको भिंगोना सवेरे वही पानी मिस्री मिलाकर पीनेसे दाह रोग आराम होता है। गुरिचका रस, खेतपापड़ाका रस दाह नाश करनेमें अकसीर है। ज्वरमें दाह शान्तिका जो सब उपाय लिख आये हैं, दाह रोगमें भी वही सब प्रयोग करना। इसके सिवाय शतधौत घृत या शतधौत घृतमें जौका सत्त मिलाकर बदनमें मलना। पद्म-पत्र या केलेके पत्तेपर सुलाकर चन्दनजलसिक्त पंखेसे हवा करना।

वाला, पद्मकाष्ठ, खस और सफेद चन्दन सबका चूर्ण पानीमें मिलाकर स्नान कराना। चन्दनादि काढ़ा, त्रिफलाद्य कषाय, पर्पटादि काढ़ा, दाहान्तक रस और कांजिका तैल दाह रोगका प्रशस्त औषध है, ज्वर हो तो तैल या घृत मर्द्दन और स्नान मना है।

पथ्यापथ्य।—दाह रोगमें पित्तनाशक द्रव्य भोजन। तिक्त वस्तु खाना अतिशय उपकारी है। मूर्च्छा रोगमें जो सब भोजनविधि लिखा है, ज्वर न रहनेसे वही सब आहार देना। ठंढे पानीसे नहाना, शीतल जल पान, चीनीका सर्बत्, इक्षुका रस, दूध और मखन आदि शीतल द्रव्य व्यवहार करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना है, दाह रोगमें भी वही सब त्याग करना चाहिये।

उन्माद।

—०:०:०—

निदान।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध भोजन, विष-युक्त द्रव्य भोजन, अरुचि द्रव्य भोजन, देव, ब्राह्मण, गुरू आदिकी अवमानना, अत्यन्त भय, हर्ष शोकादि कारणोंसे चित्तमें चोट लगना, विषम भावसे अङ्गविन्यास अर्थात् मुद्रादोष और बलवान मनुष्यसे युद्ध आदि विषम कार्य्योंसे अल्प सत्वगुण विशिष्ट मनुष्योंका वातादि दोषत्रय कुपित हो बुद्धिस्थान, हृदय और मनोवहा नाड़ी-को दूषित करता है, इससे चित्तमें विकृति उपस्थित हो उन्माद रोग उत्पन्न होता है। यह मानसिक रोग है। बुद्धिमें भ्रान्ति,

चित्तमें अस्थिरता, व्याकुल दृष्टि, काममें अस्थिरता, असम्बन्ध वाक्य उच्चारण और हृदय शून्यता, यही सब उन्माद रोगके साधारण लक्षण हैं।

वातज उन्माद लक्षण।—निरन्तर चिन्तासे हृदय दूषित होनेके बाद रूक्ष, शीतल या अल्प भोजन, विरेचन, धातुक्षय उपवास आदि वायु वृद्धिकारक निदान सेवन करनेसे वातज उन्माद पैदा होता है। इस उन्मादमें बिना कारण हसना, नाचना, गाना, बोलना, अङ्ग विक्षेप और रोना यही सब लक्षण लक्षित होता है, तथा रोगीका देह दुबला, रूखा और लालवर्ण होता है। आहार परिपाकके समय यह रोग बढ़ता हैं।

पैत्तिक उन्माद लक्षण।—वैसही चिन्तासे हृदय दूषित होनेपर तथा कटु, अम्ल, उष्ण और जिस द्रव्यका अम्लपाक हो वही सब द्रव्य भोजन और अजीर्णमें भोजन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पैत्तिक उन्माद रोग उत्पन्न होता है। इस उन्मादमें सहिष्णुता, आड़म्बर, वस्त्र पहिरनेको अनिच्छा, तर्ज्जन, गर्ज्जन, जोरसे दौड़ना, बदन गरम, क्रोध, छायेमें बैठना, शीतल वस्तु पान भोजनकी इच्छा और देह पीतवर्ण होना यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

कफज उन्माद लक्षण।—श्रमजनक कार्य्यसे जी ऊबजानेपर अति भोजनादि कफ बढ़ानेवाले निदानसे हृदयका कफ दूषित और पित्त संयुक्त होनेसे कफज उन्माद उत्पन्न होता है। इसमें बोलना और काम काज कम करना, अरुचि, स्त्री सहवासकी इच्छा, निर्ज्जनमें रहनेकी इच्छा, निद्रा, जीमचलाना, लारस्राव, त्वक, मूत्र, चक्षु, नख सफेद होना और आहारके बाद रोग बढ़ना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

त्रिदोषज लक्षण।—अपने वृद्धिकारक कारण समूहोंसे वातादि तीन दोष कुपित होनेसे सन्निपातज उन्माद उपस्थित होता है। इसमें वही तीन दोषजात उन्मादके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। त्रिदोषज उन्माद असाध्य हैं।

शोकज उन्माद लक्षण।—किसी कारणसे डर जाने पर या धनक्षय या वन्धुका नाश अथवा अभिलषित कामिनी प्रभृति न मिलनेसे, मन अत्यन्त आहत हो जो उन्माद रोग उत्पन्न होता है उसको शोकज उन्माद कहते है। इसमें रोगी कर्त्तव्य ज्ञानशून्य हो जाता है, अति गुप्तबात भी प्रकाश कर बैठता है और कभी गीत गाता है, हसता तथा कभी रोता है।

विषज उन्माद लक्षण।—विष या विषाक्त द्रव्य भोजन करनेसे विषज उन्माद पैदा होता है। इसमें रोगीको आंखे लाल, मुख काला, अन्तरमें दीनता, चेतना नाश, बल, इन्द्रिय शक्ति और कान्तिका ह्रास होता है।

सांघातिक लक्षण।—जिस उन्मादमें रोगी सर्व्वदा ऊर्द्ध या अधोमुख रहे और अतिशय कृश, दुर्व्वल, तथा निद्राशून्य हो तो उसकी मृत्यु होनेकी सम्भावना है।

भूतोन्माद।—उक्त कई प्रकारके उन्मादके सिवाय भूतोन्माद नामक एक प्रकारका उन्माद है। मनुष्य शरीरमें ग्रहोंके आवेशसे भूतोन्माद उत्पन्न होता है। दर्पण आदिका प्रतिविम्ब या जीव शरीरमें जीवात्मा प्रवेशको तरह ग्रहगण भी रोगीके शरीरमें अदृश्य भावसे प्रविष्ट हो स्व जाति विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण प्रकाश करते है। देव ग्रहोंको पूर्णिमा तिथि, आसुरग्रहोंको प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या, गन्धर्व्वग्रहोंको अष्टमी, यक्षग्रहोंकी प्रतिपद, पितृग्रहोंको अमावस्या, नागग्रहोंको

पञ्चमी, राक्षसोंकी रात और पिशाचोंकी चतुर्द्दशी तिथि मनुष्य शरीरमें प्रवेश करनेका दिन है। भूतोन्माद रोगमें रोगीकी वक्तृता-शक्ति, बल, विक्रम, तत्वज्ञान और शिल्पज्ञानादि अमानुषिक भावसे वर्द्धित होता है। यह भूतोन्मादका साधारण लक्षण है।

देव, असुर, गन्धर्व्व, यक्ष, पितृ और ग्रहज उन्माद लक्षण।—देवग्रहजनित उन्माद रोगमें रोगी सर्व्वदा सन्तुष्ट, शुद्धाचार दिव्यमालाकी तरह शरीर गन्धविशिष्ट, तन्द्रा-युक्त, संस्कृत भाषी, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि, वरदाता और ब्राह्मणानुरक्त होता है।

असुर ग्रहजमें रोगी घर्म्माक्त देह, देव, द्विज, गुरु आदिका दोष भाषी, कुटिल दृष्टि, निर्भीक, दुष्टाचारी और प्रचुर पान भोजन करने पर भी तृप्त नहीं होता। गन्धर्व्व ग्रहजमें रोगी प्रसन्न चित्त नदी तीर या वनमें विचरणशील, सदाचारी, सङ्गीत-प्रिय, गन्धमाल्यादिमें अनुरक्त और मृदु मधुर हसते हसते मनोहर नृत्य करता है। यक्षग्रहजमें रोगीका नेत्र लाल, लाल वस्त्र पहिरनेकी इच्छा, गम्भीर प्रकृति, द्रुतगामी, अल्पभाषी, सहिष्णु और तेजस्वी होता है, तथा सर्व्वदा किसको क्या दान करें यही कहता फिरता है। पितृ ग्रहजमें रोगी शान्तचित्त हो पितरोंका श्राद्ध तर्पणका अभिनय करता है, पितृभक्त तथा मांस, तिल, गुड़, पायस आदि भोजनकी इच्छा होती है। नागग्रहज रोगमें रोगी कभी कभी सर्पकी तरह पेटके बलसे चलता है और जीभसे ओष्ठ बारम्बार चाटता है, तथा इस रोगमें रोगी क्रोधी और गुड़, सहत, दूध आदि द्रव्य खानेको मांगता है। राक्षस ग्रहजमें रोगी मांस, रक्त, मद्य प्रभृति भोजनका अभिलाषी, अत्यन्त निर्लज्ज, अतिशय निष्ठुर, अति बलवीर्य्यशाली, क्रोधी, कदाचारी और

रातको फिरना चाहता है। पिशाचदुष्ट उन्मादमें रोगी ऊर्द्धबाहु, उलङ्ग, कृश, रूक्षदेह, सर्व्वदा प्रलापभाषी, गात्र दुर्गन्धयुक्त, अत्यन्त अशुचि, भोज्य बस्तुमें अति लोभी, अति भोजनशील, निर्ज्जन वनमें भ्रमणकारी और विरुद्ध आचरणशील होता है तथा सर्व्वदा रोता और इधर उधर घूमता रहता है।

साध्यासाध्य।—जिस भूतोन्माद रोगीकी दोनो आंखे चढ़ी, चञ्चल, फेन लेहनकारी, निद्रालु और कांपती रहती है, अथवा किसी ऊंचेस्थानसे गिरकर यदि ग्रहोंके द्वारा आविष्ट हो तो पोड़ा असाध्य जानना। १३ वर्ष तक उन्माद रोग अचिकित्सित रहनेसे सब प्रकारका उन्माद रोग असाध्य होजाता है।

चिकित्सा।--वातिक उन्माद रोगमें स्नेहपान, पैत्तिकमें विरेचक और श्लैष्मिक उन्मादमें शिरोविरेचन अर्थात् नस्य सुंघ कर कफ निकालना हितकारी हैं। रोज सबेरे पुराना घी पान करनेसे उन्माद रोगमें विशेष उपकार होता है। शिरीषफूल, लहसन, शोंठ, सफेद सरसो, बच, मजीठ, हलदी और पोपल यह सब द्रव्य पीसकर गोली बनाना, गोली छायामें सुखाकर पानीमें घिसकर नासलेना। इसका अञ्जन भी कर सकते हैं। तर्ज्जन, ताड़न, भयोत्पादन, वाञ्छित द्रव्य देना, सान्त्वना वाक्य, हर्षोत्पादन और विस्मित करना उन्माद रोगमें विशेष उपकारी है। पुराने सफेद कोंहड़ेको पीसकर सहत्में मिलाकर सेवन कराना। गौरईया (चटक) का छोटा बच्चा जिसको पङ्ख नहो निकला है। उसका मांस दूधमें पीसकर पिलाना। पोपल, गोलमिरच, सेंधानमक और गोलोचन समभाग सहतमें मिलाकर अञ्जन करना। सफेद सरसो, हींग, बच, डहरकरञ्ज, देवदारू, मजीठ,

हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, सफेद अपराजिता, लताफटकी की छाल, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, प्रियङ्गु, शिरीषकी छाल, हलदी और दारुहलदी, समभाग छाग दूधमें पीसकर पान, नस्य, अञ्जन, और लेपमें व्यवहार करना, या पानीमें मिलाकर स्नान कराना, तथा उक्त द्रव्योंका कल्क बनाकर गोमूत्रके साथ विधिपूर्व्वक घीसे पाककर पीनेसे उन्माद रोग आराम होता है। देवग्रह, गन्धर्ब्व-ग्रह या पितृग्रहसे आविष्ट होनेपर किसी तरहका क्रूर कर्म्म, या तेज अञ्जन आदि प्रयोग करना उचित नही हैं। सारस्वत चूर्ण, उन्माद गजाङ्कुश, उन्माद भञ्जन रस, भूताङ्कुश रस, चतुर्भूज रस और वातव्याधि रोगोक्त चिन्तामणि, वातचिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्म्मुख आदि औषध और पानीयकल्याणक घृत, चैतसघृत, महापैशाचिकघृत, नारायण तैल, महानारायण तैल, मध्यमनारायण तैल, हिमसागर और विष्णु तैल आदि बिचारकर प्रयोग करनेसे उन्मादरोग आराम होता है।

पथ्यापथ्य ।—जिस आहार विहारसे वायु शान्त हो पेट साफ रहे और शरीर चिकना हो वही सब आहार विहार उन्माद रोगीका पथ्य है। उन्माद रोगीको पानी और अग्निके पास या किसी उंचे स्थानपर रखना उचित नही है। मूर्च्छा रोगमें जो सब पानाहारके नियम लिख आये है उन्मादमें भी वही पालन करना चाहिये ।

अपस्मार।

अपस्मारका लक्षण और निदान।—अपने अपने निदानके अनुसार वायु पित्त और कफ, अत्यन्त कुपित होनेसे अपस्मार रोग उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको "मिरगी" कहते हैं। ज्ञानशून्यता, दोनो आंखोंको विकृति, मुखसे फेन वमन और हाथ पैर पटकना यही कई एक अपस्मार रोगका साधारण लक्षण है। अपस्मार रोग उत्पन्न होनेके पहिले हृदय कम्पन, और शून्यता, पसीना निकलना, अत्यन्त चिन्ता, मोह, निद्रानाश यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अपस्मार चार प्रकार वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। अपस्मार रोग रोज प्रकाशित न होकर १२ दिन १५ दिन या १ मास अथवा उससे भी कमी वेशी दिनके अन्तर पर प्रकाशित होता है।

वातज लक्षण।—वातज अपस्मारमें कम्प, दांती लगना, फेन वमन और श्वास जोरसे चलती है, तथा रोगी चारो तरफ काला या अरुणवर्ण रूखा देह आदि नाना प्रकारकी मिथ्या मूर्त्ति देखता है। पित्तजमें शरीर गरम, प्यास, मुख, आंख मुखका फेन पीतवर्ण और रोगीको सब बस्तु पीत या लोहित वर्ण अथवा चारो तरफ पीला या लोहित वर्ण युक्त मिथ्यारूप दिखाई देता है, तथा सारा जगत अग्निसे वेष्टित उसको मालूम होता है।

कफज लक्षण।—कफज अपस्मारमें रोगीका मुख, आंख और मुखका फेन सफेद रङ्ग, बदन शीतल, भारी और रोमाञ्चित होता है तथा चारो तरफ श्वेतवर्ण मिथ्या मूर्त्ति दिखाई देता है। वातज पित्तजकी अपेक्षा इसमें देरसे होशमें आता है।

यही तीन दोषजात अपस्मारके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होनेसे उसको सन्निपातज अपस्मार कहते है।

सन्निपातज लक्षण।—सन्निपातज अपस्मार क्षीण व्यक्तिका अपस्मार और पुराना अपस्मार असाध्य है। अपस्मार रोगमें बार बार भौंका फरकना और नेत्र विकृति; यही सब लक्षण लक्षित होनेसे रोगीको मृत्यु होती है।

योषापस्मार या हिष्टिरिया।—गर्भाशयको विकृति, रजःस्रावका अभाव या कमी, स्वामीसे अस्नेह, निष्ठुराचरण या इन्द्रिय चरितार्थ शक्तिकी कमी, वैधव्य आदि नानाविध शोकादिसे मनःपीड़ा, देहमें खूनका आधिक्य या कमी, मलबद्धता, अजीर्ण आदि कारणोंसे युवती स्त्रीको भी एक प्रकारका अपस्मार रोग उत्पन्न होता है, इसको संस्कृतमें योषापस्मार और अङ्गरेजीमें "हिष्टिरिया" कहते है।

हिष्टिरिया लक्षण।—यह रोग उपस्थित होनेसे पहिले छातीमें दर्द, जृम्भा शारीरिक और मानसिक ग्लानि प्रकाश हो संज्ञानाश होता है। अपस्मार रोगकी तरह इसमें भी फेन वमन और आंखका तारा बड़ा नही होता। किसीको अकारण हसी, रोदन, चिल्लाना, आत्मीयगणोंपर वृथा दोषारोप और अपनेको वृथा अपराधी समझ दूसरेसे क्षमा प्रार्थना आदि विविध भ्रान्ति लक्षण भी दिखाई देता है। अकसर लोग यह लक्षण देखकर भूतावेशका अनुमान करते है। किसी किसी रोगिणीको पेटके नीचेसे एक गोला उपरको उठता हुआ मालूम होता है तथा शरीरके किसी स्थानमें दर्द मालम होता है इसमें सफेद उजियाला देखने या ऊंची आवाज सुननेसे चमक उठती है और पुरुष सङ्गको अतिरिक्त इच्छा होती है।

चिकित्सा।—रोग प्रकाश होते ही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो थोड़े दिन जानेसे यह रोग प्राय: असाध्य हो जाता है। इसमें होश लानेके लिये मूर्च्छा रोगकी तरह आंख और मुखमें पानीका छीटा देना। इससे होश न आनेपर मैनसिल, रसाञ्जन, कबूतरका बीठ, सहतमें मिला आंखमें लगाना। जेठीमध, हींग, बच, तगरपादुका, शिरीष बीज, लहसन और कूठ गोमूत्रमें पीसकर अञ्जन या नास लेना। यह दो अञ्जन और नास उन्माद रोगमें भी उपकारी है। जटामांसीका नास या धूम लेनेसे पुराना अपस्मार भी आराम होता है। फांसी लगा मरनेवाले मनुष्यके गलेको रस्सीका भस्म ठण्ढे पानीके साथ मिलाकर पीनेसे अपस्मारमें उपकार होता है। रोज सहतके साथ एक आनाभर बचका चूर्ण चाटकर दुग्धान्न भोजन, सफेद कोहड़ेके पानीमें जेठीमध पीसकर सेवन और दशमूलका काढ़ा पीनेसे अपस्मार रोग आराम होता है। कल्याण चूर्ण, वातकुलान्तक, चण्डभैरव रस, स्वल्प और वृहत् पञ्चगव्य घृत, महाचैतस घृत, ब्राह्मी घृत, पलकषाद्य तैल, और मूर्च्छारोग तथा वातव्याधिमें लिखे औषध, घृत और तैलादि दोषप्रकोपादिका विचारकर अनुपान विशेषके साथ अपस्मार रोगमें देना चाहिये।

योषापस्मारमें भी मूर्च्छा रोगकी तरह उपाय अवलम्बन करना। फिर मूर्च्छा और अपस्मार रोगोक्त औषध, घृत और तैल प्रयोग करना। रजो लोप होनेसे रक्तस्रावका उपाय करना चाहिये। हमारा "मूर्च्छान्तक तैल" और "कुमुदासव" योषापस्मारकी श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य।—मूर्च्छा और उन्माद रोगके पथ्यापथ्यकी तरह इसमें भी पालन करना।

वातव्याधि।

---०---

निदान।—रूक्ष, शीतल, लघु या अल्प भोजन, अतिशय मैथुन, अधिक रात्रि जागरण, अतिशय वमन विरेचनादि सेवन, अधिक रक्तस्राव, साध्यातीत उल्लम्फन, अधिक तैरना, चलना या कसरत; शोक, चिन्ता किम्वा रोगादिसे धातुक्षय होना, मल-मूत्रादिका वेग रोकना, चोट लगना, उपवास और किसी तेज सवारीसे गिर जाना प्रभृति कारणोंसे वायु कुपित हो वातव्याधि रोग उत्पन्न होता है। वायु विकारको गिनती नही है। शास्त्रमें ८० प्रकारका वातव्याधि लिखा है पर सबका नाम नही पाया जाता, इससे शास्त्रमें वायुरोग जितने प्रकारके कथित हैं हम यहां उतनेही प्रकारके नाम और लक्षण आदि लिखते है, बाकीके नाम निर्द्दिष्ट न रहनेपर भी विचार पूर्व्वक वायु नाशक चिकित्सा करना चाहिये। कई प्रकारके वातव्याधिमें कफ और पित्तका विशेष संस्रव रहता है, चिकित्साके समय इसका भी विचार कर वही दोष नाशक औषध देना चाहिये।

आक्षेप, अपतन्त्रक और अपतानक लक्षण।—कुपित वायु नाड़ी समूहोंमें रहकर शरीरको बार बार इधर उधर फिरावे तो उसको आक्षेप वातव्याधि कहते है। जिस रोगमें वायु हृदय, मस्तक, और ललाटमें पीड़ा पैदाकर देहको धनुषकी तरह नीचा और टेढ़ा करे उसको अपतन्त्रक कहते है। इस रोग में रोगी मूर्च्छित, निर्निमेष या निमीलित चक्षु और संज्ञाहीन हो जाता है तथा कष्टसे श्वास और कबूतरके तरह शब्द निकलता है। जिसमें दृष्टिशक्तिका नाश, संज्ञालोप और कण्ठसे अव्यक्त शब्द

निकलता है उसको अपतानक कहते है। इस रोगमें वायु जब हृदयमें जाता है तभी संज्ञानाश आदि रोग प्रकाशित होता है तथा हृदयसे हट जानेपर रोगी स्वस्थ होता है। कुपित वायु कफके साथ मिलकर समुदय नाड़ीको अवलम्बन कर जब दण्डको तरह शरीरको स्तम्भित और आकुञ्चितादि शक्तिको नष्ट करता हैं तब उसको दण्डापतानक कहते हैं। जिस रोगमें देह धनुषको तरह टेढ़ा होता है उसको धनुस्तम्भ कहते है। अन्तरायाम और वहि-रायाम भेदसे धनुस्तम्भके दो प्रकार है। अति कुपित वेगवान वायु अङ्गली, गुल्फ, जठर, वक्षस्थल, हृदय और गलेकी स्नायु समूहोको खोचनेसे रोगोका गर्दन सामनेको तरफ नोचा हो जाता है इसको अन्तरायाम कहते हैं। इसमें रोगोको आंख स्तब्ध, चहुआ बन्द होकर पार्श्वद्वय टूट पड़ता है और कफ निकलता है। वही वायु पोठके स्नायु समूहोको खोचनेसे रोगी पोठको तरफ टेढ़ा हो जाता है इसको वहिरायाम कहते है। वहिरायाममें छातो, कमर और जङ्घा टूटनेका तरह मालूम होता हैं; यह प्रायः असाध्य है। गर्भपात, अधिक रक्तस्राव या चोट लगना आदि कारणोंका धनु-स्तम्भादि रोग असाध्य जानना।

पक्षाघात या एकाङ्ग वात लक्षण।—कुपित वायु देहके आधे भागमें फैलनेसे उस भागको नाड़ो और स्नायु समूह सङ्कुचित या सूख जाने तथा सन्धिस्थान टूटनेसे वह भाग बेकाम हो जाता है; इस रोगको पक्षाघात (लकवा) या एकाङ्ग वात कहते है। यह रोग दो प्रकारका होते देखा गया है, किसीके बायें या दहिने भागके एक भागमें और किसोके कमरके उपर या नोचेके किसी भागमें उत्पन्न होता है। पक्षाघात रोगमें वायुके साथ पित्तका अनुबन्ध रहनेसे दाह, सन्ताप और मूर्च्छा; तथा कफका

अनुवन्ध रहनेसे पीड़ित अङ्गमें शीतलता, शोथ और अङ्गोंकी गुरुता आदि लक्षण लक्षित होता है। पित्त या कफका अनुबन्ध न रहनेसे केवल वायुसे पक्षाघात उत्पन्न हो तो वहभी असाध्य जानना। शरीरके आधे भागमें न होकर सर्व्वाङ्गमें यह पीड़ा होनेसे उसको सर्व्वाङ्ग रोग कहते है।

अर्द्दित लक्षण।—सर्व्वदा जोरसे बोलना, कठिन द्रव्य चिबाना, हंसना, जम्हाई लेना, भार वहन तथा विषम भावसे शयनादि कारणोंसे वायु कुपित हो मुखका अर्द्धभाग और गर्द्दनको टेढ़ा कर शिर:कम्प, वाक्यरोध और नेत्रादिमें विकृति उत्पादन करता है; इसको अर्द्दित रोग कहते है। मुखके जिस तरफ अर्द्दित रोग पैदा होता है उस तरफ गर्द्दन, डाढ़ा और दांतमें दर्द होता है। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे लालास्राव, दर्द, कम्प, फरकन, हनुस्तम्भ (चहुआ बैठना) वाकरोध, ओष्ठद्वयमें शोथ और शूलको तरह दर्द होता है। पित्तके आधिक्यसे मुख पीला, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा और दाह यही सब उपसर्ग दिखाई देता है। कफके आधिक्यसे गाल, मस्तक, और मन्या (गरदनकी शिरा) में शोथ और स्तब्धता होता है। जो अर्द्दित रोगी क्षीण, निमिषशून्य, अति कष्टसे अव्यक्तभाषी और कांपताहो अथवा जिसका रोग ३ वर्षका पुराना हो गया है ऐसे रोगीके आराम होनेकी आशा नही रहती।

हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ शिराग्रह और गृध्रसी लक्षण।—दतुवनसे बाद जीभी करते समय या कड़ी वस्तु चिबानेपर किम्बा किसी तरहसे चोट लगनेपर हनुमूलका वायु कुपित हो हनुद्वय (दोनो चहुआ) को शिथिल करता है इससे मुख बन्द हो जाता है, खुलता नही, अथवा खुला रहनेपर

बन्द नही होता, इसको हनुग्रह कहते हैं। दिवा निद्रा, विषम भावसे गरदन रखना विकृत या ऊर्द्ध नेत्रसे देखना आदि कारणोंसे कुपित वायु कफयुक्त हो मन्या अर्थात् गरदनकी दोनो नाड़ियोंको स्तम्भित करता है, इससे गरदनका इधर उधर फिरना बन्द हो जाता है इस रोगको मन्याग्रह कहते है। कुपित वायु वाग्वाहिनो शिरामें जानेसे जिह्वास्तम्भ रोग उत्पन्न होता है। इसमें रोगीका खाना पीना और बोलना बन्द हो जाता है। गरदनके नाड़ियोमें कुपित वायु जानेसे शिरायें सब रुखी, वेदनायुक्त और कृष्णवर्ण होता है तथा रोगी शिर हिलाडुला नही सकता। इसको स्वभावतः ही असाध्य जानना। जिस वातव्याधिमें पहिले स्फिक (चूतड़) फिर क्रमशः कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जङ्घा और पैरोंकी स्तब्धता, वेदना और सूई गड़ानेकी तरह दर्द हो तो उसको गृध्रसी वात कहते है, इसमें वाताधिक्य रहनेसे बार बार स्पन्दन तथा वायु और कफ दोनोके आधिक्यसे तन्द्रा, देहका भारीपन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। वायुके पोछेकी तरफसे अङ्गुली तक जो सब नाड़ी विस्तृत है, वायुसे वह सब शिरायें दूषित होनेसे, वाहु अकर्म्मण्य अर्थात् आकुञ्चन प्रसारणादि क्रियाशून्य होता है, इसको विश्वची रोग कहते है। कुपित वायु और दूषित रक्त दोनो मिलकर जङ्घोमें सियारके शिरकी तरह एक प्रकार शोथ पैदा होता है, इसको क्रोष्टूकशोर्ष कहते है। कमरका कुपित वायु यदि एक पैरके उपर जङ्घाकी बड़ी शिराको तानेतो खञ्ज और दोनो पैरके जङ्घाकी बड़ी शिरायोंको तानेतो पङ्गुरोग उत्पन्न होता हैं। चलती वक्त यदि पैर कांपेतो उसको कलाय खञ्ज कहते है। इस रोगमें सन्धि समूह शिथिल हो जाता है। असम अर्थात् नोचे उपर पैर रखना या अधिक परिश्रमसे स्नायु

कुपित हो गुल्फमें दर्द पैदा हो तो उसको वातकण्टक कहते है। सर्व्वदा भ्रमण करनेसे पित्त, रक्त और वायु कुपित होनेसे पाददाह नामक रोग उत्पन्न होता है। दोनो पैर स्पर्शशक्तिहीन, बार बार रोमाञ्चित, झिन झिन और दर्द हो तो उसको पादहर्ष कहते है, साधारण झिन झिनके अपेक्षा इस रोगकी तकलीफ देरतक रहती है। वायु और कफ ये दो दोष कुपित हो कन्धेका वन्धन सुखावेतो अंसशोष रोग होता है, यह केवल वातज है। फिर वही कन्धका कुपित वायु शिरा समूहोको सङ्कुचित करनेसे अवबाहुक रोग उत्पन्न होता है। वायु और कफ ये दो दोषसे अवबाहुक रोग पैदा होता है। कफसंयुक्त वायु शब्दवाहिनी धमनी समूहोको दूषित करनेसे मनुष्य गुंगा, नाकसे बोलना या तोतला भाषी होता है। जिस रोगमें मलाशय या मूत्राशयसे लेकर गुह्यदेश, लिङ्ग या योनि तक फाड़नेकी तरह दर्द हो तो उसको तूणी तथा वही दर्द पहिले गुह्य, लिङ्ग या योनिसे उठकर प्रवल बेगसे पाकाशयमें जाय तो उसको प्रतितूणी कहते है। पाकाशयमें वायु बन्द रहनेसे उदर स्फीत, वेदनायुक्त और गुड़ गुड़ शब्द हो तो उसको आध्मान रोग कहते है। वही दर्द पाकाशयमें न हो आमाशयसे उठे और पेट या पार्श्वद्वय स्फीत न होतो उसको प्रत्याध्मान कहते है। कफसे वायु आवृत होनेसे प्रत्याध्मान रोग उत्पन्न होता है। नाभिके नीचे पत्थरके टुकड़ेकी तरह कठिन, उपरकी तरफ फैला हुआ, उंचा तथा सचल या अचल ग्रन्थि विशेष उत्पन्न होनेसे उसको अष्ठीला कहते है। अष्ठीला टेढ़ी होतो उसको प्रत्यष्ठीला कहते है। ये दोनो रोगमें मलमूत्र और वायु बन्द हो जाता है। सर्व्वाङ्ग विशेषकर मस्तक कांपनेसे उसको वेपथु तथा पैर, जङ्घा, ऊरू और करमूल मुरक जानेसे खल्वी कहते है।

साध्यासाध्य।—सब प्रकारका वातव्याधि कष्टसाध्य है; रोग उत्पन्न होते ही विधिपूर्ब्बक चिकित्सा न करनेसे प्राय: असाध्य होजाता है। पक्षाघात (लकवा) आदि वातव्याधिके साथ विसर्प, दाह, अत्यन्त वेदना, मलमूत्रका रोध, मूर्च्छा, अरुचि, अग्निमान्द्य; अथवा शोथ, स्पर्श शक्तिका लोप, अङ्ग भङ्ग, कम्प, उदराध्मान प्रभृति उपद्रव मिला रहनेसे और रोगीका बल मांस क्षीण होनेसे प्राय: आराम होनेकी आशा नही रहती है।

चिकित्सा।—घृत तैलादि स्नेह प्रयोग ही सब प्रकारके वातव्याधिकी साधारण चिकित्सा है। अपतन्त्रक और अपतानक आदि रोगोंमें होशमें लानेके लिये तेज नास लेना उचित है। गोलमरिच, सैजनकी बीज, विड़ङ्ग और तुलसीका छोटा पत्ता समान भाग चूर्णकर नास लेनेसे अपतन्त्रक आदि रोगमें होश आता है। बड़ीहर्र, चाभ, रास्ना, सेन्धानमक और थेकल; इन सबका चूर्ण अदरखके रसमें मिलाकर पीनेसे अपतन्त्रक रोग आराम होता है। अपतानक रोगमें दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना, भोजनके पहिले गोलमरिचका चूर्ण खट्टे दहीमें मिलाकर पीना अपतानक रोगमें उपकारी है। पक्षाघात रोगमें उरद, कंवाचकी जड़, एरण्ड मूल और बरियाराके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिलाकर पिलाना। पीपलामूल, चितामूल, पीपल, सोंठ, रास्ना, और सैन्धव इन सबका कल्क और उरदके काढ़ेके साथ यथाविधि तैल पाककर मालिश करना। अथवा उरद, कंवाचकी जड़, अतीस एरण्डमूल, रास्ना सोवा और सेंधानमक इन सबका कल्क और तैलका चौगूना उड़द और बरियाराका काढ़ा अलग अलग तैलमें पाककर मालिश करना। अर्दित रोगमें मुख खुला रहनेसे दोनो अङ्गूठेसे हनु

और दोनो तर्ज्जनीसे डाढ़ो दबाकर मुख बन्द करना। हनु शिथिल हो जानेसे ज्योंका त्यों रहने देना। मुख स्तब्ध हो जानेसे स्वेद देना उचित है। लहसन कूटकर मखनके साथ खानेसे अर्द्दित रोग आराम होता है। बरियारा, उड़द, कवांचकी जड़, गन्धतृण और एरण्डमूल इन सबका काढ़ा पीनेसे और वही काढ़ेकी नास लेनेसे अर्द्दित, पक्षाघात और विश्वची रोग आराम होता है। मन्या-स्तम्भ रोगमें कुक्कुट डिम्बके द्रव भागमें लवण और घी मिला गरमकर ग्रीवामें मालिश करना। अश्वगन्धाकी जड़का प्रलेप देनेसे और सरसोंका तेल मालिश करनेसे मन्यास्तम्भ आराम होता है। वाग्वाहिनी शिरा विकृत होनेसे, घृत तेल प्रभृति स्नेह पदार्थका कुल्ला उपकारी है। विश्वची और अववाहुक रोगमें दशमूल, बरि-यारा और उड़द इन सबके काढ़ेमें तेल और घृत मिलाकर रात्रि भोजनके बाद नास लेना। वाहुशोष रोगमें सांखनके साथ दूध औटाकर पान करना। गृध्रसी रोगमें हलकी आंचपर निर्गुण्डीका काढ़ा बनाकर पिलाना। एरण्डमूल, बेलकी छाल, वृहती और कण्टकारी इन सबका काढ़ा सोचल नमक मिलाकर पीनेसे गृध्रसीजन्य वङ्क्षण वस्तिका स्थायी दर्द आराम होता है। त्रिफलेके काढ़ेके साथ एरण्ड तेल मिलाकर पीनेसे गृध्रसी और उरुस्तम्भ आराम होता है। दशमूल, बरियारा, रास्ना, गुरिच और शोंठ इसके काढ़ेके साथ एरण्ड तेल मिला पान करनेसे गृध्रसी, खञ्ज और पङ्गुरोग आराम होता है।

आध्मान रोगमें पीपलका चूर्ण २ तोले, त्रिवृतके जड़का चूर्ण ८ तोले, चीनी ८ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सहतके साथ सेवन करना। देवदारु या कूठ, सोवा, हींग और सेंधा नमक कांजीमें पीस गरम कर लेप करनेसे शूल और आध्मान रोग आराम होता है। प्रत्याध्मान रोगमें वमन, लङ्घन, अग्नि-

दीपक, पाचक औषध प्रयोग और पिचकारी देना उपकारी है। शिराग्रह या शिरोग्रह रोगमें दशमूलका काढ़ा और बड़े नीबूके रसमें तैल पाककर मालिश करना। अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला रोगकी चिकित्सा गुल्म रोगकी तरह करना। तूणी और प्रतितूणी रोगमें स्नेह पिचकारी देना उचित है हींग और जवक्षार मिला गरम घी पान करना। खल्वी रोगमें तेलके साथ कूठ, सेंधानमक और चुक मिला गरम कर मालिश करना। वातकण्टक रोगमें जोंक प्रभृतिसे रक्त मोचन, एरण्ड तैल पान और गरम लोहेसे पीड़ित स्थानमें दागना उचित है। क्रोष्टुकशीर्ष और पाददाह रोगकी चिकित्सा वातरक्त रोगकी तरह करना। मसूर और उड़दका आटा पानीमें औटाकर लेप करनेसे पाददाह रोग शान्त होता हैं अथवा दोनो पैरमें मखन मालिश कर सेंक करना। पादहर्ष रोगमें कुब्ज प्रसारिणी तैल मालिश उपकारी है।

शास्त्रीय औषध और तैलादि।—सब प्रकारके वातव्याधिमें तैल मर्द्दन करना प्रधान चिकित्सा है। तैलकी उपकारिता और रोगकी अवस्था विचारकर स्वल्प विष्णुतैल, वृहत् विष्णु तैल, नारायण तैल, मध्यम नारायण तेल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, माषवलादि तैल, सैन्धवाद्य तेल, महानारायण तैल, सिद्धार्थक तैल, हिमसागर तैल, पुष्पराज प्रसारिणी तैल, कुब्ज प्रसारिणी तैल और महामाष तैल आदि प्रयोग करना। सेवनके लिये रास्नादि काढ़ा, माषवलादि काढ़ा, कल्याणावलेह, स्वल्प रसोनपिण्ड, त्रयोदशाङ्ग-गुग्गुलु, दशमूलाद्य घृत, छागलाद्य और वृहत् छागलाद्य घृत, चतुर्म्मुख रस, चिन्तामणि रस, वातगजाङ्कुश, वृहत् वातगजाङ्कुश, योगेन्द्र रस, रसराज रस, चिन्तामणि रस, वृहत् वातचिन्तामणि रस आदि औषध विचारकर प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।---वातव्याधि मात्रमें स्निग्ध और पुष्टिकर आहारादि उपकारी है। मूर्च्छारोगमें पानाहार जो सब कह आये है वही सब और रोहित मछलीका शिर और मांस रस प्रभृति पुष्टिकर द्रव्य भोजन कराना। स्नानादि मूर्च्छा रोगके नियमानुसार करना चाहिये। केवल पक्षाघात (लकवा) रोगमें कफका संस्रव रहनेसे अथवा और कोई वातव्याधिमें कफका उपद्रव या ज्वरादि हो तो गरम पानीसे कदाचित् स्नान करना चाहिये तथा यावतीय शीतलक्रिया परित्याग करना चाहिये। मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना किया है, साधारण वातव्याधि में भी वही सब मना है।

वातरक्त।

निदान।—अतिरिक्त लवण, अम्ल, कटु, चिकना, गरम, कच्चा या देरसे हजम होनेवाला पदार्थ भोजन, जलचर और आनूपचर जीवका सूखा या सड़ा मांस भोजन, अधिक मांस भोजन; उरद, कुरथी, तिल, मूली, सोम, उखका रस, दही, कांजी, शराब आदि द्रव्य भोजन; संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन, क्रोध, दिवा निद्रा और रात्रि जागरण, यही सब कारण तथा हाथी, घोड़ा, या ऊंटके सवारी पर अतिरिक्त भ्रमण आदि कारणोंसे रक्त गरम हो कुपित वायुसे मिलकर वातरक्त रोग पैदा होता है। यह रोग पहिले पादमूल या हस्तमूलसे आरम्भ हो फिर मुषिक विषकी

तरह क्रमशः सर्व्वाङ्गमें व्याप्त होता है। वातरक्त प्रकाशित होनेसे पहिले बहुत पसीना निकलना या एकदम पसीना बन्द होना, जगह जगह काला काला दाग और शून्यता, किसी कारणसे कहीं घाव होनेपर उसका जलदी आराम न होना और दर्द, गांठोंकी शिथिलता, आलस्य, अवसन्नता, जगह जगह फोड़िया निकालना और जानु, जङ्घा, ऊरु, कमर, कन्धा, हाथ, पैर, तथा सन्धिसमूहों में सूचि विद्धवत् दर्द, फरकन, फाड़नेकी तरह कष्ट, भारबोध, स्पर्श शक्तिकी अल्पता, खजुली, सन्धियोंमें बार बार दर्दका पैदा होना और बदनपर चिंटी चलनेकी तरह मालूम होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

भिन्न भिन्न प्रकारके लक्षण।—वातरक्तमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे, शूल, स्फुरण, भङ्गवत् पीड़ा, रूक्ष शोथ, शोथ स्थानका काला या श्यावबर्ण होना, पीड़ाके सब लक्षण ही कभी अधिक कभी कम; नाड़ी, अङ्गुली और सन्धियोंका सङ्कोच, अङ्ग वेदना, अत्यन्त यातना, शीतल स्पर्शादिसे द्वेष और अनुपकार, शरीरकी स्तब्धता, कम्प, स्पर्शशक्तिकी कमी, यही सब लक्षण लक्षित होता है। रक्तका प्रकोप अधिक रहनेसे ताम्रवर्ण शोथ, उसमें कण्डु और क्लेद, स्राव, अतिशय दाह और सूची विद्धवत् वेदना, स्निग्ध और रूक्षक्रियासे रोगका शान्त न होना। पित्तके आधिक्यसे दाह, मोह, पसीना आना, मूर्च्छा, मत्तता और तृष्णा होती है। शोथ स्थान छूनेसे दर्द, शोथ रक्तवर्ण और दाहयुक्त, स्फोत, पाक और उष्माविशिष्ट होता है। कफके आधिक्यमें स्तैमित्य, गुरुता, स्पर्शशक्तिकी अल्पता, सर्व्वाङ्ग चिकना, शीतल स्पर्श, खजुली और थोड़ा दर्द होता है। दो दोष या तीन दोषके आधिक्यसे वही सब दोष मिले हुये मालूम होता है।

साध्यासाध्य।—एक दोषजात और थोड़े दिनका वातरक्त साध्य तथा रोग एक वर्षका होनेसे याप्य होता है। इसके सिवाय द्विदोषज वातरक्त भी याप्य है। त्रिदोषज वातरक्त रोगमें निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांस पचन, शिरोवेदना, मोह, मत्तता, व्यथा, तृष्णा, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, हिक्का, पंगुता, विसर्प, शोथका पकना, सूची विद्धवत् अत्यन्त यातना, भ्रम, क्लान्ति, अङ्गुलियोंका टेढ़ा होना, स्फोटक, दाह, मर्म्मवेदना और अर्व्बुद यही सब उपद्रवयुक्त अथवा केवल मोह उपद्रवयुक्त वातरक्त असाध्य है। जिस वातरक्तमें पादमूलसे जानुतक पीड़ा व्याप्त रहती है, त्वक् दलित और विदीर्ण होता है, वह भी असाध्य जानना।

चिकित्सा।—वातरक्त रोगका पूर्व्वरूप प्रकाशित होते ही चिकित्सा करना चाहिये, नहीं तो सबरूप प्रकाशित होनेसे प्रायः असाध्य हो जाता है। जिस स्थानकी स्पर्शशक्ति नष्ट हो गई है वहां जोंक लगाकर या किसी अस्त्रसे काटकर रक्त निकालना चाहिये। अङ्ग सूख जानेपर या वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे रक्त निकालना उचित नहीं है। स्नेहयुक्त विरेचक औषध और स्नेह द्रव्यकी पिचकारी देना वातरक्तमें हितकारी है। विरेचकके लिये तीन या पांच अथवा रोगीके बलके अनुसार उससेभी अधिक या कम बड़ी हर्र पुराने गुड़के साथ पीसकर खिलाना चाहिये। अमिलतासकी गूदी, गुरिच और अडूसेकी छालके काढ़ेके साथ रेड़ीका तेल पीनेसे विरेचन हो वातरक्त रोग आराम होता है। किसी स्थानमें दर्द रहनेसे गृहधूम, बच, कूठ, सोवा, हरिद्रा और दारुहरिद्रा एकत्र दूधमें पीसकर लेप करनेसेभी वातरक्त शान्त होता है। काढ़ा, कल्क, चूर्ण या रस चाहे जिस उपायसे गुरिचका सेवन वातरक्तमें उपकारी है। अमृतादि, वासादि,

नवकार्षिक और पटोलादि काढ़ा, निम्बादि चूर्ण, कैशोर-गुग्गुलु, रसाभ्र गुग्गुलु, वातरक्तान्तक रस, गुड़ूच्यादि लौह, महा-तालेश्वररस, विश्वेश्वररस, गुड़ूचीघृत, अमृताद्य घृत, वृहत् गुड़ूच्यादि तैल, महारुद्र गुड़ची तैल, रुद्रतैल, महारुद्र तैल, और महापिण्ड तैल आदि औषध और कुष्ठ रोगोक्त पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु आदि कई औषध विचारकर वातरक्त रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूग, चनेका दाल, तीती तरकारी अथवा परवर, गुल्लर, करैला, सफेद कोहड़ा आदिकी तरकारी; नीमका पत्ता श्वेत पुनर्नवा और परवरके पत्तेकी शाक खाना उपकारी है। रातको पूरी या रोटी और उपर कही तरकारी; कम मीठेका कोई पदार्थ खाना और थोड़ा दूध पीना चाहिये; जलपानके समय भिंगोया चना खाना वातरक्तके लिये विशेष उपकारी है। तरकारी आदि घीमें वनाना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—नये चावलका भात, गुरुपाक द्रव्य, अम्लपाक द्रव्य भोजन, मछली, मांस, मद्य, सीम, मटर, गुड़, दही, अधिक दूध, तिल, उड़द, मूली, खट्टा, लाल कोहड़ा, आलु, पियाज, लहसन, लाल मिरचा और अधिक मीठा भोजन, तथा मल मूत्रका वेग रोकना, आगके पास या धूपमें बैठना, कसरत, मैथुन, क्रोध, दिवानिद्रा आदि वातरक्त रोगमें अनिष्ट-कारक है।

—*—

ऊरुस्तम्भ।

—:०:—

निदान।—अधिक शीतल, उष्ण, द्रव, कठिन, गुरु, लघु, स्निग्ध या रुक्ष द्रव्य भोजन; पहिलेका खाया पदार्थ अच्छी तरह परिपाक न होतेही भोजन, परिश्रम, शरीरको अधिक चलाना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण आदि कारणोंसे कुपित वायु, कफ और आमरक्तयुक्त पित्तको दूषित कर ऊरुमें जानेसे ऊरुस्तम्भ रोग पैदा होता हैं। ऊरु स्तब्ध शीतल, अचेतन, भाराक्रान्त और अतिशय वेदनायुक्त तथा ऊरु (जङ्घा) उठाने या चलानेको शक्ति नही रहती है, इसके सिवाय इस रोगमें अत्यन्त चिन्ता, बदनमें दर्द स्तैमित्य अर्थात् बदन गीले वस्त्रसे ढपा अनुभव, तन्द्रा, वमि, अरुचि, ज्वर, पैरकी अवसन्नता, स्पर्श-शक्तिका नाश और कष्टसे चलना यही सब लक्षण दिखाई देता है। ऊरुस्तम्भका दूसरा नाम आढ्यवात है। ऊरुस्तम्भ प्रकाशित होनेसे पहिले अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, स्तैमित्य, ज्वर, रोमाञ्च, अरुचि, वमन तथा जङ्घा और ऊरु दुर्ब्बल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

मृत्यु सम्भव। इस रोगमें दाह, सूची विद्धवत् वेदना, कम्प, आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके मृत्युकी सम्भावना है। यह रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा न करनेसे कष्टसाध्य हो जाता है।

चिकित्सा।—जिस क्रियासे कफकी शान्ति हो और वायुका प्रकोप अधिक न हो वैसो चिकित्सा करना चाहिये। तथापि रुक्ष क्रियासे कफको शान्तकर फिर वायुकी शान्त करना

चाहिये । पहिले स्वेद, लङ्घन और रूक्ष क्रिया करना उचित है। अतिरिक्त रूक्षक्रियासे वायु अधिक कुपित हो निद्रानाश प्रभृति उपद्रव उपस्थित होनेसे स्नेह स्वेद व्यवहार करना चाहिये। डहरकरञ्जका फल और सरसों, किम्वा असगन्ध, अकवन, नीम या देवदारुकी जड़ ; अथवा दन्ती, चुहाकानी, रास्ना और सरसों ; किम्वा जयन्ती, रास्ना, सैजनकी छाल, बच, कुरैया और नीम ; इसमेंसे कोई एक योग गोमूत्रमें पीस कर ऊरुस्तम्भमें लेप करना। सरसोंका चूर्ण सहतके साथ मिलाकर अथवा धतुरेके रसमें पीसकर गरम लेप करना। काले धतुरेके जड़, पोस्तको ढेड़ी, लहसन, मिरच, कालाजिरा, जयन्ती पत्र, सैजनकी छाल और सरसो यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर गरम लेप करनेसे ऊरुस्तम्भ आराम होता है। त्रिफला, पीपल, मोथा, चाभ और कुटकी इन सबका चूर्ण अथवा केवल त्रिफला और कुटकी यह चार द्रव्यका चूर्ण आधा तोला सहतके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है। पीपला मूल, भिलावा और पीपल इसका काढ़ा सहत मिलाकर पिलाना। भल्लातकादि और पिप्पल्यादि काढ़ा, गुञ्जा-भद्र रस, अष्टकट्वर तैल, कुष्ठाद्य तैल और महासैन्धवाद्य तैल ऊरुस्तम्भ रोगमें प्रयोग करना चाहिये ।

पथ्यापथ्य ।—दिनको पुराने चावलका भात, कुरथी, मूंग, चना और मसूरकी दाल, परवर, गुल्लर, करेला, बैगन, लह-सन, अदरख आदिकी तरकारी, छाग, कबूतर या मुरगी आदिके मांसका रस, सहनेपर घी और थोड़ा मट्ठा खानेको देना। रातको पूरी या रोटी उपर कही तरकारी, घी मैदा, सूजी और थोड़ी चीनी मिलाया पदार्थ, मोहनभोग, मिठाई आदि द्रव्य थोड़ा दे सकते है। जलपानमें किसमिस, छोहाड़ा, खजूर आदि कफ-

नाशक और वायु विरोधी फल खानेको देना। गरम पानी ठण्ढा-कर पीनेको देना। स्नान जितना कम हो उतनाही अच्छा है। विशेष आवश्यक होनेसे गरम पानीसे स्नान करना चाहिये। किन्तु वायुका प्रकोप अधिक होनेसे नदीमें स्नान और स्रोतके प्रतिकूलके तरफ तैरना उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक द्रव्य, कफजनक द्रव्य, मत्स्य, गुड़, दही, उड़द, पिष्टकादि, अधिक आहार और मल मूत्रका वेग रोकना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण और औषमें फिरना आदि ऊरुस्तम्भ रोगमें अनिष्टकारक है।

आमवात।

निदान और लक्षण।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध आहार, स्निग्धान्न भोजन, अतिरिक्त मैथुन, व्यायाम, सन्तरणादि जलक्रीड़ा, अग्निमान्द्य, गमनागमन शून्यता आदि कारणोंसे खाये हुए पदार्थका कच्चा रस वायु द्वारा आमाशय और सन्धिस्थल प्रभृति कफ स्थानोंमें एकत्र और दूषित होनेसे आमवात रोग उत्पन्न होता है। अङ्गमें दर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, देहका भारी होना, ज्वर, अपरिपाक और शोथ; यही सब आम-वातके साधारण लक्षण है।

कुपित आमवातके उपद्रव।—आमवात अधिक कुपित होनेसे सब रोगकी अपेक्षा अधिक कष्ट दायक होता है। इसमें हाथ, पैर, मस्तक, गुल्फ, कमर, जानु, ऊरु और सन्धिस्थानोंमें अत्यन्त दर्दयुक्त शोथ उत्पन्न होता है; तथा इसमें दुष्ट आम

जिस जिस स्थानमें जाता है उसी स्थानमें विच्छूके काटनेकी तरह दर्द और अग्निमान्द्य, मुख नाकसे जलस्राव, उत्साह हानि, मुखका वेस्वाद होना, दाह, अधिक मूत्रस्राव, कुक्षिमें शूल और कठिनता, दिवा निद्रा, रातको अनिद्रा, पिपासा, जीमचलाना, भ्रम, मूर्च्छा, छातीमें दर्द, मलबद्धता, शरीरकी जड़ता, पेटमें शब्द होना और आनाह आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

दोषभेद लक्षण।—वातज आमवातमें अधिक शूलवत् वेदना, पैत्तिकमें गात्र दाह, शरीर लाल होना; कफजमें गोला कपड़ा लपेटनेकी तरह अनुभव, गुरुता और कण्डु; यही सब लक्षण अधिक लक्षित होता है। दो दोष या तीन दोषके आधिक्यसे वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होता है। एक दोषज आमवात साध्य, द्विदोषज याप्य और सन्निपातज तथा सर्व्व देहगत शोथ लक्षणयुक्त आमवात असाध्य जानना।

चिकित्सा।—पीड़ाके प्रथम अवस्थाही से चिकित्सा करना चाहिये। नही तो कष्टसाध्य हो जाता है। लङ्घन, स्वेदन और विरेचन आमवातकी प्रधान चिकित्सा है। बालूकी पोटली गरमकर दर्दकी जगह सेंकना, अथवा कपासका बीज, कुरथी, तिल, यव, लाल रेड़ीका जड़, तीसी, पुनर्नवा और सनबीज; यह सब द्रव्य या इसमें से जो वस्तु मिले उसको कूट काञ्जीसे तरकर पोटली बनाना फिर एक हाड़ीमें काञ्जी रख एक बहु छिद्रवाला-सिकोरा ढांक संयोग स्थानको मिट्टीसे बन्दकर देना, फिर वही काञ्जीको हाड़ी आगपर रख तथा ढकनेके उपर वह पोटली रख गरमकर आमवातमें सेंकनेसे दर्द दूर होता है। इसको शङ्कर स्वेद कहते है। सोवा, वच, शोंठ, गोक्षुर, बरुण छाल, पोत करि-यारा, पुनर्नवा, शठो, गन्दालो, जयन्ती फल और हींग यह सब

द्रव्य काञ्जीमें पीस गरमकर लेप करना। कालाजीरा, पीपल, करञ्जके बीजको गूदी और शोंठ, समभाग अदरखके रसमें पीस-कर लेप करनेसे भी दर्द जल्दी आराम होता है। तीनकांटेवाले सेंहुड़के दूधमें नमक मिलाकर दर्दको जगह लगानेसे भी आराम होता है। विरेचनके लिये दशमूल और शोंठके काढ़ेमें आधो छटांक या कोष्ठानुसार उससे कम मात्रा रेंड़ीका तेल अथवा केवल रेंड़ीका तेल गरम दूधके साथ पिलाना। त्रिवृतके जड़का चूर्ण १२ मासे और शोंठ २ मासे; एकत्र मिलाकर चार या ६ आने मात्रा काञ्जीके साथ सेवन करनेसे भी विरेचन हो आमवात शान्त होता है, अथवा केवल त्रिवृत चूर्णको त्रिवृतके काढ़ेकी भावना देकर उक्त मात्रा काञ्जीके साथ सेवन करना। चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, अतीस, और गुरिच, अथवा देवदारु, बच, मोथा, अतीस और हरीतकी, इन सबका चूर्ण गरम पानीके साथ पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे भी आमवात आराम होता है। रास्ना-पञ्चक, रास्नासप्तक, रसोनादि कषाय और महारास्नादि क्काथ आमवातका श्रेष्ठ औषध है। विरेचनकी आवश्यकता होनेसे उपर कहे काढ़ोंमें रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना। हिङ्ग्वाद्य चूर्ण, अलम्बुषाद्य चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, अजमोदादि वटिका, योग-राज गुग्गुलु, वृहत् योगराज गुग्गुलु, सिंहनाद गुग्गुलु, रसोन-पिण्ड, महारसोनपिण्ड, आमवातारि वटिका, वातगजेन्द्रसिंह, प्रसारणी तेल, वृहत् सैन्धवाद्य तैल, विजय भैरव तेल और वात-व्याधि कथित कुब्ज प्रसारणी और महामाष प्रभृति तेल आमवात रोगमें विचारकर प्रयोग करनेसे पीड़ा शान्त होता है। हमारा "वातारिमर्द्दन तैल" मालिश करनेसे आमवातका दर्द जल्दी आराम होता है। गृध्रसी, पक्षाघात प्रभृति वातव्याधिके दर्दमें

"वातारिमर्द्दन तैल" व्यवहार करनेसे सब दर्द जल्दी आराम होता है ।

पथ्यापथ्य ।—ऊरुस्तम्भ रोगमें जो पथ्यापथ्य कह आये है, आमवात रोगमें वही सब पालन करना । स्नान गरम पानीसेभी नही करना । रूई और फलालेनसे दर्दके स्थानको बांधना चाहिये । ज्वर होतो भात बन्दकर सूखी रोटी, सागू आदि हलका पथ्य देना ।

—※—

शूलरोग ।

संज्ञा और प्रकार भेद ।—पेटमें शूल गड़ानेकी तरह दर्द जिस रोगमें होता है, उसको शूलरोग कहते है । यह रोग आठ प्रकारका है ; वातज, पित्तज, द्वन्द्वज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज, सन्निपातज और आमदोषजात । इस आठ प्रकारके सिवाय परिणाम शूल और अन्नद्रव नामक और दो प्रकारका शूलरोग है । शूलरोग मात्र अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है ।

निदान ।—व्यायाम (कसरत) घोड़ा आदि सवारीपर घूमना, अति मैथुन, रात्रि जागरण, अतिशय शीतल जल पान, और मटर, मूग, अरहर, कोदो, रूक्ष द्रव्य, तिक्त द्रव्य, अङ्कुरित धानका भात आदि द्रव्य भोजन ; संयोग विरुद्ध भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर भोजन, मल, मूत्र, वायु और शुक्रका वेग रोकना, शोक, उपवास और अतिशय हसना या बोलना ; यही

सब कारणोंसे वायु कुपित होकर वातज शूल उत्पन्न होता है। वातज शूलमें हृदय, पार्श्वद्वय, पीठ, कमर और वस्तिमें सूची वेधवत् या भङ्गवत् वेदना, मल और अधोवायुका रोध ; आहार जीर्ण होनेपर, शीत और वर्षा ऋतुमें पीड़ा बढ़ना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

पित्तज शूल।—क्षार, अति तीक्ष्ण और अति उष्ण द्रव्य भोजन, जिस द्रव्यका अम्लपाक हो ऐसा द्रव्य भोजन, सीम, पीसी तिल, कुरथी, उरदका जूस, धूंइया और अम्ल रस, मद्य और तैल पान, क्रोध, रौद्र, अग्नि सन्ताप परिश्रम और अति मैथुन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पित्तज शूल उत्पन्न होता है। इसमें नाभिमें दर्द, तृष्णा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम और शोष अर्थात् आगके पास रहनेसे जैसे चूसनेकी तरह पीड़ा होती है वैसी पीड़ा, यही सब लक्षण लक्षित होते है। दोपहर, आधी रात, आहार पचनेके समय और शरत ऋतुमें यह शूल बढ़ता है।

श्लेष्मज शूल।—जलज या जल समीपजात जीवका मांस, फटा दूध, दही, इक्षु रस, पिष्टक, खिचड़ी, तिल, तण्डुल और अन्यान्य कफ वर्द्धक द्रव्य भोजन करनेसे श्लेष्मा कुपित हो श्लेष्मज शूल उत्पन्न होता है। इससे आमाशयमें दर्द, जीमचलाना, कास, देहकी अवसन्नता, मुख और नासिकासे जलस्राव, कोष्ठकी स्तब्धता आदि लक्षण दिखाई देते है। आहार करनेपर, सवेरे, शीत और वसन्त ऋतुमें कफज शूल अधिक प्रकुपित होता है।

त्रिदोषज शूल।—अपने अपने कारणसे वातादि तीन दोष एक साथ कुपित होनेसे त्रिदोषज शूल पैदा होता है। इसमें उक्तसब लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। त्रिदोषज शूल असाध्य है।

आमज शूल लक्षण।—आमज अर्थात् अपक्व रसजात शूल रोगसे उदरमें गुड़ गुड़ शब्द होना वमन या वमन वेग, देहको गुरुता, शरीर आर्द्रवस्त्र आच्छादनको तरह अनुभव, मलमूत्र रोध, कफस्राव और कफज शूलके अन्यान्य लक्षणभी प्रकाशित होते है।

द्विदोषज।—द्विदोषज शूलमें वातकफज शूल, वस्ति, हृदय, पार्श्व और पीठ; पित्तकफज शूल कुक्षि, हृदय और नाभि तथा वातपित्तज शूल पूर्व्वोक्त वातज पित्तज शूलके निर्द्दिष्ट स्थानमें उत्पन्न होता है। वातपैत्तिक शूलमें ज्वर और दाह अधिक होता है।

उक्त शूलोंमें एक दोषजात शूल साध्य, दो दोषजात शूल कष्ट-साध्य, त्रिदोषज तथा अतिशय वेदना, अत्यन्त पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, देहकी गुरुता, ज्वर, भ्रम, अरुचि, कृशता और बलहानि आदि उपद्रवयुक्त शूलरोग असाध्य है।

परिणाम शूल।—आहारके परिपाक अवस्थामें जो शूल उत्पन्न होता उसको परिणाम शूल कहते है। वायुवर्द्धक कारण समूह सेवित होनेसे वायु कुपित हो, कफ और पित्तको दुषित करनेसे यह शूल उत्पन्न होता है।

परिणाम शूलमें दोषाधिक्यके लक्षण।—परिणाम शूलमें वायुका आधिक्य रहनेसे उदराध्मान, पेटमें गुड़गुड़ शब्द, मल मूत्रका रोध, मनकी अस्वस्थता और कम्प, यही सब लक्षण अधिक लक्षित होते है। स्निग्ध और उष्ण द्रव्य सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम मालूम होता है। पित्तके आधिक्यसे तृष्णा, दाह, चित्तकी अस्वस्थता, पसीना और शीतल क्रियासे पोड़ामें उपशम, यही सब लक्षण दिखाई देते है। कटु, अम्ल या लवण रस भोजनसे यह शूल उत्पन्न होता है। कफके आधि-क्यसे वमन या वमनवेग, मूर्च्छा और अल्पक्षण स्थायी दर्द होता

है। कटु या तिक्त रस सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम होता है। दो या तीन दोष मिले हुये लक्षण प्रकाशित होनेसे तथा द्विदोषज या त्रिदोषज परिणाम शूलमें रोगीका बल मांस या अग्निक्षीण होनेसे वह असाध्य जानना।

अन्नद्रव शूल लक्षण।—भुक्त द्रव्यका अपरिपाक होनेसे या परिपाकके समय अथवा अपक्व अवस्थाहीमें जो अनिर्दिष्ट शूल उत्पन्न होता हैं, उसको अन्नद्रव शूल कहते है यह शूल पथ्य भोजनादिसे शान्त नही होता है। कै करानेसे कुछ आराम मालूम होता है।

वातज शूल चिकित्सा।—शूलरोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। रोग पुराना होनेसे आराम होनेकी आशा नही रहती। वातज शूलमें पेटमें स्वेद करनेसे आराम मालूम होता है। मिट्टी पानीमें घोलकर आगपर रखना जब गाढ़ा हो जाय तब वस्त्रकी पोटलीमें उसे रख सेंकना। अथवा कपास बीज, कुरथी, तिल, जौ, एरण्डमूल, तीसी, पुनर्नवा और शण बीज इन सब द्रव्यमें जो मिले उसको कांजीमें पीस गरम कर पोटलीमें बांधकर सेंकनेसे उदर, मस्तक, केहुनी, चूतड़, जानु, पैर, अङ्गुलि, गुल्फ, कन्धा और कमर की दर्द जलदी आराम होता हैं। बिल्वमूल, तिल और एरण्डमूल एकत्र कांजीमें पीस गरम कर एक पिण्ड बनाना; वह पिण्ड पेटपर फिरानेसे शूल आराम होता है। देवदारु श्वेतवच, कूठ, सोवा, हींग और सेंधा नमक कांजीमें पीस गरम कर पेटपर लेप करनेसे वातज शूल आराम होता है। अथवा बेलकी जड़, एरण्डकी जड़, चितामूल, शोंठ, हींग और सेंधा नमक एकत्र पीसकर पेटपर ठण्ढा लेप करना। वरियारा, पुनर्नवा, एरण्डमूल, वृहती, कण्टकारी और गोखुरू

इसके काढ़ेमें हींग और सेंधा नमक मिलाकर पिलाना। शोंठ, एरण्ड मूल यह दो द्रव्यका काढ़ा हींग सौचल नमक मिलाकर पीनेसे तुरन्त शूल आराम होता है। हींग, थैकल, शोंठ पीपल, सौचल नमक, अजवाइन, यवाक्षार, हरीतकी और सैन्धव सबका समान वजन चूर्ण चार आनेभर मात्रा ताड़ीके साथ पीनेसे वातज शूल आराम होता है। हींग, थैकल, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, अजवाईन, सैंधव सौचल और काला नमक, एकत्र बड़े नीबूके रसमें पीसकर दो आने या चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे भी वातज शूल शान्त होता है।

पित्तज शूल चिकित्सा।—पित्तज शूलमें परवरका पत्ता या नीमका कल्कयुक्त दूध, जल किम्बा इक्षुरस पिलाकर वमन कराना। मलबद्ध रहनेसे जेठीमध (मुलेठी)के काढ़ेके साथ उपयुक्त मात्रा एरण्ड तेल पिलाना। अथवा त्रिफला और अमिलतासके गूदेका काढ़ा घी, चीनी मिलाकर पिलाना। इससे शूल दाह और रक्तपित्त आराम होता है। सबेरे सहतके साथ शतमूलीका रस, किम्बा चीनीके साथ आंवलेके रस पीनेसे, अथवा सहतके साथ आंवलेका चूर्ण चाटनेसे पित्तज शूल आराम होता है। शतमूली, जेठीमध, वरियारा, कुशमूल, और गोक्षुर इसका काढ़ा ठण्ढाकर पीनेसे पित्तज शूलकी दाहयुक्त पीड़ा दूर होती है। वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, एरण्डमूल, कुश, काश और इक्षुबालिका, इन सबका काढ़ा पीनेसे प्रबल पित्तज शूलभी शान्त होता है।

कफज शूल।—कफज शूलमें पहिले वमन और उपवास कराना। आमदोष हो तो मोथा, बच, कुटकी, हरीतकी, और मूर्व्वाकी जड़ समान भाग पीस कर चार आनेभर मात्रा

गोमूत्रके साथ पिलाना। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, सैंधव, सौचल नमक, काला नमक और हींग एकत्र चूर्णकर दो आने या चार आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा बच, सोथा, चितामूल, हरीतकी, और कुटकी, इसका चूर्ण चार आनेभर गोमूत्रके साथ सेवन कराना।

आमज शूल चिकित्सा।—आमज शूलकी भी चिकित्सा कफज शूलकी तरह करना। इसके सिवाय अजवाइन, सेंधा नमक, हरीतकी और शोंठ, एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। जिस औषधसे अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोगसें आमदोषका परिपाक और अग्नि बर्द्धित होता है आमज शूलमें भी वही औषध देना चाहिये।

त्रिदोषज शूल चिकित्सा।—त्रिदोषज शूल, बिदारीकन्दका रस २ तोले और पक्के अनारका रस २ तोले, शोंठ, पीपल, गोलमरिच और सेन्धा नमकका चूर्ण ⳿० भर तथा २ आनेभर सहत एकत्र मिलाकर पिलाना। शङ्खभस्म १ मासा, सैन्धव लवण, शोंठ, पीपल और गोलमरिच, इसका चूर्ण २ मासे और हींग २ या ३ रत्ती एकत्र मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल शान्त होता है।

परिणाम शूल चिकित्सा।—परिणाम शूलमें एरण्डमूल, बेलकी जड़, वृहती, कण्टकारी, बड़े नीबूकी जड़, पाथरचूर और गोक्षुर मूल इन सबके काढ़ेमें जवाक्षार, हींग, सैन्धव और एरण्ड तेल मिलाकर पिलाना। इससे दूसरे स्थानोंका दर्दभी शान्त होता है। हरीतकी, शोंठ और मण्डूर चूर्ण प्रत्येक समभाग घृत और मधुके साथ सेवन करानेसे परिणाम शूल दूर होता है। शम्बुकादि गुड़िका और नारिकेल क्षार परिणाम शूलकी श्रेष्ठ औषध हैं।

हमारा शूलनिर्व्वाण चूर्ण।—अन्नद्रव्य शूलमें अम्लपित्त रोगकी तरह चिकित्सा करना चाहिये। हमारा "शूलनिर्व्वाण चूर्ण" सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल रोग जल्दी आराम होता है।

शास्त्रीय औषध।—सामुद्राद्य चूर्ण, तारामण्डुर गुड़, शतावरी मण्डुर, वृहत् शतावरी मण्डुर, धात्री लौह (दोनो प्रकार) आमलकी खण्ड, नारिकेल खण्ड, वृहत् नारिकेल खण्ड, नारिकेलामृत, हरीतकी खण्ड, श्रीविद्याधराभ्र, शूलगजकेशरी, शूलवज्रिणी वटी, पिप्पली घृत और शूलगजेन्द्र तैल यही सब औषध सब प्रकारके शूलरोगमें विचार कर देना। ग्रहणी रोगोक्त श्रीबिल्व तैल भी शूल रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—पीड़ाकी प्रबल अवस्थामें अन्नाहार बन्द कर दिनको दूध वार्लि, दूध सागु और रातको दूध और धानका लावा खानेको देना। पित्तज शूलमें जीमचलाना, ज्वर, अत्यन्त दाह और अतिशय तृष्णा उपद्रव हो तो सहत मिलाकर जौको लपसी पिलाना। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" शूलके प्रबल अवस्थामें देनेसे विशेष उपकार होता है। पीड़ाकी शान्ति होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मागुर, शिङ्गी, कवई आदि छोटी मछलीका रस्सा, सूरण, याने ओल, परवर, बेंगन, गुल्लर, पुराना सफेद कोहड़ा, सेंजनका डण्डा, करेला, केलेका फूल आदिकी तरकारी; आंवला, केसरू, द्राक्षा, पक्का पपीता, नारियल और बेल आदि फल, गरम दूध, तिक्त द्रव्य, कच्चे नारियलका पानी और हींग आदि खानेको देना। तरकारी आदिमें सेंधा नमक मिलाना। तरकारी जितनी कम खाई जाय उतनाही अच्छा है। अर्थात् तरकारी बन्द कर केवल भातही खाना बहुत अच्छा है। रातको जौकी लपसी, दूध बार्लि, दूध सागु, दूध धानका लावा या हमारा

"सञ्जीवन खाद्य" खानेको देना। जलपानमें कोहंड़ेका मुरब्बा, गरोको बरफो और आंवलेका मुरब्बा खानेको देना। इस रोगमें आहारके साथ जलपान न कर आहारके दो घण्टा बाद पानी पीना उपकारी है। सहनेपर शीतल या गरम पानीसे स्नान कराना।

निषिद्ध द्रव्य।—गुरुपाक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, सब प्रकारको दाल, शाक, बड़ो मछली, दही, रूच, कषाय और शीतलद्रव्य; अम्ल द्रव्य, लाल मिरचा, तेज शराब, धूपमें फिरना, परिश्रम, मैथुन, शोक, क्रोध, मलमूत्रका वेग रोकना, रात्रि जागरण, शूल रोगमें अनिष्टकारक है।

—:०:—

उदावर्त्त और आनाह।

संज्ञा उदावर्त्त।—अधोवायु, मल, मूत्र, जृम्भा, अश्रु, छींक, ढेकार, जीमचलाना, शुक्र, क्षुधा, तृष्णा, दीर्घश्वास और निद्रा; इन सबका वेग धारण करनेसे जो जो रोग उत्पन्न होता है उसको उदावर्त्त कहते है।

भिन्न भिन्न वेग रोधमें पीड़ाके लक्षण।—अधोवायुका वेग रोकनेसे वायु, मूत्र और मलका रोध, पेटका फूलना, क्लान्ति, उदर और सर्व्वाङ्गमें दर्द, तथा अन्यान्य वातज रोग उत्पन्न होता है। मलवेग रोकनेसे पेटमें गुड़ गुड़ शब्द और शूलवेदना, गुदा काटनेकी तरह दर्द, मलरोध, ढेकार और कभी कभी मुखसे मल निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

मूत्रवेग रोकनेसे मूत्राशय और लिङ्गमें शूलकी तरह कष्टसे मूत्र आना या मूत्ररोध, शिरःपीड़ा, कष्टसे शरीरका बेकाबू होना और वंक्षन या (दोनो पट्ठों) में खोचनेकी तरह कष्ट होता है। जम्भा-इका वेग रोकनेसे वायुजनित मन्यास्तम्भ, गलस्तम्भ, शिरोरोग और आंख, कान, नाक और मुखरोग उत्पन्न होता है। आनन्द या शोकादि कारणोंसे आंसुका वेग रोकनेसे, मस्तकका भारी होना अति कष्टदायक पीनस और चक्षुरोग उत्पन्न होता है। छींकका वेग रोकनेसे मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्द्दित रोग, अर्द्धावभेदक (आधा शीशी) और इन्द्रियोंकी दुर्ब्बलता यही सब लक्षण लक्षित होते है। ढकारका वेग रोकनेसे कण्ठ और मुख भरा रहना, हृदय और आमाशयमें सूची वेधवत् वेदना, अस्पष्ट वाक्य, निःश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, खजुली, कोठ, अरुचि, सिहुंआ आदि मुखमें काला काला दाग, शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, जीमचलाना और विसर्प रोग उत्पन्न होता है। शुक्रवेग रोकनेसे मूत्राशय, गुह्य और अण्डकोषमें शोथ, दर्द, मूत्ररोध, शुक्राश्मरी, शुक्र क्षरण और नानाप्रकार कष्टसाध्य मूत्राघात रोग उपस्थित होता है। भूख रोकनेमें अर्थात् भूख लगने पर भोजन नही करनेसे तन्द्रा, अङ्गोंमें दर्द, अरुचि, श्रान्ति और दृष्टिशक्तिकी दुर्व्वलता आदि उत्पन्न होते है। प्यास रोकनेसे कण्ठ और मुखमें शोथ, श्रवणशक्तिका नाश और छातीमें दर्द यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। परि-श्रमके बाद दीर्घश्वासका वेग रोकनेमें हृद्रोग, मोह और गुल्मरोग उत्पन्न होता है। निद्रारोधसे जम्हाई, अङ्गमर्द, आंख और शिरका भारीपन तथा तन्द्रा उपस्थित होता है।

अन्यविध प्रकार भेद।—उपर कहे उदावर्त्तके सिवाय कोष्ठाश्रित वायु, रुक्ष और कषाय, कटु, और तिक्त द्रव्य भोजनादि

कारणोंसे कुपित हो और एक प्रकारका उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है। उसमें भी वही कुपित वायुसे वात, मूत्र, मल, रक्त, कफ और मेदोवहा स्रोत समूह आवृत और सूख जाता है, इससे हृदय और वस्तिमें दर्द, जीमचलाना, अति कष्टसे वात, मूत्र पूरीषका निकलना और क्रमश: श्वास, कास, प्रतिश्याय, दाह, मूर्च्छा, तृष्णा, ज्वर, वमन, हुचकी, शिरोरोग, मनकी भ्रान्ति, श्रवण इन्द्रियकी विकृति और अन्यान्य विविध वातज रोग उत्पन्न होते है।

आनाह संज्ञा और लक्षण।—आहार जनित अपक्व रस या पूरीष क्रमश: सञ्चित और विगुण वायु कर्त्तृक बद्ध हो यथा-यथ रूपसे नही निकले तो उसको आनाह रोग कहते हैं। अपक्व रस जनित आनाहमें तृष्णा, प्रतिश्याय, मस्तकमें जलन, आमा-शयमें शूल और भारीपन, हृदयमें स्तब्धता और ढेकार बन्द होना आदि लक्षण उत्पन्न होते है। मल सञ्चय जनित आनाह रोगमें कमर और पोठको स्तब्धता, मल मूत्रका रोध, शूल, मूर्च्छा, विष्ठा-वमन, शोथ, आध्मान, अधोवायुका रोध और अलसक रोगोक्त अन्यान्य लक्षण भी प्रकाशित होते हैं।

उदावर्त्त चिकित्सा।—वायु अनुलोमक विधान ही उदावर्त्तको साधारण चिकित्सा है। अधोवातरोध जन्य उदा-वर्त्तमें स्नेह पान, स्वेद और वस्ति (पिचकारी) प्रयोग करना। मयन फल, पोपल, कूट, वच, और सफेद सरसों हरेकका समभाग सबके समान गुड़, पहिले गुड़ पानीमें घोलकर आगपर रखना, खूब औटनेपर थोड़ा दूध और वही सब चूर्ण मिलाकर वर्त्ती बनाना इसीको फलवर्त्ती कहते हैं। गुह्यद्वारमें यह वर्त्ती प्रयोग करनेसे सब प्रकारके उदावर्त्त रोग आराम होता हैं। मल वेग धारण जन्य उदावर्त्त रोगमें विरेचन और फलवर्त्ती देना, बदनमें

तैल मर्द्दन, अवगाहन, स्वेद और वस्तिकर्म्म करना चाहिये। मूत्र वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें अर्ज्जुन छालका काढ़ा, ककड़ीके बीजका चूर्ण थोड़ा नमक मिला पानीके साथ सेवन, अथवा बचका चूर्ण सेवन कराना। मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगोक्त सब औषध इसमें प्रयोग कर सकते हैं। जृम्भा वेग धारणके उदावर्त्तमें स्नेह स्वेद और वायु नाशक अन्यान्य क्रिया भी करना। अश्रुवेग धारण जनित उदावर्त्तमें तीक्ष्ण अञ्जनादिसे अश्रु निकालकर रोगीको प्रसन्न रखना। छींक रोधमें मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्यका नास या सूर्य्य दर्शन आदि क्रियासे छींकना चाहिये। ढेकार रोधमें गुरिच, भूमि-कुष्माण्ड, असगन्ध, अनन्तमूल, शतमूली (प्रत्येक २ भाग) मास-पर्णी, जीवन्ती और जेठीमध यह सब द्रव्य पीसकर वसा, घृत या मोमके साथ मिलाना फिर उसकी बत्ती बनाकर चुरटकी तरह पीना। वमन वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें वमन, लङ्घन, विरेचन और तैल मर्द्दन हितकारी है। शुक्रवेग धारण जन्य उदावर्त्तमें मैथुन, तैल मर्द्दन, अवगाहन, मद्यपान, मांस रस प्रभृति पुष्टिकर भोजन और पञ्च तृण मूलका कल्क चौगूने दूधमें औटाना दूध रहजानेपर वही दूध छानकर पिलाना। क्षुधा रोध जन्य उदावर्त्तमें स्निग्ध, उष्ण और रुचिजनक अन्न थोड़ा भोजन तथा सुगन्ध द्रव्य सूङ्घना भी उपकारी है। तृष्णा वेग धारणके उदा-वर्त्तमें कर्पूर मिला पानी या बरफका पानी, या यवागु पिलाना तथा सब प्रकारका शीतलक्रिया इसमें उपकारी है। श्रमजन्य श्वास रोधज उदावर्त्तमें विश्राम करना और मांस रसके साथ अन्न भोजन करनेको देना। निद्रा रोधजन्य उदावर्त्तमें चीनी मिला दूध पान, सम्वाहन (हाथ पैर दबाना) और सुखप्रद बिछौने पर सोना आदि उपाय करना चाहिये रुक्ष द्रव्यादि सेवनके उदावर्त्तमें

पूर्वोक्त फलवर्त्ती या हींग सहत और सेंधा नमक एकत्र पीसकर बत्ती बनाना, फिर बत्तीमें घी लगाकर गूदामें रखना।

आनाह चिकित्सा।—आनाह रोगमेंभी उदावर्त्तकी तरह वायुकी अनुलोमता साधन और बस्तिकर्म्म तथा बर्त्ती प्रयोग आदि उपकारी है। त्रिवृत् चूर्ण २ भाग, पीपल ४ भाग, हरीतकी ५ भाग और सबके समान गुड़, एकत्र मर्द्दन कर चार आने या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे आनाह रोग शान्त होता है। वच हरीतकी, चितामूल, जवाक्षार, पीपल, अतीस और कूठ सममाग सबका चूर्ण चार आने या दो आनेभर मात्रा सेवन करना। इसके सिवाय नाराचचूर्ण, गुड़ाष्टक, वैद्यनाथ बटी वृहत इच्छाभेदी रस, शुष्कमूलाद्यघृत और स्थिराद्यघृत, उदावर्त्त और आनाह रोगमें प्रयोग करना। हमारी "सरलभेदीवटिका" सेवन करनेसे हलका जुलाब हो उदावर्त्त और आनाह रोगमें विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—उदावर्त्त और आनाह रोगमें वायु शान्ति-कारक अन्नपानादि आहार कराना। पुराने चावलका गरम भात घी मिलाकर खाना। कवई, मागुर शिङ्गी और मौरला आदि छोटी मछलीका शुरुवा, छागमांस और शूलरोगोक्त तरकारी समूह और दूध आहार उपकारी है। मांस दूध एक साथ खाना अनिष्ट-कारक है। मिस्रीका शरबत्, कच्चे नारियलका पानी, पक्का पपीता, शरीफा, ईत्तु, बेदाना, आनार आदि खानेको देना। रातको भूख हो तो वही सब अन्न खानेको देना। भूख अच्छी तरह न लगे तो दूधसागु, जौके आटेकी लपसी या दूध धानका लावा किम्वा थोड़ा मोहनभोग खानेको देना। सहनेपर ठण्ढा या गरम पानीसे स्नान, तेलमर्द्दन, तीसरे पहरकी हवामें फिरना आदि उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—देरसे हजम होनेवाला पदार्थ, उष्णवीर्य्य

या रुक्ष द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, परिश्रम, कसरत, पैदल चलना और क्रोध, शोक आदि मनोविघात कार्य्य करना इस रोगमें अनिष्टकारक है।

गुल्मरोग।

—०—

संज्ञा पूर्व्व लक्षण और प्रकार भेद।—हृदय, पार्श्वद्वय, नाभि और वस्ति इन पांचोंके भीतरी भागमें एक गोल गांठ पैदा होनेसे उसको गुल्मरोग कहते है। गुल्मरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अधिक ढेकार आना, मलरोध, भोजनमें अनिच्छा, दुर्ब्बलता, उदराध्मान, पेटमें दर्द, गुड़ गुड़ शब्द होना और अग्निमान्द्य यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होते है। गुल्मरोग पांच प्रकार; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज और रक्तज। मल, मूत्र और अधोवायुका कष्टसे निकलना, अरुचि, अङ्ग कुजन, आनाह और वायुका ऊर्द्ध गमन, यही सब गुल्मरोगके साधारण लक्षण है। प्राय सब प्रकारके गुल्मरोगमें यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

वातज गुल्मके निदान और लक्षण।—अधिक या अल्प अथवा अनिर्द्दिष्ट समयमें भोजन, रुक्ष अन्न पान भोजन, बलवान् मनुष्यके साथ युद्ध विग्रहादि कार्य्य, मल मूत्रका वेग धारण, शोक, आघातप्राप्ति, विरेचनादिसे अतिशय मलक्षय और उपवास; यही सब कारणोंसे वातज गुल्म उत्पन्न होता है। इस गुल्मके अवस्थितिकी स्थिरता नही है; कभी नाभिमें, कभी पार्श्वमें, कभी वस्तिमें घूमता रहता है। इसकी आकृतिभी सर्व्वदा एक प्रकारकी नही रहती है। कभी बड़ा, कभी छोटा होता रहता है। नाना

प्रकार यातना, मलरोध, अधोवायुका रोध, मुख और गलनालीका सूखना, शरीर श्याव या अरुणवर्ण, शीतज्वर, हृदय, कुक्षि, स्कन्ध और मस्तकमें अत्यन्त दर्द तथा आहार पचने पर पीड़ाका अधिक प्रकोप और आहार करते ही पीड़ाका शान्ति होना।

पैत्तिक गुल्मके निदान और लक्षण।—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (जो सब द्रव्यका अम्ल पाक होता हैं) और रुक्षद्रव्य भोजन, क्रोध, अधिक मद्यपान, अत्यन्त धूप या अग्नि-सन्ताप सेवन, विदग्धाजीर्ण जनित अपक्व रसका आधिक्य और दुषित रक्त ; यही सब कारणोंसे पैत्तिक गुल्म उत्पन्न होता है। इसमें ज्वर, पीपासा समस्त अङ्ग विशेषकर मुखका लाल होना, आहार परिपाकके समय अत्यन्त दर्द, पसीना निकलना, जलन और गुल्म स्थान छूनेसे अत्यन्त दर्द होता है। यह गुल्म कदाचित पकतेभी देखा गया है

कफज गुल्मके निदान और लक्षण।—शीतल गुरु-पाक और स्निग्धद्रव्य भोजन, परिश्रमशून्यता, अधिक भोजन और दिवा निद्रा यही सब कारणोंसे कफज गुल्म उत्पन्न होता हैं। इसमें शरीर आर्द्रवस्त्रसे आवृतकी तरह अनुभव, शीत-ज्वर, शारीरिक अवसन्नता, वमन वेग, कास, अरुचि, शरीरका भारबोध, शीतानुभव, अल्पवेदना, तथा गुल्म कठिन और उन्नत होता हैं।

द्विदोषज और त्रिदोषज गुल्म लक्षण।—दो दोष वर्द्धक कारण मिश्रित भावसे सेवन करनेसे द्विदोषज गुल्म उत्पन्न होता है। इसमें वही सब दोषके लक्षण मिले हुये मालूम होते है। त्रिदोषज गुल्म भी सब वैसही तीन दोष वर्द्धक कारणसे उत्पन्न होता है। इस गुल्ममें अत्यन्त दर्द और दाह, पत्थरकी तरह कठिन भयङ्कर कष्टदायक और मन, शरीर अग्निबलका क्षयकारक होता

है। यह गुल्म बहुत जल्दी पक जाता है। त्रिदोषज गुल्म असाध्य है।

रक्तगुल्मका निदान और लक्षण।—अपक्क गर्भ-स्राव किम्बा उचित समय पर प्रसव न होनेसे; अथवा ऋतुकालमें अहितकर आहार विहारादि आचरण करनेसे वायु कुपित हो रजो रक्तको दूषित करता है, इससे गर्भाशयमें रक्तगुल्म पैदा होता है। इसमें अत्यन्त दाह, दर्द और पैत्तिक गुल्मके अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देते हैं। इसके सिवाय ऋतुबन्द होना, मुख पीला, स्तनका अग्रभाग काला, स्तनसे दूध निकलना, विविध द्रव्य भोजन की इच्छा, मुखसे जलस्राव, आलस्य आदि सब गर्भके लक्षण मालूम होते है, पर गर्भलक्षणके साथ केवल यही प्रभेद रहता हैं कि गर्भ-स्पन्दनमें किसी तरहका दर्द नहो होता है और गर्भके बालकका सब अङ्ग एक ही वक्त स्पन्दित न हो हाथ पैर आदि एक एक अङ्ग स्पन्दित होता रहता है।

असाध्य साङ्घातिक गुल्म।—गुल्म क्रमशः सञ्चित होकर यदि समस्त उदरमें व्याप्त होकर रस रक्तादि धातुका आश्रय ले, शिरा समूहोंसे आच्छादित और कछूवेकी तरह बड़ा हो और इसके साथ साथ यदि दुर्ब्बलता, अरुचि, वमन वेग, वमि, कास, बेचैनी, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और मुख नाकसे जलस्राव यह सब लक्षण प्रकाशित हो तो गुल्मरोग असाध्य जानना। गुल्म रोगी का हृदय, नाभि, हाथ और पैरमें शोथ तथा ज्वर, श्वास, वमन और अतिसार अथवा श्वास, शूल, पीपासा, अरुचि, अकस्मात् गुल्मका विलीन होना और दुर्ब्बलता आदि लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीकी मृत्यु जानना।

गुल्म चिकित्सा।—गुल्मरोगमें पहिले वायुके शान्तिका उपाय करना चाहिये। जहां दोषविशेषके लक्षण समूह स्पष्ट प्रकाशित न हो कौन दोषज गुल्म है इसका निर्णय न हो वहां वायु शान्तिका औषधादि प्रयोग करना। कारण वायुको शान्त करनेहोसे अन्यान्य दोष सब सहजमें शान्त होता है। दूध और बड़ी हर्रेके चूर्णके साथ रेंड़ीका तेल पान करना और स्नेह स्वेद वातज गुल्ममें उपकारी है। सर्ज्जीक्षार २ मासे, कूठ २ मासे और केतकीको जटाका क्षार ४ मासे रेंड़ीके तेलके साथ मिलाकर पीनेसे वातज गुल्म आराम होता है। शोंठ ४ तोले, सफेद तिल १६ तोले और पुराना गुड़ ८ तोले एकत्र पीसकर आधा तोला या एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातज गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल आराम होता है। पैत्तिक गुल्ममें विरेचन उपकारी है। त्रिफलाके काढ़ेके साथ त्रिवृत चूर्ण अथवा पुराने गुड़के साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करनेसे विरेचन हो पित्तज गुल्म शान्त होता है। गुल्म रोगमें दाह, शूलकी तरह दर्द, स्तब्धता, निद्रानाश अस्थिरता और ज्वर प्रकाश होनेसे गुल्म पकनेपर है समझना; तब उसमें व्रण पकनेके लिये उचित औषध देना और पकजानेपर अन्तर्विद्रधिको तरह चिकित्सा करना। कफज गुल्ममें वमन, उपवास और स्वेद देना चाहिये। अग्निमान्द्य, थोड़ा दर्द, कोष्ठ भार बोध, शरीर गीले वस्त्रसे आच्छादितकी तरह अनुभव, जीमचलाना, अरुचि आदि उपद्रवमें वमन कराना। बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणियारी इन सबके जड़का काढ़ा पीना कफज गुल्ममें हितकर है। अजवाइनका चूर्ण और काला नमक दहीके मट्ठेके साथ पीनेसे अग्निकी दीप्ति और वायु, मूत्र, पुरीषका अनुलोम होता है। कफज गुल्ममें तिल, एरण्डबीज और

सरसो पीसकर गरम लेपकर लोहेके पात्रसे सेंकना उपकारी है। हींग, कूठ, धनिया, हरीतकी, त्रिवृतकी जड़, कालानमक, सेन्धा नमक, जवाक्षार और शोंठ, यह सब द्रव्य घीमें भूंज चूर्ण करना फिर दो आने या चार आने मात्रा जौके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे गुल्म और तज्जनित उपद्रव दूर होता है। सज्जीक्षार आधा तोला और पुराना गुड़ आधा तोला एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गुल्मरोग शान्त होता है। रक्त गुल्मकी चिकित्सा ११ महीनेके पीछे करना चाहिये कारण यह रोग पुराना होनेहीसे जलदी आराम होता है। इसमें पहिले स्नेहपान, स्वेद और स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। सोवा, करञ्जकी छाल, देवदारु, बभनेठी और पीपल समभाग पीसकर त्रिफलाके काढ़ेके साथ पीनेसे रक्त-गुल्म आराम होता हैं; अथवा तिलके काढ़ेके साथ पुराना गुड़, हींग और बभनेठीका चूर्ण सेवन कराना। गोलमिरच चूर्णके साथ आंवलेका रस पीनेसे भी उपकार होता है।

शास्त्रीय औषध।—हिङ्ग्वादि चूर्ण, वचादि चूर्ण, लवङ्गादि चूर्ण, वज्रक्षार, दन्ती हरीतकी, कांकायन गुड़िका, पञ्चानन-रस, गुल्म कालानल रस, वृहत् गुल्मकालानल रस, त्र्यूषणाद्य घृत, नाराच घृत, त्रायमाणाद्य घृत और वायु शान्तिकारक स्वल्प विष्णु तैल आदि कई तैल गुल्मरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—जो सब द्रव्य वायु शान्तिकारक है वही गुल्मरोगका साधारण पथ्य है। पित्तज और कफज गुल्ममें जो सब द्रव्य पित्त और कफका अनिष्ट कारक नही हैं तथा वायु शान्तिकारक है ऐसा आहार देना चाहिये। दिनको पुराने महीन चावलका भात, घी, तित्तिर, मुरगा, बत्तक और छोटे पक्षीका

मांस और शूलरोगोक्त तरकारी देना चाहिये। रातको पूरी या रोटी, मोहनभोग और दूध भोजन करना। कच्चे नारियलका पानी, मिश्रीका शर्बत, पक्का पपीता, पक्का आम, शरीफा आदि पक्के फल खानेको देना। शीतल या गरम पानीसे रहनेपर स्नान करना उपकारी है। पेट साफ रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—अधिक परिश्रम, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, आतप सेवन, मैथुन और जिस कार्य्यसे वायु कुपित हो वही सब कार्य्य और वैसही आहारादि गुल्म रोगमें अनिष्ट-कारक है।

—: :—

हृद्रोग।

———०———

निदान लक्षण और प्रकारभेद।—अति उष्ण, गुरु-पाक और कषाय कटुतिक्तरस भोजन, परिश्रम, छातीमें चोट लगना, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन करना, मल मूत्रवेग धारण और निरन्तर चिन्ता करना यही सब कारणोंसे हृद्रोग उत्पन्न होता है। छातीमें दर्द और सर्व्वदा धुक धुक करना इस रोगका साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और क्रिमिजात भेदसे हृद्रोग पांच प्रकारका होता है।

विविध दोषज हृद्रोग लक्षण।—वातज हृद्रोगमें हृदय आकृष्ट, सूची द्वारा विद्ध, दण्डादिसे पीड़ित, अस्त्र द्वारा

छिन्न, शलाका द्वारा स्फुटित; अथवा कुठारसे पाटितकी तरह अनुभव होता है। पित्तज हृद्रोगमें हृदयमें ग्लानि, शरीर चूसनेकी तरह दर्द, सन्ताप, दाह, तृष्णा, कण्ठसे धुंआ निकलनेकी तरह अनुभव, मूर्च्छा, पसीना होना और मुख सूख जाता है। कफज हृद्रोगमें शरीर भारबोध, कफस्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य और मुखका स्वाद मीठा होता है। त्रिदोषज हृद्रोगमें उपर कहे तीनों रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। त्रिदोषज हृद्रोग उत्पन्न होनेपर यदि तिल, दूध, गुड़ प्रभृति क्रिमिजनक आहारादि अधिक खानेमें आवे तो हृदयके किसी स्थानमें एक गांठ उत्पन्न हो उसमेंसे क्लेद और रस निकलता है, तथा उसी क्लेदादिसे क्रिमि उत्पन्न हो क्रिमिज हृद्रोग उत्पन्न होता है। इससे छातीमें तीव्र वेदना, सूची वेधवत् यातना, कण्डु, वमनवेग, मुखसे कफस्राव, शूल, छातीके रसका वमन, अन्धकार देखना, अरुचि, दोनो आंखे काली और शोथयुक्त, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। क्लान्ति-बोध, देहकी अवसन्नता, भ्रम, शोष और कफज क्रिमिके कई उपद्रव इस हृद्रोगके उपद्रव रूपसे प्रकाशित होता है।

चिकित्सा।—हृद्रोगमें अग्निवृद्धिकारक और रक्तजनक औषधादि प्रयोग करना आवश्यक है। घृत, दूध किम्बा गुड़के साथ अर्ज्जुन छालका चूर्ण ॥) आनेभर सेवन करनेसे हृद्रोग, जीर्ण-ज्वर और रक्तपित्त शान्त होता है। कूठ, बड़े नीबूकी जड़, शोंठ, शठी और हरीतकी समभाग एकत्र पीसकर दूध, कांजी, घृत और लवण मिलाकर सेवन करनेसे वायुजन्य हृद्रोग प्रशमित होता है। हरीतकी, बच, रास्ना, पीपल, शोंठ, शठी और कूठका समभाग चूर्ण दो आनेसे चार आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करनेसे हृद्रोग दूर होता है। पित्तज हृद्रोगमें अर्ज्जुन छाल, स्वल्प पञ्च-

मूल, बरियारा या मुलेठीके साथ दूध औटाकर वही दूध चीनी मिलाकर पिलाना। कफज हृद्रोगमें त्रिवृत, शठी, बरियारा, रास्ना, हरीतकी और कूठका समभाग चूर्ण दो आने या चार आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीना। छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण दो आनेभर घीके साथ मिलाकर चाटनेसे कफज हृद्रोग आराम होता है। हींग, बच, काला नमक, शोंठ, पीपल, हरीतकी, चितामूल, जवाक्षार, सोंचल नमक और कूठ इन सबका समभाग चूर्ण ।) आनेभर मात्रा जौके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज हृद्रोग भी आराम होता है। क्रिमिजात हृद्रोगमें विड़ङ्ग और कूठ चूर्ण दो आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीनेसे तथा क्रिमि रोगके अन्यान्य औषधसे भी आराम होता है। ककुभादि चूर्ण, कल्याणसुन्दर रस, चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, विश्वेश्वर रस, श्वदंष्ट्राद्य घृत और अर्ज्जुन घृत आदि हृद्रोगके श्रेष्ठ औषध है। वृहत् छागलाद्य घृत भी हृद्रोगमें प्रयोग कर सकते है।

विभिन्न कारणज वेदना चिकित्सा।—

छातीमें चोट लगनेसे और कास या रक्तपित्त पीड़ाके पहिले छातीमें दर्द हो तो छातीमें तार्पिन तेल मालिश कर पोस्तके ढेंढ़ोंके काढ़ेमें फलालेन या कम्बल भिङ्गो निचोड़ कर सेंकना चाहिये। अदरख दो भाग और अरवा चावल एक भाग एकत्र पोसकर गरम लेप करना। कूठका चूर्ण सहतके साथ चाटना। दशमूलका काढ़ा सैन्धव और जवाक्षार मिलाकर पिलाना। लक्ष्मीविलास रस औषध सेवन और महादशमूल तैल किम्बा कास रोगोक्त चन्दनादि तैल छातीमें मालिश करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध पुष्टिकर और लघु आहार हृद्रोगमें देना चाहिये, ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे वातव्याधिकी तरह

पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना चाहिये। छातीके दर्दमें रक्तपित्त और कासरोगोक्त पथ्य व्यवस्था करना।

निषिद्ध कर्म्म।—रुक्ष या अन्यान्य वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, उपवास और परिश्रम, रात्रिजागरण, अग्नि और धूपमें बैठना, मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक हैं।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

संज्ञा निदान और प्रकारभेद।—जिस रोगमें अतिशय कष्टसे पिशाब हो उसको मूत्रकृच्छ्र कहते है। तीक्ष्णद्रव्य या तीक्ष्ण औषध सेवन; रुखा अन्न भोजन, रुखो शराब पीना, जलाभूमिजात * जीवका मांस भोजन, पहिलेका खाया अन्न न पचनेपर फिर आहार करना, अरुचि, कसरत, घोड़ा आदि तेज सवारी पर चढ़ना, मलमूत्रका वेग धारण आदि कारणोंसे यह रोग उत्पन्न होता है। मूत्रकृच्छ्र आठप्रकार; वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुक, पूरीषज, अश्मरीज और शुक्रज।

विभिन्न दोषजात रोग लक्षण।—वातज मूत्रकृच्छ्रमें दोनो पट्ठा, वस्ति और लिङ्गमें अत्यन्त दर्द और बार बार थोड़ा २ पिशाब होता है। पित्तजमें दर्द और जलनके साथ बार बार पीला या रक्तवर्ण पिशाब होता हैं। कफजमें लिङ्ग और वस्तिमें भारबोध, शोथ और पिच्छिल मूत्र होता है। सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें उक्त

* बरसातके पानीसे डूबे हुये स्थानको जलाभूमि कहते है।

तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। मूत्रवहा स्रोत काटेंमे क्षत या किसी तरह चोट लगनेसे जो मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होता है उसको आगन्तुक मूत्रकृच्छ्र कहते है। इसमें वातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण लक्षित होता है। मलका वेग धारण करनेसे उदराध्मान और शूलयुक्त एकप्रकारका मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है उसको पुरीषज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। अश्म अर्थात् पथरी रोगमें जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको अश्मरी कहते है। इससे छातीमें दर्द, कम्प, कुक्षिशूल, अग्निमान्द्य और मूर्च्छा यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। दूषित शुक्र मूत्रमार्गमें उपस्थित होनेसे शुक्रज मूत्रकृच्छ्र पैदा होता है। इसमें वस्ति और लिङ्गमें शूलवत् दर्द तथा अति कष्टसे पिशाब होता है।

मूत्राघात लक्षण।—पिशाब रुक रुक कर थोड़ा थोड़ा होना या पिशाब बन्द होनेसे उसको मूत्राघात कहते है। मूत्र-कृच्छ्रकी अपेक्षा इस रोगमें पिशाबमें कष्ट कम होता है, इसका और मूत्रकृच्छ्र दोनोंका निदान एकही प्रकार है। प्रमेहसे भी यह रोग होते देखा गया है। बूंद बूंद पिशाब होना, मूत्रके साथ रक्तजाना मूत्राशय फूलना, आध्मान, तीव्र वेदना, वस्तिमें पत्थरकी तरह गांठका पैदा होना, गाढ़ा पिशाब होना, मलगन्धि या मलमिश्रित पिशाब होना आदि नाना प्रकारके लक्षण मूत्राघात रोगमें प्रकाशित होता है। सब प्रकारका मूत्राघात अतिशय कष्ट-दायक और कष्ट साध्य है।

विभिन्न दोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा।—वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें गुरिच, शोंठ, आंवला, असगन्धा, और गोखरूके काढ़ेके साथ सहत मिलाकर पीना। पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें शत-मूलीके रसमें चीनी मिलाकर पीना। कांकड़ीकी बीज मुलेठी

और दारु हलदीका चूर्ण अरवा चावलके धोवनके साथ अथवा दारुहलदीका चूर्ण सहत और आंवलेके रसमें मिला कर पोनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। शतावर्य्यादि और हरीतक्यादि काढ़ा पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें विशेष उपकारी हैं। कफज मूत्रकृच्छ्रमें शमालुको बीज, मट्ठेके साथ, अथवा प्रवाल चूर्ण अरवा चावलके धोवनके साथ किम्बा गोखरूचूर्ण शोंठके काढ़ाके साथ पीना। त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें वृहती, कण्टकारी, अम्बष्ठादि, मुलेठी और इन्द्रयवका काढ़ा पीना। आगन्तुक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा वातज मूत्रकृच्छ्रकी तरह करना। गोखरू बीजके काढ़ेमें जवाक्षार मिलाकर पीनेसे पूरीषज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। अश्मरीज मूत्रकृच्छ्रमें गोखरू बीज, अमिलतासकी गूदी, कुश, कास, जवासा, पाथरचूर और हरीतकी, इन सबका काढ़ा या चूर्ण सहतके साथ मिलाकर सेवन करना। केवल पाथरचूरका रस या काढ़ा अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र नाशक है। शुक्रज मूत्रकृच्छ्रमें सहतके साथ शिलाजीत सेवन करना। गोरक्ष चाकुलाका काढ़ा, सहत मिलाया जवाक्षार, मट्ठेके साथ गन्धक, जवाक्षार और चीनी; जवाक्षार और चीनी मिला सफेद कोंहड़ेका रस; गुड़के साथ आंवलेका काढ़ा अथवा हुड़हुड़की बीज बासी पानीसे पीसकर सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। नारियलका फूल अरवा चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे रक्तमूत्र आराम होता है। एलादि क्वाथ, वरुणाद्य लौह, कुशावलेह, सुकुमारकुमारक घृत और त्रिकण्टकाद्य घृत सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्रमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

मूत्राघात चिकित्सा।—मूत्राघात रोगमें मूत्रकृच्छ्र नाशक और अश्मरी नाशक औषध विचारकर प्रयोग करना।

मूत्रका रोध होनेसे तेलियाकी जड़ कांजीमें पीस नाभिपर लेप करना। लिङ्गके भीतर कर्पूरका चूर्ण रखना। सफेद कोहड़ेके पानीके साथ जवाक्षार और चीनी मिलाकर पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है। ककड़ीकी बीज, सैन्धानमक और त्रिफला इन सबका समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ पीनेसे भी मूत्ररोध दूर होता है। चित्रकाद्य घृत, धान्यगोक्षुरक घृत, विदारी घृत, शिलोद्भिदादि तेल और उशीराद्य तेल, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोगका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध और पुष्टिकर आहार इस रोगमें उपकारी है। दिनको पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका शूरुवा, छाग, या पक्षीके मांसका शूरुवा, बैगन, परवर, गुल्लर, केलेका फूल आदिकी तरकारी, तिक्त शाक, पाती या कागजी नीबू खाना। रातको पूरी, रोटी, मोहनभोग, दूध और थोड़ा मीठा खाना। जलपानमें मक्खन, मिश्री, तरबूज, पक्का मीठा फल आदि भोजन उपकारी है। सहनेपर रोज सवेरे कच्चे दूधमें पानी मिलाकर पीना या मिश्रीका शरबत पीना। रोज नदी या लम्बे चौड़े तालाबमें स्नान करना।

निषिद्ध कर्म्म।—रूक्षद्रव्य, गुरुद्रव्य, अम्लद्रव्य, दही, गुड़, अधिक मछली, उरदकी दाल, लाल मिरचा, शाकादि भोजन और मैथुन, घोड़ा आदिकी सवारी पर चढ़ना, कसरत, मलमूत्रका वेग रोकना, तेज शराब पीना, चिन्ता, रात्रि जागरण इस रोगमें अनिष्टकारक है।

अश्मरी।

—०—

संज्ञा और पूर्व्वरूप।—कुपित वायु कर्त्तृक मूत्र और शुक्र किम्बा पित्त, कफ, विशोषित हो पत्थरकी तरह कड़ा होनेसे अश्मरी रोग होता है। चलित भाषामें इसको "पथरी" रोग कहते है, यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले वस्तिका फूलना, वस्तिके पासवाले स्थानोमें दर्द, मूत्रमें छाग गन्ध, कष्टसे पिशाब होना, ज्वर और अरुचि, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अपने अपने कारणसे कुपित वायु, पित्त, कफ और शुक्र यह चारसे अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। सुतरां यह रोग वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज भेदसे चार प्रकारका है। नाभि और नाभिके नीचे, फोतेके नीचे सीयनपर तथा वस्तिके मुखमें दर्द, अश्मरीसे मूत्रमार्ग बन्द होनेसे विच्छिन्न धारसे मूत्र आना, पिशाब करती वक्त वेग देनेसे दर्द, मूत्रमार्गमें अश्मरी न रहनेसे थोड़ा लाल रङ्गका मूत्र निकलना आदि इसके साधारण लक्षण है। किसी प्रकारके अश्मरीसे मूत्रमार्गमें क्षत होनेसे पिशाबमें रक्त दिखाई देता है।

वातज पित्तज अश्मरी लक्षण।—वातज अश्मरी रोगमें अश्मरीकी आकृति श्याम या अरुण वर्ण और छोटे कांटे उसमें पैदा होता है। इसमें रोगी दांत पीसता है, कांपता है, तकलीफसे चिल्लाता है, सर्व्वदा लिङ्ग और नाभि दबाये रहता है तथा पिशाब उतरनेके लिये कांखनेसे अधो वायु, मल और बूंद बूंद पिशाब होता है। पित्तज अश्मरी अतिशय उष्ण स्पर्श, रक्त, पीत या कृष्णवर्ण और भेलावेकी तरह आकृति होती है। इससे

वस्तिमें अत्यन्त जलन होता है। कफजमें शीतल स्पर्श, भारी, चिकनी और सहतकी तरह पिङ्गल या सफेद रंग तथा वस्तिमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द होता है; शुक्रका वेग रोकनेसे शुक्राश्मरी पैदा होती है; इससे वस्तिमें शूलवत् दर्द मूत्रकृच्छ्र और अण्ड-कोषमें शोथ होता है।

शर्करा और सिकता लक्षण।—यह अश्मरी अधिक दबानेपर क्षुद्र अंशोंमें विभक्त होनेसे शर्करा और अति सूक्ष्म अंशोंमें विभक्त होनेसे उसको सिकता कहते है। वायुका अनु-लोम रहनेसे शर्करा और सिकता पिशाबके साथ निकल जाती है। पर वायुका अनुलोम न रहनेसे वही सब शर्करा या सिकता रुद्ध होता है तथा दौर्ब्बल्य, अवसाद, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डुता, तृष्णा, हृत्पीड़ा, जीमचलाना आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

सांघातिक लक्षण।—अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगमें रोगीके नाभि और अण्डकोषमें शोथ मूत्ररोध और शूलवत् वेदना यह सब लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीका मृत्यु जानना।

चिकित्सा।—अश्मरी रोग उत्पन्न होतेही औषध प्रयोग करना आवश्यक है, नहीतो थोड़े दिन बिना चिकित्साके रहनेसे फिर औषधसे आराम नही होता हैं, तब नस्तरसे पथरीको बाहर निकालना पड़ता हैं। इस रोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होते ही स्नेह प्रयोग करना चाहिये। वातज अश्मरीमें वरुणछाल, शोंठ और गोखरू इसके काढ़ेमें जवाक्षार २ मासे और पुराना गुड़ २ मासे मिलाकर पीना। गोखरू, रेंड़का पत्ता, शोंठ और वरुणछाल इसका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होता है। शर्करा रोगमें वरुण छाल, पाथरचूर, शोंठ और गोखरू इसके काढ़ेमें ।≈) आनेभर

जवाक्षार मिलाकर पीना। गोक्षुर बीज चूर्ण चार आनेभर भेड़ीके दूधमें मिलाकर सात दिन पोनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होता है। तालमूली अथवा गोरक्षचाकुला बासी पानीमें पीसकर पीनेसे किम्बा नारियलका फल ४ मासे, जवाक्षार ४ मासे पानीमें पीसकर पीना अश्मरी रोगमें विशेष उपकारी है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगोक्त कई योग और औषध अश्मरी आदि रोगमें विचारकर देना चाहिये। शुण्ठ्यादि क्वाथ, वरुणादि और वृहत् वरुणादि कषाय, एलादि काढ़ा, पाषाणवज्र रस, पाषाण भिन्न, त्रिविक्रम रस, वरुणाद्य घृत और वरुणाद्य तैल अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगका श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य।—मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है अश्मरीमें भी वही सब पालन करना चाहिये।

प्रमेह।

प्रमेह निदान।—बिलकुल ही परिश्रम न करना, रात दिन बैठे रहना, या बिछौनेपर पड़े रहना, अधिक निद्रा, दही दूध, जल जात और जलाभूमिजात जीवका मांस भोजन, नये चावलका भात खाना, बरसातका नया पानी पीना, गुड़ और अन्यान्य कफ वर्द्धक आहार विहारादिसे वस्तिगत कफ दूषित हो मेद, मांस और शरीरके क्लेदको दूषित करनेसे पित्तज प्रमेह तथा कफ और पित्त क्षीण होनेसे वायु कुपित हो वसा, मज्जा, ओज

और लसीका * पदार्थकी वस्तिके मुहमें लानेसे वातज प्रमेह पैदा होता है। प्रमेह रोग २० प्रकार। इसमें उदक मेह, इक्षु-मेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीत-मेह, शनैर्मेह, और लालामेह यह १० प्रकार कफज। क्षारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह और रक्तमेह यह ६ प्रकार पित्तज और वसामेह, मज्जामेह, क्षौद्रमेह और हस्ति-मेह यह चार प्रकार वातज प्रमेह है। सब प्रकारका प्रमेह उत्पन्न होनेसे पहिले दांत आंख कर्णादिमें अधिक मल सञ्चय, हाथ पैरमें जलन, देहका चिकना, प्यास और मुहका स्वाद मीठा होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अधिक मात्रासे मूत्र आना और मूत्रको आविलता यह दो साधारण लक्षण प्रायः सब प्रमेहमें दिखाई देता है।

सर्व्वविध प्रमेहके लक्षण।—उदक प्रमेहका मूत्र गदला, कभो साफ, पिच्छिल, कभो सफेद पानीकी तरह गन्ध-हीन होता है। इक्षु प्रमेह इक्षु रसकी तरह मीठा होता है। सान्द्र प्रमेहका पिशाब देरतक रख छोड़नेसे गाढ़ा हो जाता है। वसा प्रमेह शराबकी तरह तथा उपर साफ और नीचे गाढ़ा मूत्र दिखाई देता है। पिष्टप्रमेहमें पिशाब करती वक्त रोगी रोमाञ्चित होता है और आटा घोलनेकी तरह सफेद या अधिक पिशाब होता है। शुक्रमेहमें मूत्र शुक्रकी तरह या शुक्रमिश्रित होता है। सिकता मेहके मूत्रके साथ बालुकी तरह कड़ा पदार्थ निकलता है। शीतप्रमेहमें मूत्र अतिशय शीतल, मीठा और बहुत होता है। शनैर्मेहमें अति मन्द वेगसे थोड़ा थोड़ा मूत्र निकलता है। लाला-

* मांसके चिकने भागकी वसा, हड्डीके बीचके स्नेह भागकी मज्जा, त्वक् और मांसके मध्यवर्त्ती जलीय भागकी लसीका और सब धातुके सार पदार्थकी ओज कहते हैं।

मेहमें लालायुक्त तन्तुविशिष्ट और पिच्छिल पिशाब होता है। क्षारमेहका मूत्र खारे पानीकी तरह गन्ध, वर्ण स्वाद और स्पर्श युक्त होता है। नीलमेह नीलवर्ण और कालमेहमें काले रंगका पिशाब होता है। हारिद्रमेहमें मूत्र पीला, कटुरसयुक्त और पिशाब करती वक्त लिङ्गनालीमें जलन होता है। माञ्जिष्ठ मेहमें मजीठके पानीकी तरह लाल दुर्गन्धयुक्त मूत्र होता है। रक्त मेहमें मूत्र बदबूदार, गरम और खारा होता है वसामेहमें चर्व्वी-की तरह अथवा चर्व्वी मिला मूत्र बार बार होता है, कोई कोई वसामेहको "सर्पिर्मेह" भी कहते हैं। मज्जामेहमें मूत्र मज्जाकी तरह या मज्जा मिला मूत्र होता है। क्षौद्र मेहमें मूत्र कषाय और मधुर रसयुक्त और रूक्ष होता है। हस्तिमेहमें रोगी मत्त-हातीकी तरह सर्व्वदा अधिक पिशाब करता है, मूत्रत्यागके पहिले किसी प्रकारका वेग नहीं होता। कभी कभी मूत्ररोध भी होते देखा गया है।

मेह रोगके उपद्रव।—१० प्रकारके कफज प्रमेहमें अजीर्ण, अरुचि, वमि, निद्रा, खांसीके साथ कफ निकलना और लिङ्गनालीमें सूची विद्धवत् वेदना, घाव, अण्डकोषका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्लोद्गार, मूर्च्छा और मलभेद, तथा ४ प्रकारके वातज मेहमें उदावर्त्त, कम्प, छातीमें दर्द, आहारमें लोभ, शूल, अनिद्रा, कास और श्वास यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। उपद्रवयुक्त प्रायः सब प्रकारका प्रमेह कष्टसाध्य है।

मधुमेह।—सब प्रकारका प्रमेह, अचिकित्सित भावसे बहुत दिन तक रहनेसे मधुमेह रोग होता है। इसमें मूत्र मधु को तरह गाढ़ा, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मीठा होता है तथा रोगीका शरीरभी मीठास्वादयुक्त होता है। मधु मेहमें जिस जिस

दोषका आधिक्य रहता है लक्षण भी उसी दोषका प्रकाशित होता है, इस अवस्थामें बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे रोगीके शरीरमें नाना प्रकारकी पिड़िका उत्पन्न होती है। मधुमेह और पिड़िकायुक्त मेह असाध्य। पिता माताके दोषसे पुत्रको प्रमेह रोग होनेसे वह भी असाध्यही जानना। गुदा, मस्तक, हृदय, पीठ और मर्म्मस्थानमें पिड़िका उत्पन्न होनेसे और उसके साथ प्यास और कास आदि उपद्रव रहनेसे वहभी असाध्य होता है।

चिकित्सा और मुष्टियोग।—प्रमेह रोग स्वभावतः ही कष्टसाध्य है। इससे रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। गुरिचका रस, आंवलेका रस, नरम सेमलके मुसलीका रस आदि प्रमेह रोगके उत्कृष्ट मुष्टियोग है। त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथा इसका काढ़ा सहतके साथ पीनेसे सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। सहत और हलदीका चूर्ण मिलाया आंवलेका रस भी विशेष उपकारी हैं। शुक्रमेहमें दूधके साथ शतमूलीका रस अथवा रोज सवेरे कच्चा दूध आधा पाव और पानी आधा पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है। पलाश फूल १ तोला, चीनी आधा तोला एक साथ ठण्ढे पानीके साथ पीसकर पीनेसे भी सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। वङ्गभस्म प्रमेह रोगका उत्कृष्ट औषध है। सेमलके मुसलीका रस, सहत और हलदीके चूर्णके साथ २ रत्ती मात्रा वङ्गभस्म सेवन करनेसे प्रमेह रोग आराम होता है।

मूत्ररोध चिकित्सा।—प्रमेह रोगमें मूत्रका रोध होनेसे कांकड़ीको बीज, सेन्धा नमक और त्रिफला, इसका चूर्ण चार आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करना। कुशावलेह और मूत्र-कृच्छ्र रोगके अन्यान्य औषध भी इस अवस्थामें दे सकते हैं।

पाथरचूरके पत्तेका रस पीनेसे मूत्र साफ आता है, एलादि चूर्ण, मेहकुलान्तक रस, मेहमुद्गर, वङ्गेश्वर, वृहद्वङ्गेश्वर, वृहत् हरिशङ्कर रस, सोमनाथ रस, इन्द्रवटिका, स्वर्णवङ्ग, वसन्तकुसुमाकर रस, चन्दनासव, दाड़िम्बाद्य घृत और प्रमेहमिहिर तैल आदि रोगको अवस्था विचारकर प्रमेह रोगमें देना चाहिये। हमारा "प्रमेह विन्दु" सब प्रकारका प्रमेह और सुजाककी उत्कृष्ट औषध है।

पिड़िका निवारण।—प्रमेहमें पिड़िका उत्पन्न हो तो गुल्लरका दूध अथवा सोमराज को बीज पीसकर उसका लेप करना। अनन्तमूल, श्यामालता, मुनक्का, त्रिवृत्, सनाय, कुटकी, बड़ीहर्र, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, हलदी, दारुहलदी और गोखरूकी बीज इन सबका काढ़ा पीनेसे प्रमेह पिड़िका दूर होती है, शारिवादि लौह, शारिवाद्यासव और मकरध्वज रस इस अवस्थाका उत्कृष्ट औषध है। प्रमेह रोगके अन्यान्य औषध भी विचारकर दे सकते हैं। प्रमेह पिड़िकामें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलके भात, मूग, मसूर, चनेकी दाल, छोटे मछलीका थोड़ा शुरुवा, शशक, कपोत, बटेर, कुक्कुट, छाग और हरिण मांसका शुरुवा, परवल, गुल्लर, बैंगन, सैजनका डण्डा, केलेका फूल, नरम कच्चा केला आदिका तरकारी और पाती या कागजी नीबू खाना प्रमेह रोगमें हितकर है। रातको रोटी, पूरी और उपर कही तरकारी तथा थोड़ा मीठा मिलाया दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य उपकारी है। जलपानमें ऊख, सिंघाड़ा, किसमिस, बदाम, खजूर, अनार, भिङ्गोया चना, थोड़े मीठेका मोहनभोग आदि आहार करना, सहनेपर स्नान भी करना।

निषिद्ध द्रव्य।—अधिक दूध, मठा, मछली, लाल मिरचा, शाक, अम्लद्रव्य, उरदकी दाल, दही, गुड़, लौकी, और अन्यान्य कफवर्द्धक द्रव्य भोजन; मद्यपान, मैथुन, दिनको सोना, रातका जागना, धूपमें फिरना, मूत्रका वेग धारण और धूमपान प्रभृति इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शुक्र और मधुमेहका पथ्यापथ्य।—शुक्रमेहमें पुष्टिकर आहार करना चाहिये, इसमें रोगीका अग्निवल विचार कर ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। मधु मेहमें वहुमूत्र रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

गनोरिया या सुजाक।—दूषित योनि—वेश्या प्रभृतिके सहवाससे भी एक प्रकारका प्रमेह रोग होता है उसको हिन्दीमें "सुजाक" और अङ्गरेजीमें "गनोरिया" कहते हैं। सहवासके प्रायः सात दिनके भीतरही यह रोग दिखाई देता है। पहिले लिङ्गके अग्रभागमें सुरसुरी, लिङ्ग खोलनेसे या पिशाब करती वक्त या पिशाबके बाद दर्द होना, बार बार लिङ्गोद्रेक और पिशाब करनेकी इच्छा होती है, फिर लिङ्गनालीमें घाव, लिङ्ग फूलना, लालरङ्ग, अण्डकोष और दोनो पट्ठोंमें दर्द, सर्व्वदा पीप रक्तादिका स्राव या क्लेदसे मूत्रमार्ग बन्द होनेसे मूत्ररोध या दोधारसे मूत्रका निकालना, यह सब लक्षण प्रकाशित होता है। सुजाक पुराना होनेसे कष्ट क्रमशः कम हो जाता है। यह रोग बड़ा संक्रामक है अर्थात् इस रोग वाली स्त्रीके सहवाससे पुरुषको और पुरुषके सहवाससे स्त्रीको भी यह रोग उत्पन्न होता है।

भिन्न भिन्न अवस्थाकी चिकित्सा।—औपसर्गिक प्रमेहमें पहिले पिशाब साफ लानेका उपाय करना उचित है, साथ ही घाव आराम होनेकी भी दवा देना चाहिये। त्रिफलाका

काढ़ा, बबूलके लकड़ीका काढ़ा, पीपलके छालका काढ़ा, खर भिङ्गोया पानी और दहीके पानीकी पिचकारी लेनेसे घावमें विशेष उपकार होता है। रोज सवेरे कवाबचीनीका चूर्ण ≠) आनेभर, सोरा एक आनेभर और सनायका चूर्ण एक आनेभर फांक गरम पानी ठण्ढाकर दो घोंट पीना। रातको सोती वक्त कवाबचीनीका चूर्ण एक आनेभर, कर्पूर २ रत्ती, अफीम आधी रत्ती एकत्र मिलाकर सेवन कराना। इससे साफ पिशाब उतरता है, तथा लिङ्गोद्रेक स्वप्नदोष और घाव आराम होता है। गोंदका पानी या बबूलके पत्तेके रसमें वङ्गेश्वर या मेहमुद्गर वटी सेवन करनेसे क्लेद, पीप रक्तादिका स्राव आदि जल्दी आराम होता है। गुरिचका रस तेज-पत्तेकी लकड़ी भिङ्गोये पानीके साथ वही सब औषध सेवन करनेसे भी जलन आराम होता है। लिङ्गका शोथ थोड़ा गरम त्रिफलाका काढ़ा या जायफलके काढ़ेमें लिङ्ग डूबो रखनेसे आराम होता है। सर्व्वदा कपड़ेसे लिङ्ग लपेटकर बांध रखना तथा उपरको उठा रखना चाहिये। पिशाब साफ लानेके लिये पाथरचूरके पत्तेके रसके साथ उक्त औषधि और कुशावलेह सेवन करना। हमारा "प्रमेहविन्दु" सुजाककी अकसीर दवा है। इससे थोड़े दिनमें ही पीड़ा शान्त होता है।

आराम न होनेका परिणाम।—यह रोग जड़से आराम न होनेसे फिर क्रमशः शुक्रमेह, शुक्रतारल्य या ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता हैं। सब प्रकारकी शीतल क्रिया या स्नान करना इस रोगमें उचित नही है। इससे थोड़ी देरके लिये पीड़ा में आराम मालूम होनेपर भी परिणाममें गठिया या पङ्गु रोग होनेकी सम्भावना है।

सोमरोग।

संप्राप्तिनिदान और लक्षण।—सोमरोगका साधारण नाम "बहुमूत्र" है। मिष्टद्रव्य या कफजनक द्रव्यका अधिक भोजन, अधिक स्त्रीसे सङ्गम, शोक, अतिरिक्त परिश्रम, योनिदोष सम्पन्ना स्त्री सहवास, अधिक मद्यपान, अतिनिद्रा या दिवा निद्रा, अतिरिक्त चिन्ता अथवा विषदोष प्रभृति कारणोंसे सब देहका जलीय पदार्थ विकृत और स्थानच्युत हो मूत्राशयमें एकत्र होता है फिर वही पानी पिशाबके रास्तेसे अधिक निकलता रहता है। निकलती वख्त, किसी तरहकी तकलीफ नहीं होती और पानी भी साफ, ठण्ढा, सफेद रङ्ग तथा गन्धशून्य होता है। इस रोगमें दुर्बलता, रतिशक्तिकी हीनता, स्त्री सहवासमें अक्षमता, मस्तककी शिथिलता, मुख और तालुका सूखना तथा अत्यन्त प्यास यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। इसमें सोम अर्थात् जलीयांशका क्षय होता है इससे इसको सोमरोग कहते है। कोई कोई इसको मूत्रातिसार भी कहते है। रोगके प्रवल अवस्थामें कृशता, घर्म्मनिर्गम, शरीरमें बदबू, खांसी अङ्गकी शिथिलता, अरुचि, पिड़िका, पाण्डुवर्णता, भ्रान्ति, पीला पिशाब होना, मीठास्वाद और हाथ, पैर तथा कानमें सन्ताप यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

सांघातिक अवस्था।—बहुमूत्र रोगमें थोड़ा भी बलक्षय होनेसे यदि प्रलाप, मूर्च्छा या पृष्ठव्रण आदि दुरारोग्य स्फोटकादि उत्पन्न हो तो रोगीके प्राणनाशकी सम्भावना है।

चिकित्सा।—पक्का केला एक, आंवलेका रस १ तोला, सहत ४ मासे, चीनी ४ मासे और दूध एक पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे वहुमूत्र रोग शान्त होता है। पक्का केला बिदारीकन्द और शतमूली समभाग दूधके साथ खानेसे मूत्राधिक्य दूर होता है। गुल्लरका रस या गुल्लरके बीजका चूर्ण जामुनके गुठलीका चूर्ण केलेके जड़का रस, आंवलेका रस, नरम ताड़फल और खजूरका रस, नरम अमरूद भिङ्गोया पानी, तथा भूने नेनुआका रस बहु-मूत्र निवारक है। वृहद्वङ्गेश्वर, तारकेश्वर रस, सोमनाथ रस, हेमनाथ रस, वसन्तकुसुमाकर रस, वृहत् धात्री घृत, और कदलाद्य घृत वहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर और चनेकी दालका जूस। छाग, हरिण मांसका शूरुवा, तथा गुल्लर नेनुआ, कच्चा केला, परवर, सैजनकी शाक आदि तरकारी, मक्खन निकाला दूध पीना, आंवला, जामुन, कसेरू, पक्का केला, पाती या कागजी नीबू और पुरानी शराब भी सेवन करना। रूक्षक्रिया, घोड़ा हाथीकी सवारी पर घूमना, पर्य्यटन, कसरत आदि इस रोगमें विशेष उपकारी है। पीड़ाके प्रवल अवस्थामें दिनको भात न खाकर जौके आटे की रोटी या केवल पूर्व्वोक्त दूध पीकर रहना चाहिये। गरम पानी ठण्ढाकर पीना तथा सहनेपर उसी पानीसे स्नान करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, जला-भूमिजात मांस, दही, अधिक दूध, मिष्टद्रव्य, लाल कोंहड़ा, लौकी, शाक, खट्टा, उरदकी दाल, लाल मिरचा भोजन और अधिक जलपान, तीव्र सूरापान, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, अधिक निद्रा, मैथुन और आलस्य इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

शुक्रतारल्यका निदान।—कम उमरमें स्त्री सहवास, हस्तमैथुन या और कोई अन्याय रीतिसे शुक्र स्खलन, अतिरिक्त स्त्री सहवास आदि कारणोंसे शुक्रतारल्य रोग उत्पन्न होता हैं। इससे मल मूत्रके समयमें अथवा थोड़ा भी कामोद्रेक होनेसे शुक्र-पात, स्त्रीदर्शन, स्पर्शन या स्मरण मात्रसे रेतःपात, स्वप्नदोष, सङ्गम होते ही शुक्रपात, शुक्रकी तरलता, अग्निमान्द्य, कोष्टवद्धता या अतिसार, अजीर्ण, शिरघूमना, आंखके चारो तरफ काला दाग होना, दुर्ब्बलता, उद्यमशून्यता, तथा निर्ज्जनप्रियता यही सब लक्षण लक्षित होता है। पीड़ाके प्रवल अवस्थामें लिङ्ग शिथिल होनेपरभी शुक्रपात होता रहता है और लिङ्गोद्रेक शक्ति नष्ट हो जाती है, तथा फिर क्रमशः ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। भय, शोक या अन्य किसी कारणसे, विद्वेषभाजन स्त्री सहवास, औपदंशिक पीड़ा या और कोई कारणसे शुक्रवाहिनी शिराविकृति, कामवेगसे उत्तेजित होनेपर मैथुन नही करना और अधिक कटु, अम्ल, उष्ण, लवणरसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे भी ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है।

शुक्रतारल्य चिकित्सा।—शुक्रतारल्य रोगमें शुक्रकी रक्षा करना ही प्रधान चिकित्सा है। कच्ची सेमलकी मुसलीका रस, तालमूली चूर्ण, विदारीकन्दका रस या चूर्ण, आंवलेका रस, कवांचकी बीज या जेठीमध चूर्ण प्रभृति द्रव्य शुक्रवर्द्धक और शुक्र-तारल्य नाशक है।

ध्वजभङ्ग चिकित्सा।—मल मूत्रके समय शुक्रस्राव और ध्वजभङ्गमें उक्त अनुपानके साथ वृहद्वङ्गेश्वर, सोमनाथ रस, शुक्रमातृका वटी, कामचूड़ामणि रस, चन्द्रोदय मकरध्वज, पूर्णचन्द्र रस, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मन्मथाभ्र रस, मकरध्वज रस आदि औषध देना। अमृतप्राश घृत, वृहत् अश्वगन्धाघृत, कामदेव घृत, वानरी वटिका, कामाग्निसन्दीपन मोदक, मदनानन्द मोदक, शतावरी मोदक, रतिवल्लभ मोदक और श्रीगोपाल तथा पल्लवसार तैल प्रभृति शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्गका उत्कृष्ट महौषध है। हमारा "रतिविलास" सेवन करनेसे शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोग जल्दी आराम होता है। स्वप्नदोषमें सोते वक्त कवावचीनीका चूर्ण एक आनेभर, कपूर २ रत्ती और अफीम आधी रत्ती यह तीन द्रव्य मिलाकर अथवा केवल कवाबचीनीका चूर्ण ॥) आनेभर सहतके साथ सेवन करना, अथवा हमारी "शिवदा वटिका" सेवन करनेसे स्वप्नदोष रोग आराम होता है।

सङ्गममें शीघ्र शुक्रपात निवारणके लिये पूर्व्वोक्त मोदक और नागवल्ल्यादि चूर्ण, अर्ज्जकादि वटिका, शुक्रवल्लभ रस या कामिनी विद्रावण रस सेवन करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—सबप्रकारका पुष्टिकर आहार रोगका पथ्य हैं। दिनको पुराने चावलका भात, रोहित आदि बढ़िया मछली, छाग, मेष, चटक, कुक्कुट, कबूतर, बटेर, तित्तिर आदिके मांसका शुरुवा ; मूंग, मसूर और चनेका दाल ; बत्तकका अण्डा, छागका अण्डकोष, आलु, परवर, गुल्लर, बैगन, गोभी, शलगम, गाजर आदि घृतपक्क तरकारी खाना। रातको पूरी या रोटी और उपर कही तरकारी, दूध और मोठा खाना उचित है।

जलपान।—जलपानमें घी, चीनी, सूजी वा वेसनकी

वस्तु, अर्थात् खाजा, खुरमा और मोहनभोग तथा बेदाना, बदाम, पिस्ता, किसमिस, खजूर, अंगूर, आम, कटहल, और पपीता आदि फल उपकारी है। अग्निबल बिचारकर सब प्रकारका पुष्टि-कर द्रव्य भोजन इस रोगमें उपकारी है, स्नान सहनेपर करना।

निषिद्ध द्रव्य।— अधिक लवण, लाल मिरचा, खट्टा, आग और धूपका उत्ताप लगाना, रात्रि जागरण, अधिक मद्यपान, मैथुन, और अधिक परिश्रम यह सब दोनो रोगमें विशेष अनिष्ट कारक है।

—०—

मेदोरोग।

—:०:—

निदान।—निरन्तर कफजनक द्रव्य भोजन अथवा व्यायामादि किसो तरहका परिश्रम न करनेसे किम्बा दिनको सोना आदिसे भुक्तद्रव्य अच्छी तरह हजम नही होनेसे मधुर रसयुक्त अपक्व रस उत्पन्न होता है, तथा उसी रसके चिकने पदार्थसे मेदकी वृद्धि हो मेदरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेद वृद्धिके कारण रसरक्तादिवाही स्रोत समूह बन्द हो जाता है, इससे अन्यान्य धातुभी पुष्ट नही होने पाता, केवल मेद धातुही क्रमशः वर्द्धित होनेसे मनुष्य अति स्थूल और सब काम काजमें असमर्थ हो जाता है, क्षुद्रश्वास, प्यास, मूर्च्छा, अधिक निद्रा, अकस्मात् उच्छासका रोध, अवसन्नता, अतिशय क्षुधा, पसीना निकलना, शरीरमें दुर्गन्ध,

बल और मैथुन शक्तिकी कमी आदि मेदरोगके आनुसङ्गिक लक्षण है।

मेदोवृद्धि का परिणाम फल।—मेदोधातु अतिशय बढ़ जानेसे वातादि दोष समूह कुपित होकर प्रमेह पिड़िका, ज्वर और भगन्दर आदि उत्कट पीड़ा उपस्थित होनेसे प्राणनाशको सम्भावना है।

चिकित्सा।—जिससे शरीर कृश और रूक्ष हो वही आचरण करना मेद रोगकी प्रधान चिकित्सा है। रोज सवेरे सहत मिलाया पानी पीनेसे मेदरोग आराम होता है। त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण तेल और नमकके साथ मिलाकर कुछ दिन सेवन करनेसे भी मेदोरोग प्रशमित होता है। अथवा विड़ङ्ग, शोंठ, जवाक्षार, कान्तलौह भस्म, यव और आंवला, इन सबका सम-भाग चूर्ण सहतके साथ मिलाकर चाटना। गनियारीका रस या शिलाजतु सेवनसे भी मेदोरोगमें विशेष उपकार होता है। अमृतादि और नवक गुग्गुलु, त्र्यषणाद्य लौह, वड़वाग्नि लौह और रस तथा त्रिफलाद्य तैल मेदोरोग दूर करनेके लिये प्रयोग करना चाहिये। महासुगन्धि तैल या हमारा हिमांशुद्रव बदनमें लेप करनेसे मेदजन्य दुर्गन्ध जड़से आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—दिनको सांवा चावलका भात, अभावमें महीन चावलका भात, छोटी मछलीका शूरुवा, गुल्लर, कच्चा केला, बेगन, परवर और पुराने सफेद कोंहड़ेको तरकारी, खट्टेमें पाती या कागजी नीबू। रातको जौके आटेकी रोटी और ऊपर कही तरकारी। मीठेमें सिर्फ थोड़ी मिश्री खाना। स्नान न करना ही अच्छा है, सहनेपर गरम पानी ठण्ढाकर स्नान करना

और गरम पानी पीना उचित है। परिश्रम, चिन्ता, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, व्यायाम और मैथुन यह सब कार्य्य मेदोरोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—यावतीय कफवर्द्धक और स्निग्धद्रव्य, दूध, दही, मक्खन, मांस, मछली, घृतपक्व द्रव्य, नारियल, पक्का केला और दूसरे पुष्टिकर द्रव्य भोजन, सुखकर बिछौनेपर शयन, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, सर्व्वदा उपवेशन, आलस्य और चिन्ताशून्यता इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कार्श्यरोग और औषध।—यहां कार्श्य रोगके विषयमें भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। रूक्षद्रव्य भोजन, अत्यन्त परिश्रम, अतिरिक्त चिन्ता, अधिक स्त्रीसहवास आदि कारणोंसे कार्श्यरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेदमांस आदि धातु क्षीण हो जाता है। असगंध कार्श्यरोगका एक उत्कृष्ट औषध है; दूध, घृत, या पानीके साथ असगंधको पीसकर या कल्क सेवन करना कार्श्यरोगमें विशेष उपकारी है।

कार्श्यरोगमें हमारा अश्वगन्धारिष्ट।—शुक्रतारल्य रोगमें जो सब औषधि कथित हैं, उसमें अश्वगन्धा घृत, अमृतप्राश घृत और वातव्याधि कथित छागलाद्य घृत आदि पुष्टिकर औषध कार्श्यरोगमें प्रयोग करना चाहिये हमारा "अश्वगन्धारिष्ट" कार्श्य-रोगका अति उत्कृष्ट औषध है। अश्वगन्धाका कल्क १ सेर, काढ़ा १६ सेर और दूध १६ सेर यह तीन प्रकारके द्रव्यके साथ तिलतैल ४ सेर यथाविधि पाककर मालिश करनेसे कृशाङ्ग पुष्ट होता है। इस रोगमें घी, दूध, मांस, मत्स्य, और अन्यान्य यावतीय पुष्टिकर आहार, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, परिश्रम त्याग, निश्चिन्तता और सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे रहना उपकारी है। मांस ही कार्श्यरोगका

उत्कृष्ट पथ्य है। शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य कार्श्यरोगमें पालन करना चाहिये।

—०:०:०—

उदर रोग।

—०—

निदान।—एकमात्र अग्निमान्द्यहीको सब प्रकारके उदर रोगका निदान कहा जा सकता है। इसके सिवाय अजीर्ण दोष-जनक अन्न भोजन और उदरमें पानीका सञ्चय, यही सब उदर रोगके कारण है। उक्त कारणोंसे सञ्चित वातादि दोष स्वेदवहा और जलवहा स्रोतः समूहोंको रुद्ध तथा प्राणवायु, अपान वायु और अग्निको दूषित कर उदर रोग पैदा करता है। इसके सिवाय प्लीहा और यकृत् अत्यन्त बढ़नेसे अन्त्रमें किसी तरहका घाव होनेसे तथा अन्त्रमें अधिक जल सञ्चय होनेसे भी उदर रोग उत्-पन्न होता है। उदराध्मान, चलनेमें अशक्ति, दुर्व्वलता, अतिशय अग्निमान्द्य, शोथ, सर्व्वाङ्गिक अवसन्नता, अधोवायु और मलका अनिर्गम, दाह और तन्द्रा, यही सब उदर रोगके साधारण लक्षण है। उदर रोग ८ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहा, और यकृत् जनित, मलसञ्चय जनित, क्षतज, और उदरमें जल सञ्चयजनित।

वातज रोग लक्षण।—वातज उदर रोगमें हाथ, पैर नाभि और कुक्षिमें शोथ; कुक्षि, पार्श्व, उदर, कटि, पृष्ठ और सन्धि समूहोंमें दर्द; सूखी खांसी, अङ्गमर्द, शरीरका आधा भाग भारी मालूम होना, मलरोध, त्वक, चक्षु, मूत्र आदिका श्याव

या अरुण वर्णता, अकस्मात् उदर शोथका ह्रास या वृद्धि, उदरमें सूचीविधवत् या भङ्गवत् वेदना, सूक्ष्म सूक्ष्म कृष्णवर्ण शिरा समूहोंकी उत्पत्ति, पेटमें मारनेसे वायु पूर्णकी तरह आवाज और दर्दके साथ वायुका इधर उधर फिरना। यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पित्तज रोग लक्षण।—पित्तोदरमें ज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, मुखका कड़वा स्वाद, भ्रम, अतिसार, त्वक और आंख आदिका पीला होना, पेटमें पसीना, दाह, वेदना और उष्मायुक्त, कोमल स्पर्श; हरित, पीत या ताम्रवर्णकी शिरासे आच्छन्न और पेटसे उष्मा निकलनेकी तरह अनुभव होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। पित्तोदर जल्दी पककर जलोदर होता है।

श्लेष्मज रोग लक्षण।—कफोदरमें सर्व्वाङ्गकी अवसन्नता, स्पर्शज्ञानका अभाव, शोथ, अङ्गकी गुरुता, निद्रा, वमनवेग, अरुचि, श्वास, कास, त्वक आदिका सफेद होना तथा उदर बड़ा होना, स्तिमित, चिकना, कठिन, शीतलस्पर्श, भारी, अचल और सफेद शिरायुक्त होता है। कफोदर देरमें बढ़ता है।

दुष्य या त्रिदोषज उदर रोग लक्षण।—नख, लोम, मूत्र, विष्ठा आर्त्तव या किसी तरहके विषादि द्वारा दुषित अन्न भोजन करनेसे रक्त और वातादि दोषत्रय कुपित होकर त्रिदोषज उदर रोग उत्पन्न होता है। इसमें वातादि तीनो दोषके उदर रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होता है और रोगी पाण्डुवर्ण, कृश, पिपासासे गला सूखना तथा बार २ मूर्च्छित होता है। ठण्डके समय ठण्ढी हवा लगनेसे और बर्सात आंधीके दिनोंमें यही उदर रोग बढ़कर दाहयुक्त होता है। इसका दूसरा नाम दुष्योदर है।

प्लीहोदरका निदान और लक्षण।—निरन्तर कफ-जनक द्रव्य और जो सब द्रव्यका अम्लपाक हो वैसा द्रव्य भोजन करनेसे कफ और रक्त दुषित होकर प्लीहा यकृतको बढ़ाता है। प्लीहा यकृत् बढ़ते बढ़ते जब पेट बढ़ता है तब सर्व्वाङ्गकी अवसन्नता, मन्दज्वर, अग्निमान्द्य, वलक्षीण, देहकी पाण्डुवर्णता और कफ-पित्तजनित अन्यान्य उपद्रवभी उपस्थित होता है, तब उसको प्लीहोदर या यकृदुदर कहते हैं। प्लीहोदरमें पेटका वामभाग और यकृदुदरमें दक्षिण भाग बढ़ता है। इसमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे उदावर्त्त, आनाह और पेटमें दर्द; पित्तके प्रकोपमें मोह, तृष्णा, दाह, ज्वर और कफके प्रकोपमें गात्र गुरुता, अरुचि और पेटकी कठिनता; यही सब लक्षण लक्षित होता है।

वद्ध गुदोदर लक्षण।—शाकादि भोज्यद्रव्य या अन्नादिके साथ केश किम्बा कंकरी अन्तड़ीमें जानेसे अन्त्रनाड़ी क्षत हो जाती है, इससे गुह्य नाड़ीमें मल और दोष समूह सञ्चित हो वद्ध गुदोदर नामक मल सञ्चय जनित उदर रोग उत्पन्न होता है। इसमें छाती और नाभिके बीचका भाग बढ़ता है और अति कष्टसे थोड़ा थोड़ा मल निकलता है।

क्षतज उदर रोग लक्षण।—अन्नके साथ कण्टकादि शल्य प्रविष्ट होकर यदि नाड़ीको भेद करें अथवा अतिरिक्त भोजन और जम्हाईसे अन्तड़ीमें भेद करे तो उस क्षत स्थानसे पानीकी तरह स्राव होता है तथा नाभिके नीचेका भाग बढ़ता हैं, और गुह्यद्वारसे पानी स्राव होता हैं। इसको परिस्राव्युदर नामक क्षतज उदर रोग कहते है। इस उदर रोगमें सूचीवेधवत् या विदीर्ण होनेकी तरह अत्यन्त यातना होती है।

जलोदर लक्षण।—स्नेहपान, अनुवासन (स्नेह पदार्थ-

को पिचकारी) वमन, विरेचन, अथवा निरुहण (रुक्ष पदार्थकी पिचकारी) क्रियाके बाद अकस्मात् शीतल जल पान करना, किम्बा स्नेह पदार्थसे जलवहा स्रोत उपलिप्त होनेसे, वही स्रोत समूह दूषित होता है और वही दूषित नाड़ीमें जलस्राव होकर उदरकी वृद्धि होती हैं ; इसको उदकोदर या जलोदर नामक जल-सञ्चय जनित उदर रोग कहते हैं। इस रोगमें पेट चिकना, बड़ा, जल भरा रहनेकी तरह फूला और सञ्चालित होनेसे क्षुब्ध, कम्पित और शब्दयुक्त होता है। इसमें नाभिके चारो तरफ दर्द होता है।

साध्यासाध्यता।—प्राय सब प्रकारका उदर रोग कष्ट-साध्य है ; विशेषत: जलोदर और क्षतोदर रोग अतिशय कष्टसाध्य है, अस्त्रचिकित्साके सिवाय इसके आराम होनेकी आशा कम है। रोग पुराना होनेसे या रोगीका बलक्षय हो जानेसे सब उदर रोग असाध्य हो जाता है। जिस उदर रोगीकी आंखे फूली, लिङ्ग टेढ़ा, त्वक पतला, क्लेदयुक्त और बल, अग्नि, रक्त, मांस, क्षीण हो जाय ; अथवा जिस रोगीका पार्श्वद्वय भग्नवत्, अन्नसे द्वेष, अति-सार किम्बा विरेचन करानेसे भी कोष्ठ पूर्ण रहता है ; यही सब उदर रोग असाध्य है।

विभिन्न दोषज उदर रोगकी चिकित्सा।—प्राय सब प्रकारके उदर रोगमें तीन दोष कुपित होता है ; इससे वातादि तीन दोषके शान्तिकी चिकित्सा पहिले करना चाहिये। इसमें अग्निवृद्धिके लिये अग्निवर्द्धक औषध और विरेचनके लिये थोड़ा गरम दूध या गोमूत्रके साथ रेंड़ीका तेल पान कराना चाहिये। वातोदरमें पहिले पुराना घी आदि स्नेह पदार्थ मालिश कर सेंकना चाहिये। फिर विरेचन कराकर कपड़ेके टूकड़ेसे पेटको बांध रखना। वातोदरमें पीपल और सेंन्धा नमकके साथ ;

पित्तोदरमें चीनी और गोलमिरचके साथ; कफोदरमें जवाईन, सेंधानमक, जीरा और त्रिकटुके साथ और सन्निपातोदरमें त्रिकटु जवाक्षार और सेंधानमकके साथ मट्ठा पिलाना। इससे देहका भारीपन और अरुचि दूर होता है। प्लीहोदर और यकृदोदरमें प्लीहा और यकृत् रोगोक्त चिकित्सा करना चाहिये। बद्धोदरमें पहिले स्वेद फिर तेलका जुलाब देना चाहिये। देवदारु, सैजन और अपामार्ग, अथवा असगन्ध गोमूत्रमें पीसकर पीनेसे दुष्योदर प्रभृति सब प्रकारका मेदोरोग आराम होता है। सबेरे महिषका मूत्र अन्दाज एक छटांक पीनेसे भी सब प्रकारका उदर रोग दूर होता है। पुनर्नवा, देवदारु, गुरिच, अम्बष्ठा, बेलकी जड़, गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, चितामूल, और अडूसा इन सब द्रव्योंका समान चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे उदररोग प्रशमित होता है। दशमूल, देवदारु, शोंठ, गुरिच, पुनर्नवा और बड़ी हर्रे इन सबका काढ़ा पीनेसे जलोदर शोथ, श्लीपद और वात रोग आराम होता है। पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, शोंठ, कुटकी, गुरिच, देवदारु और हरीतकी इन सबका काढ़ा पीनेसे सब प्रकार उदर, सर्व्वाङ्ग शोथ, कास, शूल, श्वास और पाण्डुरोग आराम होता है। उदर रोगमें दोषविशेषका विचारकर पुनर्नवादि क्वाथ, कुष्ठादि चूर्ण, सामुद्राद्य चूर्ण, नारायण चूर्ण, त्रैलोक्यसुन्दर रस, इच्छाभेदी रस, नाराच रस, पिप्पलाद्य लौह, शोथोदरादि लौह, चित्रकघृत, महाबिन्दुघृत, वृहत् नाराचघृत, और रसोन तैल प्रभृति औषध प्रयोग करना चाहिये। रोगी दुर्ब्बल होनेसे तेज जुलाब न देकर हमारी "सरलभेदी वटिका" प्रयोग करना उचित है।

पथ्यापथ्य। -उदर रोगमें लघुपाक और अग्निवृद्धि-

कारक आहार करना उचित है। पोड़ाकी प्रवल अवस्थामें केवल मानमण्ड, अभावमें केवल दूध अथवा दूध सागूदाना आदि आहार करना हितकर है। पोड़ा अधिक प्रवल न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूंगकी दालका जूस, परवल, बेगन, गुल्लर, सूरण, सेंजनका डण्डा, छोटो मूलो, श्वेत पुनर्नवा और अदरख आदिकी तरकारी थोड़ा नमक मिलाकर खाना चाहिये। रातको दूधसागू अथवा अधिक भूख हो तो २।१ पतली रोटी खानेको देना। गरम पानो पीना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—पिष्टकादि गुरुपाक द्रव्य, तिल, लवण, सोम आदि द्रव्य भोजन और स्नान, दिवानिद्रा, परिश्रम—उदर रोगमें विशेष अनिष्टकारक।

—※—

शोथरोग।

निदान।—वमन विरेचनादि क्रिया, ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, रक्तपित्त, प्लीहा और यकृत् आदि पीड़ा, तथा उपवास और विषम भोजनादिसे कृश और दुर्ब्बल होनेपर, क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरुपाक द्रव्य भोजन करनेसे, अथवा दही, कच्चा द्रव्य, मिट्टी, शाक, क्षीरमत्स्यादि संयोगविरुद्ध और विष मिला द्रव्य भोजन करनेसे तथा वमन विरेचनादि उचित कालमें न करानेसे या असमयमें करनेसे, परिश्रम त्यागनेसे, गर्भस्राव होनेसे किम्बा मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे शोथ रोग पैदा होता है।

कुपित वायु, दुष्ट रक्त, पित्त और कफको बाहरकी शिरा समूहों में लाकर तथा वायु भी वही दोषोंसे रुद्ध होनेपर त्वक और मांस, फुलता है, इसीको शोथरोग कहते है। शोथ पैदा होनेके पहिले सन्ताप, शिरा समूहोंका फैलनेकी तरह यातना और शरीर भार-बोध यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अवयव विशेषकी स्फीतता, तथा भारबोध, बिना चिकित्साके भी कभी शोथकी निवृत्ति और फिर उत्पत्ति; शोथस्थान उष्ण स्पर्श, शिरायुक्त, विवर्णता और रोगीके शरीरमें रोमाञ्च होना आदि शोथ रोगके साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वात-श्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज और त्रिदोषज भेदसे शोथरोग ७ प्रकारका होता है।

वातज रोग लक्षण।—वातज शोथ एक जगह स्थिर नही रहता, इससे बिना कारण भी कभी कभी आराम मालूम होता हैं; शोथके उपरका चमड़ा पतला, कर्कश, अरुण या कृष्णवर्ण स्पर्शशक्तिहीन और झिन झिन वेदना विशिष्ट होता है। यह शोथ दबानेसे बैठ जाता है। दिनको यह शोथ बढ़ता है और रातको कम हो जाता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज शोथ कोमल स्पर्श, गन्धयुक्त और पीत या अरुणवर्ण; तथा उष्माविशिष्ट, दाहयुक्त और अति-शय यन्त्रणादायक होकर पक जाता है। इस शोथमें भ्रम, ज्वर, पसीना, पिपासा, मत्तता और दोनो आंखे लाल यही सब लक्षण लक्षित होता है।

कफज लक्षण।—कफज शोथ भारी, एक स्थानमें स्थायी और पाण्डुवर्ण तथा इससे अरुचि, मुखादिसे जलस्राव, निद्रा, वमन और अग्निमान्द्य होता है। यह शोथ दबानेसे दब

जाता है, पर छोड़ देनेसे फिर उठता नही। रातको यह बढ़ता है और दिनको कम हो जाता है। कफज रोग जैसे देरसे बढ़ता है वैसेही देरसे आरामभी होता है। इसी प्रकार दो दोषके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको दो दोषजात और तीन दोषके लक्षणोंमें त्रिदोषज मानना चाहिये।

अवस्थानभेद।—शोथजनक कोई दोष आमाशयमें रहनेसे छातीसे ऊर्द्ध देह; पक्वाशयमें रहनेसे मध्य शरीरमें अर्थात् छातीसे पक्वाशय तक; मलाशयमें रहे तो कमरसे पैरके तलवे तक; और सब शरीरमें विस्तृत रहनेमें सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—मध्यदेह या सर्व्वाङ्गका शोथ कष्टसाध्य। जो शोथ दहिने बांये या उपर नीचे विभागानुसार जिस किसी अर्द्धाङ्गमें उत्पन्न हो अथवा जो शोथ निम्न अवयवोंमें उत्पन्न होकर क्रमशः उपरको विस्तृत होता रहे, उसी शोथसे प्राण नाशको सम्भावना है। किन्तु पाण्डु प्रभृति अन्यान्य रोगके उपद्रव रूपसे यदि पहिले पैरसे शोथ आरम्भ होकर क्रमशः उपरके तरफ बढ़े तो वह मारात्मक नही है। स्त्रियोको पहिले मुखसे उत्पन्न हो क्रमशः पेरके तरफ जो शोथ होता है वह उनका प्राण नाशक है। स्त्री या पुरुष जिस किसीको पहिले गुदामें शोथ हो तो वह प्राण नाशक है। ऐसही कुक्षि, उदर, गलदेश और मर्म्मस्थान जात शोथ भी जानना। जो शोथ अतिशय स्थूल और कर्कश, अथवा, जिस शोथमें श्वास, पिपासा, वमि, दौर्ब्बल्य, ज्वर और अरुचि आदि उपद्रव उपस्थित हो वह शोथभी असाध्य जानना। बालक, वृद्ध और दुर्व्वल व्यक्तिका भी शोथ असाध्य ही होता है।

चिकित्सा।—किसी रोग विशेषके साथ शोथ रोग होनेसे,

उसी रोगकी दवायोंके साथ शोथ नाशक औषध प्रयोग करना। मल मूत्र साफ रखना इस रोगमें विशेष आवश्यक है। वातिक शोथ में कोष्ठबद्ध होनेसे दूधके साथ रेंड़ीका तेल पिलाना। दशमूलका काढ़ा वातज शोथमें विशेष उपकारी है। पित्तज शोथमें गोमूत्रके साथ ≠) आनेभर त्रिवृतका चूर्ण सेवन करना; अथवा त्रिवृतकी जड़, गुरिच और त्रिफलाका काढ़ा पीना। कफज शोथमें पुनर्नवा, शोंठ, त्रिवृतकी जड़, गुरिच, बड़ीहर्र और देवदारु, इसके काढ़ेमें गोमूत्र और ≠) आनेभर गुग्गुलु मिलाकर पिलाना। गोलमिरच चूर्णके साथ बेलके पत्तेका रस, नीमके पत्तेका रस और सफेद पुनर्नवाका रस, यह सब शोथ रोगमें उपकारी है। सेंहुड़के पत्तेका रस मालिश करनेसे शोथ शान्त होता है। पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवाष्टक, सिंहास्यादि काढ़ा, मानमण्ड, शोथारि चूर्ण, शोथारिमण्डूर, कंसहरीतकी, कटुकाद्य लौह, त्रिकट्वादि लौह, शोथकालानल रस, पञ्चामृत रस, दुग्धवटी और ग्रहणी रोगोक्त औषध स्वर्णपर्पटी आदि विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये। पाण्डूजन्य शोथ रोगमें तक्रमण्डूर और सुधानिधि विशेष उपकारी है। दुग्धवटी और स्वर्णपर्पटी सेवन करती वक्त लवण पानी बन्दकर केवल दूध पीकर रहना चाहिये। ज्वरादि संस्रव न रहनेसे चित्रकाद्य घृत सेवन और शोथ स्थानमें पुनर्नवादि तेल और शुष्क मूलादि तैल आदि मर्द्दन कर सकते है।

पथ्यापथ्य।—उदर रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिख आये है शोथ रोगमें भी वही सब पालन करना चाहिये।

—०—

कोषवृद्धि।

—:०:—

संज्ञा और प्रकारभेद।—वायु अपने दोषसे कुपित हो पड़्नेसे अण्डकोषमें आता है और फिर पित्तादि दोष दूष्यको कुपित कर अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत और वेदनायुक्त होनेसे उसको वृद्धि रोग कहते है। वृद्धिरोग ७ प्रकार; वातज, पित्तज, श्लेष्मज, मेदोज, रक्तज, मूत्रज और अन्त्रज।

प्रकारभेद लक्षण।—वातज वृद्धिरोगमें अण्डकोष बढ़कर वायुपूर्ण चर्म्मपुटको तरह आकृतिविशिष्ट होता है और वह रुखा तथा सामान्य कारणसे उसमें दर्द होता है। पित्तज वृद्धिके अण्डकोष पक्के गुल्लरको तरह लाल, दाह और उष्मायुक्त होता है वेशो दिन रहनेसे पकजाता है। कफज वृद्धिमें अण्डकोष शीतल स्पर्श, भारी, चिकना, कण्डूयुक्त, कठिन और कम वेदनायुक्त होता है। रक्तज वृद्धि कृष्णवर्ण स्फोटक व्याप्त और पित्तज वृद्धिके अन्यान्य लक्षणयुक्त होता है। मेदोज वृद्धि रोगमें अण्डकोषका आकार पक्के ताड़फलकी तरह और वह मृदु स्पर्श तथा कफ वृद्धिके लक्षणयुक्त होता है। नियत मूत्रवेग धारण करनेसे मूत्रजवृद्धि रोग पैदा होता है; इस वृद्धिसे चलती वक्त अण्डकोष जलपूर्ण चर्म्मपुटकी तरह संक्षोभित, मृदुस्पर्श और वेदनायुक्त होता है। इसमें कभी मूत्रकृच्छ्रको तरह दर्द होता है और हिलानेसे नीचेकी तरफ झुक जाता है। वायुकारक आहार, शीतल पानीमें अवगाहन, मलमूत्र वेग धारण या अनुपस्थित वेगमें वेग देना, भार-

वहन, पथ पर्य्यटन, विषम भावसे अङ्गविन्यास और दुःसाहसिक कार्य्य प्रभृतिसे वायु चालित हो जब क्षुद्रान्त्रका कियदंश सङ्कुचित हो नीचेकी तरफ वंक्षण-सन्धिमें आता हैं तभी उस सन्धिस्थलमें ग्रन्थिरूप शोथ उत्पन्न होता है इसीको अन्त्रजवृद्धि कहते है, अन्त्र-वृद्धि अचिकित्स्य भाव अधिक दिन रहनेसे अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत, वेदनायुक्त और स्तम्भित होता है। कोष दबानेसे या कभी आपही आप शब्द करते हुए वायु उपरको तरफ उठता है और फिर कोषोमें आकर शोथ उत्पन्न होता है। अन्त्रवृद्धि (आंत उतरना) असाध्य रोग है।

एकशिरा और वातशिरा।—अमावस्या या पूर्णिमा अथवा दशमी और एकादशी तिथिमें कम्प और सन्धिसमूह या सर्व्वाङ्गमें वेदना प्रभृति लक्षणयुक्त प्रवल ज्वर होकर एक प्रकार कोषवृद्धि उत्पन्न होता है; २।३ दिन बाद फिर वह आपही आप दूर हो जाता है। एक कोष बढ़नेसे उसको चलित भाषामें एक-शिरा और दो कोष बढ़नेसे उसको वातशिरा कहते है।

वृद्धिरोग चिकित्सा।—यावतीय वृद्धिरोगके प्रथम अवस्थाहीमें चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो कष्टसाध्य होजाता है। वातज वृद्धि रोगमें दूधके साथ तथा पित्तज और कफजमें दश-मूलके काढ़ेके साथ रेंड़ीका तेल पीना। कफज और मेदोज वृद्धिमें त्रिकटु और त्रिफलाके काढ़ेके साथ ⌿) आनेभर जवाक्षार और ⌿) आनेभर सेंधा नमक मिलाकर पीना यही श्रेष्ठ विरेचन है। मूत्रज वृद्धिमें अस्त्रविशेषसे भेदकर जलस्राव करना अर्थात् "टेप" लेना आवश्यक है।

अन्त्रजवृद्धि (आंत उतरना) जबतक कोषतक नही उतरता उसी समय तक चिकित्सा करनेसे आराम होता है। इसमें रास्ना,

मुलेठी, एरण्ड मूल, बरियारा, गोक्षुर; अथवा केवल बरियारेका जड़ दूधमें औटाना, फिर उसी दूधमें रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना। बच और सरसों; किम्बा सेंजनकी छाल और सरसों अथवा छातीम बीज और अदरख; किम्बा सफेद अकवनका छाल कांजीमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारका वृद्धिरोग शान्त होता है। जयन्ती पत्र तावेपर गरम कर कोषमें बांधनेसे भी कोषवृद्धि रोग आराम होता है। हमारी "कोषवृद्धिकी दवा" सब प्रकारके वृद्धिरोगमें व्यवहार करनेसे सुन्दर उपकार होता है। भल्लोत्तरीय, वृद्धिवाधिका वटी, वातारि, शतपुष्पाद्य घृत, गन्धर्व्व-हस्त तैल और श्लीपद रोगोक्त कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। कोषमें मालिश करनेके लिये सैन्धवाद्य घृत, शोथ रोगोक्त पुनर्नवा और शुष्कमूलादि तैल व्यवहारमें लाना चाहिये। अन्त्रवृद्धिकी प्रवलावस्थामें "ट्रस" नामक यन्त्र लगाना उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने महीन चावलका भात, मूंग, मसूर, चना और अरहरकी दाल, परवर, बैगन, आलु, गाजर, गुल्लर, करेला, सेंजनका डण्डा, अदरख, लहसन आदिकी तरकारी अल्प परिमाण बीच बीचमें छागमांस, छोटा मछली और सब प्रकारका तिक्त और सारक द्रव्य आहार करना। रातको रोटी या पूरी और उपर कही तरकारी और थोड़ा दूध भोजन करना। गरम पानी ठण्ढाकर पीना और स्नान करना चाहिये। इस रोगमें सर्व्वदा लङ्गोट व्यवहार करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—नये चावलका भात या और कोई गुरु-पाक द्रव्य, दही, उरद, पक्का केला और अधिक मीठा आदि द्रव्य भोजन, शीतल जलपान, भ्रमण, दिवा निद्रा, मलमूत्रका वेग

धारण, स्नान, अजीर्ण रहनेपर भोजन तैलाभ्यङ्ग आदि इस पीड़ामें अनिष्टकारक है।

गलगण्ड और गण्डमाला।

गलगण्ड लक्षण।—अपने अपने कारणोंसे कुपित वायु, कफ और मेद गलेमें अण्डकोषकी तरह जो लम्बा शोथ पैदा होता है उसको गलगण्ड कहते है। वातज गलगण्ड सूचीविधवत् वेदना, कृष्णवर्ण शिराव्याप्त, कर्कश, अरुणवर्ण और देरसे बढ़ता है ; तथा रोगीके मुखका स्वाद फीका और तालु कण्ठमें शोष होता है। यह गलगण्ड पकता नही कदाचित् किसीका पकता है। कफज गलगण्ड कड़ा, सफेद, वजनदार, अन्यान्य कण्डूविशिष्ट, शीतल, बड़ी देरसे बढ़ना और अल्प वेदनायुक्त होता है। मुखका स्वाद, मीठा तथा तालु और गलेमें कफ भरा रहता है। मेदोज गलगण्ड, चिकना, भारी, पाण्डुवर्ण, दुर्गन्ध, कण्डुयुक्त और अल्प वेदनाविशिष्ट जानना। इसका आकार लौकीकी तरह जड़ पतली और उपर मोटा होता है। शरीरके ह्रासवृद्धिके साथ साथ इसको भी ह्रासवृद्धि होती रहती है तथा इसमें रोगीका मुख तेलकी तरह चिकना और गलेसे सर्व्वदा शब्द निकलता हैं। जिस गलगण्डमें रोगीके निश्वास प्रश्वासमें अति कष्ट, सर्व्वाङ्गकी कोमलता, देह क्षीण, आहारमें अरुचि, और स्वरभङ्ग हो तथा जिसकी बिमारी एक वर्षसे अधिक दिनकी है वह असाध्य जानना।

गण्डमाला।—दूषित मेद और कफ कन्धा, गलेकी मन्यानामक शिरा, गला और गलेके बगलमें बेर और आंवलेकी तरह बहुतसी गांठें उत्पन्न होता है उसको गण्डमाला कहते है। गण्ड-माला बहुत दिन पर पकते देखा गया है। जिस गण्डमालाकी कोई गांठ पक जाय, कोई गांठ आराम हो जाय तथा फिर नई पैदा होय ऐसी अवस्था होनेसे उसको अपची कहते है। अपचीके साथ साथ पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर और वमि आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। यदि कोई उपद्रव न हो तो आराम होता है।

अर्व्वुद।—शरीरके जिस स्थानमें गांठकी तरह एक प्रकार क्षुद्र शोथ उत्पन्न होकर उसमें गोल गांठ अचल और अल्प वेदनायुक्त जो मांसपिण्ड उत्पन्न होता है उसको अर्व्वुद कहते है। गलगण्डकी आकृतिसे यह बहुत मिलता है, इससे यहां इसी दो रोगके साथ लिखना आवश्यक है।

गलगण्ड चिकित्सा।—गलगण्ड रोगमें कफनाशक चिकित्सा करना ही उचित है। हस्तिकर्ण पलाशकी जड़, अरवे चावलके धोवनमें पीसकर गलगण्डमें लेप करना। अथवा सफेद सरसों, सेनकी बीज, तीसी, जो और मूलीकी बीज; एकसङ्ग मट्ठेमें पीसकर लेप करना। पकी तितलौकीका रस, काला और सैन्धानमक मिलाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग शान्त होता है। इसमें नित्यानन्द रस और अमृताद्य तैल पान तथा तुम्बी तेलका नास लेना चाहिये।

गण्डमाला चिकित्सा।—गण्डमाला रोगमें गलगण्ड नाशक लेप आदि प्रयोग करना। कांञ्चन छालके काढ़ेमें शोंठ मिलाकर अथवा वरुण मूलके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीना।

सफेद अपराजिताकी जड़ गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पुराना गण्डमाला भी आराम होता है। इसमें काञ्चन गुग्गुलु सेवन, कुछुन्दरी और सिन्दुरादि तैल मर्द्दन अथा निर्गुण्डी और विम्बादि तैलका नस्य लेना विशेष उपकारी है।

अपची चिकित्सा।—गण्डमाला अपचीके रूपमें परिणत होनेसे सैजनकी छाल और देवदारु एकत्र कांजीमें पीसकर गरम लेप करना। अथवा सफेद सरसीं, नीमका पत्ता, आगमें जलाया भेलावा, छागमूत्रमें पीसकर लेप करना। गुञ्जाद्य तैल और चन्दनाद्य तैल मर्द्दन अपची रोगमें विशेष उपकारी है।

ग्रन्थिरोग चिकित्सा।—ग्रन्थि रोगमें द्राक्षा या इक्षु-रसके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करना, जामुनकी छाल, अर्ज्जुन छाल और बेतकी छाल पीसकर लेप करना। दन्ती मूल, चिता-मूल, सेहुड़का दूध, अकवनका दूध, गुड़, भेलाविकी बीज और हिराकस, यही सब द्रव्यका लेप करनेसे गांठ पकती है और उसमेंसे क्लेदादि निकलकर आराम हो जाता है। सज्जीचार, मूलीका भस्म और शङ्खचूर्णका लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्व्वुद रोग आराम होता है। अर्व्वुद रोगमें फस्त लेना चाहिये। गुल्लर या और कोई कर्कश पत्रसे अर्व्वुद घिसकर उसके उपर राल, प्रियङ्गु, लाल चन्दन. लोध, रसाञ्जन और मुलेठी एकत्र पीसकर सहत मिला लेप करना। बड़का दूध, कूठ और पांगा नमक अर्व्वुदमें लेपकर बड़के पत्तेसे बांध रखना, सैजनका बीज, मूलीका बीज, सरसीं, तुलसी, जौ और कनैलकी जड़, एकत्र मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे अर्व्वुद रोग आराम होता है। इन सब क्रियाओंसे ग्रन्थि और अर्व्वुद रोगकी शान्ति न होनेसे नस्तर करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—गलगण्डादि रोगमें कोषवृद्धि रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये, इससे अलग नही लिखा गया।

श्लीपद।

दोषभेदसे श्लीपदके लक्षण।—श्लीपदका साधारण नाम "फील पा" है। इस रोगमें पहिले पट्ठेमें दर्द होता है, फिर पैर फूलता है। प्रथम अवस्थामें वहुतोंको ज्वर भी होता है। कफके प्रकोपहीसे यह रोग उत्पन्न होता है, तथापि वातादि दोषके आधिक्यानुसार भिन्न भिन्न लक्षण भी इसमें लक्षित होता है। श्लीपदमें वायुका आधिक्य रहनेसे शोथस्थान काला, रुखा, फटा और तीव्र वेदनायुक्त होता है, तथा इसमें सर्व्वदा ज्वर तथा अकसर दर्दकी ह्रासवृद्धि होती रहती है। पित्तके आधिक्यसे श्लीपद कोमल, पीतवर्ण दाहविशिष्ट और ज्वर संयुक्त होता है। कफके आधिक्यसे श्लीपद कठिन, चिकना, सफेद या पाण्डुवर्ण और वजनदार होता है।

असाध्य लक्षण।—जो श्लीपद वहुत बढ़गया हो अथवा क्रमशः बढ़कर ऊंचे ऊंचे शिखरयुक्त और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना, तथा जिस श्लीपदमें स्राव कण्ड़ तथा जिसमें वातादि दोषजन्य समुदय उपद्रव उत्पन्न हो, ऐसा श्लीपद असाध्य जानना।

जिस देशमें अधिक परिमाण बरसातका पानी सञ्चित रहता

है और जिस देशकी आब हवा ठण्ढी है, प्रायः ऐसेही देशोंमें श्लीपद रोग अधिक पैदा होता है।

दोषभेद और चिकित्सा।—श्लीपद पैदा होतेही इलाज करना चाहिये नहीतो असाध्य हो जाता है। उपवास, विरेचन, स्वेद, प्रलेप और कफनाशक क्रिया समूह इस रोगका शान्तिकारक है। धतुरा, रेंड़, श्वेतपुनर्नवा, सेजन और सरसों यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना; अथवा चितामूल, देवदारु, सफेद सरसों या सैजनके जड़की छाल गोमूत्रमें पीस गरम कर लेप करना। सफेद अकवनकी जड़, कांजीमें पीस लेप करनेसे भी श्लीपद आराम होता है। पित्तजन्य श्लीपद रोगमें मजीठ, मूलेठी, रास्ना, और पुनर्नवा यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप अथवा मदनादि लेप करना। बरियारेकी जड़ ताड़के रसमें पीस-कर लेप करनेसे सब प्रकारका श्लीपद रोग आराम होता है। बड़ी हर्रे रेंड़ीके तेलमें भूनकर गोमूत्रके साथ खानेसे भी श्लीपद रोग आराम होता है। कणादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस, श्लीपद गजकेशरी, सौरेश्वर घृत और विड़ङ्गादि तैल आदि विचार कर श्लीपद रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—कोषवृद्धि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, श्लीपद रोगमें भी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

———

विद्रधि और व्रण।

—०—

विद्रधि या फोड़ाका निदान और प्रकारभेदसे लक्षण।—विद्रधिका साधारण नाम "फोड़ा" है। गुल्मके आकृतिकी तरह और दाह, वेदना तथा अन्तमें पाकयुक्त शोथको विद्रधि कहते है। विद्रधि दो प्रकार, वाह्यविद्रधि और अन्तर्विद्रधि। कुपित वातादि दोष हड्डीमें रहकर त्वक, रक्त, मांस और मेदको दूषित करनेसे विद्रधि रोग उत्पन्न होता है। वाह्यविद्रधि शरीरके सब स्थानोंमें पैदा होता है। अन्तर्विद्रधि गुदा वस्तिमुख, नाभि, कुक्षि, दोनो पट्ठा, पार्श्व, प्लीहा, यकृत्, हृदय, क्लोम (पिपासा स्थान) यही सब स्थानोमें उत्पन्न होता है। गुह्यनाड़ीमें विद्रधि उत्पन्न होनेसे अधोवायुका रोध, वस्तिमें होनेसे मूत्रकृच्छ्र और मूत्रकी अल्पता, नाभिमें होनेसे हिक्का और पेटमें दर्दके साथ गुड़ गुड़ शब्द होना, कुक्षिमें होनेसे वायुका प्रकोप पट्ठोंमें होनेसे कण्ठ और पीठमें तीव्र वेदना, पार्श्वमें होनेसे पार्श्वका सङ्कुचित होना, प्लीहामें होनेसे श्वासरोध, हृदयमें होनेसे सर्व्वाङ्गमें दर्द और कास, यकृत्में होनेसे श्वास हिक्का और क्लोममें होनेसे बार बार पानी पीनेकी इच्छा होता है। यही सब विशेष लक्षणोंके सिवाय यन्त्रणा आदि अन्यान्य लक्षण भी सब प्रकारके विद्रधिका एकही प्रकार जानना।

साध्यासाध्य निर्णय।—नाभिके उपर अर्थात् प्लीहा, यकृत्, पार्श्व, कुक्षि, हृदय और क्लोम स्थानमें जो सब अन्तर्विद्रधि

पैदा होता है, वह पककर फूटनेसे पीप रक्त निकलता है; और नाभिके नीचे याने वस्ति, गुदा, पट्ठा आदि स्थानोंमें पैदा होनेसे गुदासे पीप आदिका स्राव होता है। मुखसे पीप आदिका स्राव होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं रहती, किन्तु गुह्यद्वारके स्रावसे जीवनकी आशा रहती है। विद्रधि रोगमें उदराध्मान, मूत्ररोध, वमन, हिक्का, पिपासा, अत्यन्त वेदना और श्वास आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा कम जानना।

व्रण या क्षत।—व्रणका साधारण नाम "घाव" या क्षत है। जिस स्थानमें व्रण उत्पन्न होगा वह स्थान पहिले फूलता है फिर पककर आपही आप फटकर या नस्तरसे घाव करनेसे उसे व्रणरोग कहते है। व्रण शोथ पकनेसे पहिले शोथस्थान थोड़ा गरम, कड़ा, थोड़ा दर्द और बदनकी तरह रंग होता है। पकनेके समय वह मानो आगसे जलाया जाना, नस्तरसे चीरना, चिमटीसे काटना, दण्डादिसे मारना, सूची आदिसे गड़ाना, अङ्गुलीसे विदीरना तथा दबानेकी तरह तकलीफ होती है। इसमें अत्यन्त दाह और उत्ताप होता है तथा वायुपूर्ण चर्म्मपुटकी तरह आध्मान हो उठता है। रोगी भी बिच्छू काटनेकी तरह छटपटाता है और ज्वर, तृष्णा, अरुचि आदिसे पीड़ित होता है। पक जानेपर वेदना और शोथ कम हो, लाल रंग, उपरके मांसमें सिकुड़न और फटा मालूम होता है तथा दबानेसे शोथस्थान बेठ जाता है, भीतर पीप पैदा होनेसे सूई गड़ानेकी तरह दर्द और खुजली पैदा होती है। पककर फूटनेपर या नस्तरसे पीप खून निकल जानेपर थोड़ा मात्र सूई गड़ानेकी तरह दर्द या जलन लिये घाव होता है। इस अवस्थामें प्यास, मोह, ज्वर आदि उपद्रव भी उपस्थित होते दिखाई देता है।

आरोग्य उन्मुख व्रण लक्षण।—जो व्रण क्रमशः जीभके नीचेके भागकी तरह कोमल, मसृण, चिकना, स्रावशून्य, समान, अल्प वेदनायुक्त हो वह आराम होता हैं और जो व्रण क्लेदशून्य, विदीर्णताशून्य और मांसाङ्कुरयुक्त हो वह आरोग्य उन्मुख जानना। व्रण दुर्गन्धविशिष्ट, पापरक्त, स्रावयुक्त भीतरको धस जाने पर या दीर्घकालमें भी आराम न होनेसे उसको दुष्टव्रण कहते है।

असाध्य और प्राणनाशक व्रण।— जिस व्रणसे वसा, चर्व्वी या मज्जा आदि निर्गत हो और जो व्रण मर्म्मस्थानमें उत्पन्न हो, जिसमें अत्यन्त दर्द हो, जिस व्रणके भीतर दाह और उपर ठण्ढा किम्बा बाहर दाह भीतर ठण्ढा तथा जिस व्रणमें बल और मांसका क्षय, श्वास, कास, अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न हो वही सब व्रण असाध्य जानना; तथा जिस व्रणमें शराब, अगरु, घी, चन्दन या चम्पकादि फूलकी तरह सुगन्ध निकले वह प्राणनाशक जानना। अस्त्रशस्त्रादिसे कोई स्थानमें घाव होनेसे या आगसे जल जानेपर जो व्रण होता है, उसको सद्योव्रण कहते हैं। सद्योव्रणसे वसा, चर्व्वी, मज्जा या पतला पदार्थ निर्गत होनेपर भी असाध्य नही समझना। किन्तु मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे जो व्रण होता है वह असाध्य जानना। इसके अन्यान्य लक्षण साधारण व्रणकी तरह समझना।

नाड़ीव्रण या नासूर।—व्रणशोथ पकनेपर उपयुक्त समयमें पापरक्त न निकलनेसे वही पीप क्रमशः त्वक मांस, शिरा स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ और मर्म्म प्रभृति स्थान समूहोंको विदीर्ण कर भीतरको जाता हैं; इससे उस व्रण स्थानसे भीतरकी तरफ एक नाली उत्पन्न होती है; इसीको नाड़ीव्रण (नासूर) कहते है।

विद्रधि और व्रणशोथ चिकित्सा।—विद्रधि और व्रणशोथके अपक्वावस्थामें रक्त मोक्षण, मृदु विरेचन, औषध प्रयोग और स्वेद क्रियासे उसको बैठानेका उपाय करना चाहिये। जौ, गेहूं, और मूंग पकाकर उसका लेप करना अथवा सेजनके जड़का लेप और स्वेद करनेसे विद्रधि बैठ जाता है। अपक्व अन्तर्विद्रधि में सैजनके जड़को छालका रस सहतके साथ पिलाना; अथवा सफेद पुनर्नवाकी जड़ या वरुण छालकी जड़का काढ़ा पिलाना। आकनादि मूल, सहत और अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे भी अपक्व अन्तर्विद्रधि आराम होता है। वरुणादि घृत सेवन करनेसे अन्तर्विद्रधिमें विशेष उपकार होता है। व्रणशोथके अपक्वावस्थामें धतूरेकी जड़ और सेंधा नमक एकत्र पीसकर गरम लेप करना अथवा वड़, गुल्लर, पीपल, पाकड़, और वेत इन सबका छाल, समभाग पीसकर थोड़ा घी मिलाकर लेप करना। इससे भी व्रणशोथ बैठ जाता है।

शोथ पकानेका उपाय।—प्रलेपादिसे न बैठनेपर विद्रधि या व्रणशोथ पकाकर पीप रक्त निकालना चाहिये। पकानेके लिये सनकी बीज, मूलीकी बीज, सैजनकी बीज, तिल, सरसों, तिसी, जौ और गेहूं आदिकी पुलटिस देना। पकनेपर नस्तर करनाही अच्छा है। नहीतो करञ्ज, भिलावा, दन्तीमूल, चितामूल, कनेलका जड़ और कबूतर, कौवा, या शकुनिकी विष्ठा पीसकर अथवा गायका दांत घिसकर उपयुक्त स्थानमें लगाना, इससे वही स्थान फूटकर पीप रक्त आदि निर्गत होता है। गेहूं और सेमल आदि पिच्छिल, द्रव्यकी छाल और मूल तथा गेहूं और उरद आदि द्रव्यका लेप देनेसे फैला हुआ पीप आदि आकृष्ट हो घावके मुखसे बाहर निर्गत हो जाता है। क्षतस्थान धोनेके लिये

परवरका पत्ता, नीमका पत्ता या वटादिके छालका काढ़ा व्यवहार करना। घाव धोनेपर करञ्जाद्य घृत, जीरक घृत, जात्याद्य घृत और तैल, विपरीत मल्ल तैल, व्रणराक्षस तैल, या हमारा "क्षतारि तैल" प्रयोग करना, इससे घाव जल्दी सूख जाता है। व्रण दूषित होनेसे अर्थात् दुष्ट व्रणके लक्षण मालूम होनेसे नीमका पत्ता, तिल, दन्तीमूल और त्रिवृत मूल यह सब समभाग पीसकर थोड़ा नमक और सहत मिलाकर लेप करना। केवल अनन्तमूलका प्रलेप किम्बा असगन्ध, कुटकी, लोध, जायफल, जेठीमध, लज्जालु लता और धाईफूलका प्रलेप देनेसे अथवा शतपर्णीका दूध लगानेसे भी दुष्टव्रण आराम होता है।

सद्योव्रण चिकित्सा।—सद्योव्रणके प्रथमावस्थामें उपयुक्त चिकित्सा होनेसे फिर वह घाव नहीं होता। शस्त्रादिसे किसी स्थानमें घाव होनेसे जलकी पट्टी बांधनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। अपामार्गके पत्तेका रस, दन्ती पत्तेका रस और दूर्वाका रस प्रयोग करनेसे भी रक्तस्राव बन्द होता है। कपूर मिलाया शतधौत घीसे घाव भरकर बांध देनेसे घाव पकता नहीं तथा तकलीफ दूर हो क्रमशः घाव भर आता हैं। इन सब क्रियाओंसे आराम न हो घाव होनेपर पूर्वोक्त प्रलेप और तैलादि प्रयोग तथा आगसे जले घावमें भी वही सब तैलादि प्रयोग करना चाहिये। आगसे जलते ही जले हुए स्थानमें तिल तेलके साथ जौ भस्म मिलाकर अथवा दूध और महिष नवनीतके साथ तिल पीस कर लेप करनेसे जलन शान्त होता है। जले हुए स्थानमें सहत लगाकर उपरमें जौचूर्ण लेप करनेसे या केवल गुड़ अथवा केवल जौ चूर्णसे लेप करनेसे जलन दूर होता है।

नाड़ीव्रण चिकित्सा।—नाड़ीव्रण यानि नासूरमें

हापरमालाका गोंद लगाना। सफेद रेंड़का दूध और खैर एकत्र मिलाकर लेप करना शृगालकूलो, मैनफल, सूपारीकी छाल और सेन्धा नमक समभाग सेंहुड़ या अकवनके दूधमें मिलाकर बत्ती बनाना तथा वही बत्ती नासूरमें प्रवेश कर रखना। अथवा मेष-लोम जलाकर उसको राख और तितलौकाके साथ तेल पाककर उसमें रुई भिंगोकर नासूरमें रखना। स्वर्जिकाद्य तेल, निर्गुण्डी तेल, हंसपदी तेल और हमारा "चतारि तेल" नासूरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके साथ सप्ताङ्ग गुग्गुलु या हमारा "अमृतवल्ली कषाय" व्यवस्था कर सकते हैं।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मुंग और मसूरकी दाल, परवल, बैगन, गुल्लर, कच्चा केला, सेजनका डण्डा, आदि घृतपक्व तरकारी, बलादि क्षीण होनेसे छाग आदि लघु मांसका रस आहार करना। रातको रोटी और वही सब तर-कारी, खानेको देना। गरम पानी ठण्ढा कर पीना और बीच बीचमें जरूरत होनेसे उसी पानीसे स्नान करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—सब प्रकारका कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, दूध, दही, मत्स्य, पिष्टक और सबप्रकार मिष्टद्रव्य भोजन और दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, स्नान, मैथुन, पथ पर्य्यटन और व्यायामादि कार्य्य इस रोगमें अनिष्टकारक है।

भगन्दर।

—०⁂०—

संज्ञा।—गुदासे दो अङ्गुल बादके स्थानमें नाड़ीव्रणकी तरह एकप्रकार घाव उत्पन्न होता है, उसको भगन्दर कहते है। कुपित वातादि दोषोंसे पहिले उस स्थानमें व्रणशोथ उत्पन्न होता है, फिर वह पककर फैल जानेसे अरुण वर्णका फेन और पोप आदि उसमें से स्राव होता है, घाव बड़ा होनेसे उसी रास्ते मल, मूत्र, शुक्र आदि निर्गत होता है। गुह्यदेशमें किसी प्रकारका घाव होकर पकनेपर वह भी क्रमशः भगन्दर हो जाता है।

साध्यासाध्य निर्णय।--सब प्रकारका भगन्दर अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है। जिस भगन्दरसे अधोवायु, मल, मूत्र और क्रिमि निकले तो उससे रोगीके प्राणनाशकी सम्पूर्ण सम्भावना है। जो भगन्दर गो स्तनके तरह पैदा हो विदीर्ण होनेसे नदीके पानीके आवर्त्तकी तरह आकारविशिष्ट हो तो वह असाध्य जानना।

चिकित्सा।—पकनेसे पहिले ही इसकी चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो नितान्त कष्टसाध्य होता है। अपक्का-वस्थामें रक्तमोक्षण ही इसको प्रधान चिकित्सा है। पिड़िका बैठा-नेके लिये वटपत्र या पानीके भीतरकी ईंटका चूर्ण, शोंठ, गुरिच और पुनर्नवा यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना। विद्रधि प्रभृति बैठानेके लिये जो सब उपाय कह आये है वह सब भी प्रयोग कर सकते हैं। बैठनेकी आशा न रहनेसे शस्त्र प्रयोग करना चाहिये अथवा पूर्व्वोक्त उपायोंसे पकाकर पीप आदि निकालना चाहिये। घाव आराम करनेके लिये सेहुंड़का दूध, अकवनका दूध अथवा दारु-

हलदीका चूर्ण, यही सब द्रव्यकी बत्ती बनाकर भगन्दरमें रखना। त्रिफलाके काढ़ेसे भगन्दर धोकर, त्रिफलाके काढ़ेमें बिल्ली या कुक्कुरकी हड्डी घिसकर लेप करना। नाड़ीव्रण नाशक सब प्रकारका तैल भगन्दरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके सिवाय हमारा "चतारि तैल" प्रयोग करनेसे भी पीड़ा दूर होती है। इस रोगमें सप्तविंशतिक गुग्गुलु, नवकार्षिक गुग्गुलु और व्रण गजाङ्कुश रस आदि औषध अथवा हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करना बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य।—विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब पथ्यापथ्य विहित है; भगन्दर रोगमें भी वही सब पालन करना चाहिये। अग्निबल क्षीण न होतो शृगाल मांस भोजन भगन्दर रोगमें विशेष उपकारी है।

उपदंश और व्रध्न।

निदान।—दूषितयोनि स्त्रीके साथ सहवास, ब्रह्मचारिणी सहवास, अतिरिक्त मैथुन, मैथुनके बाद लिङ्ग न धोना अथवा क्षार मिश्रित गरम पानीसे धोना और किसी कारणसे लिङ्गमें घाव होना आदि कारणोंसे उपदंश रोग पैदा होता है। इसी प्रकार दूषित पुरुष सहवास इत्यादि कारणोंसे स्त्रियोंको यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें पहिले लिङ्ग मुंडमें या उपरके

चमड़ेपर छोटी २ फुसरी पैदा हो फुसरीके चारो तरफ कड़ा हो जाता है तथा क्रमश: वह फुसरी पककर बढ़ती है, फिर उसमेंसे पीप क्लेद और जलवत् पदार्थ निर्गत होता है। क्षतस्थान अत्यन्त विवर्ण होनेके साथ साथ सामान्य ज्वर, वमनोद्रेक, अग्निमान्द्य, जिह्वा विकृतास्वाद और मैली, हड्डोमें दर्द, शिर:पीड़ा और किसीको पट्ठेमें दर्द अथवा व्रध्न (बाघी) होता है। क्षतस्थानका मूलभाग कठिन तथा मध्यस्थान थोड़ा नीचा और उसके चारो तरफ थोड़ा ऊंचा होता है। यह रोग बहुत दिन तक अचिकित्सित भाव रहनेसे क्रमश: सर्व्वाङ्गमें फुसरीकी उत्पत्ति जगह जगह क्षत या स्फोटक नेत्ररोग, केश और लोमका क्षय, सन्धिस्थान समूहोंमें दर्द, पीनस और कभी कभी प्रकृत कुष्ठ रोग भी पैदा होता है; तथा अन्तमें उसी घावमें क्रिमि उत्पन्न हो लिङ्ग क्षय हो जाता है। इसी अवस्थामें रोगीका प्राणनाश होता है।

चिकित्सा।— उपदंश क्षत दूर करनेके लिये करञ्जाद्य घृत, विचर्च्चिकारि तेल और हमारा "क्षतारि घृत" और "क्षतारि तेल" प्रयोग करना। अथवा आंवला, हर्रा और बहेड़ा एक हांड़ीमें रख उपर ढकनीसे ढांककर आगमें जलाना, वही भस्म संहतमें मिलाकर घावमें लगाना, किम्बा रसाञ्जन और हर्रा सहतमें घिसकर लगाना। बबूलके पत्तेका चूर्ण, अनारके छालका चूर्ण अथवा मनुष्य अस्थि चूर्ण व्यवहार करनेसे उपदंशका घाव आराम होता है। यही सब लेप या तेलादि प्रयोगके पहिले त्रिफलाका काढ़ा किम्बा भीमराजका रस अथवा करवीर, जयन्ती, अकवन और अमिलतासके पत्तेका काढ़ेसे घाव अच्छी तरह धोना चाहिये। खानेके लिये वरादि गुग्गुलु और रसशेखर रस औषध प्रयोग करना। ज्वर होतो ज्वर निवारक औषध भी उसीके साथ सेवन

कराना उचित है। रोग पुराना होनेसे सालसा सेवन कराना चाहिये। हमारा "वृहत् अमृतवल्ली कषाय और अमृतवल्ली कषाय" नामक सालसा उपदंश रोगका अति उत्कृष्ट औषध है।

पारद सेवनका परिणाम।—उपदंश रोग जल्दी आराम होनेके लिये बहुतेरे लोग पारा सेवन कराते हैं। पारा यथारीति शोधित या सेवित न होनेसे, वह शरीरमें जाकर नाना-प्रकारका उत्कट रोग पैदा करता है। हड्डीमें जलन, सन्धि समूह या सर्व्वाङ्गमें दर्द, शरीरके नानास्थानमें घाव या फोड़ियोंकी उत्पत्ति और काला या सफेद रंगका दाग, हाथ और पैरके तलवोंसे चमड़ा निकलना, मुख नाकमें घाव, पोनस, मुखरोग, दन्तच्युति, नासिका क्षय, शिरःपीड़ा, पक्षाघात, अण्डकोषमें शोथ और कठिनता, जगह जगह गांठोंमें दर्द और शोथकी उत्पत्ति, चक्षुरोग, भगन्दर, नानाप्रकार चर्म्मरोग और कुष्ठरोगतक अयथा पारद सेवनसे उत्पन्न होते दिखाई देता है। पारद विकृतिमें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करना ही अच्छा हैं, कारण यह इस रोगका श्रेष्ठ औषध है। इसके सिवाय कुष्ठरोगोक्त पञ्चतिक्त घृत आदि कई औषध विचार कर प्रयोग करना चाहिये। शोधित गन्धक ४ रत्ती मात्रा घीके साथ, रालका तेल १०।१२ बूंद दूधके साथ रोज सेवन करनेसे पारद विकृतिमें विशेष उपकार होता है। घाव आराम करनेके लिये पूर्व्वोक्त क्षत निवारक औषध और चर्म्मरोग शान्तिके लिये सोमराजी तेल, मरिचादि तेल, महारुद्र गुड़ची तेल और कन्दर्पसार तेल बदनमें मालिश करना चाहिये।

व्रध्न कारण। उपदंश होनेसे अकसर बाघी होते दिखाई देता है। कफजनक या गुरुपाक अन्न भोजन, सूखा या

सड़ा मांस भोजन, नीचे ऊंचे स्थानमें चलना, तेज चलना और पैरमें फोड़ा या किसी तरहकी चोट लगनेसे भी यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें वंक्षण सन्धि याने दोनो पट्ठोंमें शोथ और साथ ही ज्वर होता है। उपदंश जनित व्रध्न पक जाता है, पर दूसरे कारणोंसे बाघी पकते नही देखा है।

व्रध्न चिकित्सा।—उपदंशजनित व्रध्न पकाकर नस्तरसे काटकर पीप रक्त निकालनाही अच्छा है, नहीतो और और रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। व्रणशोथ पकानेके लिये और पक-जानेपर, विदारण और घाव सुखानेके लिये जो सब योगादि लिख आये है, व्रध्न रोगमें भी वही सब प्रयोग करना। अन्यान्य व्रध्न अथवा उपदंश जनित व्रध्न भी किसी वक्त बैठानेकी आवश्यकता हो तो, पैदा होतेही बैठानेकी ततबीर करना चाहिये। जोंकसे रक्त मोक्षण या बड़का दूध लगाना, गन्धाबिरोजा या मुरगीके अण्डेके द्रव भागकी पट्टी रखनेसे व्रध्न बैठ जाता है। नौसादर या सोरा चार आनेभर एक छटांक पानीमें मिलाकर कपड़ेकी पट्टी भिंगोंकर रखनेसे व्रध्न जल्दी बैठ जाता है, अथवा कालाजीरा, क्षीविर, कूठ, तेजपत्ता और बेर; यही सब द्रव्य काञ्जीमें पोसकर लेप करना। दर्दकी शान्तिके लिये भेड़ीके दूधमें गेंहु पोसकर लेप करना। ज्वर दूर करनेके लिये ज्वरनाशक औषध देना।

पथ्यापथ्य।—इस बिमारीमें दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, अरहर और चनेकी दाल, परवर, गुल्लर, बैगन, पूराना सफेद कोंहड़ा आदि घीसे बनी तरकारी; बीच बीचमें छाग, कबूतर या मूरगाका मांस आहार करना। रातको रोटी और उक्त तरकारी खाना चाहिये ज्वर अधिक हो तो भात बन्दकर रोटी या सागू आदि हलका आहार देना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—मिष्टद्रव्य, शीतल द्रव्य, दूध और मछली भोजन और स्नान, मैथुन, दिवानिद्रा, व्यायाम आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कुष्ठ और श्वित्र।

निदान।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, द्रव, स्निग्ध, और गुरुपाक द्रव्य भोजन; नये चावलका भात, दही, मछली, लवण, उरद, मूली, मिष्टान्न, तिल और गुड़ आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन और मलमूत्र वमनादिका वेग धारण, अतिरिक्त भोजनके बाद व्यायाम या धूपमें बैठना; आतपक्लान्त, परिश्रान्त, या भयार्त्त होनेपर विश्राम न लेकर ठण्ढा पानी पीना; अजीर्णमें भोजन, वमन विरेचनादि शुद्धिकार्य्यके बाद अहित आचरण, भुक्त अन्न जीर्ण न होनेके पहिले स्त्रीसङ्गम, दिवानिद्रा और गुरु ब्राह्मण आदिका अपमान आदि उत्कट पापाचरण; यही सब कारणोंसे कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। वातरक्त और पारद विकृतिसे भी कुष्ठरोग पैदा होता है।

पूर्व्व लक्षण।—कुष्ठरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अङ्ग-विशेष अतिशय मसृण या खरस्पर्श अधिक पसीना या पसीना एक दम बन्द होना, शरीरकी विवर्णता, दाह, कण्डु, बदनमें खुजली, सुरसुरी अथवा चिंवटी चलनेकी तरह अनुभव। अङ्ग-

विशेषमें स्पर्शशक्तिका नाश, जगह जगह सूई गड़ानेकी तरह दर्द, जगह जगह बर्रे काटनेकी तरह दाग, क्लान्तिबोध, किसी प्रकारका घाव होनेसे उसमें भयानक दर्द, घावकी जल्दी उत्पत्ति और आराम होनेमें देर, सामान्य कारणसे भी घावका प्रकोप, घाव सूख जानेपर भी उस स्थानमें रूखापन, रोमाञ्च और कृष्णवर्णता यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता हैं।

महाकुष्ठके प्रकार भेद और लक्षण।—कुष्ठरोग अपरिसंख्येय होनेपर भी संक्षेपत: १८ प्रकारका निर्द्दिष्ट है। जिसमें कापाल, औडुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म और काकन नामक सात प्रकारके कुष्ठको महाकुष्ठ कहते हैं। बाकी ११ प्रकारका क्षुद्र कुष्ठ है। कापाल कुष्ठ, थोड़ा काला और थोड़ा अरुण वर्ण, रूक्ष, खरस्पर्श, सूई गड़ानेकी तरह दर्द और पतला त्वकविशिष्ट होता है। औडुम्बर कुष्ठ गुल्लरके रंगकी तरह, दाह, कण्डुयुक्त और इसमें व्याधि स्थानके लोम पिङ्गल वर्ण होता है। मण्डल कुष्ठ थोड़ा सफेद, थोड़ा लाल, आर्द्र, स्वेदयुक्त, उन्नत, मण्डलाकार और परस्पर मिला हुआ होता है। ऋष्यजिह्व कुष्ठ हरिणके जीभकी तरह आकृतिविशिष्ट कर्कश, प्रान्तभागमें लाल और बीचमें काला दाग और वेदनायुक्त होता हैं। पुण्डरीक कुष्ठ लाल कमलके फूलकी तरह आकृतिविशिष्ट सफेद मिला लाल रंग और ऊंचा। सिध्मकुष्ठ देखनेमें लौकीके फूलकी तरह और सफेद मिला लाल रङ्गका चमड़ाविशिष्ट व्याधिस्थान घिसनेसे उसमेंसे चूर्णकी तरह पदार्थ निकलता है, यह रोग छातीमें अधिक होता है। काकन कुष्ठ घुंघुचीकी तरह भीतर काला और प्रान्तभागमें लाल रंग, तीव्र वेदनायुक्त, यह कुष्ठ पकता है।

सब प्रकारका कुष्ठ जब रसधातुमें प्रवेश करता है तब अङ्गकी विवर्णता, रूक्षता, स्पर्श शक्तिका नाश, रोमाञ्च और अधिक पसीना यही सब लक्षण प्रकाशित होता है ; फिर खून गाढ़ा होनेसे कण्डु और अधिक पीप सञ्चय। मांसगत होनेसे कुष्ठकी पुष्टि और कर्कशता, मुखशोष, पिड़िकाकी उत्पत्ति, सूई गड़ानेकी तरह दर्द और घाव पैदा होता है। मेदोगत होनेसे हस्तक्षय, गतिशक्तिका नाश, अङ्गकी वक्रता और घावके स्थानकी विकृति और अस्थि तथा मज्जागत होनेसे नासाभङ्ग, चक्षुकी रक्तवर्णता क्षतस्थानमें क्रिमिकी उत्पत्ति और स्वरभङ्ग होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—कुष्ठरोग रस, रक्त और मांसगत होनेतक आराम होनेकी सम्भावना है। मेदोगत कुष्ठ याप्य। अस्थि और मज्जागत तथा उसमें क्रिमि, तृष्णा, दाह और मन्दाग्नि उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। जिस कुष्ठरोगीका कुष्ठ विदीर्ण, स्रावयुक्त, चक्षु लाल और स्वरभङ्ग हो उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

क्षुद्रकुष्ठोंके प्रकार भेदसे लक्षण।—उक्त सात महाकुष्ठके सिवाय बाकी ११ प्रकारके क्षुद्र कुष्ठोंमें जिस कुष्ठमें पसीना नहो होता और जो अधिक स्थानमें व्याप्त रहता है तथा जिसकी आकृति मछलीके चोइयांकी तरह होती है उसे भी एक प्रकारका कुष्ठ कहते है। हाथीके चमड़ेकी तरह रूखा, काला और मोटा, कुष्ठको चर्म्मकुष्ठ कहते है। जिस कुष्ठमें हाथ पैर फट जाता हैं, और तीव्र दर्द होता, उसको वैपादिक कुष्ठ कहते है। श्याववर्ण, रूखा, सूखा और सूखे घावकी तरह खरस्पर्श कुष्ठको किट्टिम कुष्ठ कहते हैं।

कण्डुविशिष्ठ, रक्तवर्ण स्फोटक द्वारा व्याप्त कुष्ठको अलसक

कहते है। ऊंचा, मण्डलाकार, कण्ड्युक्त और रक्तवर्ण फोड़ियोंसे व्याप्त कुष्ठको दद्रुमण्डल, तथा रक्तवर्ण, शूलवेदनाकी तरह दर्द, कण्डुयुक्त स्फोटक व्याप्त, स्पर्शासह और जिसमें मांस गलकर गिरता है उस कुष्ठको चर्म्मदल कहते है। दाह, कण्डु और स्रावयुक्त छोटो छोटी फोड़ियाको पामा और उसमें तीव्र दाह और स्फोटक होनेसे कच्छू (खजली) कहते है। कच्छू हाथ और चूतड़में अधिक होता है। श्याव या अरुण वर्ण पतला चर्म्मविशिष्ट स्फोटकको विस्फोटक कहते है। लाल या श्याव वर्ण तथा दाह और वेदनायुक्त बहु व्रणको शतारु कहते है। विचर्च्चिका नामक क्षुद्र कुष्ठ श्याव वर्ण, स्रावयुक्त तथा कण्डु और पिड़का विशिष्ट होता है, यही परमें पैदा होनेसे उसको विपादिका कहते है। वस्तुतः १८ प्रकारके कुष्ठोंमें सिध्म, दद्रु, पामा या कच्छू, विचर्च्चिका या विपादिका, शतारु और विस्फोटक यही छ प्रकारके कुष्ठको प्रकृत क्षुद्र कुष्ठ कहना उचित है। इसके सिवाय और भी कई क्षुद्र कुष्ठ शास्त्रमें परिगणित है इन सबको महाकुष्ठकी तरह समझना चाहिये।

अवस्थाभेदसे चिकित्सा।—कुष्ठरोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होतेही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो सम्पूर्णरूप प्रकाश होनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है। इस रोगमें मञ्जिष्ठादि और अमृतादि क्वाथ, पञ्चनिम्ब, अमृत गुग्गुलु, पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु, अमृत भल्लातक, अमृताङ्कुर लौह, तालकेश्वर, महा तालकेश्वर, रसमाणिक्य और पञ्चतिक्त घृत तथा कुष्ठस्थानमें मालिश करनेके लिये महासिन्दूराद्य तैल, सोमराजी तैल, मरिचादि तैल, कन्दर्पसार तैल और वात रोगोक्त महागुड़ची तैल व्यवहार कर सकते है। कुष्ठस्थानमें प्रलेप करनेके लिये हरीतकी, डहर-

करञ्जकी बीज, चकबड़की बीज और कूठ ; यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर लेप करना, अथवा मैनसिल, हरिताल, गोलमिरच, सरसोंका तेल, अकवनका दूध, यह सब द्रव्य पीसकर किम्वा डहरकरञ्ज बीज, चकवड़की बीज और कूठ यह तीन द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर लेप करना। गोमूत्र पान और चावलमुगराके तेलका मर्द्दन, कुष्ठ और कण्ड् आदि रोगमें विशेष उपकारी है। दादको दूर करनेके लिये विड़ङ्ग, चकवड़की बीज, कूठ, हलदी, सेन्धा नमक और सरसों ; यह सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप करना। चकबड़की बीज, आंवला, राल और सेंहुड़का दूध ; यह सब द्रव्य कांजीसे पीसकर लेप करनेसे दद्रुरोग आराम होता है। हमारा "दद्रुनाशक चूर्ण" व्यवहार करनेसे भी दाद जल्दी आराम होता है। चकबड़की बीज, तिल, सफेद सरसों, कूठ, पीपल, सोचल और काला नमक यह सब द्रव्य दहीके पानीमें तीन दिन भिंगो रखना फिर उसका लेप करनेसे दद्रु और विचर्च्चिका रोग आराम होता है। अमिलतासका पत्ता कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किट्टिम और सिध्म रोग दूर होता है। गन्धक चूर्ण और जवाक्षार चूर्ण सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्मरोग आराम होता है। मूलीकी बीज अपामार्गके रसके साथ अथवा दहीमें पीसकर लेप करनेसे भी सिध्मरोग आराम होता है। अकवनके पत्तेका रस और हलदीका कल्क सरसोंके तेलमें औटाकर मालिश करनेसे पामा, कच्छू और विचर्च्चिका आराम होता है। नरम अडूसेका पत्ता, हलदी, गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पामा, कच्छू रोगमें विशेष उपकार होता है। हमारा "क्षतारि तैल" पामा, कच्छू और विचर्च्चिका रोगमें विशेष उपकारी है।

श्वित्र या धवल और किलास।—पूर्व्वोक्त अष्टादश

प्रकारके कुष्ठ रोगके सिवाय श्वित्र और किलास नामक और भी दो प्रकारके कुष्ठ रोग है। श्वित्र रोगका साधारण नाम "धवल" है। इससे शरीरमें जगह जगह सफेद दाग और किलास रोगमें थोड़ा लाल रंगका दाग होता है। जिन कारणोंसे कुष्ठरोग पैदा होता है श्वित्रादि रोग भी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। श्वित्रादि रोग पुराना और निर्लोम स्थान अर्थात् गुदा, लिङ्ग, योनि, हाथ, पैरका तलवा और ओठमें उत्पन्न होनेसे असाध्य जानना। जिस श्वित्रके दाग सब परस्पर असंयुक्त और जिसके उपरकी लोम समूह श्वेतवर्ण न हो कृष्णवर्ण हो तथा थोड़ा दिनका पैदा हुआ और जो आगसे जला नही है उसीके आराम होनेकी सम्भावना है। बकुची दाना और छागलनादि गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे श्वित्र और किलास रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय कुष्ठ रोगोक्त यावतीय सिध्मनाशक प्रलेप समूह और कन्दर्पसार तैल इसमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—वातरक्त रोगोक्त पथ्यापथ्य कुष्ठ प्रभृति रोगमें भी पालन करना चाहिये। यह रोग अतिशय संक्रामक है, इससे कुष्ठरोगीके साथ एक बिछौने पर शयन, उपवेशन, एकत्र भोजन, बदनमें निःश्वासादि लगाना, रोगीका पहिरा कपड़ा पहिरना और उसके साथ मैथुन कदापि नही करना चाहिये।

—०—

शीतपित्त।

संज्ञा और पूर्व्व लक्षण।—सर्व्वाङ्गमें बर्रे काटनेकी तरह शोथ और अतिशय कण्डु विशिष्ट लाल रंगका एक प्रकार दिदोरा हो खुजलाया करता हैं, उसीको शीतपित्त तथा चलित भाषामें इसको "आमवात" कहते है। किसी किसी जगह सूची-वेधवत् वेदना, वमन, ज्वर और दाह भी होता है। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले पिपासा, अरुचि, वमन वेग, शरीरका अवसाद, गौरव और आंखे लाल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

उदर्द्द और कोठ।—उदर्द्द और कोठ नामक औरभी दो प्रकारका रोग इसी जातिका है। शीतल वायु सेवन आदि कारणोंसे वायु और कफ, प्रकुपित हो वायुके आधिक्यसे शीतपित्त और कफके आधिक्यसे उदर्द्द रोग उत्पन्न होता है। यह दो रोगके लक्षण प्राय: एकही प्रकारका होता हैं। वमन क्रियासे अच्छी तरह वमन न होनेसे उत्क्लिष्ट पित्त और कफ शीतपित्तके लक्षणयुक्त जो सब शोथ पैदा होता है उसको कोठ कहते है। कोठ बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होनेसे उसको उत्कोठ कहते है।

चिकित्सा।—इस रोगमें अजीर्ण जन्य आमाशय पूर्ण रहनेसे परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका काढ़ा पिलाकर कै करना। विरेचनके लिये त्रिफला, गुग्गुलु और पीपल समभाग मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करना। बदनमें

सरसोंका तेल मर्द्दन और गरम पानीसे स्नान उपकारी है। पुराने गुड़के साथ अदरखका रस पीना, २ तोले गौके घीके साथ ≠) आने-भर गोलमरिच चूर्ण रोज सवेरे सेवन ; हरिद्राखण्ड, वृहत् हरिद्राखण्ड और आर्द्रकखण्ड सेवन और दूर्व्वा, हरिद्रा एकत्र पीसकर लेप अथवा सफेद सरसीं, हल्दी चाकुलाका बीज और काली तिल एकत्र पीसकर सरसोंका तेल मिलाकर लेप करनेसे शीतपित्त आदि रोगमें विशेष उपकार होता है। दस्त साफ रखना इससे बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य।—इन सब रोगोंमें तिक्तरसयुक्त द्रव्य, कच्ची हल्दी, और नीमका पत्र खाना उपकारी है। वातरक्त पीड़ामें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, इस रोगमें भी वही सब द्रव्य पानाहार करना। गरम पानीसे स्नान और गरम कपड़ेसे शरीरको ढांके रखना विशेष उपकारी है।

—०—

अम्लपित्त।

निदान और लक्षण।—क्षीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध द्रव्य भोजन और दूषित अन्न, अम्लरस, अम्लपाक तथा अन्यान्य पित्त प्रकोप कारक पानाहारसे पूर्व्व सञ्चित पित्त विदग्ध हो अम्लपित्त रोग पैदा होता है। इस रोगमें भुक्त द्रव्यका अपरिपाक क्लान्तिबोध, वमन वेग, तिक्त या अम्लरसयुक्त ढेकार, देहका भारीपन, छाती और गलेमें जलन और अरुचि यही सब लक्षण

प्रकाशित होता है। अम्लपित्त अधोगामी होनेसे चारों तरफ सबजी मालूम होती है, ज्ञानका वैपरीत्य, वमन वेग, शरीरमें कोठका उद्गम, अग्निमान्द्य, रोमाञ्च, घर्म्म और शरीरका पीला होना; यही सब लक्षण लक्षित होता है। ऊर्द्धगामी होनेसे हरित्, पीत, नील, कृष्ण और रक्तवर्ण अथवा मांस धोया पानीकी तरह रंग; अम्ल, कटु या तिक्तरसयुक्त पिच्छिल और कफमिश्रित वमन होता है। भुक्तद्रव्य विदग्ध होनेके बाद अथवा अभुक्त अवस्थाहीमें कभी कभी वमन होता है। इसमें कण्ठ, हृदय और कुक्षिमें दाह, शिरो वेदना, हाथ पैरमें जलन, देह गरम, अत्यन्त अरुचि, पित्तकफज ज्वर, शरीरमें कण्डुयुक्त पिड़काकी उत्पत्ति आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होता है।

प्रकारभेदसे लक्षण।—वातज, श्लेष्मज, और पित्त-श्लेष्मज भेदसे अम्लपित्त चार प्रकारका होता है। वातज अम्ल-पित्तसे कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, अवसन्नता, शूलवेदना अन्धकार दर्शन, ज्ञानका वैपरीत्य, मोह और रोमाञ्च, यही सब लक्षण दिखाई देता है। कफजमें कफ निष्ठीवन, देहकी गुरुता जड़ता, अरुचि, शीतबोध और निद्राधिक्य प्रकाशित होता है। वात-श्लेष्मज अम्लपित्तमें तिक्त, अम्ल और कटुरसयुक्त उद्गार, छाती, कुक्षि और कण्ठमें दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, शिरोवेदना, मुखसे जलस्राव, मुखका स्वाद मीठा, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारका भ्रम और ऊर्द्धगत अम्ल-पित्तमें वमन रोगका भ्रम होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना है, इसीसे इस रोगकी परीक्षा सावधानी और विचार कर करना उचित है।

चिकित्सा।-- पीड़ाकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा न

करनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है, इससे पैदा होतेही चिकित्सा करना चाहिये।

लक्षणभेदसे चिकित्सा।—अम्लपित्त रोगमें अत्यन्त जलन अथवा कोष्ठबद्ध रहनेसे किम्बा कफके आधिक्यमें वमन विरेचनादि उपयुक्त शुद्धिक्रिया नितान्त उपयोगी है। कफज अम्लपित्तमें परवरका पत्ता, नीमपत्र और मदनफलके समभाग काढ़ेमें सहत और ≠) आनेभर सेन्धानमक मिलाकर पिलानेसे वमन हो अम्लपित्तका शान्ति होती है। विरेचनके लिये सहत और आंवलेके रसमें चार आनेभर त्रिवृतका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। अम्लपित्त शान्तिके लिये निस्तुष जौ, अडूसा और आंवला, इसके काढ़ेमें दालचिनी, इलायची, तेजपत्र चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। जौ, पीपल और परवरका पत्ता अथवा गुरिच खैरकी लकड़ी, मुलेठी और दारु हरिद्राके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलाना। गुरिच, नीमकी छाल, परवरका पत्ता और त्रिफलाके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त आराम होता है। अम्लपित्तमें वमन निवारणके लिये हरीतकी और भीमराज चूर्ण समभाग आधा तोला मात्रा पुराने गुड़के साथ सेवन करना। अथवा अडूसा, गुरिच और कण्टकारी इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलाना, इस काढ़ेसे श्वास, कास और ज्वरका भी उपशम होता है। अतिसार निवारणके लिये अतिसार रोगोक्त कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलबद्ध हो तो अविपत्तिकर चूर्ण, हरीतकी खण्ड अथवा हमारी "सरलभेदी बटिका" सेवन करना उचित है। पिप्पलीखण्ड, वृहत् पिप्पली खण्ड, शुण्ठीखण्ड, खण्ड कुष्माण्डक अवलेह, सौभाग्य शुण्ठी मोदक, सितामण्डूर, पानीय भक्त वटी, क्षुधावती गुड़िका, लीलाविलास, अम्लपित्तान्तक लौह,

सर्व्वतोभद्र लौह, पिप्पली घृत, द्राक्षाद्य घृत, श्रीविल्व तैल आदि विचारकर अम्लपित्त रोगमें व्यवहार कराना। शूल रोगोक्त धात्री लौह, आमलकी खण्ड आदि औषध भी इसमें प्रयोग कर सकते है; हमारा "शूल निर्व्वाण चूर्ण" अम्लपित्त रोगका विशेष उपकारी औषध है।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य।—शूलरोगोक्त पथ्यापथ्यही इसमें पालन करना उचित है। तिक्तरस भोजन इसमें विशेष उपकारी है। वातज अम्लपित्तमें चीनी और सहतके साथ धानके लावाका चूर्ण खाना हितकर है। यव और गोधूमका मण्ड आदि लघुपथ्य इसमें देना चाहिये। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" इस रोगमें उपयुक्त पथ्य हैं।

निषिद्ध कर्म्म।—सब प्रकारका गुरुपाक द्रव्य, अधिक लवण, मिष्ट, कटु, और अम्लरस तथा तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, मैथुन और मद्यपान आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

—:०:—

विसर्प और विस्फोटक।

—०:०:०—

विसर्पका निदान और प्रकारभेद।—सर्व्वदा लवण, अम्ल, कटु और उष्णवीर्य्य द्रव्य सेवन करनेसे वातादि दोष कुपित हो विसर्प रोग पैदा होता है। इस रोगमें शरीरके किसी स्थानमें स्फोटककी तरह उत्पन्न हो नानास्थानमें विस्तृत होता है। विसर्प रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज। इन सबमें वातपित्तज

विसर्पको अग्नि विसर्प, वातकफजको ग्रन्थि विसर्प और पित्त कफजको कर्द्दमक कहते हैं।

विभिन्न दोषजात लक्षण।—वातज विसर्पमें वातज्वरकी तरह मस्तक, हृदय, गात्र और उदरमें दर्द, शोथ, धक धक करना, सूचीवेधवत् या भङ्गवत् वेदना, भ्रान्तिबोध और रोमाञ्च होना यही सब लक्षण लक्षित होता है। पैत्तिक विसर्प अतिशय लाल रंग और जल्दी बढ़ता है, तथा पित्तज्वरके लक्षण समूह प्रकाशित होता है। कफज विसर्प कण्डुयुक्त चिकना और कफज ज्वरके लक्षणयुक्त होता है। सन्निपातज विसर्पमें तीनो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है।

अग्नि विसर्प।—अग्नि विसर्प नामक वातपित्तज विसर्पमें ज्वर, जीमचलाना, मूर्च्छा, अतिसार, पिपासा, भ्रम, गांठोंमें दर्द, अग्निमान्द्य, अन्धकार-दर्शन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। इसके सिवाय सर्व्वाङ्ग शरीर जलते हुए अङ्गारसे व्याप्त मालूम होना; शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विस्तृत हो, वह स्थान कोयलेकी तरह काला रंग, कभी नीला या लालभी होते देखा गया है, तथा उसके चारो तरफ आगसे जलनेकी तरह फफोले होते है। यह विसर्प हृदयादि मर्म्म स्थानोपर होनेसे वायु प्रवल हो सर्व्वाङ्गमें दर्द, संज्ञा और निद्रानाश तथा श्वास और हिक्का पैदा होता है। इसीतरह तकलीफ भोगते भोगते रोगो अवसन्न और संज्ञाहीन हो मृत्युमुखमें जाता है।

ग्रन्थि विसर्प।—ग्रन्थि-विसर्प नामक वातकफज विसर्पमें दीर्घ वर्त्तुलाकार, स्थूल, कठिन और लाल रङ्गकी ग्रन्थिश्रेणी अर्थात् गांठे होती है। इसमें अत्यन्त पीड़ा, प्रवल ज्वर, श्वास, कास, अतिसार, मुखशोष, हिक्का, वमन, भ्रम, ज्ञानका वैपरीत्य,

विवर्णता, मूर्च्छा, अङ्गभङ्ग, और अग्निमान्द्य यही सब लक्षण उपस्थित होता है।

कर्द्दमक।—कर्द्दमक नामक पित्तश्लेष्मज विसर्प पीत, लोहित, या पाण्डुवर्ण पिड़कासे व्याप्त, चिकना, काला या रूक्ष-वर्ण, मलिन, शोथयुक्त, गुरु, भीतर पका हुआ, अतिशय उष्ण-स्पर्श, क्लिन्न, विदीर्ण, कीचकी तरह कालारङ्ग और मूर्देकी तरह दुर्गन्धयुक्त होता है। फिर क्रमशः इस रोगसे मांस गलकर गिर जानेसे शिरा और स्नायु सब दिखाई देता है, तथा साथही ज्वर, जड़ता, निद्रा, शिरोवेदना, देहका अवसाद, आक्षेप, मुखकी लिप्तता, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, अस्थिवेदना, पिपासा, इन्द्रिय समूहोंका भारीबोध, अपक्व मल निर्गम और स्रोत समूहोंकी लिप्तता, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

क्षतज विसर्प।—शस्त्र, नख, और दन्त आदिसे किसी जगह घाव होनेसे कुरथीकी तरह काली या लाल रङ्गकी फोड़िया पैदा होते देखा गया है; यह भी एक प्रकारका पित्तज विसर्प है।

उपद्रव।—ज्वर, अतिसार, वमन, क्लान्ति, अरुचि, अपरिपाक, और त्वकमांस विदीर्ण होना यही सब विसर्प रोगके उपद्रव है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें वातज, पित्तज और कफज विसर्प साध्य है। किन्तु मर्म्मस्थानमें होनेसे कष्टसाध्य हो जाता है। त्रिदोषज, क्षतज, और वातपित्तज ग्रन्थिविसर्प असाध्य जानना।

विस्फोटकका निदान और लक्षण।—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (अम्लपाकी) रूक्ष, क्षार, या अपक्व द्रव्य भोजन; पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन;

आतप-सेवन और ऋतु-विपर्य्यय आदि कारणोंसे वातादि दोष समूह विशेष कर पित्त और रक्त कुपित हो विस्फोटक रोग उत्पन्न होता हैं। इसमें शरीरके किसी स्थानमें या सर्व्वाङ्गमें आगसे जलेकी तरह फफोले पैदा होते है और ज्वर भी होता।

दोषभेदसे लक्षण।—वातज विस्फोटक कृष्णवर्ण तथा साथही उसमें शिरोवेदना, अत्यन्त शूल, ज्वर, तृष्णा, सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है। पित्तज विस्फोट पाण्डुवर्ण अल्प वेदना, और कण्डुयुक्त होता है, यह देरसे पकता है, तथा वमन, अरुचि और शरीरकी जड़ता आदि उपस्थित होता है। द्विदोषज विस्फोटकमें इसी तरह दो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। त्रिदोषज विस्फोटक कठिन, रक्तवर्ण, अल्प पाकविशिष्ट तथा उसका मध्यभाग नीचा और प्रान्तभाग ऊंचा; दाह, तृष्णा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर, प्रलाप, कम्प और तन्द्रा यही सब लक्षण इसके साथ प्रकाशित होता है। रक्त दूषित होनेसे घुंघुचीकी तरह लालरङ्ग और पित्तविसर्पके लक्षणयुक्त एक प्रकार रक्तज विसर्प उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें एक दोषज विसर्प साध्य, द्विदोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज, रक्तज, तथा बहु उपद्रवयुक्त विसर्प असाध्य जानना।

विसर्प चिकित्सा।—विसर्प रोगमें कफका आधिक्य रहनेसे वमन और पित्तके आधिक्यमें विरेचन देना चाहिये। वमनके लिये परवरका पत्ता नीम और इन्द्रयव; अथवा पीपल, मदन-फल और इन्द्रयव; इसका काढ़ा पिलाना। विरेचनके लिये त्रिफलाके काढ़ेके साथ घी ≠) आनेभर और त्रिवृत् चूर्ण चार आने-भर मिलाकर पीना इसमें ज्वरकाभी शान्ति होती है। वातज

विसर्पमें रास्ना, नीलोत्पल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलेठी और बरियारा यह सब समभाग घी और दूधके साथ पीसकर लेप करना। पित्तज, विसर्पमें बड़कीसोर, गुरिच, केलेका फुल और कमलके डण्डाकी गांठ एकत्र पीसकर शतधौत घीमें मिलाकर लेप करना। कफज विसर्पमें त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, वराहक्रान्ता, कनैलकी जड़ और अनन्तमूल, इन सब द्रव्योंका लेप देना। द्विदोषज और त्रिदोषज विसर्पमें भी वही सब पृथक दोष-नाशक द्रव्य विचारकर लेप करना। सब प्रकारके विसर्पमें पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, मुलेठी और लाल चन्दन इन सबका काढ़ा अथवा बड़, पीपर, पाकर, गुल्लर और बकुल इन सबके पल्लवका काढ़ा सेवन विशेष उपकारी है। शिरीष, मुलेठी, तगरपादुका, लाल चन्दन, इलायची, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और बाला, यही दशाङ्ग प्रलेप सब प्रकारके विसर्पमें प्रयोग होता है। चिरायता, अडूसेकी छाल, कुटकी, परवरका पत्ता, त्रिफला, लाल चन्दन, नीमकी छाल इन सबका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारका विसर्प और तज्जनित ज्वर, दाह, शोथ, कण्डु, तृष्णा और वमन आराम होता है।

विस्फोटक चिकित्सा।—विस्फोटक शान्तिके लिये चावलके धोवनमें इन्द्रयव पीसकर लेप करना चाहिये, लाल चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, शिरीषछाल और जातिपुष्प इन सब द्रव्योंका लेप करनेसे विस्फोटकका दाह शान्त होता है। शिरीष-छाल, तगरपादुका, देवदारु और बभनेठी इन सब द्रव्योंका प्रलेप सब प्रकारके विस्फोटकमें उपकारी है। शिरीषछाल, गुल्लर और जामुनकी छाल, इन सब द्रव्योंका प्रलेप और काढ़ेका परिषेक विस्फोटक रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध और हमारा चतारि तैल।—विसर्प और विस्फोटक रोगमें अमृतादि कषाय, नवकषाय गुग्गुलु, काला तिल, रुद्ररस, वृषाद्य घृत और पञ्चतिक्त घृत सेवन, तथा घावमें करञ्ज तैल या हमारा "चतारि तैल" व्यवहार करना चाहिये। हमारा "अमृतवल्ली-कषाय" पीनेसे दोनो रोग जल्दी आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—वातरक्त और कुष्ठरोगमें लिखित पथ्यापथ्य, विसर्प और विस्फोटक रोगमें भी पालन करना चाहिये।

—※—
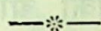
रोमान्ती और मसूरिका।

—:‿:—

रोमान्तीकी संज्ञा और लक्षण।—चलित भाषामें रोमान्तीको छोटीमाता, और मसूरिकाको बड़ीमाता कहते है। रोमकूपके उन्नतिकी तरह छोटी छोटी लाल फोड़ियाको रोमान्ती अर्थात् छोटीमाता कहते है, तथा छोटीमाता निकलनेके पहिले ज्वर और सर्व्वाङ्गमें दर्द होता हैं, अकसर २।३ दिनतक एकज्वर होकर ज्वर शान्त होते ही बदनमें दिखाई देती है; पहिले कपाल और डाढ़ीमें निकल कर फिर सर्व्वाङ्गमें प्रकाशित होती है। रोमान्ती ज्वरमें कोष्ठरोध या उदरामय, अरुचि, कास और कष्टसे श्वास-निर्गम यही सब लक्षण प्रकाश होते हैं। रोमान्ती

अच्छी तरह बाहर न निकलनेसे पीड़ा कष्टसाध्य होती है। यह रोग बाल्यावस्थामें अधिक होता है।

बड़ीमाताके निदान और लक्षण।—क्षीर-मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, दूषित अन्न, सीम, शाक और कटु, अम्ल, लवण और क्षार द्रव्य भोजन, पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन और क्रूर ग्रहोंकी कुदृष्टि आदि कारणोंसे मसूरिका अर्थात् बड़ीमाता उत्पन्न होती है। मसूरिकाकी पिड़िका समूहोंकी आकृति मसूरकी तरह। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले ज्वर, कण्डु, सर्व्वाङ्गमें दर्द, चित्तकी अस्थिरता, भ्रम, त्वक स्फीत और लाल रंग तथा दोनो आंखे लाल, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता हैं। मसूरिका धातुको अवलम्बन कर उत्पन्न होती है, इस लिये इसमें नानाप्रकारके भेद दिखाई देता हैं।

रसधातुगत या दूलारीमाता।—रसधातुगत मसूरिका जलविम्बकी तरह अर्थात् छोटे छोटे फफोलेकी तरह होती है और फूट जानेसे पानी निकलता हैं। यह सुखसाध्य है। चलित भाषामें इसको दुलारीमाता कहते है। रक्तगत मसूरिका लाल और पतले चर्म्मयुक्त होती है यह जलदी पक जाती है और फूटने पर रक्तस्राव होता है। रक्त अधिक दूषित न होनेसे यह भी सुखसाध्य है। मांसगत मसूरिका कठिन स्निग्ध और मोटे चर्म्म विशिष्ट, इससे बदनमें शूलवत् वेदना, तृष्णा, कण्डू, ज्वर और चित्तकी चञ्चलता होती है। मेदोगत मसूरिका मण्डलाकार, कोमल, किञ्चित अधिक ऊंची स्थूल और वेदनायुक्त होती है। इसमें अत्यन्त ज्वर, मनोविभ्रम, चित्तकी चञ्चलता और सन्ताप यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। अस्थि और मज्जागत मसूरिका क्षुद्राकृति, गात्रसम वर्ण, रूक्ष, चिवड़ेकी तरह चिपटी और

थोड़ी ऊंची ; इसमें अत्यन्त मोह, वेदना, चित्तकी अस्थिरता, मर्म्म-स्थान छिन्न होनेकी तरह और सर्व्वाङ्गमें भ्रमर काटनेकी तरह तकलोफ होती है। शुक्रगत मसूरिका चिकनी, सूक्ष्म, अत्यन्त वेदनायुक्त और देखनेसे पकेकी तरह पर पकी नही होती, इसमें सर्व्वाङ्ग गीले कपड़ेसे आच्छादनकी तरह अनुभव, चित्तकी अस्थिरता, मूर्च्छा, दाह और मत्तता यही सब उपद्रव प्रकाशित होता है।

दोषाधिक्यसे पिड़काकी अवस्था।—मसूरिकामें वायुके आधिक्यसे पिड़िका श्याव या अरुणवर्ण, रूक्ष, तीव्र वेदना-युक्त और कठिन होती है; तथा देरसे पकती है। पित्तके आधिक्यसे स्फोटक लाल, पीत या कृष्णवर्ण और दाह तथा उग्र-वेदनायुक्त होती है ; यह जल्दी पकती है तथा सन्धिस्थान और अस्थिसमूह तोड़नेकी तरह दर्द ; कास, कम्प, चित्तकी अस्थिरता, क्लान्ति तालु, ओठ और जिह्वामें शोथ, तृष्णा और अरुचि यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। कफके आधिक्यसे स्फोटक श्वेतवर्ण, चिकना, अतिशय स्थूल, कण्डु और अल्प वेदनायुक्त होती है ; यह देरसे पकती है, इसमें कफस्राव, शरीर आदि वस्त्रसे आवृतकी तरह अनुभव, शिरोवेदना, गात्रकी गुरुता, वमन-वेग, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य आदि उपद्रव दिखाई देता है। रक्तके आधिक्यमें मलभेद, अङ्गमर्द, दाह, तृष्णा, अरुचि, मुखमें घाव होना, आंखे लाल, तीव्र वेगसे दारुण ज्वर और पित्तज मसूरिकाके अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होता है। तीनो दोषका आधिक्य रहनेसे मसूरिका लाल रंग चिवड़ेकी तरह चिपटी और मध्यभाग नीचा, अत्यन्त वेदना और सुगन्ध स्रावयुक्त होती है। यह बहुत परिमाण उत्पन्न होती है और देरसे पकती है। चर्म्मदल नामक एक प्रकारकी मसूरिका होती है उसमें

कण्ठरोध, अरुचि, स्तम्भितभाव, प्रलाप और चित्तकी अस्थिरता यही सब लक्षण उपस्थित होता है।

साध्यासाध्य।—उक्त मसूरिकामें त्रिदोषज, चर्म्मदल, और मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रगत मसूरिका असाध्य। तथा जो मसूरिका रोगमें कई मूंगेकी तरह लाल रंग, कई जामूनकी तरह काली कई तमाल फलकी तरह होती है यह सब असाध्य जानना। जिस मसूरिका रोगमें कास, हिक्का, चित्तकी विभ्रमता और अस्थिरता, अति कष्टप्रद तीव्रज्वर, प्रलाप, मूर्च्छा, तृष्णा, दाह, गात्रघूर्णन, अतिनिद्रा, मुख, नासिका और आंखसे रक्तस्राव और कण्ठसे घुर घुर शब्द होना और अति वेदना सहित श्वासनिर्गम यही सब उपद्रव प्रकाशित होता है, उसको भी असाध्य ही समझना। मसूरिका-रोगी अतिशय तृष्णार्त्त और अपतानकादि वातव्याधिग्रस्त होनेसे, अथवा मुखको छोड़ केवल नासिकासेही दीर्घश्वास लेनेसे उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

आरोग्यान्तमें शोथ।—मसूरिका आराम होनेपर किसी किसीके केहुनी, हाथका कब्जा, कन्धे शोथ होता है, यह अतिशय कष्टदायक और दुश्चिकित्स्य हैं।

चिकित्सा।—इस दो रोगमें अधिक रूक्षक्रिया या अधिक शीतल क्रिया करना उचित नही है। अधिक रूक्षक्रियासे माता अच्छी तरह नही निकलती, इससे पीड़ा कष्टदायक होती है, और अधिक शीतलक्रियासे रोग कष्टदायक होता है, तथा अधिक शीतलक्रियासे सर्दी खांसी होकर तकलीफ बढ़ती है। माता अच्छी तरह नही निकलनेसे कच्ची हलदीका रस, तेलाकुचाके पत्तेका रस, या शतमूलीका रस मखनके साथ मिलाकर मालिश करना। इस अवस्थामें तुलसीके पत्तेके रसके साथ अज-

वाईन पीसकर लगाते देखा है। पोड़ाके प्रथमावस्थामें मेथी भिंगोया पानी कूठ और बनतुलसीका काढ़ा किम्बा कूठ, बन-तुलसी, पानका जड़ और मानके जड़का काढ़ा पिलानेकी रीति है। छोटीमातावालेको वच, घृत, बांसकी गांठ, जौ, अडुसेकी जड़, बनीरकी बीज, ब्रह्मीशाक, तुलसीका पत्ता, अपामार्ग और लाह यह सब द्रव्यका धूप देना चाहिये। सर्दी खांसी हो तो मुलेठीके काढ़ेके साथ मकरध्वज या लक्ष्मीविलास रस सेवन करना।

प्रथम अवस्थाकी चिकित्सा।—मसूरिकाके प्रथमावस्थामें कांटा कुम्भारू नामक लताके काढ़ेमें ॥) आनेभर होङ्ग मिलाकर पिलाना; सुपारीकी जड़, करञ्जकी जड़, गोक्षुरकी जड़ अथवा अनन्तमूल पानीमें पीसकर सेवन कराना। वातज मसूरिकामें दशमूल, अडुसा, दारुहरिद्रा, खसकी जड़, अमिलतास, गुरिच, धनिया और मोथा; यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना तथा मजीठ, बड़, पाकर, शिरीष और गुल्लरकी छाल यह सब द्रव्यका लेप करना। मसूरिका पकने पर गुरिच, मुलेठी, रास्ना, वृहत् पञ्चमूल, रक्तचन्दन, गांभारी फल और बरियारेकी जड़ इन सबका काढ़ा अथवा गुरिच, मुलेठी, द्राक्षा, इक्षुमूल और अनार यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना। पित्तज मसूरिकामें नीमकी छाल, खेतपापड़ा, अकवन, परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, खसकी जड़, कुटकी, आंवला, अडुसेकी छाल और जवासा इसका काढ़ा ठण्ढाकर थोड़ी चिनी मिलाकर पीना। शिरीष, गुल्लर, पीपल और बड़ इन सबका छाल ठण्ढे पानीमें पीसकर घी मिला लेप करनेसे पित्तज मसूरिकाकी व्रण और दाह दूर होता है। कफज मसूरिकामें अडुसा, मोथा, चिरायता, त्रिफला, इन्द्र-यव, जवासा, परवरका पत्ता और नीमका छाल इन सबका काढ़ा

पिलाना और शिरीषकी छाल, गुल्लरकी छाल, खैर और नीमका पत्ता पीसकर लेप करना। गुड़के साथ बैरका चूर्ण खानेसे सब प्रकारकी मसूरिका पकजाती है। परवरका पत्ता, गुरिच, मोथा अड़ूसेकी छाल, जवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और खेतपापड़ा इन सबका काढ़ा पीनेसे अपक्क माता भी पक जाती है, और पकी माता शीघ्र सूखजाती है, तथा इससे ज्वरमें भी विशेष उपकार होता है। दाह शान्तिके लिये कलमी शाकका रस बदनमें लगानेसे विशेष उपकार होता है।

पीप निवारणोपाय।—मसूरिकासे पीप निकलतो बड़, गुल्लर, पीपर, पाकर बकुल (मौलसरी) के छालका चूर्ण क्षतस्थानमें लगाना। जङ्गली कण्डेकी राख अथवा गोबरका मिहीन चूर्ण लगानेसे भी घाव जल्दी सूखता हैं। इस अवस्थामें क्षत नाशक अन्यान्य औषध भी प्रयोग करना चाहिये। मातामें क्रिमि उत्पन्न होनेसे, धूना, देवदारु, चन्दन, अगरू, और गुग्गुलु आदिका धूप देना। मसूरिका एक दफे निकल कर एकाएकी लीन हो जानेसे निम्बादि और काञ्चनादि क्वाथ पिलाना। मसूरिका रोगीको खदिरकाष्ठके काढ़ेसे शौचादि कराना उपकारी है।

चक्षुजात मसूरिकाकी चिकित्सा।—आंखमें मसूरिका होनेसे गोक्षुर, चाकुला और मुलेठीका काढ़ा दोनों आंखमें देना। मुलेठी, त्रिफला, मूर्व्वाकी जड़, दारुहल्दी, दालचिनी, खसकी जड़, लोध, मजीठ, यह सब द्रव्यके काढ़ेसे दोनो आंखे धोना।

आगन्तुक रोग चिकित्सा।— इस रोगमें अरुचि रहनेसे खट्टे अनारका रस और खैरकाठका काढ़ा ठंढाकर पीना विशेष उपकारी है। मुखरोग या कण्ठरोग रहनेसे जावित्री, मंजीठ, दारुहल्दी,

सुपारी, शमीकी छाल, आंवला और मुलेठी, इन सबका काढ़ा सहत मिलाकर कुल्ला कराना। सहतके साथ पीपल और हरीतकी चूर्ण चाटनेसे मुख और कण्ठ शुद्ध होता है। ऊषणादि चूर्ण, सर्व्वतोभद्र, इन्दुकलावटी, एलाद्यरिष्ट, छोटी माता और बड़ी माता रोगमें विचारकर प्रयोग करनेसे उपकार होता है।

पथ्यापथ्यमें हमारा सञ्जीवन खाद्य।—रोगके प्रथमावस्थामें भूखके अनुसार दूधसागु, दूधवार्लि या हमारा "सञ्जीवन खाद्य" आदि लघु पथ्य खानेको देना। फिर क्षुधावृद्धि और ज्वरादिके अनुसार अन्न आदि खानेको देना। परवर, बैंगन, कच्चा केला, गुल्लर आदिकी तरकारी और बेदाना, किसमिस नारङ्गी, अनारस आदि द्रव्य खाना चाहिये। बदन पर मोटा कपड़ा रखना तथा रहनेका घर प्रशस्त और बिछौना साफ रहना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—मत्स्य, मांस, उष्णवीर्य्य द्रव्य, गुरुपाक द्रव्य भोजन और तैल मर्द्दन, वायु सेवन इस रोगमें मना है। मसूरिका अतिशय संक्रामक व्याधि है। इसमें रोगीसे हरवख्त दूर रहना चाहिये।

संक्रामकका प्रतिरोध।—इस रोगके आक्रमणसे बचनेका उपाय "छपाना"। स्त्री बांये तरफ पुरुष दहिने तरफ छपाना चाहिये। हरीतकीकी बीज धारण करनेसे मसूरीकाके आक्रमणका भय कम रहता है।

क्षुद्ररोग।

—:—०:—:—

अजादि।—बालकोंके शरीरमें मूंगकी तरह गोल, चिकना, गात्र समवर्ण गठीला और वेदनाशून्य एक प्रकारको फोड़िया उत्पन्न होती है, उसको अजगल्लिका कहते हैं। जौकी तरह मध्यभाग स्थूल, कठिन गठीली जो सब पिड़िका मांसल स्थानमें उत्पन्न होती है उसको यवप्रख्या कहते हैं। अवक्त्र, उन्नत, मण्डलाकार अल्प पूययुक्त और घनसन्निविष्ट पिड़िका समूह उत्पन्न होनेसे उसको अन्त्रालजी कहते हैं। यह तीन प्रकार व्याधि वातश्लेष्मज है। पक्के गुल्लरकी तरह रंग, दाहयुक्त, मण्डलाकार और विदीर्ण पिड़िकाका नाम विवृता; यह पित्तज व्याधि है। कछुवेकी तरह आकृतिविशिष्ट अति कठिन और पांच छः एकसाथ मिली हुई फोड़ियाका नाम कच्छपिका; यह भी वातश्लेष्मज है। ग्रीवा, स्कन्ध, हाथ, पैर, सन्धिस्थान और गलेमें वल्मीककी तरह शिखरयुक्त पिड़िकाको वल्मीक कहते हैं; यह त्रिदोषज व्याधि। प्रथमावस्थामें इसको चिकित्सा न करनेसे क्रमशः वर्द्धित, अग्रभाग उन्नत, वहुमुख, स्राव और वेदनायुक्त होता है। कमलके छत्तेमें जैसे कमलको बीज समूह मण्डलाकार रहती, वैसही मण्डलाकार पिड़िका उत्पन्न होनेसे उसको इन्द्रविद्धा कहते है, यह वातपैत्तिक रोग है। मण्डलाकार, उन्नत, लाल, वेदनायुक्त गोलपिड़िका व्याप्त व्याधिको गर्द्दभिका कहते है, यह वातपित्तज व्याधि है। हनु अर्थात् चहुआके सन्धिस्थलमें अल्प वेदनायुक्त और चिकना जो शोथ उत्पन्न होता है उसको पाषाणगर्द्दभ कहते है, यह वातश्लेष्मज

रोग है। कानमें उग्र वेदनायुक्त जो पिड़िका उत्पन्न हो भीतरका भाग पकजाता है, उसको पनसिका कहते है। विसर्पकी तरह क्रमशः विस्तृतिशील, दाह और ज्वरयुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है उसको जालगर्द्दभ या अग्निवात कहते है, इसके उपरका चमड़ा पतला और यह अकसर पकता नहो कदाचित् कोई पकताभो है; यह रोग पित्तजनित है। उग्र वेदना और ज्वरयुक्त जो सब पिड़िका मस्तकमें उत्पन्न होती है उसका नाम इरिवेल्लिका, यह त्रिदोषज है; बाहु, पार्श्व, स्कन्ध, बगलमें कृष्णवर्ण वेदनायुक्त जो स्फोटक पैदा होता है उसको गन्धमाला कहते है; यह फोड़ा पित्तज है। बगलमें जलते हुए अङ्गारेकी तरह एक प्रकार स्फोटक पैदा हो चर्म्म विदोर्ण होकर भीतर अत्यन्त दाह और ज्वर होता है, इस रोगका नाम अग्निरोहिणी, यह त्रिदोषज और असाध्य है। ८ दिनसे १५ दिन तक इस रोगसे रोगीके मृत्युकी सम्भावना है। वायु और पित्त कर्त्तृक नखका मांस दूषित हो पकनेसे अत्यन्त दाह होता है, इसका नाम चिप्प; चलित भाषामें "अङ्गुलि खोया" कहते है। नखका मांस अल्प दूषित होनेसे पहिले नखका दोनो कोना, फिर सव नख नष्ट या खराव होनेसे उसको कुनख कहते है। पैरके उपर थोड़ा शोथ, गात्र समवर्ण, अन्तरमें पका जो रोग पैदा होता है उसका नाम अनुशयी। बगल और पट्ठोंमें भूमि-कुष्माण्डको तरह जो शोथ होता है उसका नाम विदारिका; यह त्रिदोषज है। जिस रोगमें दूषित वायु और कफ, मांस, शिरा, स्नायु और मेदको दूषित करनेसे पहिले कोई एक गांठ पैदा होती है; फिर वह गांठ विदोर्ण होकर उसमेंसे घी, सहत और चर्व्वीकी तरह स्राव होनेसे धातुक्षय हो मांस सूख जाता है; सुतरां यह सब ग्रन्थिस्थान अतिशय कठिन होता है, इसको शर्कराव्बुंद कहते

है, इस अर्व्वुदकी शिरामें दुर्गन्ध, सड़ा या नानाप्रकार स्राव दिखाई देता है, कभी कभी रक्तस्रावभी होता है।

पाददारी।—सर्व्वदा नङ्गे पैर पैदल चलनेवालोंका पैर रुखा हो फट जाता है; इसको पाददारी कहते है। कङ्कर या कांटेसे पैरके तलवेमें चोट या घाव लगनेसे पैरके तलवेमें जो बैरके बीजकी तरह गांठ पैदा होती है, उसको बदर या बेरकी बीज कहते है। रातदिन पैर पानीमें भिंगा रहनेसे पैरके अङ्गु-लियोंको सन्धि सड़ कर उसमें खुजलाहट और दर्द पैदा होनेसे उसको अलस कहते है। कुपित वायु और पित्त केशके जड़में जाकर यदि सिरका बाल गिरा दे और खराब कफ और रक्तसे लोमकूप बन्द हो जाय और फिर उस जगह केश नहो निकलेतो, उसको इन्द्रलुप्त या खालित्य; और चलित भाषामें "टाक" कहते हैं। केशभूमि कठिन, कण्डुयुक्त और फट जानेसे उसको दारुणक रोग तथा चलित भाषामें "रुसो" कहते है यह वात कफज व्याधि है। मस्तकमें बहु क्लेदयुक्त व्रण समूह उत्पन्न होनेसे उसको अरुंषिका कहते है। कफ, रक्त और क्रिमिसे यह रोग उत्पन्न होता है। क्रोध, शोक और श्रमादि कारणसे देहकी ऊष्मा और पित्त शिरोगत होनेसे केश बेवक्त पकजाता है; उसको पलित रोग कहते है। युवकोंके मुखपर सेमलके कांटेको तरह एक प्रकार फोड़िया पैदा होता है उसको युवानपिड़का वा "वयो-व्रण" कहते है। कफ, वायु और रक्तके दोषसे यह पैदा होती है, अतिरिक्त शुक्रक्षयही इस रोगका प्रधान कारण है। चमड़ेके उपर पद्मके कांटेकी तरह कण्टकाकीर्ण, पाण्डुवर्ण कण्डुयुक्त और गोलाकार जो मण्डल उत्पन्न होता है उसको पद्मिनीकण्टक कहते है; यह वात कफज व्याधि है। चमड़ेके उपर उरदको तरह थोड़ा

ऊंचा, काला, वेदनाशून्य और मण्डलाकार एकप्रकार फोड़िया पैदा होता है, उसको माषक कहते है। वायुके प्रकोपसे यह पोड़ा पैदा होती है। चमड़ेके उपर तिलकी तरह काले रंगका जो दाग होता है उसको तिल कहते है, यह त्रिदोषज व्याधि है। बदनमें श्याव या कृष्णवर्ण, वेदनाशून्य मण्डलाकार जो चिह्न होता है उसको मच्छ या सेंहुआ कहते है; यह रोग पहिले बूंद बूंद उत्पन्न हो फिर बढ़ता है। क्रोध और परिश्रम आदि कारणोंसे वायुपित्त कुपित हो मुख श्याव वर्ण, अनुन्नत और वेदनाशून्य एक प्रकार मण्डलाकार चिह्न पैदा होता है उसको मुखव्यङ्ग बोद-कर कहते है। यही बोदकर अधिक काला होनेसे उसको नीलिका कहते है। नीलिका शरीरमेंभी होती है।

परिवर्त्तिका।—लिङ्ग अतिशय मर्द्दित, पीड़ित या किसी तरह चोट लगनेसे लिङ्ग चर्म्म दूषित और परिवर्त्तित होकर लिङ्गमणिके नीचेका भाग गांठकी तरह लम्बा हो जाता है, उसको परिवर्त्तिका कहते है। इसमें वायुका आधिक्य रहनेसे दर्द, कफके आधिक्यमें कड़ा और कण्डुयुक्त होता है। सूक्ष्ममुख योनि आदिमें गमन या और कई कारणसे यदि लिङ्गचर्म्म उलट जाय तथा मुद्रित नहो तो उसको अवपाटिका कहते है। कुपित वायु लिङ्ग चर्म्ममें रहनेसे लिङ्गमणि विवृत नहो होता तथा अत्यन्त दर्द, मूत्रस्रोत बन्द, अथवा पतली धारसे मूत्र निकलता है। इसको निरुद्धप्रकाश कहते है। मलवेग धारण करनेसे अपान वायु कुपित हो मलमार्गको बन्द या सूक्ष्म द्वार होनेसे अतिकष्टसे मल निकलता है उसको सन्निरुद्ध गुद कहते है। बच्चोंके गुदाका मलमूत्र घर्म्मादि न धोनेसे गुद में खजुली पैदा होती है। फिर वह खुजलातेही वहां घाव हो स्राव होने लगता है, उसको अहिपूतनक रोग कहते

है। स्नान या बदन साफ न रखनेसे अण्डकोषका मेल पसीनेसे क्लिन्न हो उसी स्थानमें खजुली होता है, खजुलानेसे घाव हो स्राव होनेसे उसको वृषण कच्छू कहते है। अतिशय कुंथन या अधिक मलभेदसे रुक्ष या दुर्व्वल रोगीको गुदनाली निकल आनेसे उसको गुदभ्रंश रोग कहते है। जिस रोगसे सर्व्वाङ्गमें घाव हो, घावका प्रान्तभाग लाल तथा दाह, खजुली, तीव्र वेदना और ज्वर हो उसको वराहदंष्ट्रक रोग कहते है।

क्षुद्ररोग चिकित्सा।—अजगल्लिका रोगमें नये कटेलीके काटेसे फोड़िया छेद देनेसे वह पककर जल्दी आराम हो जाती है। अडूसेकी जड़ और बालम खीरेकी जड़ पीसकर लेप करनेसे अजगल्लिका आराम होती है। अनुशयी रोगमें कफज विद्रधिकी तरह और विवृता, इन्द्रविद्धा, गर्द्दभी, जालगर्द्दभ, ईरिवेल्लिका और गन्धमाला रोगमें पित्त विसर्पकी तरह चिकित्सा करना। नीलका पेड़ और परवरका जड़ पीसकर घी मिला लेप करनेसे जालगर्द्दभ रोगका दर्द आराम होता है। बार बार जोंक आदिसे खुन निकालना और सैजनके जड़का छाल तथा देवदारुका प्रलेप करनेसे विदारिका, पनसिका और कच्छपिका रोग दूर होता है। अन्धालजी, यवप्रख्या और पाषाणगर्द्दभ रोग पहिले सेंककर फिर मेनशिल, देवदारु और कूठ यह तीन द्रव्य पीसकर लेप करना। पकनेपर व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करना। पाषाणगर्द्दभ रोगमें वातश्लैष्मिक शोथनाशक प्रलेप उपकारी है। वल्मीक रोगमें शस्त्रसे उखाड़कर उस स्थानको जलाना; फिर मेनशिल, हरताल, भेलावा, छोटी इलायची, अगुरु, रक्तचन्दन और जावित्री, इन सबके कल्कके साथ नीमका तेल पकाकर घावमें मर्द्दन करना। पाददारी रोगमें मोम, चर्व्वी, घी और यवक्षारका बार बार लेप करना। अथवा राल और सेन्धा नमक चूर्ण, सहत, घी और

तिलके साथ मिलाकर पैरमें घिसना। अलस रोगमें पैर थोड़ी देर कांजीमें भिंगों रखना फिर परवरका पत्ता, नीमकी छाल, हिराकस और त्रिफला पीसकर बार बार लेप करना। शूरणके डण्डेका दूध अलस रोगमें विशेष उपकारी है। मेहदीका पत्ता और हल्दी एकत्र पीसकर लेप करनेसेभी अलस रोग जल्दी आराम होता है। कदर रोग नस्तरसे बाहर निकालकर गरम तेल या आगसे वह स्थान जला देनेसे आराम होता है। चिप्प रोगमें गरम पानीका सेंक देकर काटना और क्षतस्थानमें रालका चूर्ण या व्रणनाशक तेल प्रयोग करना। एक लोहेके बरतनमें हल्दी और बड़ा हर्रे घिस-कर बार बार लेप करनेसे चिप्प रोग आराम होता है। गम्भारीका कोमल पत्ता लपेटकर बांध देनेसे भी चिप्परोग जल्दी आराम होता है। कुनख रोगमें नखमें सोहागेका चूर्ण भरना; अथवा सोहागा और हापरमाली एकत्र पीसकर लेप करना। पद्मकांटा रोगमें पद्मका डण्डा जलाकर उसकी राखका लेप अथवा नीमकी छाल और अमिलतासका पत्ता पीसकर बार बार मर्दन करना। नीमकी जड़, परवरकी जड़ पीसकर घी मिलाकर लेप करनेसे जालगर्द्दभ रोगका दर्द आराम होता है। अहिपूतन रोगमें त्रिफला और खैरके काढ़ेसे घाव बार बार धोना और रसाञ्जन, मुलेठी एकत्र पीसकर लेप करना। गुदभ्रंशरोगमें निकली हुई नाड़ीमें गौकी चर्व्वी आदि स्नेह पदार्थ मालिश कर नाड़ी भीतरको ढकेल देना। गुदद्वारमें एक टुकड़ा चमड़ा छिद्रकर बांधनेसे विशेष उपकार होता है। चाङ्गेरीघृत सेवन, मूषिकाद्य तेल गुदानालीमें मर्दन करनेसे गुदभ्रंश रोग आराम होता है। परिवर्त्तिका रोगमें परि-वर्त्तित लिङ्गचर्म्ममें घी लगाकर उबाले हुए उरदका स्वेद करना, मांस कोमल होनेसे लिङ्गचर्म्म बैठाकर थोड़ा गरम मांसका लेप

करना। अवपाटिका रोगमें परिवर्त्तिकाकी तरह चिकित्सा करना। निरुद्धप्रकाश रोगमें सोना, लोहा आदिका छिद्रयुक्त नल घृतादिसे अभ्यक्त कर मूत्रमार्गमें प्रवेश करानेसे मूत्र निकलता है। मूत्रद्वार बढ़ानेके लिये एक दिन अन्तरपर क्रमशः वही नल लतर प्रवेश कराना चाहिये। अङ्गरेजीमें इस प्रकार नल प्रवेश करानेको "काथिटार" पास कराना कहते है। सन्निरुद्ध गुद रोगमें भी यह प्रवेश कराना चाहिये। चर्म्मकील, माषक और तिल शस्त्रसे उखाड़ कर क्षार या आगसे जलाना चाहिये; रेंड़के डण्डेसे शङ्ख-चूर्ण घिसकर अथवा सांपकी केंचुलीकी राख घिसनेसे माषक रोग आराम होता है; युवानपिड़िकामें लोध, धनिया, बच, गोरो-चन, मरिचचूर्ण अथवा सफेद सरसों, बच, लोध, सेंधानमक एकत्र पीसकर मुखमें लेप करना। सेम्भर वृक्षका चोखाकांटा, मसूरकी दाल दूधमें पीसकर लेप करनेसे युवानपिड़िका आराम होती है। सेंहुआमें लाल चन्दन, मञ्जीठ, कूठ, लोध, प्रियङ्गु, बड़का नरम पत्ता और कली, मसूरकी दाल एकत्र पीसकर लेप करना। हरिद्राद्य तेल, कनकतैल, कुङ्कुमाद्य तेल आदिसे भी युवानपिड़िका, व्यङ्ग और नीलिका आदि रोग आराम होता है। अरुंषिका रोगमें शिर मुड़ाकर नीमके काढ़ेसे व्रणसमूह धोना फिर घोड़ेकी लीदका रस और सेंधानमक एकत्र मिलाकर लेप करना; अथवा पुरानी सरसोंकी खली और मूरगीका बीट गोमूत्रमें पीसकर लेप करना। द्विहरिद्राद्य तेल इस रोगमें विशेष उप-कारी है। शिरकी रूसी कोदो धानकी राख पानीमें घोल कर वही क्षार पानीसे शिर धोना और केशर, मुलेठी, तिल और आंवला यह सब द्रव्यका प्रलेप करना। त्रिफलाद्य तैल और वह्नि तेल इस रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रलुप्त या टाक रोगमें

सूई गड़ाना या गुल्लर आदि कर्कश पत्तेसे घिसकर घाव कर फिर लालघुंघची पीसकर लेप करना। बकरीका दूध, रसाञ्जन और पुटदग्ध हाथीदांतभस्म एकत्र मिलाकर लेप करनेसे टाकमेंभी केश उत्पन्न होता है। स्नुहाद्य तैल, मालत्याद्य तैल और यष्टि-मध्वाद्य तैल टाक रोगमें प्रयोग करना। पालित्य रोग विनाशके लिये अर्थात् सफेद केश काला करनेके लिये त्रिफला, नील वृक्षका पत्ता, लोहा और भीमराज समभाग छाग मूत्रकी भावना देकर केशमें लगाना। महानीलतैल इस रोगका श्रेष्ठ औषध है। हमारा केशरञ्जन तैल यथाविधि व्यवहार करनेसे दारुणक, इन्द्रलुप्त और पालित्य रोग आराम होता है। कक्षा, अग्निरोहिणी और इरि-वेल्लिका रोगमें पैत्तिक विसर्पकी तरह चिकित्सा करना। पनसिका रोगमें पहिले स्वेद करना फिर मैनशिल, कूठ, हल्दी और देवदारु इन सब द्रव्योंका लेप करना। पकनेपर नस्तरसे पीप आदि निकाल कर व्रणकी तरह चिकित्सा करना। शर्कराव्वुंदकी चिकित्सा अर्व्वुद रोगकी तरह करना। वृषणकच्छू रोगमें राल, कूठ, सैंधानमक और सफेद सरसों यह सब द्रव्य पीसकर मर्दन करना तथा पामा और अहिपूतन रोगकी तरह चिकित्सा करना। हमारा "चतारि तैल" और मरिचादि तैल लगानेसे भी रोग आराम होता है। अहिपूतन रो में हीराकस, गोरोचन, तुतिया, हरिताल और रसाञ्जन यह सब द्रव्य कांजीसे पीसकर लेप करना। शूकरदंष्ट्रक रोगमें हल्दी और भंगरैयाकी जड़ ठण्ढे पानीमें पीसकर गायके घीके साथ सेवन कराना। विसर्प रोगकी तरह अन्यान्य चिकित्सा-भी करना। न्यच्छ अर्थात् सेंहुआ रोगमें सोहागेका लावा और सफेद चन्दन अथवा सोहागेका लावा और सहत मिलाकर मर्दन करना। सिध्म रोगोक्त अन्यान्य प्रलेप भी इसमें प्रयोग कर सकते

है। सप्तच्छदादि तैल, कुङ्कुमादि घृत, सहचर घृत और हमारा "हिमांशु द्रव" सेहुंआकी अकसीर दवा है।

क्षुद्र रोगाधिकारोक्त पीड़ा समूहोंकी चिकित्सा संक्षेपमें लिखी गई है; यह सब चिकित्साके सिवाय रोगका दोष और अवस्था-विशेषादि विचारकर बुद्धिमान चिकित्सक अन्यान्य औषधभी इसमें प्रयोग कर सकते हैं।

पथ्यापथ्य।—रोगविशेषका दोष दुष्य विचार कर वही दोषके उपशमकारक पथ्य सेवन और उसी दोषवर्द्धक पथ्यापथ्य समूहोंका त्याग करना चाहिये।

मुखरोग।

मुखरोग संज्ञा और निदान।—ओष्ठ, दन्तवेष्ठ, (मसूढ़ा) दन्त, जिह्वा, तालु, कण्ठ प्रभृति मुखके भीतरी अवयवोंमें जो सब रोग उत्पन्न होता है उसको मुखरोग कहते है। मत्स्य, क्षीर, दही आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन करनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो मुखरोग उत्पन्न होता है। अधिकांश मुखरोगमें कफका ही प्राधान्य रहता है।

ओष्ठगत मुखरोगका प्रकारभेद और लक्षण।—ओष्ठगत मुखरोगमें—वातज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय कर्कश, श्याव-वर्ण, रुक्ष, जड़वत्, सूई गड़ानेकी तरह दर्द और कठोर होता

हैं। पित्तज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय पीतवर्ण; वेदना, दाह और पाकयुक्त फोड़ियोंसे व्याप्त होता है। कफज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय शीतल, श्वेताभ, गुरु, पिच्छिल, कण्डुयुक्त, वेदनाशून्य और त्वक्-सम वर्ण पिड़कायुक्त होता है। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कभी पीला, कभी सफेद और कभी नाना प्रकारकी पिड़कायुक्त होता है। रक्तकोपज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय पक्के खजूर फलके रंगकी तरह पिड़िका व्याप्त और रक्तस्रावयुक्त होता है। मांस दोषज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय गुरु, स्थूल और मांसपिण्डकी तरह ऊंचा तथा ओष्ठप्रान्तद्वयमें क्रिमि उत्पन्न हो क्रमशः बढ़ता है। मेदो-जनित ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय भारी, कण्डुयुक्त और घीके उपरिभाग की तरह सफेद रंग होता है तथा सर्व्वदा निर्मल स्राव होता रहता है। किसी तरहके आघातसे यदि ओष्ठरोग उत्पन्न हो तो पहिले उसमें फट जानेकी तरह या कुठाराघातकी तरह दर्द होता है, फिर दोष कुपित हो अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होता हैं।

दन्तगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।—

दन्तवेष्ठ अर्थात् मसूढ़ेमें जो सब रोग उत्पन्न होता है, उसमें शीताद नामक रोगमें अकस्मात् मसूढ़ेसे रक्तस्राव होकर दन्तमांस क्रमशः सड़कर दुर्गन्ध, क्लेदयुक्त, कृष्णवर्ण और कोमल हो मसूढ़ा गिर पड़ता है। कफ और रक्तदूषित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। दो या तीन दांतके जड़में शोथ होनेसे उसको दन्त-पुप्पुटक रोग कहते; यह भी कफज व्याधि है। जिस रोगमें दांत हिलता है और दन्तमूलसे रक्त पीप निकलता है, उसको दन्तवेष्ठ रोग कहते है। दांतकी खराबीसे यह रोग उत्पन्न होता है। दांतके जड़में दर्द और शोथको रक्तज व्याधि कहते है। जिस रोगमें दांत हिले तथा तालु, दांत और ओष्ठ क्लेदयुक्त हो,

उसको महाशौषिर कहते है ; यह त्रिदोषज रोग है। दन्तमांस गलकर उसमेंसे खुन निकले तो उसको परिदर कहते है, यह रक्त-पित्त और कफकी खराबीसे पैदा होता है। मसूड़ेमें दाहयुक्त फोड़िया होनेसे तथा तज्जन्य दांत गिर पड़नेसे उसको अपकुश कहते है, यह रक्तपित्तज पोड़ा है। मसूढ़ा किसो तरह घिस जानेसे यदि प्रवल शोथ हो या दांत हिले तो उसको वैदर्भ कहते है ; यह अभिघातज पोड़ा है। वायुके प्रकोपसे प्रवल यातना सहित जो एक एक अधिक दांत हनुकुहरमें निकलता है, उसको खली वर्द्धक कहते है, निकल आनेपर फिर इसमें किसो तरहका दर्द नहो रहता है। यह दांत अधिक उमरमें उठता है, इससे इसको अक्किल दांत कहते है। कुपित वायु दांतका आश्रय कर क्रमश: विषम और विकटाकार दांत निकलनेसे उसको कराल रोग कहते है ; यह असाध्य व्याधि है। हनुकुहरस्थ अखोर दन्त-मूलमें अति पोड़ादायक प्रवल शोथ हो लार निकलनेसे उसको अधिमांस कहते है, यह कफज पोड़ा ह। यह सब पोड़ाके सिवाय मसूड़ेमें नानाप्रकार नाड़ोव्रण नासूर आदि उत्पन्न होता ह।

दन्तगत रोग समूहोमें दालननामक दन्तरोगमें दांत विदोर्ण को तरह तकलीफ होती है, यह वातरोग है। क्रिमिदन्तक रोगमें दांतमें काला छिद्र होता है, दन्तमूलमें अतिशय दर्द लिये शोथ तथा उसमेंसे लारस्राव और अकस्मात् दर्दका बढ़ना यही सब लक्षण लक्षित होता है, यह भी वातपित्तज व्याधि है। भञ्जनक रोगमें मुख टेढ़ा और दांत टूट जाता ह ; यह वातश्लेष्मज व्याधि है। दन्तहर्ष रोगमें दन्तसमूह शीत, उष्ण, वायु और अम्लस्पर्श सहन नहो कर सकता अर्थात् दांत सुरसुराता ह ; यह वात पित्तज पोड़ा हैं। मसूढ़ा दूषित हो मुखके भीतर और बाहर दाह

और वेदनायुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है; उसको दन्तविद्रधि कहते हैं। इस रोगमें मलोत्पत्ति और स्राव होता है। विदीर्ण होनेसे इसमेंसे पीपरक्त निकलता है। वायु और पित्तसे दन्तगत मलशोधित हो कङ्करकी तरह खरस्पर्श होनेसे उसको दन्तशर्करा कहते है, यही दन्तशर्करा फट जानेसे उसके साथ दांतका भी थोड़ा अंश फट जानेसे उसको कपालिका कहते है। इसी पीड़ामें क्रमशः सब दांत गिर पड़ता है; दुष्टरक्त और पित्तसे कोई दांत जल जानेकी तरह काला या श्याववर्ण होनेसे उसको श्यावदन्तक कहते है।

जिह्वागत मुखरोगके लक्षण और निदान।—

जिह्वागत रोग समूहोंमें वायुजनित जिह्वा स्फुटित, रसास्वादनमें असमर्थ और कांटेदार होती है। पैत्तिक रोगमें जिह्वा लाल रंग, दाहजनक और दीर्घाकार कण्टक समूहोंसे व्याप्त होती है। श्लेषज जिह्वारोगमें जिह्वा गुरु और सेमरके कांटे की तरह मांसाङ्कुर विशिष्ट होती है। कुपित कफ और रक्तसे जिह्वाके नीचे भयानक शोथ होनेसे उसको अलास कहते है। यह रोग बढ़ जानेसे जिह्वा-मूल पककर स्तम्भित होता है। ऐसेही दूषित कफ रक्तसे जो शोथ जिह्वाके नीचे उत्पन्न हो जिह्वाको उन्नत, तथा शोथ, दाह, कण्डु और लालास्राव होता है। उसको उपजिह्वा कहते हैं।

तालुगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।—

तालुगत रोग समूहोंमें दुष्टकफ और रक्तसे तालुमूलमें जो शोथ उत्पन्न होता है वह क्रमशः बढ़कर वायुपूर्ण चर्म्मपुटके आकृतिकी तरह होनेसे उसको गलशुण्ठी कहते है। इस रोगके साथ तृष्णा और कास उपद्रव भी रहता हैं। कफ और रक्त कुपित हो तालु-मूलमें बनकपासके आकृतिकी तरह तथा दाह और सूचीवेधवत्

वेदनायुक्त जो शोथ पैदा होता है उसको तुण्डोकेरी कहते ह ; यह भी पकजाता है। रक्तदुष्टिसे लालरंग अनतिस्थूल तथा ज्वर और तीव्र वेदनायुक्त जो शोथ तालुमें उत्पन्न होता है ; उसको अध्रुव कहते हे। कफप्रकोपसे तालुमें थोड़ा दर्द लिये और कछवेकी तरह शोथ क्रमशः उत्पन्न हो देरसे बढ़ता हे ; उसको कच्छपरोग कहते है। रक्तप्रकोपसे तालुमें मांसाङ्कुर उत्पन्न होनेसे, उसको रक्तार्व्वुद कहते है। कफदुष्टिसे तालुमें मांसवृद्धि होती उसको मांसघात कहते है। इसमें दर्द किसी तरहका नही होता। दुष्ट कफ और मेदसे तालुमें बेरकी तरह और वेदनाशून्य शोथको तालु-पुप्पुट कहते हे। जिस तालुरोगमें तालु बारबार सूखता रहता है ; विदोर्ण होनेकी तरह दर्द और रोगीको श्वास उपस्थित होती उसको तालुशोष कहते हैं। वायुके प्रकोपसे यह रोग पैदा होता है। पित्तके अधिक प्रकोपसे तालु पकजानेसे उसको तालुपाक कहते हं।

कण्ठगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।—

वायु पित्त और कफ यह तीन दोषके प्रकोपसे कण्ठमें नानाप्रकारके रोग पैदा होता है। उसमें अधिकांश हो शस्त्रसाध्य और असाध्य जानना। कण्ठरोग समूहोमें रोहिणी और अधिजिह्व नामक दो रोग आराम नही होता। यहां हम केवल वही दो रोगके लक्षण आदि लिखते है। कण्ठरोगमें कुपित दोषसे मांस और रक्त दूषित हो जीभके चारो तरफ मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है, उसको रोहिणी कहते हे। वही सब मांसाङ्कुर अधिक बढ़कर क्रमशः कण्ठरोध हो रोगीके प्राणनाशको सम्भावना है। अधिजिह्व जिह्वाके उपरि-भागमें उत्पन्न होता है। जिह्वाके अग्रभागको तरह इसकी आकृति होती हं, तथा पकनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है।

सर्व्वसर मुखरोग।—मुखके भीतर जो सब रोग उत्पन्न होता है उसको सर्व्वसर मुखरोग कहते हे। वायुके आधिक्यसे मुखभरमें सूचीविधकी तरह वेदनायुक्त छोटी छोटी फोड़िया पैदा होती है। पित्ताधिक्यसे वही सब फोड़िया पीत या रक्तवर्ण हो उसमें दाह होता है; कफाधिक्यसे फोड़ियोंमें अल्प वेदना, कण्डु और बज्र बदनकी तरह होता है।

ओष्ठगत मुखरोग चिकित्सा।—वातज ओष्ठ रोगमें तेल या घीमें मोम मिलाकर मर्द्दन करना। लोहबान, राल, गुग्गुलु, देवदारु और जेठोमधु (मुलेठी) इन सब द्रव्योंका चूर्ण धीरे धीरे ओष्ठपर घिसना। मोम और गुड़के साथ राल, तेल या घीमें पकाकर लेप करनेसे ओष्ठका सूचीविधवत् दर्द, कर्कशता और पीप खून जाना बन्द होता है। पित्तज ओष्ठ रोगमें तिक्त द्रव्यका पान भोजन तथा शीतल द्रव्यका प्रलेप करना। पित्तज विद्रधिकी तरह इसकी चिकित्सा करना चाहिये। कफज ओष्ठ रोगमें त्रिकटु सर्ज्जीक्षार और यवाक्षार यह तीन द्रव्यमें सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। मेदजनित ओष्ठ रोगमें अग्निका सेंक करना उपकारी है। प्रियङ्गु, त्रिफला और लोध इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। ओष्ठके घावमें राल, गेरु, धनिया, तेल, घृत, सैन्धानमक और मोम एकत्र पकाकर लेप करना। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें जिस दोषका अधिक प्रकोप हो पहिले उसकी चिकित्सा कर फिर दूसरे दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये। पक जानेपर व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करना।

दन्तगत मुखरोग चिकित्सा।—दन्तरोग समूहोंमें शीताद रोगमें शोंठ, सरसों और त्रिफलाके काढ़ेका कुल्ला करना। हीराकस, लोध, पीपल, मैनसिल, प्रियङ्गु, तेजपत्ता इसका चूर्ण

सहत मिलाकर लेप करनेसे शीताद रोगका सड़ा मांस निकल जाता है। कूठ, दारुहलदी, लोध, मोथा, बराहक्रान्ता, अकवन, चाभ और हल्दी इन सबके चूर्णसे दांत घिसनेसे रक्तस्राव, कण्डू और दर्द आराम होता है। दन्तपुप्पुट रोगकी प्रथम अवस्थामें रक्तमोक्षण और मधु मिलाकर पञ्च लवण और यवाक्षार चूर्ण घिसना उपकारी है। चलदन्त रोगमें बड़, पीपल प्रभृति दूधवाले वृक्षके काढ़ेसे कुल्ला करना या मौलसरीका कच्चा फल चिबाना। दन्ततोद और दन्तहर्ष रोगमें तैलादि वायुनाशक द्रव्यका कुल्ला करना। मौलसरी छालके काढ़ेका कुल्ला और पीपल चूर्ण, घी और सहत एकत्र मिलाकर मुहमें धारण करनेसे दन्तशूल आराम होता है। दन्तविष्ट रोगमें रक्तमोक्षण, बड़ और अश्वत्थादि वृक्षके काढ़ेमें घी, सहत और चिनी मिलाकर कुल्ला करना तथा लोध, लालचन्दन मुलेठी और लाह इसका चूर्ण सहतमें मिलाकर आहिस्ते आहिस्ते घिसना विशेष उपकारी है। शोषिर रोगमें रक्तमोक्षण बटादिके काढ़ेका कुल्ला करना और लोध मोथा, रसाञ्जन चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करना। परिदर और उपकुश रोगकी चिकित्सा शीताद रोगकी तरह करना चाहिये। उपकुश रोगमें पीपल, सफेद सरसों और शोंठ गरम पानीमें पीसकर कुल्ला करना। दन्तवैदर्भ, अधिदन्त, अधिमांस और शुषिर रोग शस्त्रसाध्य है। दन्तनाली रोगमें जिस दांतमें नाली हो वह दांत उखाड़ डालना किन्तु उपरका दांत उखाड़ना उचित नही है। जावित्री, माजूफल और कुटकी इसका काढ़ा मुखसे धारण करनेसे और लोध, खैर, मजीठ, मुलेठी, इन सब द्रव्यके साथ तेल पकाकर लगानेसे दन्तनाली आराम होता है। दन्तशर्करा रोगमें दन्तमूलमें किसी तरहकी तकलीफ न हो इस ख्यालमें काटना तथा सहत मिला लाहका

चूर्ण घिसना। कपालिका रोगकी चिकित्सा दन्तहर्षकी तरह करना। क्रिमिदन्तक रोगमें हींग गरम कर लेप करना। वृहती, कुकरशोंका, एरण्डमूल और कण्टकारीके काढ़ेमें तैल मिलाकर कुल्ला करना। द्रोण पुष्पका रस, समुद्र फेन, सहत और तैल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतका कीड़ा नष्ट हो जाता है। सेंहुड़की जड़ चिबाकर दांतके नीचे दवा रखनेसे कीड़ा गिरजाता है। केंकड़ेका पैर पीसकर दांतमें लेप करनेसे नींदमें दांतका घिसना दूर होता है। अथवा केंकड़ेका पैर गायके दूधमें औटाना दूध खुब गाढ़ा होनेपर दोनो पैरमें लेपकर सोना, इसमें भी दन्तशब्द दूर होता है। दन्तरोगाशनि चूर्ण, दन्तसंस्कार चूर्ण और हमारा "दन्तधावन चूर्ण" सब प्रकारके दन्तरोगका उत्कृष्ट औषध है।

जिह्वागत मुखरोग चिकित्सा।—वातज जिह्वा रोगमें वातज ओष्ठ रोगकी चिकित्सा करना चाहिये। पैत्तिक जिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना, फिर सतावर, गुरिच, भूमिकुष्माण्ड, सरिवन, पिठवन, असगन्ध, कांकड़ाशृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरिया, बरियारा, पोत, बरियार, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी इन सब द्रव्यका चूर्ण और काढ़ा जिह्वामें घिसना। श्लैष्मिक जिह्वा रोगमें भी इसी तरह कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना चाहिये फिर पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, गोलमिरच, गजपिप्पली, समालुकी बीज, बड़ीइलायची, अजवाइन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसों घोड़नीमका फल, हींग, बारङ्गी, मूर्व्वामूल, अतीस, बच, विड़ङ्ग और सेंधानमकके काढ़ेका कुल्ला करना। मानभस्म, सेंधानमक और तैल एकत्र मिलाकर जीभमें घिसना तथा बड़ा नीबू आदि अम्ल द्रव्यका केशर थोड़ा सेंहुड़का दूध मिलाकर चिबानेसे जिह्वाकी

जड़ता दूर होती है। उपजिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर फिर जवाक्षार घिसना अथवा त्रिकटु, बड़ीहर्र और चितामूल इन सबका चूर्ण घिसना या इन सब द्रव्योंमें तेल पकाकर लगानेसेभी उपजिह्वा रोग आराम होता है।

तालुरोग।—प्रायः सब तालुरोग विना नस्तरके आराम नही होता। जिसमें गलशुण्ठी रोगमें हरसिङ्गारका जड़ चिवानेसे अथवा बच, अतीस, अकवन, रास्ना, कुटकी, नीमकी छाल इसके काढ़ेका कुल्ला करनेसे आराम होता है। वातज रोहिणी रोगमें खून निकाल कर नमक घिसना और गरम तेलका कुल्ला करना हितकर है। पैत्तिक रोहिणी रोगमें लाल चन्दन, चिनी और सहत एकत्र मिलाकर घिसना तथा लाह और फालसेके काढ़ेका कुल्ला करना। श्लैष्मिक रोहिणी रोगमें झूल (मकड़ीका जाला) और कुटकी चूर्ण घिसना तथा अपराजिता, विड़ङ्ग, दन्ती, सेंधानमक तेलमें औटाकर इसका नास लेना और कुल्ला करना। रक्तज रोहिणीमें पैत्तिककी तरह चिकित्सा करना। अधिजिह्व रोगकी चिकित्सा उपजिह्वकी तरह जानना; शोंठ, मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्य, लवण और उष्णद्रव्य घिसनेसे अधिजिह्व रोग शान्त होता है। कालक चूर्ण, पीतक चूर्ण, क्षारगुड़िका और यवक्षारादि गुटी व्यवहारसे यावतीय कण्ठरोग आराम होता है।

सर्व्वसर मुखरोग।—सर्व्वसर मुखरोगमें परवरका पत्ता, जामूनका पत्ता, आमका पत्ता और मालती पत्तेके काढ़ेसे कुल्ला करना। जावित्री, गुरिच, द्राक्षा, जवासा, दारुहल्दी और त्रिफलाके काढ़ेमें सहत मिलाकर कुल्ला करनेसे मुखके भीतरका घाव दूर होता है। पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रयवका चूर्ण मुखमें रखनेसे भी मुखपाक, व्रण, क्लेद और दुर्गन्ध दूर होती

है। सप्तच्छदादि, पटोलादि क्वाथ, खदिर वटिका, वृहत् खदिर वटिका, वकुलाद्य तैल सब प्रकारके मुखरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—रोग विशेषमें दोष का आधिक्य विचारकर वही दोषनाशक पथ्य देना। साधारणत: कफनाशक द्रव्य मुखरोगमें विशेष उपकारक है।

निषिद्ध कर्म्म।—मुखरोगमें अधिक खट्टा, मछली, दही दूध, गुड़, उरद और कठिन द्रव्य भोजन, अधोमुख शयन, दिवानिद्रा और दतुवनसे मुख धोना अहितकर है।

कर्णरोग।

—:०:—

कर्णशूल लक्षण।—कर्णगत वायु चारो तरफ घुमनेसे कानमें कष्टदायक दर्द उत्पन्न होता है और उसके साथ जो दोष रहता है उसी दोषके लक्षण प्रकाशित होता है, इसीको कर्णशूल कहते है। कानमें भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदिके शब्दको तरह नाना-प्रकारके शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णनाद कहते है। केवल वायु अथवा वायु कफ यही दो दोषसे शब्द वहा स्रोत अवरुद्ध होकर वाधिर्य्य रोग पैदा होता है; इस रोगमें श्रवणशक्ति नष्ट हो जाती है। कानमें बांसुलीको तरह शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णक्ष्वेड कहते है। मस्तकमें आघात, जलमग्न होना अथवा कानमें फोड़ा

हो पक जानेपर कानसे पीप, रस, पानी आदि निकलनेसे उसको कर्णस्राव कहते है। सर्व्वदा कानमें खुजली हो तो उसको कर्ण-कण्डू कहते है। पित्तकी उष्मासे कानका कफ सूखकर कानमें एक प्रकार मल पैदा होता है उसको कर्णशूल कहते है। स्नेह पदार्थादि प्रयोगसे कर्णगूथ द्रव हो मुख और नाकसे निकल जाने पर उसको कर्णप्रतिनाह कहते है। इसके साथही अर्धावभेदक उपस्थित होता है। पित्त प्रकोपसे कान क्लेदयुक्त और पूतिभावापन्न होनेसे उसको कर्णपाक जानना। चाहे जिस कारणसे कानसे दुर्गन्ध पीप आदि निकलेतो उसको पूतिकर्ण कहते है। कानमें मांस रक्तादि सड़कर कीड़ा पैदा होनेसे उसको क्रमिकर्णक रोग कहते है। इस पीड़ाके सिवाय विद्रधि, अर्व्वुद और कीट प्रवेश या आघातादि कारणोंसे नानाप्रकारका रोग कानमें उत्पन्न होता है।

कर्णरोग चिकित्सा।—अदरखका रस आधा तोला, सहत चार आनेभर, सेंधानमक एक रत्ती और तिल तैल चार आनेभर यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर कानमें भरनेसे कर्णशूल, कर्णनाद, वाधिर्य्य और कर्णच्वेड रोग आराम होता है। लहसन, अदरख, सैजनका छाल, मूली, करेला इन सबमें कोई एकका रस थोड़ा गरम कर कानमें डालनेसे दर्द दूर होता है। अकवन पत्तेके पुटमें सेंहुड़का पत्ता जलाकर अथवा अकवनके पत्तेमें घी लगाकर आगमें झुलसाना फिर उसके गरम रससे कान भर देनेसे कर्णशूल आराम होता हैं। कर्णनाद, कर्णच्वेड और वाधिर्य्य रोगमें कड़ुवा तेल अथवा वात रोगोक्त महामाष तैल कानमें डालना। गुड़मिश्रित शोंठके काढ़ेका नास लेना विशेष उपकारी है। बट, पीपल, पाकड़, गुल्लर और वेतसके छालका चूर्ण, कयेथका रस, और सहत एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्ण दूर होता

है। कर्णगूथ रोगमें पहिले तेलसे मल फूलाना फिर शलाकासे उसको निकाल डालना। कानके कोड़े दूर करनेके लिये हुड़ हुड़, निसिन्दा और ईशलाङ्गलाके जड़के रसमें त्रिकट चूर्ण मिलाकर कानमें डालना। सरसोंका तेल डालना और बंगनके छालको जलाकर उसका धूंआ लगाना क्रिमिकर्णकमें विशेष उपकारो है।

कर्णवेधज शोथ।—कर्णवेधके समय उचित स्थानमें कर्णविद्ध न होनेसे शोथ और दर्द होता है, इसमें जेठीमध, जौ, मजीठ और रेंड़का जड़ एकत्र पोसकर घी और सहत मिला लेप करना। पकने पर व्रण रोगकी तरह चिकित्सा करना।

शास्त्रीय औषध।—भैरव रस, इन्द्रवटी, सारिवादि वटी, दीपिका तैल, अपामार्ग चार तैल, शम्बुक तैल, निशातैल और कुष्ठाद्य तैल; रोगविशेष पर विचार कर देना।

पथ्यापथ्य।—कर्णरोग समूहोंके दोषका आधिक्य विचार कर पथ्यापथ्य स्थिर करना। कर्णच्वेड, वाधिर्य्य आदि वायुप्रधान कर्णरोगमें वातव्याधिकी तरह और कर्णपाक, कर्णस्राव आदि श्लेष्मप्रधान रोगमें आमवातादि पोड़ाकी तरह पथ्यापथ्य व्यवस्था करना।

नासारोग।

पीनस लक्षण।—जिस रोगमें कफ वायुसे शोषित हो नासिकाको रुद्ध कर धूंआ निकलनेकी तरह यातना अनुभव हो

तथा नाक कभी सूखी, कभी गोली होती रहे और घ्राणशक्ति, आस्वाद शक्ति नष्ट हो जाय, उसको पीनस रोग कहते है। पोनसके अपक्वावस्थामें शिरका भारीपन, अरुचि, पतला स्राव, स्वरकी चीणता और नासिकासे बार बार पानी निकलता है। पकनेपर कफ घना हो नाकके छिद्रमें विलीन होकर स्वर साफ होता है, किन्तु अपक्वावस्थाके कई एक लक्षण इसमें मिले हुये रहते है। दुष्ट रक्त, पित्त और कफसे वायु तालुमूलमें दुषित और पूतिभावापन्न हो मुख और नाकसे निकलनेपर उसको पूतिनस्य कहते है। जिस रोगमें नाकके दुष्टपित्तसे नाकमें पिड़िका समूह और दारुण घाव हो अथवा जिस रोगसे नासिका पूतिभावापन्न और क्लेदयुक्त हो उसको नासापाक कहते हैं। वातादि दोषोंसे दूषित होनेपर अथवा ललाटमें किसी तरहसे चोट लगनेसे पीप रक्त निकलता है उसको पूयरक्त रोग कहते है। शृङ्गाटक नामक नासा रोगमें मर्म्मस्थानका कफानुगत वायु दूषित होनेसे नाक जोरसे बोलती है उसको क्षवथु (छींक) कहते है। तेजवस्तु संघना, सूर्य्य दर्शन, बत्ती डालनेसे भी छींक आती है, उसको आगन्तुक क्षवथु कहते है। मस्तकमें पहिलेका सञ्चित गाढ़ा कफ सूर्य्यकी गरमी या पित्त से विदग्ध होनेपर लवण रसयुक्त नाकसे निकलता है इसको भ्रंशथु रोग कहते है। जिस नासा रोगसे नासिकामें अत्यन्त दाह तथा अग्निशिखा और धूंआ निकलनेकी तरह दर्दके साथ गरम श्वास निकले तो उसको दीप्त कहते है। वायु और कफसे निश्वास मार्ग बन्द हो जानेपर उसको प्रतिनाह कहते है। नासिकासे गाढ़ा या पतला पीला या सफेद कफ निकले तो उसको नासास्राव कहते है। नासा स्रोत और तद्गत कफ वायुसे शोषित और पित्तसे प्रतप्त होनेपर अति कष्टसे निश्वास प्रश्वास निकलता है; इसको नासा शोष कहते

है। मलमूत्रादि के धारण, रात्रि जागरण, दिवानिद्रा, शीतल जलका अधिक व्यवहार, शैत्य क्रिया, ओसमें फिरना, मैथुन, रोदन आदि कारणोंसे मस्तकका कफ घनीभूत होनेपर वायु कुपित हो तुरन्त प्रतिश्याय रोग पैदा होता है। तथा वायु, पित्त, कफ और रक्त पृथक् पृथक् या मिलकर क्रमशः मस्तकमें सञ्चित और अपने अपने कारणोंसे कुपित होनेसे कालान्तरमें प्रतिश्यायरोग उत्पन्न होता है। प्रतिश्याय होनेसे पहिले छींक, शिरका भारीपन, स्तब्धता, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, नाकसे धूंआ निकलनेकी तरह अनुभव, तालुमें जलन और नाक मुखसे पानीका स्राव आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। वातिक प्रतिश्यायमें नासिका विवद्ध और आच्छादितकी तरह मालूम होती है, पतला स्राव और गला, तालु, ओष्ठमें शोष ललाटमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द, बारबार छींक आना, स्वरभङ्ग और नाक मुखसे मानो सधूम अग्नि निकलती है। रोगी भी काला, पाण्डुवर्ण और सन्तप्त हो जाता है। श्लैष्मिक प्रतिश्याय में नाकसे पाण्डुवर्ण और शीतल कफ बहुत निकलता है, रोगीका शरीर और दोनों आंखे शुक्लवर्ण, शिर भारी, कण्ठ, ओष्ठ, तालु और मस्तकमें अत्यन्त खजुली होती है। प्रतिश्याय रोग पक्व या अपक्व चाहे जिस अवस्थामें अकारण बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होता रहे तो उसको सन्निपातिक जानना। रक्तज प्रतिश्यायमें नाकसे रक्तस्राव, आंखोंका लाल होना, मुख और निश्वासमें दुर्गन्ध तथा घ्राणशक्तिका नाश हो जाता है।

साध्यासाध्य लक्षण और परिणाम।—जिस प्रतिश्यायके निःश्वासमें दुर्गन्ध, घ्राणशक्तिका लोप और नासिका कभी आर्द्र, कभी सूखी, कभी वद्ध, कभी विवृत होनेसे उसको दुष्ट और कष्टसाध्य जानना। वक्तपर दवा न करनेसे प्रतिश्याय दुष्ट और

असाध्य हो जाता है तथा उसमें छोटे छोटे कीड़े पैदा होनेसे क्रिमिज शिरोरोगके लक्षण समूह प्रकाशित होता है। प्रतिश्याय अधिक गाढ़ा होनेसे क्रमशः वाधिर्य्य, नेत्रहीनता, नानाविध उत्कट नेत्ररोग, घ्राणशक्तिका नाश, शोथ,. अग्निमान्द्य, कास और पीनस रोग उत्पन्न होता है।

नासार्शः।—अर्शोरोगोक्त मांसाङ्कुरकी भांति नाकमें भी एक प्रकार मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है उसको नासार्शः कहते है। चलित भाषामें इसको "नासारोग" या नासाज्वर नामक एक प्रकार रोग होता है इसमें नाकके भीतर लाल रङ्गका एक शोथ हो उसके साथ प्रवल ज्वर, गरदन, पीठ और कमरमें दर्द, सामनेकी तरफ झुकनेसे तकलीफ होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है, यह भी एक प्रकार नासार्शः रोगके अन्तर्भूत है।

नासारोग चिकित्सा।—पीनसरोग उत्पन्न होते ही गुड़ और दहीके साथ गोलमिरचका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। जायफल, कूठ, काकड़ा शिङ्गी, शोंठ, पीपल, मिरच, जवासा और कालाजीरा, इसका चूर्ण या काढ़ेमें अदरखका रस मिलाकर सेवन करनेसे पीनस, स्वरभेद, नासास्राव, हलीमक आदि रोग शान्त होता हैं। व्योषाद्यचूर्ण नासा रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रयव, हींग, मिरच, लाह, तुलसी, कुटकी, कूठ, वच, सैजनकी बीज और विड़ङ्ग चूर्णका नास लेनेसे पूतिनस्य रोग आराम होता है। शिग्रुतैल और व्याघ्री तैलका नास भी पूतिनस्यमें उपकारी है। नासापाक रोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करना तथा वटादि चीरि वृक्षकी छाल पीसकर घी मिलाकर लेप करना। पूयरक्त रोगमें रक्तपित्त नाशक नस्य ग्रहण और उसी रोगोक्त औषधादि सेवन करना। क्षवथु रोगमें शोंठ, कूठ, पीपल,

वेलका जड़, द्राक्षा इसका काढ़ा और कल्कके साथ यथाविधि घृत, गुग्गुलु और मोम मिलाकर धूम देना चाहिये। घीका भूंजा आंवला कांजीसे पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे नाकसे खूनका जाना बन्द होता है। प्रतिश्याय रोगमें पीपल, सेजनकी बीज, विड़ङ्ग और मिरचके चूर्णका नास लेना, शठी, भूई आमला और त्रिकटु इसका चूर्ण घी और पुराने गुड़के साथ सेवन करना अथवा पुटपक्क जयन्तीपत्र तैल और सेंधानमकके साथ रोज सेवन करना चाहिये। त्रिकटु और हरीतकी और महालक्ष्मीविलासरस प्रतिश्याय रोगका श्रेष्ठ औषध है। नासार्श: रोगमें करवीराद्य तैल और चित्रकतैल प्रयोग करना। नासा रोगमें सूईसे नाकके भीतरका रक्तपूर्ण शोथ छेदकर खून निकालना, फिर नमक मिला अकवनका दूध या सरसोंका तैल अथवा तुलसीके पत्तेके रसकी नास लेना। ज्वर न छुटनेसे ज्वरनाशक औषध सेवन करना। आह्वारि रस और चन्दनादि लौह नासा ज्वरका उत्कृष्ट औषध है। दूर्व्वादि तैलका नास लेना इसमें विशेष उपकारी है। जिनको अकसर यह रोग होता है वे रोज दतुवनके समय मसूढ़ेसे थोड़ा खून निकाले और सुंघनी सूंघनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—पीनस, प्रतिश्याय प्रभृति कफ प्रधान नासारोगमें कफ शान्तिकारक पथ्य देना। थोड़ाभी कफका उपद्रव हो तो भात न देकर रोटी या इससे भी अधिक रुखा और हलका पथ्य देना। पूयरक्त और नासापाक प्रभृति पित्तप्रधान नासा रोगमें पित्तनाशक और रक्तपित्त शान्तिकारक पथ्य देना। नासाज्वरमें अधिक रुक्षक्रिया उचित नही है, तथापि ज्वर प्रवल रहनेसे पहिले २।१ दिन भात न देकर हलका पथ्य देना अच्छा है।

———

नेत्ररोग।

—०:०:०—

नेत्ररोग निदान।—आतपादिसे सन्तप्त हो तुरन्त स्नान करना, बहुत देरतक दूरको वस्तुको देखना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, आंखमें पसीना, धूलि और धूमका प्रवेश, वमनका वेग रोकना या अतिरिक्त वमन, रातको पतला पदार्थ भोजन, मल, मूत्र और अधोवायुका वेग धारण, सर्व्वदा रोना, क्रोध या शोक, शिरमें चोट लगना, अतिशय मद्यपान, ऋतुविपर्य्यय, अश्रुवेग धारण आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो नानाप्रकार नेत्र-रोग पैदा होता है। नेत्ररोग बहुसंख्यक है, जिसमें अधिकांश ही शस्त्रसाध्य और असाध्य है। इससे साधारणत: कई एक औषध और साध्य नेत्ररोगकी चिकित्सा यहां लिखते है।

नेत्राभिष्यन्द।—नेत्राभिष्यन्द या "आंख आना" यह रोग अकसर दिखाई देता है; वातज, पित्तज, कफज और रक्तज भेदसे यह रोग ४ प्रकार है। वातज अभिष्यन्दमें आंखमें सुई गड़ानेको तरह दर्द, जड़ता, रोमहर्ष, आंखका गड़ना, रूक्षता, शिरवेदना, शुष्कभाव और शीतल अश्रुपात यही सब लक्षण प्रकाश होता हैं। पित्तज अभिष्यन्दसे आंखमें जलन, घाव, शीतल स्पर्शादि की इच्छा, आंखसे धूम निकलनेको तरह दर्द और अधिक अश्रु-पात आदि लक्षण लक्षित होता है। कफज अभिष्यन्दमें उष्ण स्पर्शादिकी इच्छा, भारबोध, चक्षुमें शोथ, कण्डू, कीचड़ आना, आंख शीतल और बार बार पिच्छिल स्राव, यही सब लक्षण प्रका-शित होता है। रक्तज अभिष्यन्दके लक्षण पित्तज अभिष्यन्दकी

तरह जानना। अभिष्यन्द रोग क्रमशः बढ़जानेसे अधिमन्थ हो-जाता है, इसमें अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण रहनेके सिवाय आंख और मस्तकका अर्द्धभाग मानो उत्पाटित और मथित होना मालूम होता है। आंखे फूलकर पक्के गुल्लरकी तरह लाल रंग, कण्डू-विशिष्ट, किच्चड़ेली, शोथयुक्त और पकजाने पर उसको नेत्रपाक रोग कहते है। अधिक खट्टा खानेसे पित्तप्रकुपित हो अम्लाध्युसित नामक एक प्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होता है, इसमें आंखका भीतरी भाग ईषत् नीलवर्ण और प्रान्तभाग लालरंग हो पकजाता है तथा दाह और शोथ बराबर बना रहता है।

रात्र्यन्ध पीड़ा।—निरन्तर उपवास या अम्ल भोजन, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्नि और धूप लगना, सफेद रोशनी देखना, अतिरिक्त परिश्रम, रात्रि जागरण, अतिशय मैथुन या अवैध उपायसे शुक्रपात, अत्यन्त चिन्ता, अधिक क्रोध या शोक और प्रमेह या और कोई बिमारोसे बहुत दिन तक भोगनेके सबब धातु-क्षय प्रभृति कारणोंसे दृष्टिशक्ति कम हो जाती है। इसमें दूरकी वस्तु या छोटी वस्तु दिखाई नही देती अथवा रातकी कोई चीज नजर नही आती है। रातको दिखाई न देनेसे उसको रात्र्यन्ध (रतौंधी कहते है।

अभिष्यन्द चिकित्सा।—कनेलका नरम पत्ता तोड़-नेसे जो रस निकलता है, वह आंखमें लगानेसे अथवा दारुहल्दी का काढ़ा किम्वा स्तनदूधमें रसाञ्जन घिसकर आंखमें लगानेसे अभिष्यन्दका अश्रुस्राव, दाह और दर्द आराम होता है। सैन्धव, दारुहल्दी, गेरुमिट्टी, हरीतकी और रसाञ्जन, एकत्र मर्दन कर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंखका शोथ और दर्द शान्त होता है। अथवा गेरुमिट्टी, लाल चन्दन, शोंठ, सफेद मिट्टी

और बच, पानीमें पोसकर लेप करनेसे रक्ताभिष्यन्द आराम होता है।

हमारा नेत्रविन्दु अभिष्यन्दकी श्रेष्ठ दवा।—आंखे लाल होनेसे फिटकिरोका पानी या गुलाब जल आंखमें देना तथा हमारा "नेत्रविन्दु" सब प्रकारके नेत्राभिष्यन्दका श्रेष्ठ औषध है। पोस्तको ढेड़ी उबाला पानीका स्वेद करनेसे आंखका शोथ आराम होता है। नेत्रपाक, अधिमन्थक आदि रोगमें भी यही सब औषध प्रयोग करना। शिरमें दर्द हो तो शिरोरोगोक्त कई औषध और महादशमूल आदि तैल व्यवहार करना।

नेत्ररोग चिकित्सा।—नेत्ररोग पक जानेसे अर्थात् शोथ, दर्द, कण्डू, अश्रुपात प्रभृति छूट जानेसे अञ्जन लगाना चाहिये। हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, द्राक्षा और देवदारु यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पोसकर अञ्जन करना। बबूलका काढ़ा गाढ़ाकर सहत मिलाकर अञ्जन करनेसे आंखसे पानी जाना बन्द होता है। बेलके पत्तेका रस आधा तोला, सेन्धा नमक २ रत्ती और गायका घी ४ रत्ती ताम्बेके बरतनमें कौड़ीसे घिसकर आंचमें गरम करना, फिर स्तनदूग्ध मिलाकर अञ्जन लगानेसे आंखका शोथ, रक्तस्राव, दर्द और अभिष्यन्द आराम होता है। चन्द्रोदय और वृहत् चन्द्रोदयवर्त्ति, चन्द्रप्रभावर्त्ति तथा नागार्ज्जुन अञ्जन लगानेसे नाना प्रकारका चक्षुरोग शान्त होता है। विभीतक्यादि, वासकादि और वृहत् वासकादि काढ़ा, महात्रिफलाद्य घृत, नयन-चन्द्र लौह आदि औषध नेत्ररोगमें विचार कर प्रयोग करना। नेत्र रोगमें सहत और त्रिफलाचूर्ण सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

दृष्टिशक्तिका दुर्व्वलतामें हमारा केशरञ्जन तैल।—दृष्टिशक्तिको दुर्व्बलतामें महात्रिफलाद्य घृत, अश्वगन्धा

घृत, वृहत् छागलाद्य घृत, मकरध्वज, विष्णुतैल, नारायण तैल और हमारा "केशरञ्जन तैल" आदि वायु नाशक और पुष्टिकर औषध प्रयोग करना। रात्रान्धता, (रतौंधी) में भी यही सब औषध सेवन करना, या रसाञ्जन, हल्दी, दारुहरिद्रा, मालती, पत्र और नीम पत्तेको गोमयके रसमें बत्ती बनाकर अञ्जन करना। रोज शामको पानका रस ३।४ बूंद आंखमें डालनेसे रतौंधी आराम होती है। पान या केलेके फलमें जुगनू कीड़ा रोगीको वेमालूम खिलानेसे भी रतौंधी आराम होती है।

पथ्यापथ्य।—अभिष्यन्द आदि रोगमें लघु, रूक्ष और कफनाशक द्रव्य भोजन कराना; ज्वरादि उपसर्ग हो तो लङ्घन कराना। मछली, मांस, खट्टा, शाक, उरद, दही और गुरुपाक द्रव्य भोजन तथा स्नान, दिवानिद्रा, अध्ययन, स्त्रीसङ्गम, धूपमें फिरना आदि अनिष्टकारक है।

दृष्टिदौर्व्वल्य और रतौंधी रोगमें पुष्टिकर, स्निग्ध और वायु-नाशक द्रव्य भोजन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—रूक्षसेवा, व्यायाम, रौद्रादिका आतप सेवन, तेज रोशनी देखना, परिश्रम, पर्य्यटन, अध्ययन स्त्रीसहवास आदि धातुक्षयकारक कार्य्य इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शिरोरोग।

—०:०—

शिरोरोग संज्ञा।—शूलवत् दर्दकी तरह मस्तकमें जो रोग पैदा होता है, उसको शिरोरोग कहते है। वातज शिरोरोगसे मस्तकमें अकस्मात् दर्द होता है, रातको यह दर्द बढ़ने पर शिरमें कपड़ा बांधना और स्नेह स्वेद करनेसे दर्द शान्त होता है। पित्तज शिरोरोगमें मस्तक जलते हुए अङ्गारेसे व्याप्त और आंख नाकसे पानो निकलनेकी तरह तकलीफ होती है। यह शैत्यक्रियासे और रातको कुछ शान्त होता है। कफज शिरोरोग में मस्तक कफलिप्त, भारी बंद रहनेकी तरह दर्द और शीतल स्पर्श तथा दोनो आंखे फूल जाती हैं। सन्निपातज शिरोरोगमें वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होता है। रक्तज शिरोरोगमें पित्तज शिरोरोगके लक्षण उपस्थित होता है और मस्तकमें भयानक दर्द होता है।

कफज लक्षण।—शिरका रक्त, चर्व्वी और वायु अतिरिक्त क्षय हो भयानक कष्टदायक और कष्टसाध्य शिरःशूल पैदा होता है; उसको क्षयज शिरोरोग कहते है। क्रिमिज शिरोरोग में कीड़ा पैदा होता है, इससे दर्द, सूची वेधवत् यन्त्रणा, टनटनाहट और नाकसे पानी मिला हुआ पीप स्राव होता है।

सूर्य्यावर्त्त लक्षण।—सूर्य्योदयके वक्त जिस शिरोरोगमें आंख और भौंमें थोड़ा थोड़ा दर्द आरम्भ हो तथा सूर्य्य जैसे जैसे उपर उठे दर्द भी वैसही ब लगे, फिर सूर्य्य जितना पश्चिम को तरफ उतरते जाय वैसही दर्द भी कम होती जाय तो उसे

सूर्य्यावर्त्त कहते है। सुतरां दोपहरको इस रोगकी वृद्धि और शामको निवृत्ति होती है।

अनन्तवात।---पहिले गरदनके पोछे दर्द आरम्भ हो तुरन्तहो ललाट और भौंमें पैदा हो तथा गालके पास कम्पन, हनुग्रह और नानाप्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होनेसे उसको अनन्तवात नामक रोग कहते है। रूखा भोजन, अध्ययन, पूर्व्व वायु और हिम सेवन, मैथुन मलमूत्रादिका वेग धारण, परिश्रम, व्यायाम आदिसे कुपित, केवल वायु अथवा वायु और कफ मस्तकके आधे हिस्सेमें जाकर एक तरफको मन्या, भौं, ललाट कान, आंख और शङ्खदेशमें भयानक दर्द पैदा होता है इसको अर्द्धावभेदक (अधकपारो) कहते है। पहिले शंखदेश (कनपट्टो) में दारुण वेदना और दाहयुक्त रक्तवर्ण शोथ उत्पन्न हो एकाएको शिरःशूल और कण्ठरोध उपस्थित होनेसे उसको शिरोरोग कहते है। उपयुक्त चिकित्सा न होनेसे तोन दिनमें इस रोगसे रोगीको मृत्यु होतो है।

शिरोरोगको चिकित्सा।—वातज शिरोरोगमें वायुनाशक घृत पान और तेल मर्द्दन उपकारी है। कूठ, रेंड़की जड़ कांजीमें पीसकर अथवा मुचकुन्द फूल पानीमें पीसकर लेप करना। पैत्तिक शिरोरोगमें घी या दूधके साथ उपयुक्त मात्रा त्रिवृतका चूर्ण सेवनकर विरेचन कराना चाहिये। दाह हो तो शतधौत घी मालिश करना, तथा कुमुद, उत्पल आदि शीतल पुष्पका लेप करना। लालचन्दन, खसकी जड़, मुलेठी, वरियारा, व्याघ्रनखी और नीलोत्पल दूधमें एकत्र पीसकर अथवा आंवला और नीलोत्पल पानीमें पीसकर लेप करनेसे पैत्तिक शिरोरोग आराम होता है। श्लैष्मिक शिरोरोगमें कायफलका नास लेना। पीपल, शोंठ, मोथा, मुलेठी, सोवा, नीलोत्पल और कूठ, यह सब द्रव्य

एकत्र पानीमें पीसकर लेप करनेसे भी कफज शिरोरोग तुरन्त आराम होता है। वातपैत्तिक शिरोरोगमें स्वल्प पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। वातश्लैष्मिक शिरोरोगमें वृहत् पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। त्रिदोषज शिरोरोगमें ऊपर कही सब दवायें मिलाकर व्यवहार करना। त्रिकटु, कूठ, हल्दी, गुरिच, और असगन्ध, इसका काढ़ा नाकके रास्ते पीनेसे अथवा शोंठ चूर्ण २ मासे दूध ८ तोले एकत्र मि·ाकर नास लेनेसे त्रिदोषज शिरोरोग आराम होता है। पित्तज शिरोरोगकी तरह रक्तज शिरोरोगकी चिकित्सा करना चाहिये। चयज शिरोरोगमें अमृतप्राश घृत, वृहत् छागलाद्य घृत आदि धातु पोषक औषध सेवन और वातज शिरोरोग नाशक लेप करना चाहिये। क्रिमिज शिरोरोगमें अपामार्ग तैल या शोंठ, पीपल, मिरच, करंजबीज, औ· सजनकी बीज गोमूत्रमें एकत्र पीसकर नास लेना तथा और भी क्रिमिनाशक अन्यान्य औषध प्रयोग करना चाहिये।

सूर्य्यावर्त्त, अर्द्धावभेदक और अनन्तवात रोगमें अनन्तमूल, नीलोत्पल, कूठ, और मुलेठी कांजीमें पीसकर घी मिलाकर लेप करना, अथवा हुड़हुड़का बीज हुड़हुड़के रसमें पीसकर लेप करना। भङ्गरैयाका रस और बकरीका दूध समभाग धूपमें गरम कर नास लेना। दूधके साथ तिल पीसकर नास लेनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि रोग आराम होता है। चीनी मिलाया दूध, नारियलका पानी, ठण्ढा पानी या घी इसमेंसे किसी एकका नास लेनेसे अर्द्धावभेदक रोग आराम होता। समभाग विड़ङ्ग और काली तिल एकत्र पीसकर नास लेना, अथवा चुल्हेकी जली मिट्टी और गोलमिरचका चूर्ण समभाग मिलाकर नास लेनेसे भी अर्द्धावभेदक आराम होता है। शङ्ख रोगमें भी यही चिकित्सा उपकारी है।

इसके सिवाय दारुहल्दी, हल्दी, मजीठ, नीमका पत्ता खसकी जड़ और पद्मकाष्ठ पानीमें पीसकर कनपटीमें लेप करना। नाकसे घी पान और मस्तकपर बकरीका दूध या ठण्ढा पानी सिञ्चन शङ्खक-रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध।—शिरःशूलादि वज्ररस, अर्द्धनाड़ी नाटकेश्वर, चन्द्रकान्त रस, मयुराद्य घृत, षड़विन्दु तैल और वृहत् दशमूल तैल सब प्रकारके शिरोरोगका उत्कृष्ट औषध है। अवस्थाविशेष विचारकर यही सब औषध प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—कफज, क्रिमिज और त्रिदोषज शिरोरोगके सिवाय अन्यान्य शिरोरोगमें वायुप्रधान रहता है सुतरां वातव्याधि कथित पथ्यापथ्य उन सब रोगोंमें विचारकर देना चाहिये। कफ-जादि कफप्रधान शिरोरोगमें रुक्ष और मधुर आहार करना तथा स्नान, दिवानिद्रा, गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कफवर्द्धक आहार विहार परित्याग करना। क्रिमिज शिरोरोगमें क्रिमिरोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

—०—

स्त्रीरोग।

——०——

प्रदर निदान।—क्षीर-मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, मद्यपान, पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन, कच्चा पदार्थ खाना, गर्भपात, अतिरिक्त मैथुन, पथपर्य्यटन, सवारीपर अधिक

चढ़ना, शोक, उपवास, भारवहन, अभिघात, अतिनिद्रा आदि कारणोंसे प्रदररोग उत्पन्न होता है, इसका दूसरा नाम असृगदर है। अङ्गमर्द और दर्द लिये योनिद्वारसे स्राव होना यही सब प्रदरके साधारण लक्षण है। कच्चा रसयुक्त, चिपकता हुआ पीला रंग या मांसके धोवनकी तरह स्रावको कफज प्रदर कहते है। जिसमें पीला नीला, काला या लाल रंगका गरम स्राव, दाह और दर्द आदिके साथ वेगसे स्राव हो वह पित्तज और जिसमें रुखा, अरुणवर्ण, फेनिला, तथा मांसके धोवन को तरह दर्दके साथ निकले उसको वातज प्रदर कहते है। सन्निपातज प्रदर रोगमें सहत घी या हरितालके रंगको तरह अथवा मज्जा या शव गन्धयुक्त स्राव होता है यह असाध्य जानना। प्रदर रोगिणीका खून और बल घटजाने पर भी निरन्तर स्राव होनेसे तथा तृषणा, दाह और ज्वरादि उपद्रव उपस्थित होनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है।

वाधक लक्षण।—यह भी प्रदर रोगके अन्तर्भूत है। वाधक रोग नानाप्रकार दिखाई देता है। किसीमें कमर, किसीमें नाभिके नीचेका भाग, पार्श्वद्वय, दोनो स्तनोंमें दर्द और कभी कभी एक या दो मासतक लगातार रक्तस्राव होता रहता है। किसी वाधकमें आंख, हाथका तलवा, और योनिमें जलन लस्सेदार रक्तस्राव तथा कभी कभी महीनेमें दोबार ऋतु होता है; किसीमें मानसिक अस्थिरता, शरीरका भारीपन, अधिक रक्तस्राव, हाथ पैरमें जलन, कृशता, नाभिके नीचे शूलवत् दर्द और कभी कभी तीन या चार मासपर ऋतु होता है तथा किसी वाधकमें बहुत दिनपर ऋतु होना पर उपवाससे थोड़ा रक्तस्राव, दोनो स्तनोंका गुरुता, स्थूलता, देहभी कृश, और योनिमें शूलवत् दर्द यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

शुद्धऋतु लक्षण।—हरमहीनेमें ऋतु होकर पांच दिनतक रहे तथा दाह और वेदना न हो, खून चिटचिटा तथा कम और थोड़ा न हो, खूनका रंग लाहके रसकी तरह तथा कपड़ा उसमें रंग फिर पानीसे धोतेही छूट जाय वही ऋतु शुद्ध जानना। इसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम मालूम होनेहीसे अशुद्ध जानना।

योनिव्यापक रोग।—योनिव्यापक अनुपयुक्त आहार विहार, खराब रज और बीज दोष आदि कारणोंसे स्त्रियोंको नानाप्रकार योनिरोग उत्पन्न होता है। जिस योनिरोगमें अत्यन्त कष्टके साथ फेनीला रज निकले उसको उदावर्त्त कहते है। जिसमें रज दूषित हो सन्तानोत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है उसको वन्ध्या। विप्लुता नामक योनिरोगमें योनिमें सर्व्वदा दर्द बना रहता है। परिप्लुता रोगमें मैथुनके वक्त अत्यन्त दर्द होता है। यह चारो वातज योनिरोगमें योनि कर्कश, कठिन, शूल और सूची-वेधवत् दर्द होता है। लोहितक्षय नामक योनिरोगमें अतिशय दाह और रक्त क्षय होता है। वामिनी योनिरोगमें वायुके साथ रक्त मिला शुक्र निकलता है। प्रस्रंसिनीमें योनि अपने स्थानसे नीचेकी तरफ लम्बी होती है तथा वायुके उपद्रव इसमें होता है; इस रोगमें सन्तान प्रसव कालमें बड़ी तकलीफ होती है। पुत्रघ्नी रोगमें बीच बीचमें गर्भका सञ्चार होता है पर वायुसे रक्तक्षय होकर गर्भ नष्ट हो जाता है। यह चार पित्तज योनिरोगमें अत्यन्त दाह, पाक और ज्वर उपस्थित होता है। अत्यानन्दा नामक योनि-रोगमें अतिरिक्त मैथुनसे भी तृप्ति नही होती। योनिमें कफ और रक्तसे मांसकन्दकी तरह ग्रन्थिविशेष उत्पन्न होनेसे उसको कर्णिक रोग कहते है। अचरणा रोगमें मैथुनके समय पुरुषके पहिलेही

स्त्रीका रेत गिर जाता है इससे वह स्त्री बीज ग्रहणमें समर्थ नहीं होती। अतिरिक्त मैथुनसे बीज ग्रहण शक्ति नष्ट हो जानेसे उसको अतिचरणा कहते। यह चारो कफज योनिरोगमें योनि पिच्छिल, कण्डुयुक्त और अत्यन्त शीतल स्पर्श होती है। जिस स्त्रीको ऋतु नही होता उसका स्तन कम उठता है और मैथुनके वक्त योनि कर्कश स्पर्श मालूम होती है, ऐसे योनिको षण्डी कहते है। कम उमरमें और छोटी योनिद्वारवाली स्त्री स्थूल लिङ्ग पुरुषके साथ सहवास करनेसे उसकी योनि फोतेकी तरह लटक आती है उसको अण्डली रोग कहते है। अति विस्तृत योनिको महायोनि और छोटे छेदवाली योनिको सूचीवक्त्रा कहते है।

योनिकन्द।—दिवानिद्रा, अतिरिक्त क्रोध, अधिक व्यायाम, अतिशय मैथुन और किसी कारणसे योनिमें घाव होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो योनिसे पीप रक्तकी रंगकी तरह, मान्दारफलके आकारको तरह एक प्रकार मांसकन्द पैदा होता है। उसको योनिकन्द कहते है। वायुके आधिक्यसे कन्द रुखा विवर्ण और फटा होता है। पित्तके आधिक्यसे कन्द लाल रंग, दाह और ज्वर भी होता है। कफके आधिक्यसे नीलवर्ण और कण्डुयुक्त होता है। त्रिदोषके आधिक्यमें यही सब लक्षण मिले हुए मालूम होता है।

भिन्न भिन्न रोगमें प्रदर चिकित्सा।—वातज प्रदररोगमें दही ६ तोले, सोचल नमक ≠) आनेभर, कालाजीरा, मुलेठी और नीलोत्पल प्रत्येक चार आनेभर सहत आधा तोला एकत्र मिलाकर २ तोले मात्रा दो घण्टा अन्तर पर सेवन कराना। पित्तज प्रदरमें अडूसेका रस अथवा गुरिचके रसमें चीनी मिलाकर पिलाना। रक्तप्रदरमें रसाञ्जन, और चौराईकी जड़ समभाग

अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन करना। रक्तप्रदरमें श्वास होतो उसी योगमें बक्षनेठो और शोंठ मिलाना चाहिये। गुल्लरका रस, लाह भिङ्गोया पानी आदि पोनेसे प्रदर रोगका रक्तस्राव जल्दी बन्द होता है। अशोक छाल २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव रहे तब एक सेर दूध मिलाकर फिर औटाना पानी जल-जानेपर उतार लेना रोगिणोका अग्निबल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे प्रदररोगका रक्तस्राव बन्द होता है। दार्व्वादि क्वाथ, उत्पलादि कल्क, चन्दनादि चूर्ण, पुष्यानुग चूर्ण, प्रदरारि लौह, प्रदरान्तक लौह, अशोक घृत, सितकल्याण घृत, और हमारा "अशोकारिष्ट" सब प्रकारके प्रदररोगमें विचारकर देना चाहिये। अजीर्ण, अग्निमान्द्य, ज्वर आदि उपद्रव हो तो घी सेवन करना उचित् नहीं है। वायुका उपद्रव या पेडूमें दर्द हो तो प्रियङ्ग्वादि या प्रमेहमिहिर तैल मर्द्दन उपकारी है। वाधकरोगमें रक्तस्राव अधिक हो तो प्रदररोगोक्त औषध देना चाहिये। रजोरोध होनेसे ओड़हुलका फल कांजीमें पीसकर सेवन करना और मुसब्बर, हीराकस, अफीम, दालचिनी, हरेकका चार आनेभर चूर्ण पानीमें घोटना फिर २ रत्ती मात्राकी गोली बनाकर एक गोली सवेरे और एक शामको पानीके साथ देना।

योनिरोग चिकित्सा।—वातप्रधान योनिरोगमें वायु-नाशक घृतादि सेवन कराना। गुरिच, त्रिफला, दन्तीके काढ़ेसे योनि धोना और तगरपादुका, वार्त्ताकू, कूठ, सैन्धव और देव-दारुका कल्क विधिपूर्व्वक तैलमें पकाकर रुईका फाहा तैलमें भिंगोकर योनिमें रखना। पित्तप्रधान योनिरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा और रुईका फाहा घीसे भिंगोकर योनिमें रखना। कफ-प्रधान योनिरोगमें रूक्ष और उष्णवीर्य्य औषध प्रयोग करना तथा

पीपल, गोलमिरच, उड़द, सोवा, कुठ, सैन्धानमक एकत्र पीसकर तर्ज्जनी अङ्गुलीके बराबर बत्ती बनाकर योनिमें रखना। कर्णिनी नामक योनिरोगमें कूठ, पीपल, अकवनका पत्ता, सैन्धानमक बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखना। सोवा और बैरका पत्ता पीसकर तिलका तेल मिला लेप करनेसे विदीर्ण योनि आराम होती है। करैलेका जड़ पीसकर लेप करनेसे अन्तःप्रविष्ट योनि बाहर आती है। प्रस्रंसिनी नामक योनिरोगमें चुहेकी चर्व्वी मालिश करनेसे अपने स्थानमें आजाती है। योनिकी शिथिलतामें वच, नीलोत्पल, कूठ, गोलमिरच, असगन्ध और हल्दी समभाग एकत्र पीसकर लेप करना और कस्तुरी, जायफल, कपूर किम्वा मदनफल और कपूर सहतमें मिलाकर योनिमें भरना। योनिका दुर्गन्ध निवारण करनेके लिये आम, जामुन, कयिथ, बड़ानीबू और बेलका नरम पत्ता, मुलेठी, मालतीफूल; इन सबका कल्क यथाविधि घीमें पकाकर उसी घीमें रूईका फाहा भिङ्गाकर योनिमें रखना। वन्ध्यारोगमें असगन्धका काढ़ा दूधमें औटाना फिर घी मिलाकर ऋतु स्नानके बाद सेवन करना। कन्दरोगमें त्रिफलेके काढ़ेमें सहत मिलाकर योनि धोना। गेरू-मिट्टी, आमकी गुठली, विड़ङ्ग, हल्दी, रसाञ्जन और कटफल इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर लेप करना चुहेका टटका मांस तिलके तेलमें पकाना, मांस अच्छी तरह तेलमें मिल जानेपर उतार लेना, फिर उसी तेलमें कपड़ा भिंगोकर योनिमें रखनेसे कन्दरोग आराम होता है। फलघृत, फलकल्याण घृत, कुमार कल्पद्रुम घृत आदि योनिरोगमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—प्रदर आदि रोगमें दिनको पुराने चावलका भात, मूग, मसूर और चनेकी दाल, केलेका फूल, कच्चाकेला

करेला, गुल्लर, परवर, पुराना कोंहड़ा आदिकी तरकारी; सहने-पर बीच बीचमें छाग मांसका रस देना। मछलीका रस्सा भी थोड़ा देना चाहिये। रातको रोटी आदि भोजन कराना। सहनेपर ३ ४ दिनके अन्तरपर गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। ज्वरादि उपसर्ग हो तो हलका आहार देना तथा स्नान बन्द करना।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक और कफजनक द्रव्य, मछली मिठाई, लालमिरचा, अधिक लवण, दूध आदि आहार और अग्नि-सन्ताप, धूपमें फिरना, ओसमें बैठना, दिनको सोना रातको जागना, अधिक परिश्रम, पथपर्य्यटन, मद्यपान, ऊंचे स्थानपर चढ़ना और उतरना विशेष मैथुन, मलमूत्रका वेग धारण, सङ्गीत और जोरसे बोलना, सब प्रकारके स्त्रीरोगमें अनिष्टकारक है।

रजोरोध होनेसे स्निग्धक्रिया आवश्यक है। उड़द, तिल, दही कांजी, मछली और मांस भोजन इस अवस्थामें उपकारी हैं।

गर्भिणी चिकित्सा।

गर्भिणी चिकित्साकी दुरूहता।—गर्भावस्थामें औरतोंको ज्वर, शोथ, उदरामय, वमन, शिरका घूमना, रक्त-स्राव, गर्भवेदना आदि नानाप्रकारका रोग उपस्थित होता है। साधारण अवस्थाकी तरह हरेक रोगकी दवा देनेसे इस रोगमें उपकार नहीं होता; तथा गर्भस्थ शिशुकी नानाप्रकारके विपदकी

आशङ्का बनी रहती है। इसलिये प्रधान प्रधान कई एक रोगकी चिकित्सा जानना उचित है।

गर्भावस्थामें ज्वरकी चिकित्सा।—गर्भावस्थामें ज्वर हो तो मुलेठी, लालचन्दन, खसकी जड़, अनन्तमूल, पद्मकाष्ठ और तेजपत्तेका काढ़ा सहत और चीनी मिलाकर पिलाना। अथवा लालचन्दन, अनन्तमूल, लोध और द्राक्षाका काढ़ा चीनी मिलाकर पिलाना। एरण्डादि क्वाथ, गर्भचिन्तामणिरस, गर्भविलासरस, गर्भपियूषवल्ली, गर्भिणीके ज्वर शान्तिके लिये प्रयोग करना, ज्वर रोगोक्त काढ़ा और गोलियोंमें जिसका वीर्य्यमृदु है विशेष विचार-कर वह सबभी दे सकते है। अतिसार या ग्रहणी रोगमें आम और जामुनके छालके काढ़ेमें धानके लावाका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। वृहत् ह्रीवेरादि क्वाथ, लवङ्गादि चूर्ण, इन्दुशेखररस और अतिसारादि रोगोक्त मृदुवीर्य्य कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलरोध होनेसे आम, पक्काबेल, किसमिस, पक्का पपीता, गरम दूध आदि सारक द्रव्य देना। विशेष जरूरत हो तो थोड़ा रेंड़ीका तेल दूधके साथ मिलाकर पिलाना, अधिक दस्त आनेसे गर्भस्रावका डर है, इससे विचारकर अधिक दस्त न हो ऐसी दवा देना। शोथमें सूखी मूली, पुनर्नवा, गोक्षुरबीज, ककड़ीकी बीज और खीरेकी बीजका काढ़ा चीनी मिलाकर पिलाना। शोथमें सेहुड़के पत्तेका रस मालिश करना। गर्भावस्था में वमन होना स्वाभाविक नियम है इससे उसके लिये कोई औषध प्रयोग नही करना। रोज सबेरे मिश्रीका शर्ब्बत या दूध पीनेसे वमन कम होता है। रोज अधिक कष्टकर वमन होनेसे धानके लावाका चूर्ण द्राक्षा और चीनी पानीमें खूब मिलाना फिर छान लेना, वही पानी थोड़ा थोड़ा पिलाना; अथवा द्राक्षा, घिसा

चन्दन, खीरेकी बीज, इलायची और सौंफ यह सब द्रव्य पानीमें खूब मलकर थोड़ा थोड़ा पिलाना तथा गर्भविलास, नारायण आदि तेल मर्द्दन करना। शिर भारी मालूम होतो यही सब तेल या हमारा केशरञ्जन और मूर्च्छान्तक तैल शिरमें मालिश करना।

मासभेदसे गर्भसे रक्तस्रावकी चिकित्सा।—गर्भके प्रथम महीनेमें रक्तस्राव हो तो मुलेठी, सागवानकी बीज चीरकाकोली और देवदारु इन सब द्रव्योंके साथ दूध मिलाकर पिलाना। द्वितीय मासमें रक्तस्राव होतो काली तिल, मजीठ और शतावर; तृतीय महीनेमें चीरकाकोली और अनन्तमूल, चतुर्थ मासमें अनन्तमूल, श्यामालता, रास्ना, बभनेठी और मूलेठी; पञ्चम मासमें वृहती, कण्टकारी, गाम्भारी फल, वटादि चीरी वृक्षकी छाल और गूदा तथा घी। षष्ठ मासमें चकवड़, बरियारा, सैजनकी बीज, गोक्षुर और मुलेठी; सप्तम मासमें सिङ्घाड़ा, मृणाल, किसमिस, कसेरु, मुलेठी और चीनी; अष्टम मासमें कइथ, वेल, वृहती, परवरका पत्ता, इक्षुमूल, कण्टकारी; नवम मासमें मुलेठी, अनन्तमूल, चीरकाकोली, श्यामालता और दशम मासमें दूधमें शोंठ मिला औटाकर पिलाना।

मासभेदसे गर्भवेदनाकी चिकित्सा।—गर्भके प्रथम महीनेमें दर्द हो तो, श्वेतचन्दन, चीनी और मयनफल, समान भाग अरवे चावलके धोवनमें मिलाकर पिलाना। अथवा तिल, पद्मकाष्ठ, और शालि तण्डूल यह सब द्रव्य दूधके साथ पीसकर दूध चीनी और सहत मिलाकर पिलाना, फिर दूध भात खिलाना। द्वितीय मासमें दर्द होनेसे पद्म, सिङ्घाड़ा, कसेरु, अरवे चावलके पानीसे पीसकर पिलाना। तृतीय मासमें दर्द हो तो शतावर २ भाग, आंवला १ भाग एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ

सेवन कराना। अथवा पद्म, नीले कमलका फूल और शालुक चीनीके शर्व्वतमें पीसकर सेवन कराना। चतुर्थ मासमें नीला कमल, शालुक, कण्टकारी और गोक्षुर, अथवा गोक्षुर, कण्टकारी, वाला और नीला कमल, यह सब द्रव्य दूधमें पीसकर सेवन कराना। पञ्चम मासमें, नीला कमल और क्षीरकाकोली दूधके साथ पीसकर दूध, घी और सहत मिलाना अथवा नीला कमल, घृतकुमारी और शीतल चीनी समभाग पानीमें पीसकर दूधमें पिलाना। षष्ठ मासमें बड़े नीबूका बीज, प्रियङ्गु, लालचन्दन और नीला कमल दूधमें पीसकर किम्बा चिरौंजी, द्राक्षा और धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाकर खिलाना। सप्तम मासमें शतमूली और पद्ममूल पीसकर दूधके साथ किम्बा कयेथ, सुपारी की जड़, धानका लावा, और चीनी ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। अष्टम मासमें सप्तम मासका द्रव्य अरवे चावलके धोवनमें पीसकर सेवन कराना। नवम मासमें एरण्डमूल कांजीमें पीसकर पिलाना। दशम मासमें नालोत्पल, मुलेठी, और मूंग चीनीका शर्व्वत या दूधमें पीसकर सेवन कराना, एकादश मासमें मुलेठी, पद्मकाष्ठ, मृणाल और नीला कमल, कूठ, वाराहक्रान्ता और चीनी यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर दूधमें मिलाकर सेवन कराना। द्वादश मासमें चीनी बिदारीकन्द काकोली और क्षीरकाकोली यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर सेवन कराना।

नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासका कर्त्तव्य।— नवमसे द्वादश मास तक प्रसवका काल है, इससे इसी समयमें गर्भवेदना उपस्थित होनेसे वह प्रसव वेदना है वा नहीं इसका विचार कर औषध प्रयोग करना। प्रसव वेदनामें किसी प्रकारका औषध देना उचित नहीं है।

वे समय गर्भपात और कुक्षिशूल चिकित्सा।—वे समय गर्भपात होनेसे हांड़ी आदि बनानेके लिये तयार की हुई मिट्टी आधा तोला, एक पाव बकरीका दूध और चार आनेभर सहत एकत्र मिलाकर पिलाना। अथवा बाला, अतीस, मोथा, मोचरस और इन्द्रयव, इन सब द्रव्योंका काढ़ा पिलाना। इससे कुक्षिशूल भी आराम होता है। गर्भस्राव हो जानेपर कसेरू, सिङ्घाड़ा, पद्मकेशर, नीला कमल मुगानी और मुलेठी, यह सब द्रव्य दूधमें औटाकर पिलाना इससे गर्भस्रावका शूल आराम होता है।

अति रक्तस्राव चिकित्सा।—गर्भस्राव, गर्भपात या प्रसव होनेपर अतिरिक्त रक्तस्राव हो तो बन्द करना, नही तो इससे प्रसूतिके मृत्युकी सम्भावना है। रक्त बन्द करनेके लिये प्रसूतिका पेड़ खूब दबाकर मलना। पेड़ूपर ठण्ढे पानीकी धार गिराना। और भिंगोया कपड़ा रखकर बार बार पानीसे तर करते जाना। नौसादर और सोरा पानीमें भिंगो कपड़ेमें बांध पेड़ूपर रखना। पिचकारीसे ठण्ढा पानी गर्भाशयमें देना, कबूतरके बीटका चूर्ण २ रत्ती अरवे चावलके पानीके साथ सेवन करना। रोगिणी उठने बैठने न पावे हरवक्त पड़ी रहे। प्यास मालूम होनेपर ठण्ढा पानी जितना मांगे उतना पीनेको देना।

प्रसवमें बिलम्ब चिकित्सा।—प्रसवमें देर होनेसे ईशलाङ्गलाकी जड़ कांजीमें पीसकर दोनो पैरमें लेप करना। अडूसेकी जड़, कमरमें बांधना, अथवा अडूसेकी जड़ पीसकर, नाभि, वस्ति और योनिमें लेप करना। कांजीमें घरका जाला अथवा बड़े नीबूका जड़ और मुलेठी घीके साथ किम्बा फालसा, सरिवन, अकवन, ईशलाङ्गला और अपामार्ग इनमेंसे कोई एक

द्रव्यका जड़, नागदानाकी जड़ और चितामूल समभाग पीसकर चार आनेभर खिलानेसे जल्दी प्रसव होता है।

मृतसन्तान प्रसव व्यवस्था।—गर्भस्थ शिशु गर्भमें मरजानेपर प्रायः प्रसव नहीं होता, अकसर शस्त्रकी जरूरत पड़ती है। गर्भिणीके शिरमें सेहुंड़का दूध देनेसे मरा हुआ सन्तान प्रसव होता है। पीपल और बच पानीमें पीसकर रेड़ीका तेल मिलाकर नाभिमें लेप करनेसे तथा नागदानेकी जड़ और चितामूल सम-भाग पीसकर चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मृत सन्तान प्रसव होता है।

फूल या खेरी गिरनेका उपाय।—उचित समयमें खेरी न गिरनेसे तितलौकी, सांपकी केंचुली, घोषालता, सरसों और कड़ुवा तेल; यह सब द्रव्यका धूप योनिमें देना। अङ्गुलिमें केश लपेटकर कण्ठमें घिसना। ईशलाङ्गलाकी जड़ पीसकर लेप करनेसे भी खेरी गिर पड़ती है।

मक्कल्ल शूल चिकित्सा।—प्रसवके बाद वस्ति और शिरमें अत्यन्त वेदना होनेसे उसकी मक्कल्ल शूल कहते हैं। घी या गरम पानीके साथ जवाक्षार सेवन करनेसे, किम्बा पीपल, पीपलामूल, चाभ, तथा शोंठ, मिरच, गजपिप्पली, समालुकी बीज, एलाइची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सर्षप, बड़ीनीम, हींग, बभनेठी, मूर्व्वा, अतीस, बच, विड़ङ्ग और कुटकी, यह सब द्रव्यका काढ़ा नमक मिलाकर पीनेसे मक्कल्ल शूल दूर होता है।

वायुप्रकोप शान्तिका उपाय।—गर्भावस्थामें थोड़ाभी वायुका प्रकोप होनेसे गर्भिणीका शरीर और गर्भ सूखजाता है अच्छी तरह बढ़ने नहीं पाता। इसमें मुलेठी और गाम्भारी फल दूधमें औटाकर पिलाना अथवा गुरिच, विदारीकन्द, असगन्ध,

अनन्तमूल, सतावर, पिठवन, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलेठी, यह सब द्रव्य यथाविधि घीमें पकाकर सेवन कराना।

पथ्यापथ्य और कर्त्तव्य कर्म्म।—गर्भावस्थामें कई एक साधारण नियम पालन करना गर्भिणी मात्रका कर्त्तव्य है। हलका अथवा पुष्टिकर और रुचिकर आहार करना। अधिक परिश्रम या एकादम परिश्रम त्याग करना नही चाहिये। जिस कामसे श्वास प्रश्वास देरतक बन्द रखना पड़े, अधिक वेग देना हो किम्बा पेड़ू दबे ऐसा काम करना नही चाहिये। पदल या तेज सवारीमें अधिक दूर तक जाना भी अनिष्टकारक है। सर्व्वदा प्रसन्नचित रहना चाहिये, भय, शोक और चिन्ता रात्रि जागरण आदिसे मनमें दुख होनेसे सन्तानका अनिष्ट होता है। उपवास, जागरण, दिवानिद्रा, अग्नि सन्ताप, मैथुन, भारवहन कठिन शय्यामें शयन, ऊंचे स्थानपर चढ़ना और मूत्रादि वेग धारण कदापि उचित नही है।

गर्भावस्थामें जो रोग उत्पन्न हो पथ्यापथ्य भी उसी रोगका पालन करना चाहिये। उपवासवाले रोगमें हलका आहार देना-पर उपवास कराना अच्छा नही।

गर्भ या गर्भिणी सूख जानेसे घी, दूध, हंसका अण्डा और छाग, कुक्कुट आदिका मांस आदि पुष्टिकर पथ्य भोजन करनेको देना।

प्रसवान्तका कर्त्तव्य।—प्रसवके बाद प्रसूतीको थोड़े दिन बड़ी सावधानीसे रखना चाहिये। प्रसवके दिनसे तीन दिन तक दूध या दूधसाबुदाना आदि हलका आहार देना उचित है। प्रसव दिनके बाद बाकी दो दिन दूधभात भी दे सकते है। फिर क्रमशः सुन्दर पथ्य देना चाहिये। पांच दिन तक स्नान बन्द

रखना, तथा १५।१६ दिन तक गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। अग्निसन्ताप सेवन और शोंठ, गोलमिरच, अदरख, काला जीरा प्रभृति द्रव्य पीसकर अछवानी देनेका नियम जो इस देशमें है वह विशेष उपकारी है। प्रसूतीका मैला कपड़ा और बिछौना सर्व्वदा बदलना चाहिये।

सूतिकारोग।

कर्णवेधज रोग।—प्रसूता स्त्रीके अनुचित आहार विहारादिसे अर्थात् शरीरमें अधिक हवा और ओस लगाना, शैत्यक्रिया अपक्क द्रव्य भोजन, अजीर्णमें भोजन, कम भूखमें गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे नानाप्रकार सूतिका रोग पैदा होता है। खराब सूतिकागृह भी सूतिका रोगका एक प्रधान कारण है। ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, शूल, आनाह, बलक्षय, कास, पिपासा, गात्रभार, गात्रवेदना, नाक मुखसे कफस्राव आदि रोग जो प्रसवके बाद उत्पन्न होता है, उसको सूतिका रोग कहते है।

सूतिकागृह निर्म्माण चिकित्साका अङ्ग है।—स्त्रियोंको सूतिकारोगसे बचानेके लिये पहिले सूतिकागृह स्थिर करना विशेष आवश्यक है। मकान के कोनेमें एक छोटीसी अन्धियाली कोठरी प्रसवके लिये निर्दिष्ट करना उचित नही है, ऐसे घरमें हवा धूप न जानेसे तथा आगका धूंआ और गरमी, बालकका मलमूत्र और २।३ आदमीके श्वास प्रश्वास आदिसे उस सङ्कीर्ण

घरकी हवा खराब हो प्रसूती और बालक दोनोको नानाप्रकारका रोग उत्पन्न होता है। साफ, सूखा कमसे कम ७।८ हाथ लम्बा, ५।६ हाथ चौड़ा और ५।६ हाथ ऊंचा, उत्तर द्वारो या दक्षिणद्वारो आमने सामने दो दो जङ्गलाविशिष्ट सूतिकागृह स्थिर करना; जिसकी कुरसो जमोनसे हाथभर ऊंची और मजबूत होना चाहिये, दरवाजा और जङ्गलेमें किवाड़ लगा रहे, ऐसा घर न बन सके तो मकानमें जो कोठरी साफ सुथरी और हवादार हो वही स्थिर करना चाहिये। घरमें धूंआ न हो ऐसे अङ्गारेकी बोरसी घरमें रखना। प्रसूतीके सोने आदिके लिये एक खटिया रखना चाहिये नहीतो खड़ या पोवाल रखकर उसके उपर बिछौना करना। बालकका मलमूत्र सर्व्वदा बाहर फेकना। रातको जाड़ेके दिनोमें जङ्गला बन्द रखना तथा दूसरे ऋतु में खुला रखना चाहिये। यह सब नियम पालन करनेसे सूतिका रोगकी आशङ्का कम रहती है।

सूतिका ज्वर चिकित्सा।—सूतिका ज्वरमें सूतिका-दशमूल या सहचरादि काढ़ा सूतिकारीरस, वृहत् सूतिकाविनोद और ज्वर रोगोक्त पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि कई औषध प्रयोग करना। गात्रवेदना शान्तिके लिये दशमूलका काढ़ा और लक्ष्मीविलास रस आदि औषध प्रयोग करना उचित है। कास शान्तिके लिये सूतिकान्त रस और कास रोगोक्त शृङ्गाराभ्र आदि कई औषध प्रयोग करना। अतिसार और ग्रहणी आदि रोगमें अतिसारादि रोगोक्त कई औषध और जीरकादिमोदक, जीरकाद्यरिष्ट, सौभाग्यशुण्ठी मोदक प्रयोग करना। सूतिका रोगमें जिस रोगका आधिक्य दिखाई दे वही रोग नाशक औषध विचार कर प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य ।—सूतिका रोगमें रोग विशेषके अनुसार पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। साधारण सूतिकावस्थामें पुराने चावलका भात, मसूर उरदका जूस, बैगन, नरम मूली, गुल्लर परवल और कच्चे केलेकी तरकारी, अनार और अग्निदीपक तथा वातश्लेष्म नाशक द्रव्य आहार और वातश्लेष्मनाशक क्रिया समूह भी पालन करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म ।—गुरुपाक और तीव्र वीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्निसन्ताप, परिश्रम, शीतल सेवा और मैथुन सूतिका रोगमें मना है। प्रसवके बाद ३।४ मास तक प्रसूतिको सावधानीसे रखना चाहिये।

स्तनरोग और स्तन्यदुष्टि ।
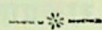
थनैल ।—अपने अपने प्रकोप कारणके अनुसार वातादि दोषत्रय कुपित हो गर्भवती या प्रसूता स्त्रीके स्तनमें आश्रय लेनेसे नानाप्रकार विद्रधि (फोड़ा) उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको थनैल कहते हैं।

दूषित स्तन्यलक्षण ।—अनुचित आहार विहारादि कारणोंसे वातादि दोष समूह स्तनदूधको दूषित करनेसे उसको स्तन्यदुष्टि कहते हैं। वायुदूषित स्तन्य कषाय रसविशिष्ट और पानीमें डालनेसे पानीमें न मिलकर उपर तैरता है। पित्तदूषित स्तन्य कटु, अम्ल या लवणास्वाद और पीतवर्ण रेखायुक्त होता है। श्लेष्मदूषित स्तन्य गाढ़ा और लस्सेदार यह

पानीमें डूब जाता है। ऐसही या त्रिदोषज मिले हुए दो तीन दोषके लक्षण मालूम हो तो त्रिदोषज स्थिर करना। यही दूध पीनेसे बालकको भी नानाप्रकार रोग उत्पन्न होता है। जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा पाण्डुवर्ण, मधुर रस और निर्म्मल वही दूध निर्दोष है, बालकको वही दूध पान करनेको देना चाहिये।

थनैलकी चिकित्सा।—थनैल रोगमें स्तनमें शोथ होतेही दूध गार डालना। जोंक लगाना राखालशशाकी जड़ या हल्दी, धतूरेका पत्ता एकत्र पीसकर लेप करना। विद्रधि और व्रध्न रोगमें जो सब योगादि लिख आए है वही सब योग इसमें भी प्रयोग करना। पकजानेपर शस्त्रप्रयोग या औषधसे पीप आदि निकाल कर व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करना।

दूषित स्तन्य चिकित्सा।—दूध वायुकर्त्तृक दूषित होनेसे दशमूलका काढ़ा पिलाना पित्तदूषित स्तनमें गुरिच, शत-मूली, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, लालचन्दन, और अनन्तमूल, यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना। कफदूषित स्तनमें त्रिफला, मोथा, चिरायता, कुटकी, बभनेठी, देवदारु, बच और अकवन, यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना द्विदोषज या त्रिदोषज स्तन्यदुष्टिमें ऐसही मिले हुए द्रव्योंका काढ़ा पिलाना।

शुष्क स्तन्य चिकित्सा।—स्तनदूध सूख जानेपर बनकपासकी जड़ और इक्षुमूल समभाग कांजीमें पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन कराना अथवा हल्दी, दारुहल्दी, चकवड़, इन्द्र-यव और मुलेठी यह सब द्रव्यका काढ़ा किम्बा बच, मोथा, अतीस, देवदारु, शोंठ, सतावर और अनन्तमूल यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना।

पथ्यापथ्य ।—स्तनरोगमें विद्रधि रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये । स्तनदुष्टिमें दोषके आधिक्यानुसार वही दोषनाशक और सूतिका रोगका साधारण पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना चाहिये ।

—०—

बालरोग ।

—०—

बालरोग दूषित-स्तन्यज ।—प्रसूता या धात्रीका स्तन-दूषित होनेसे, वही दूषित स्तन पानकर बच्चोंको नानाप्रकारका रोग पैदा होता है । वातदुष्ट स्तन्यपान करनेसे बालक वातरोगाक्रान्त, चीणस्वर और कृशाङ्ग होता है, तथा उसके मलमूत्र और अधोवायु निकलनेमें कष्ट होता है । पित्तदुष्ट स्तन्यपान करनेसे, पसीना, मलभेद, तृष्णा, गात्रसन्ताप, कामला और अन्यान्य पित्तजन्य रोग उत्पन्न होता हैं । कफदुष्ट स्तन्यपान करनेसे लालास्राव, निद्रा, जड़ता, शूल, दूध कै, आंखे सफेद और विविध श्लेष्मजन्य रोग पैदा होता है । दो या तीन दोषसे स्तन्य दूषित होनेसे दो या तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है ।

कुकूनक ।—दूषित दूध पान, सूतिकागृहका दोष, ओस लगाना आदि कारणोंसे बच्चोंके आंखकी बरौनीमें कुकूनक नामक रोग पैदा होता है । इससे आंखमें कण्डू, बार बार आंखसे जल-स्राव, बालक कपाल आंख और नाक घिसता रहता है तथा धूपकी तरफ नहीं देखता और न आंख खोलता है ।

तालुकण्टक।—बच्चोंके तालुका कफ दुषित होनेसे तालुकण्टक नामक रोग पैदा होता है। इसमें तालु बैठजाता है, स्तन्य पानमें द्वेष, स्तन्यपान करनेमें कष्टबोध होना, पिपासा, मलभेद, आंख कण्ठ और मुखमें दर्द, दूध कै करना, और गरदन गिर पड़ना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

पारिगर्भिक।—बालक गर्भवती माता या धात्रीका स्तन-दूध अधिक पीवेतो पारिगर्भिक नामक रोग पैदा होता है। इसमें कास, अग्निमान्द्य, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम, उदर वृद्धि यही सब लक्षित होता है।

दन्तोद्गम रोग।—पहिले पहल दांत निकलतीवक्त बहुतेरे बालकको ज्वर, उदरामय, वमन, वदन तोड़ना, शिरोवेदना, नेत्ररोग आदि विविध रोग दिखाई देता है।

दूध फेकना।—बच्चे दूध पानकर कै कर दें तो उसको चलित भाषामें "दूध फेकना" कहते है। पहिले इसमें फटा दूध या दहीका तरह दूध तथा खट्टी बदबू रहती है। थोड़े दिन बाद क्रमशः पानीकी तरह पतला कै होता है और जो खाता है तुरन्त वही निकल जाता है, पेटफूलना और पेट बोलता है, दस्त साफ नही अथवा कभी कभी अधिक दस्त होता है। शरीर क्षीण, वर्ण पाण्डु और स्वभाव जिद्दी हो जाता है तथा शरीर ठण्ढा और चमड़ा रुखा होता है।

तड़काके लक्षण।—बालकोंको "तड़का" नामक एक प्रकार रोग होता है। उसका साधारण लक्षण मूर्च्छा और हाथ पैरकी ऐंठन है। नानाकारणोंसे यह रोग पैदा होता है। ज्वर या और कोइ कारणसे शरीरका उत्ताप बढ़नेसे, डर जानेसे,

शरीरमें कहो चोट लगनेसे या दर्द होनेसे, फोड़ा या क्रिमि होने और बहुत दिन तक बिमार रहना आदि कारणोंसे बालक दुर्व्वल होजानेपर तड़का रोग पैदा होता है। तड़का आरम्भ होतेहो बालक बेहोश, मुखका रंग सफेद, हाथको अङ्गुली मुट्ठावन्धो, पैरका अङ्गुलो टेढ़ो और हाथ पैर ऐठता रहता है। एक मिनटसे पांच मिनट तक यह रहता है। बहुतेरोको ऐसहो बार बार होता रहता है। कई जगह तड़का होनेसे पहिले कई एक पूर्व्वरूप अनुभव होता है, नोदमें चमक उठना, आंखें टेढ़ो होना और अङ्गुलोसिंकुड़जाना आदि तड़का का यह पूर्व्वरूप है।

क्रिमि।—बालकके पेटमें छोटे छोटे कोड़े पैदा होता है, मलद्वारमें खुजलाहट और नाकमें सुरसुराहट होतो है किसो किसो वखत बालक नाक मलते मलते रो उठता है। क्रिमि बड़ो होनेसे बालक सोते सोते चमक उठता है; दांत पिसता है और मुखसे दुर्गन्ध आतो है; कभो कभो चिपकता हुआ सबुज रंग और तेल-मिला दस्त होता है।

धनुष्टङ्कार निदान।—कुत्सित सूतिकागृहमें साफ हवाके अभावसे आर्द्रता दुर्गन्ध आदि कारणोंसे और बालकको तेल लगाकर अधिक सेंकना और बालकके शरीरमें ओस लगनेसे धनु-ष्टङ्कार नामक रोग पैदा होता है। जन्मके बाद ९ दिनके भोतर यह रोग दिखाई देता है। इसमें पहिले बालकका चहुआ आटक जाता है फिर पीठको रीढ़ कठिन और टेढ़ो होतो है, हाथ पैर कड़ा और ऐठता है। हाथ पेरको अङ्गुलो टेढ़ो, मुख टेढ़ा और बालक को छूने या हिलानेसे पोड़ा बढ़तो हैं, इस रोगमें ऐसहो कोई बालक आराम होता है।

ग्रहपीड़ा।—बालकके शरीरमें विविध ग्रहावेश होना आयुर्व्वेद शास्त्रमें स्वीकृत है। बालक ग्रहसे पीड़ित होनेपर कभी उद्विग्न, कभी डर, कभी रोना, कभी नख आदिसे जननी धात्री या अपना हाथ पैर नोचता है, बार बार फेन वमन और शरीर क्षीण हो जाता है। रातको नींद नहीं आती, आंखे फूल जाती है, दस्त पतला होता है, गला बैठ जाता है, बदनसे रक्त और मांसकी बू आती है। यह सब रोगके सिवाय ज्वर और अतिसार आदि अन्यान्य प्राय: सब रोग बालकको पैदा होता है।

शिशुचिकित्साको कठिनता।—बालक किसी प्रकारकी तकलीफ सह नहीं सकता, इससे उसका रोना और पीड़ित स्थानमें बार बार हाथ लगाना आदि चेष्टा और निपुणतासे विचार कर रोगकी परीक्षा करना चाहिये। गलेमें दर्द होनेसे बालक बार बार गलेमें हाथ लगाता है। शिर:पीड़ा होनेसे कपालका चमड़ा सिकुड़ जाता है और बालक बार बार शिरमें हाथ लगता है और कान खींचता है। चंगा बालक बार बार रो उठनेसे उसका पेट दर्द करता हैं जानना। दूध पीनेवाले बच्चेको प्यास लगनेसे वह बार बार जीभ बाहर निकलता है। सर्दी होकर नाक बन्द होनेसे बालक पीती वक्त मुहसे सांस लेनेके लिये बार बार स्तन छोड़ देता है। तीन चार महीनेतकका बालक रोनेसे उसके आंखसे पानी नहीं निकलता, फिर निकलता है। तीन चार महीनेसे अधिक उमरके बालकको रोती वक्त आंखसे पानी न निकले तो उसका रोग कठिन जनना। बालककी नाड़ी स्वभावत: ही अति द्रुत रहती है; इससे नाड़ी परीक्षासे उसका रोग निर्णय करना नये चिकित्सकके लिये अत्यन्त कष्टकर है। ज्वरा-

दिकी परीक्षाके वक्त थर्म्मामिटर लगानाही अच्छा हैं। सांस लेती वक्त बालकके नाकका छेद बड़ा होनेसे और नाक हिलनेसे उसकी खांसी अति गुरुतर है तथा श्वास फेंकनेमें कष्ट होता है जानना। बालकका पेट स्वभावत: ही थोड़ा मोटा होता है, उससे भी अधिक मोटा होनेसे यकृत् प्लीहा या अजीर्णकी आशङ्का करना उचित है। इसी प्रकार विविध लक्षणसे बालकोंके रोगकी परीक्षा करना चाहिये।

धात्रीनिर्व्वाचन।—माताका दूध दूषित होनेसे बालक को पिलाना उचित नही है। उसके बदले कोई दुग्धवती धात्री (दाई)का दूध पिलाना। धात्रीनिर्व्वाचनमें कोई बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। धात्रीकी उमर २०से ३२ वर्ष तक होना चाहिये। इससे अधिक या कम उमरकी धात्रीका दूध शुद्ध नही होता। धात्रीके शरीरमें किसी तरहका रोग हो तो उसका दूध नही पिलाना। जिस बालकके लिये धात्री रखना हो उसी उमरका और मोटा ताजा बालक धात्रीका रहना चाहिये। धात्रीके स्तन-द्वय दुग्धपूर्ण और दवानेसे दूध गिर पड़े तथा धात्रीका स्वभाव चरित्र निर्दोष और चित्त सन्तुष्ट होना चाहिये, ऐसी धात्री न मिलनेसे अथवा धात्रीका दूध दूषित होनेसे बकरीका दूध किम्बा पानी मिलाकर गायका दूध पिलाना। सौरीके बालकको माताके दूधका अभाव हो तो गायके दूधमें उतनही चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे पेट फूले तो सौंफ भिंगोया पानी १ तोला एक छटांक दूधमें मिलाकर पिलाना। इसी प्रकार स्तन्य छुड़ानेसे दूषित स्तनपानजनित रोग क्रमश: दूर होता है। तालु बैठ जानेसे हरातकी बच और कूठ इसका चूर्ण सहत और स्तनदूधमें मिलाकर पिलाना।

आंख आनेकी चिकित्सा।—बच्चोंकी आंख आनेसे या कुकूनक रोग होनेसे गरम पानीकी पतली धार आधा हाथ ऊंचेसे देना और आंख धोना। गरम पानीमें कपड़ा भिंगोकर आंखका कीचड़ निकालना। एक रत्ती तूतिया एक छटांक साफ पानीमें मिलाकर एक शीशीमें भरना, यही पानी दिनभरमें २।३ बार आंखमें बूंद बूंद कर डालना। सेवारके रसमें कपड़ा भिंगोकर उसका काजल पाड़कर आंखमें लगाना। दारुहल्दी, मोथा और गेरूमिट्टी बकरीके दूधमें पीसकर आंखके बाहर लेप करना।

पारिगर्भिक।—बच्चोंके पारिगर्भिक रोगमें पहिले माताका दूध पिलाना बन्द करना चाहिये। अग्निवृद्धिके लिये अग्निमान्द्य रोगोक्त यमानीपञ्चक, हिङ्गाष्टक चूर्ण आदि मृदुवीर्य्य औषध अल्पमात्रा सेवन कराना। दूधके साथ चूनेका पानी या सौंफका अर्क मिलाकर पिलाना। अतिसार आदि रोग इस अवस्थामें दिखाई दे तो अतिसारोक्त औषध प्रयोग करना। कुमार-कल्याण रस, सेवन करानेसे पारिगर्भिक आदि रोग आराम होता हैं।

दन्तोद्भेदज रोग चिकित्सा।—दांत निकलनेके वक्त ज्वर, उदरामय आदि पीड़ामें एकाएकी कोई औषध प्रयोग करना उचित नही है। कारण दांत निकल आनेपर सब रोग आपही आप आराम हो जाता है। धवईका फूल, पीपल चूर्ण सहतमें मिलाकर या आंवलेका रस मसूड़ेमें घिसनेसे दांत जल्दी निकलता है। अन्यान्य रोगोंके लिये दवा देनेकी आवश्यकता हो तो दन्तोद्भेदगदान्तक, कुमारकल्याण और पिप्पल्याद्य घृत विचार

कर प्रयोग करना। दांत निकलनेमें अधिक देर होनेसे या तकलीफ अधिक मालूम होनेसे वह स्थान चीर डालना।

दूध फेकनेकी चिकित्सा।—दूध फेकना आराम करनेके लिये दूधमें चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे आराम न हो तो दूध बन्दकर मांसका शूरुवा पिलाना। वृहती और कण्टकारी फलका रस या पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और शोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण सहत और घीमें मिलाकर थोड़ा थोड़ा चटाना। आम्रकेशी, धानका लावा और सेन्धा नमक इन सबका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे दूध फेकना बन्द होता है। टटका सरसोंका तेल दिनभरमें ३।४ बार पेटपर मालिश करना और एक टुकड़ा फलालेन पेटमें लपेट रखना।

तड़काकी प्रथम चिकित्सा।—तड़का उपस्थित होनेसे पहिले होशमें लानेका उपाय करना चाहिये। कलछी या लोहेकी सलाई आदि गरम कर कपालमें थोड़ा थोड़ा सेंक देना, आंखपर ठण्ढे पानीका छींटा देना, यदि इससे भी होशमें न आवेतो नौसादर और चूना एकत्र मिलाकर बालकके नाकके पास रखना इसके सुंघनेसे भी मूर्च्छा दूर होती है। फिर जिस रोगके कारणसे तड़का हुआ है उसकी तकलीफ दूर करना चाहिये। अतिरिक्त ज्वरसे तड़का होनेपर आंख, मुख, शिर, पीठकोरीढ़ और मस्तकके पीछे ठण्ढे पानीका छींटा देना। तेल और पानी एकत्र मिलाकर सर्व्वाङ्गमें मालिश करना। बालकको प्यास मालूम हो तो भरपूर पानी पीनेको देना। इन सब क्रियाओंसे शरीरका उत्ताप कम हो जानेपर तड़का होनेका डर नहीं रहता। नाताकतीके सबबसे तड़का होनेपर राईको चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर उसी पानीमें बालक को ठेहुनातक डूबो रखना। बालक हिलने डोलने

न पावे। इसके बाद मयदा और राईका चूर्ण समभाग थोड़े पानीमें मिलाकर पैरके तलवेमें पट्टी लगाना। बगल और हाथ पेरमें सेंक करना। हाथ पैर और छातीमें शोंठका चूर्ण मालिश करना। क्रिमि या दूसरे किसी सबबसे तड़का होनेपर सहन हो ऐसे गरम पानीमें बालककी गलेतक डूबा रखना और आधा हाथ ऊंचेसे उसके शिरपर ठण्ढे पानीको धार देना। ५।६ मिनिट तक ऐसा कर बदन पोंछकर सुलादेना।

तड़कामें दस्त कराना।—सब प्रकारका तड़का आराम होनेपर दूधके साथ थोड़ा रेड़ीका तेल मिलाकर पिलाना चाहिये। तड़काके बार बार हमलेसे बचानेके लिये चौगुने पानी में थोड़ी सञ्जीवनी सुरा अभावमें ब्राण्डि मिलाकर बालकको पिलाना चाहिये।

क्रिमिनाशक उपाय।—क्रिमिनाशके लिये भांटपत्तेका रस या अन्यान्य क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना। क्रिमि छोटी हो तो नमक की पिचकारीसे विशेष उपकार होता है। एक छटांक पानीमें थोड़ा नमक मिलाकर एक छोटी कांचकी पिचकारीसे बालकके मलद्वारमें देना। पिचकारीके मुखमें तेल लगाकर मलद्वारमें देना चाहिये। पानी तुरन्तही गिर न पड़े इससे मलद्वारको २।३ मिनिट अङ्गुठेसे दवा रखना। इसी तरह २।३ दिन पिचकारी देनेसे क्रिमिनाश होती है।

धनुष्टङ्कार चिकित्सा।—धनुष्टङ्कारमें होशमें लानेके लिये तड़का रोगोक्त उपाय करना। फिर माताका दूध पिलाना। बालक दूध खींच न सके तो दूध गारकर सीपसे दूध पिलाना। स्तनदूधके अभावमें गौका दूध पिलाना। विरेचक औषध न खा सके तो रेड़ीके तेलमें थोड़ा तार्पिनका तेल मिलाकर पेटमें

मालिश कर ठण्ढा पानी देना। रेड़ीका तेल पिलाकर दस्त कराना बहुतही उपकारी है। नींद आनेके लिये नाभिके उपर गांजा या भांग पीसकर पुलटिस बांधना। चौगूनी मृतसञ्जीवनी सूरा या ब्राण्डी पिलानेसे भी नींद आती है। चाहे जैसे हो बालकको सुलाना चाहिये। बालक सुरा पान न करें तो मलद्वारमें पिचकारी देना। गरम पानीसे स्नान और सर्व्वाङ्गमें वायुनाशक कुब्जप्रसारिणी आदि तैल मर्द्दन विशेष उपकारी है।

ग्रहावेशमें कर्त्तव्य।—ग्रहावेश जनित पीड़ामें ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्रहशान्तिका उपाय करना। या मुरामांसी, वच, कूठ, शिलाजीत, हल्दी, दारुहल्दी, शठी, चम्पक, मोथा इन सब द्रव्योंके काढ़ेसे स्नान कराना। इसको "सर्व्वौषधि स्नान" कहते है। अष्टमङ्गलघृत पान करानेसे भी ग्रहावेशकी शान्ति होती है।

बालककी ज्वर चिकित्सा।—बालकके ज्वरमें भद्रमुस्तादि क्वाथ, रामेश्वर रस, बालरोगान्तक रस और ज्वररोगोक्त अन्यान्य मृदुवीर्य्य औषध उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना। ज्वरातिसार रोगमें धातक्यादि और बालचतुर्भद्रका चूर्ण सेवन कराना चाहिये। अतिसारमें वराहक्रान्ता, धवईका फूल और पद्मकेशर इसके कल्कका यवागू बनाकर सेवन करना। बकरीका दूध और जामुनके छालका रस समान भाग मिलाकर पिलाना। अथवा बेलकी गिरी, इन्द्रयव, बाला, मोचरस और मोथा, यह सब द्रव्य मिलाकर एक तोला, एक पाव बकरीका दूध और एक सेर पानीके साथ औटाना, दूध बाकी रहनेपर छानकर पिलाना। इससे ग्रहणी रोग भी आराम होता है। प्रवाहिका अर्थात् आमाशय रोगमें धानके लावाका चूर्ण मुलेठीका चूर्ण, चीनी और सहत यह सब द्रव्य अरवे चावके धोवनके साथ सेवन कराना।

सफेद जीरा और रालका चूर्ण गुड़के साथ सेवन कराना। ग्रहणी रोगकी शान्तिके लिये मिरच एक भाग, शोंठ २ भाग और कुरैया की छाल ४ भाग; इन सब द्रव्योंका चूर्ण गुड़ और मट्ठेके साथ सेवन कराना। अतिसारनाशक अन्यान्य औषध भी ग्रहणी रोगमें प्रयोग करना। बालकुटजावलेह और बालचाङ्गेरी घृत नामक औषध पुराना अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणीरोगमें विशेष उपकारी है। बेलकी गिरी और आमकी गुठलीके गूदेके काढ़ेके साथ धानके लावका चूर्ण और चीनी मिलाकर सेवन करानेसे भेद वमन दूर होता है। बैर, आमरूल, काकमाची और कएथ का पत्ता पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे भी बच्चोंका भेद वमन आराम होता है। आनाह और वातिक शूलरोगमें सैन्धव, बेलकी गिरी, इलायची, हींग और बभनेठी, इन सबका चूर्ण घीके साथ लेहन या पानीके साथ पान कराना। तृष्णारोगमें अनारबीज, जीरा और नागेश्वर इन सबका चूर्ण चीनी और सहतके साथ चटाना। हुचकी होनेसे गेरूमिट्टीका चूर्ण सहतके साथ चटाना चितामूल, शोंठ, दन्तीमूल और गोरक्षचाकुला, इन सब द्रव्यका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा द्राक्षा, जवासा हरीतकी और पीपल इन सबका चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर चटानेसे हिक्का, श्वास और कासरोग आराम होता है। वृहतीफल, कएटकारीफल और पीपल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण सहतके साथ चटाना। कूठ, अतीस, काकड़ाशिङ्गी, पीपल और जवासा, इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटानेसे सब प्रकारकी खांसी आराम होती है। कएटकारीका रस और काढ़ेमें मकरध्वज सेवन करानेसे कास और तत्संयुक्त ज्वर भी आराम होता है। कएटकारीघृत सेवन करानेसे भी कास, श्वास आदि पीड़ामें विशेष

उपकार होता है। कास रोगोक्त कई मृदुवीर्य्य औषध और ज्वर रहनेसे ज्वरनाशक औषध थोड़ी मात्रा विचार कर देना। बच्चोंको पिसाब साफ न होनेसे अर्थात् मूत्रकृच्छ्र हो तो पीपल, मिरच, चीनी, सहत, छोटी इलायची, सैन्धव यह सब एकत्र मिलाकर चटाना। मुहमें घाव होनेसे सोहागा सहतमें मिलाकर रोज २।३ दफे लगाना। भेड़ीका दूध लगानेसे भी मुहका घाव जल्दी आराम होता है। कान पकनेसे अर्थात् कानसे पीप निकले तो गरम पानी या कच्चा दूध और पानी एकत्र मिलाकर पिचकारीसे कान धोना, फिर एक पतली सीकमें कपड़ा लपेटकर कान भीतरसे पोछकर २।३ बूंद द्रव डालना। महाबरका पानी गरमकर कानमें भर देनेसे अथवा फिटकिरीका पानी कानमें देनेसे कानका पकना बन्द होता है। पामा और विचर्च्चिका आदि चर्म्मरोग होनेसे वही रोगनाशक प्रलेप और हमारा क्षतारि तेल आदि क्षतनिवारक तेल प्रयोग करना। बालक उपयुक्त मात्रा मोटा ताजा न हो तो अश्वगन्धाघृत सेवन कराना। थोड़े दिनका बालक स्तनपान न कर सके तो आंवला और हरीतकी चूर्ण घृत और सहत मिलाकर जीभमें घिसना। इस रीतिसे मुख साफ कर देनेसे बालक स्तनपान कर सकता है।

बालकके औषधकी मात्रा।—ऊपर लिखे चूर्ण और औषधकी मात्रा एक मसके बालकके एक रत्ती और फिर हरेक माससे एक एक रत्तीभर मात्रा बढ़ाना। एक वर्षसे अधिक उमरमें हरेक महीने एक एक मासा मात्रा बढ़ाना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—स्तन्यपायी बालकको जो जो रोग हो उसकी दूध पिलानेवाली माता या दाईको भी वही वही रोगका पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। बालकको किसी रोगमें उपवास कराना

उचित नहीं है। उपवास देनेके लायक रोगमें अल्प आहार देना चाहिये। अतिसार प्रभृति रोगमें गायका दूधके बदले बकरीका दूध पिलाना। यह भी अच्छी तरह हजम न हो तो एरारुट और हमारा "सञ्जीवन खाद्य" खिलाना चाहिये।

स्तनपान विधि।—सद्योजात स्वस्थ बालकको पहिले पहल गायका दूध पिलाना नहीं चाहिये। स्तनदूध पान करानाही यथेष्ट है। स्तनपान करानेका समय निर्द्दिष्ट करना अच्छा है। पहिले थोड़े दिन विशेष नियमसे न चलनेपर भी एक मासके बाद समय निर्द्देश करना उचित है। दिनको २ घण्टाके अन्तरपर और रातको ३ घण्टा अन्तरपर स्तनपान कराना चाहिये। तीन महीनेके बालकको दिनको चार बार और रातको तीन बार स्तन-पान कराना। चार महीनेके बाद रातको दो बारसे अधिक स्तन-पान करानेकी आवश्यकता नहीं है।

स्तनपान बन्द करना।—नौमाससे पहिले बालकको स्तनपान बन्द करना उचित नहीं है, एक बर्षके बाद स्तनपान बन्द करना अच्छा है। स्तनपान एकाएकी बन्द न कर क्रमशः बन्द करना चाहिये।

बालकके पीनेका दूध।—अवस्थानुसार गायका दूध या बकरीका दूध थोड़ा बालकको पिलाना। गदहेका दूध पिलाना उचित नहीं है। सद्योजात बालकको दूधके बराबर पानी और चूनेका पानी मिला गरमकर थोड़ी मिश्री या चीनी मिला-कर पिलाना। प्रत्येक बार दूध तयार कर पिलाना। बालक सात दिनका होनेपर पानी न मिलाकर खाली चूनेका पानी मिलाना। डेढ़मासतक दूधके तीन भागका एक भाग चूनेका पानी मिलाना। फिर:पांचवे महीने तक चार भागका एक भाग

चूनेका पानी मिलाना। इसके बाद चूनेका पानी मिलानेकी जरूरत नही रहती है।

आवश्यकीय बातें।—प्रथम दो महीने तक दिनकी ३ बार और रातको दो बार दूध पिलाना। अनियमित रूपसे बार बार दूध पिलाना उचित नही है। बालक अपनी इच्छासे जितना पीवे उतनाही पिलाना चाहिये जोरकर पिलानेसे नुकसान हो सकता है। दो मासकी उमरके बाद दिनको चार बार और रातको एक दफे दूध पिलाना। ६।७ मासकी अवस्थामें अर्थात् सामनेका दो दांत निकलने पर दूधके सिवाय और भी हलका आहार थोड़ा थोड़ा देना चाहिये। दूध साबूदाना मोहनभोग सहने पर पर थोड़ा थोड़ा खिलाना चाहिये। फिर दूध भात या चीर थोड़ा देना उचित है। दो वर्षकी उमर न होनेतक भात या रोटी खानेको देना उचित नही है।

शिशुचर्य्या।—बालकके सोनेका घर साफ और लम्बा चौड़ा जिसमें अच्छी हवा प्रतिवाहित हो सके स्थिर करना चाहिये। जाड़ा और बरसातमें रातको घरका जंगला बन्द रखना तथा बालकको कुरता पहिरना, दुसरे मौसममें आवश्यक नही है। कुरता ढीला रखना चाहिये। सहनेपर ठण्ढे पानीसे स्नान कराना चाहिये ३।४ वर्षकी उमर तक दिनको सोने देना उचित है। अपने आपसे चलना सीखनेसे पहिले जोर कर नही चलाना इससे अङ्ग विकृत होनेकी आशङ्का है। धमका कर या भकाऊ आदि वहुत नामसे डराना उचित नही है। अकारण खेलाना, या अधिक कुढ़ाना मना है। खेलनेके उपयुक्त उमर तक खेलने देना।

—०—

वैद्यक-शिक्षा।

द्वितीय और तृतीय खण्ड।

परिभाषा।

परिभाषा। आयुर्वेद शास्त्रोक्त औषधादि प्रस्तुत और प्रयोग करनेकी प्रणाली कई एक साधारण नियमोंके वशवर्त्ती है। जिसमें विस्तृत रूपसे लिखा जाय उसको परिभाषा कहते हैं। यहां परिभाषाध्ययके यावतीय जानने लायक विषय विस्तृत रूपसे आलोचित होता है।

परिमाण विधि।—३ सर्षपका एक यव। ३ यव या ४ धानका १ रत्ती। ६ रत्तीका एक आना। १० रत्तीका एक माषा। (सुश्रुतके मतसे ५ रत्तीका एक माषा होता है) ४ माषाका १ शाण (आधा तोला) २ शाणका १ कोल (एक तोला) २ कोलका १ कर्ष (दो तोला)। २ कर्षकी एक शुक्ति (चार तोला) २ शुक्तिका १ एक पल (आठ तोला)। २ पलका एक प्रसृति (एक पाव)। २ प्रसृतिका एक अंजुली या कुड़व (आधा सेर)। २ कुड़वका एक शराव (एक सेर)। २ शरावका एक प्रस्थ। ४ प्रस्थका एक आढ़क (८ सेर)। ४ आढ़क का एक द्रोण (३२ सेर)। दो द्रोणका एक कुम्भ (६४ सेर)। १०० पलका एक तुला (१२॥ सेर)। २००० पलका एक भार। २ कुम्भकी एक द्रोणी या गोणी (३ मन ८ सेर)। ४ गोणीका एक खारी (१२ मन ३२ सेर)

अनुक्त विषयमें ग्रहण विधि।—जिस औषधके निर्द्दिष्ट द्रव्य समूहोमें जिसका परिणाम लिखा न हो वह और सब दवायोंके परिणामसे लेना चाहिये। औषध सेवनका समय निर्द्धारित न रहनेसे सवेरे औषध सेवन करना। द्रव्यका कौन अंश लेना होगा लिखा न रहनेसे जड़ लेना। औषध पाक करने या रखनेके पात्रका उल्लेख न हो तो मिट्टीका पात्र लेना। द्रव्यका मूल लेतो वक्त जो सब मूल बड़ी और जिसमें काठ है उसका काष्ठभाग छोड़कर छाल लेना तथा जो सब मूल छोटी और पतली है उसका काष्ठभाग समेत लेना चाहिये। अंग विशेषका उल्लेख रहनेसे वही अङ्ग ग्रहण करना। द्रव पदार्थ विशेषका उल्लेख न रहनेसे पानी लेना चाहिये। द्रव्य विशेषका विशेष परिचय लिखा न रहनेसे उत्पल शब्दमें नीलोत्पल पूरीष रसमें गोमय रस, चन्दनमें लाल चन्दन, सर्षपमें सफेद सरसों, लवनमें सैन्धा नमक, मूत्रमें गायका मूत्र, दूध और घीसें गायका दूध घी लेना चाहिये। मांस ग्रहणमें चौपाये जन्तुमें स्त्रीजातिका और पक्षीमें पुंजातिका मांस ग्रहण करना। किन्तु छाग मांसमें नपुंसक छागका मांस और शृगाल मांसमें पुंश्रृगालका मांस ग्रहण करना। नपुंसक छागका अभाव होनेसे वन्ध्या छागीका मांस लेसकते है। प्राय सब औषध नया ग्रहण करना उचित है। सिर्फ गुड़, घृत, सहत, धनिया, पीपल और हींग; यह सब द्रव्य पुराना लेना चाहिये।

द्रव्यका प्रतिनिधि।—पुराने गुड़के अभावमें नया गुड़ चार पहर धूपमें रखकर लेना। सौराष्ट्र मृत्तिकाके अभावमें पङ्कपर्पटी, तगर पादुकाके अभावमें हरसिङ्गार, लौहेके अभावमें मण्डूर, सफेद सरसोंके अभावमें लाल सरसों, चाभ और गजपिप्पलीके अभावमें पिपलामूल, मुञ्जतिकाके अभावमें लालमिट्टी, कुङ्कमके अभावमें

हरिद्रा, मुक्ताके अभावमें सीपका चूर्ण, हीराके अभावमें चुन्नी या कौड़ीका भस्म, स्वर्ण और रौप्यके अभावमें लौहभस्म, पुष्कर-मूलके अभावमें कूठ, रास्नाके अभावमें बांदरी जड़ी रसाञ्जनके अभावमें दारुहल्दीका काढ़ा, पुष्पके अभावमें नरम फल, मेदके अभावमें असगन्ध, महामेदके अभावमें अनन्तमूल, जीवकके अभावमें गुरिच, ऋषभकके बदलेमें बिदारीकन्द, ऋद्धिके बदलेमें बरियारा, वृद्धिके बदलेमें गोरक्षचाकुला, काकोली और क्षीर-काकोलीके अभावमें शतावर, रोहितक छालके बदलमें नीमकी छाल, कस्तुरीके बदलेमें खटाशी और अन्यान्य दूधके अभावमें गायका दूध लेना चाहिये। इन सब द्रव्योंके सिवाय और किसी द्रव्यके अभावमें उस द्रव्योंके समान गुणवाला दूसरा द्रव्य ग्रहण करना चाहिये। मिलावा असह्य होनेसे उसके बदलमें लालचन्दन देना।

काढ़ा बनानेकी विधि।—काढ़ेमें जितनी दवायें हो वह सब समभाग मिलाकर दो तोले होना चाहिये। जैसे दो द्रव्यमें प्रत्येक एक तोला, चार द्रव्यमें प्रत्येक आधा तोला। इसी नियमसे जितनी दवायेहों सब मिलाकर दो तोले लेना। फिर वह सब द्रव्य ३२ तोले पानीमें औटाना तथा ८ तोले पानी रहते उतारकर छान लेना। काढ़ेमें कोई वस्तु मिलाकर लेना होतो काढ़ा पीती वक्त मिलाना चाहिये। मिलानेवाली दवाकी मात्रा आधा तोला। एक द्रव्य मिलाना हो तो ॥) तोला, दो द्रव्य मिलाना हो चार आनेभर, पर रोगीके बलके अनुसार इसकी मात्रा कमभी कर सकते है। काढ़ा एक दिल बनाकर २।३ दिन पीना उचित नही है। रोज नये द्रव्यका नया काढ़ा बनाना चाहिये।

शीतकषाय प्रस्तुत विधि।— शीत कषाय बनाना होतो वैसही दो तोले द्रव्य कूटकर १२ तोले पानीमें पहिले दिन शामको भिंगो रखना तथा सबेरे छानकर सेवन करना। फांट कषाय प्रस्तुत करना हो तो कूटी हुई दवायें ४ चौगूने गरम पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखना फिर छानकर सेवन करना। कच्ची या पक्की दवा पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते है। कच्चा द्रव्य कूट-कर उसका रस लेनेको स्वरस कहते है। काढ़ेसे स्वरसतकको पञ्चकषाय कहते है। किसी द्रव्यका रस पुटपक्कसे लेना हो तो वही सब द्रव्य कूटकर जामुन या बड़के पत्तेमें लपेट रस्सीसे मजबूत बांधकर उपरसे एक या दो अङ्गुल मिट्टी लपेटना। फिर सुखा-कर आगमें जलाना आगकी गरमीसे मिट्टी लाल रंग होनेपर भीतरका द्रव्य निकालकर रस निकाल लेना।

चूर्ण औषध प्रस्तुत विधि।—औषधका चूर्ण करना हो तो, सब द्रव्य अलग अलग अच्छी तरह सूखाकर फिर कूटकर कपड़ेसे छान लेना; फिर जो सब द्रव्य एकत्र मिलाना हो वह सब एक एक कर निर्द्दिष्ट परिमाणसे लेकर एकत्र मिलाना। किसी चूर्ण में भावना देनेकी व्यवस्था रहने पर उसमें निर्द्दिष्ट द्रव्यकी भावना देकर सुखाकर चूर्ण करना।

बटिका औषध प्रस्तुत विधि।—बटिका बनाना हो तो, निर्द्दिष्ट द्रव्य समूहके चूर्णमें द्रव पदार्थ विशेषकी भावना देकर खलमें अच्छी तरह घोटना, फिर यव, सर्षप या गुंजा आदिके बराबर गोली बनाना। किसी द्रव पदार्थका उल्लेख न रहनेसे केवल पानीमें खल करना। गोलीका परिमाण न लिखा हो तो प्रायः एक रत्ती परिमाण गोली बनाना। भावना देनेकी रीति—जो सब चूर्ण पदार्थमें भावना देना हो, वह किसी

द्रव्यके रस या काढ़ेमें अच्छी तरह भिंगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखना। ऐसही जिस औषधमें जितने दिन भावना देना हो उतने दिन तक रोज भिंगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखकर खल करना।

मोदक प्रस्तुत विधि।—जो सब मोदक औषध पाक करना नही हैं, वह निर्द्दिष्ट परिमित अथवा अनिर्द्दिष्ट स्थलमें चूर्ण द्रव्यका दूना गुड़ और समान सहतमें खलकर निर्द्दिष्ट मात्रासे गोली बनाना, तथा जो सब मोदक पाक करना हो, उसमें पहिले गुड़ या चीनी चूर्णके दूने पानीमें औटाना। पक्की चाशनी हो जानेपर नीचे उतारकर उसमें चूर्ण डालकर अच्छी तरह मिलाना चाहिये। किसी किसी जगह चाशनी आगपर रहते ही चूर्ण मिलाते है। मोदक प्रस्तुत हो जानेपर घृत भावित बरतन या आधुनिक चीनी मिट्टीके बरतनमें रखना।

अवलेह प्रस्तुत विधि।—अवलेह बनाना हो तो पहिले काढ़ा तयार कर फिर उसे औटाकर गाढ़ा करना। चीनीसे अवलेह बनाना हो तो चूर्ण पदार्थकी चौगूनी चीनी या गुड़का रस बना लेना। किसी द्रव पदार्थके साथ अवलेह बनाना हो तो वह भी चूर्णका दूना लेना चाहिये। मोदककी तरह अवलेहकी भी चाशनी पक्की होनी चाहिये।

गुग्गुलु पाक विधि।—पहिले गुग्गुलका मल आदि पदार्थ मिलाकर दशमूलके गरम काढ़ेमें मिलाकर छान लेना अथवा गुग्गुलु कपड़ेमें ढीला बांधकर दोलायन्त्रमें अर्थात् हांड़ीमें झुला देना तथा गायका दूध या त्रिफलाके काढ़के पाककर छान लेना, फिर धूपमें सुखाकर घी मिलाना। इस रीतिसे गुग्गुलु शोधा जाता है। यही शोधित गुग्गुलु आगमें पाक करनेका उपदेश हो

तो करना, उपदेश न हो तो नहो करना, निर्द्दिष्ट चूर्णादि पदार्थके साथ मिलालेनेहो से गुग्गुलु तैयार होता है।

पुटपाक विधि।—एक गज गहिरा एक गढ़ा खोदना, फिर उसका तीन भाग कण्डेसे भरना तथा उसके उपर दवाका मुषा रखकर उस मुषिके उपरसे कण्डा रख गढ़ा भर देना, फिर उसमें आग लगाना। जब सब कण्डा राख हो जाय तब वह मुषा बाहर कर उसके भीतरको दवा निकाल लेना। मुषावस्त्र और मिट्टीसे अच्छो तरह लपेटना चाहिये। गढ़ेका मुख एक हाथ और नीचेका भाग १॥ हाथ चौड़ा होना चाहिये। इसीको गजपुट कहते है।

वालुका यन्त्रमें औषध पाक विधि।—वालुका यन्त्र या लवण यन्त्रमें औषध पाक करना हो तो एक हांड़ीमें बालु या लवण भरना तथा उसके उपर औषधिका मुषा रखकर निर्द्दिष्ट समयतक आगपर चढ़ाना। मुषिको कपड़ा और मिट्टोसे लेप करना।

सुरा प्रस्तुत विधि।—सुरा बनाना हो तो, कलवारको तरह शराब चुआनेवाला यन्त्र बनाकर उसमें चुआ लेना। आसव और अरिष्ट चुआना नहीं पड़ता है केवल निर्द्दिष्ट समयतक धान्य-राशि या जमीनमें गाड़कर सड़ा लेनेसे तैयार होता है।

स्नेहपाक विधि।—तैल और घृत पाक करनेसे पहिले उसको मूर्च्छा करना आवश्यक है। तिलके तैलको मूर्च्छा करना हो तो, लोहेकी कढ़ाई या दूसरे किसो पात्रमें तैल हलकी आंच-पर चढ़ाना; तैल निस्फेन होजानेपर नीचे उतार कर थोड़ा ठण्ढा होनेपर, उसमें पिसो हुई हल्दीका पानी फिर वैसही मजीठ और क्रमशः पिसा हुआ लोध, मोथा, नालुका, आंवला, बहेड़ा

हरीतकी, केवड़ेका फूल, बड़कोसोर, और बाला; यह सब द्रव्य थोड़ा थोड़ा मिलाकर तेलका चौगूना पानी देकर पाक करना; थोड़ा पानी रहते ही नीचे उतारना। फिर ७ दिनतक कोई पाक नही करना। मूर्च्छाके लिये मजीठ आदि द्रव्योंके वजन,— जितना तेल हो उसके १६ भागका एक भाग मजीठ। और दूसरे द्रव्य मजीठका चौथाई भाग लेना, अर्थात् तेल ४ सेर हो तो मजीठ एक पाव और दूसरे द्रव्य सब एक एक छटांक लेना चाहिये।

वायुनाशक तैलपाक विधि।—वायुनाशक तैल पाक करनेमें मूर्च्छित तेलका आठवा भाग आम, जामुन, कईथ और बड़े नीबूका पत्ता चौगूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहते उतारकर छानकर उसी काढ़ेके साथ मूर्च्छित तेल और एक दफे औटाना चाहिये।

सर्षप तैल मूर्च्छा विधि।—सर्षप तैलकी मूर्च्छामें यथाक्रम हल्दी मजीठ, आंवला, मोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, बाला, नालुका और बहेड़ा; यह सब द्रव्य, और रेड़ीके तेलकी मूर्च्छामें मजीठ, मोथा, धनिया, त्रिफला, जयन्ती पत्र, बनखजूर, बड़कोसोर, हल्दी, दारुहल्दी, नालुका, केवड़ेका फूल, दही और कांजी, यह सब देना चाहिये। ४ सेर सरसांके तेलमें मजीठके सिवाय बाकी सब द्रव्य दो दो तोले और ४ सेर रेंड़ीके तेलमें मजीठके सिवाय अन्यान्य द्रव्य ४ तोले मात्र से मिलाना। मजीठ सब तेलमें समान परिमाण से देना उचित है, अर्थात् ४ सेर तेलमें एक पाव मजीठ देना।

घृतमूर्च्छा विधि।—घृतमूर्च्छामें घी आगपर चढ़ा निस्फेन होनेपर नीचे उतार थोड़ा ठण्ढा होनेपर पहिले हल्दीका

पानी, फिर नीबूका रस और उसके बाद पिसी हुई हरीतकी आंवला, बहेड़ा, और मोथा डालना, तथा तिलकी तरह चौगूना पानी देकर फिर औटाना चाहिये। ४ सेर घीमें सब द्रव्य ८ तोले मिलाना।

आवश्यकीय बातें।—मूर्च्छामें द्रव्य समूह अच्छी तरह छान कर, तेल या घीके साथ क्काथ पाक करना चाहिये जितने क्काथके साथ पाक करनेकी विधि निर्द्दिष्ट हो उसके प्रत्येक के साथ अलग अलग पाक करना चाहिये। पहिले क्काथ द्रव्य तैलादिका दूना लेकर उसके आठ गूने पानीके साथ अर्थात् ४ सेर क्काथ द्रव्य ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहने पर छान लेना; फिर उसी काढ़ेके साथ तैलादि पाक करना। क्काथ पाकके बाद विधिके अनुसार दूध, दही, कांजी, गोमूत्र और रस आदि द्रव पदार्थके साथ तैलादि पाक करना। ये सब द्रव्यका परिमाण निर्द्दिष्ट न रहनेसे प्रत्येक द्रव्य स्नेहके समान लेना। किन्तु क्काथादि और कोई द्रव पदार्थके साथ पाक करनेकी विधि न रहनेसे केवल दूधहीके साथ विहित रहनेसे स्नेह पदार्थका चौगूना दूध लेना चाहिये। कोई कोई दूध पाकके समय दूधमें चौगूना पानी मिलाकर पाक करनेका उपदेश देते है। इसके बाद कल्क पाक करना उचित है। सूखा या कच्चा द्रव्य पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते है। स्नेह पदार्थके साथ मिलाकर स्नेह पाक करना; अर्थात् ४ सेर स्नेह पदार्थमें १ सेर कल्क द्रव्य, ४ सेर द्रव पदार्थके साथ मिलाना। कल्क द्रव्यके साथ किसी द्रव पदार्थ का उल्लेख न रहनेसे चौगूने पानीके साथ कल्क पाक करना। कल्क पाक करते वख्त जब कल्क द्रव अङ्गुलीसे बत्ती या गोली बन जाय और आगमें देनेसे किसी तरहका शब्द न हो तो पाक

शेष जानना। तब चुल्हेसे नीचे उतार रखना और सात दिनके बाद कल्क द्रव्य छान लेना।

गन्धपाक विधि।—अधिकांश तेलमें सबसे पीछे एक बार गन्धपाक करनेकी विधि है। कूठ, नालुका, खटासी, खसकी जड़, सफेद चन्दन, जटामांसी, तेजपत्ता, नखी, कस्तूरी, जायफल, शीतलचीनी, कुङ्कम, दालचीनी, लताकस्तूरी बच, छोटी इलायची, अगरु, मोथा, कपूर गठिवन, धूप सरल, गुंदबरोसा, लौंग, गन्धमात्रा, छड़ीला, सोवा, मेथी, नागर मोथा, शठी, जावित्री, शैलज, देवदारु और जीरा यह सब तथा गन्ध-द्रव्योंमें छड़ीला, कुङ्कम, नखी, खटासी, इलायची, सफेद चन्दन, कस्तुरी और कपूरके सिवाय और सब द्रव्य पीसकर या चूर्ण कर कल्क पाककी तरह चौगूने पानीमें औटाना। खटासी पाकके वक्त तेलमें देना और सोज जानेपर निकाल डालना। पाक शेष होनेपर छड़ीला, कुङ्कम, नखी, इलायची, सफेद चन्दन और कस्तुरी यह सब द्रव तेलमें डालकर पांच दिनके बाद छान लेना। घृत पाकमें गन्ध पाकको विधि नहीं है।

औषध सेवन काल।—रोग और रोगीके अवस्थानुसार भिन्न भिन्न समयमें औषध सेवन कराना चाहिये। पित्त और कफके प्रकोपमें तथा विरेचनादि शुद्धि कार्य्यके लिये सबेरे औषध सेवन कराना चाहिये। अपान वायु दूषित होनेसे भोजनके पहिले, समान वायुके प्रकोपमें भोजनके मध्यमें अर्थात् भोजन करती वक्त, व्यान वायु कुपित होनेसे भोजनके बाद, उदान वायुके प्रकोपमें शामको भोजनके साथ और प्राणवायुके प्रकोपमें शामको भोजनके बाद औषध सेवन कराना चाहिये। हिक्का, आक्षेप और कम्प रोगमें भोजनसे पहिले और पीछे औषध सेवन करानेका उपदेश

है। अग्निमान्द्य और अरुचि रोगमें भोजनके साथ औषध सेवन कराना चाहिये। अजीर्ण नाशक औषध रातही को सेवन करनेकी विधि है। तृष्णा, वमि, हिक्का, श्वास और विष रोगमें मुहुर्मुहु औषध सेवन कराना उचित है।

साधारणत: प्राय: सब औषध सवेरेही सेवन करनेकी प्रथा है, पर २।३ औषध रोज सेवन कराना हो तो विचार कर कोई सवेरे कोई उसके २।३ घण्टे बाद और कोई तीसरे पहरकी दिया जाता है।

नुपान विधि। – बहुतेरी दवायें सेवन करनेके बाद कोई एक पतला पदार्थ पीने की विधि है, उसीको अनुपान कहते है। किन्तु साधारणत: सहत प्रभृति जो सब द्रव पदार्थमें औषध मिला कर सेवन कराया जाता है वही अनुपान शब्दमें व्यवहृत होता आया है। औषध मात्र अनुपान विशेषके साथ देनेसे वह थोड़ेहा देरमें अधिक कार्य्यकारक होता है; इससे प्राय: सब औषध अनुपान विशेषके साथ सेवन कराना चाहिये। जो रोग नाशक औषध हो अनुपान भी वही रोग नाशक व्यवस्था करना चाहिये। कफ ज्वरमें अनुपान सहत, पानका रस, अदरखका रस और तुलसी पत्रके रसमें देना। पित्त ज्वरमें परवरका रस, खतपापड़ेका रस या काढ़ा, गुरिचका रस और नीमका छालका रस या काढ़ा। वातज्वरमें सहत, गुरिचका रस और चिरायता भिगोया पानी आदिका अनुपान देना। विषम ज्वरमें सहत, पीपलका चूर्ण, तुलसीके पत्तेका रस, हरसिंगारके पत्तका रस, बेलके पत्तेका रस और गोलमरिचका चूर्ण आदि अनुपान देना। अतिसार रोगमें बेलकी छाल, धवईका फूल और कुरया। कास, कफप्रधान श्वास और प्रतिश्याय आदि रोगमें अडूसका पत्ता, तुल-

सोका पत्ता, पान और अदरखका रस; अडूसेकी छाल, बभनेठी, मुलेठी, कटैला, कटफल और कूठ आदि द्रव्यका काढ़ा और बच, तालीश पत्र पीपल, काकड़ाशिङ्गी और वंशलोचन आदिका चूर्ण। वायुप्रधान श्वासमें बहेड़ेका काढ़ा या बहेड़ेके बीजके गूदेका चूर्ण और सहत। रक्तभेद, रक्तवमन और रक्तस्राव दूर करनेके लिये अडूसेके पत्तेका रस, विशल्यकर्णीका रस या काढ़ा, दूबका रस, बकरीका दूध और मोचरसका चूर्ण। शोथ रोगमें बेलके पत्तेका रस, सफेद पुनर्नवाका रस या काढ़ा, सूखा मूलीका काढ़ा और गोलमिरच चूर्ण। पाण्डू और कामला आदि रोगमें खेतपापड़ाका रस या गुरिचका रस आदि। मलभेद करानेके लिये त्रिवृत मूलका चूर्ण, दन्तीमूल चूर्ण, सनाय भिंगोया पानी या काढ़ा कुटकीका काढ़ा, हरीतकी भिङ्गोया पानी या गरम दूध। मूत्र विरेचन अर्थात् पिशाब साफ करानेके लिये स्थलपद्मके पत्तेका रस पत्थरचूरके पत्तेका रस, सोरा भिङ्गोया पानी, कवाबचीनीका चूर्ण और गोक्षुर बीज, कुशमूल, कासमूल, खसकी जड़ और काली ऊखके जड़का काढ़ा आदि। बहुमूत्र निवारणके लिये गुल्लरके बीजका चूर्ण, जामुनके बीजका चूर्ण, मोचरस। प्रमेह रोगमें कच्ची हल्दीका रस, आंवलेका रस, नरम सेमलके मुसलीका रस, दारुहल्दीका चूर्ण, मजीठ और असगन्धाका काढ़ा, घिसा हुआ सफेद चन्दन, गोंद भिङ्गोया पानी, कदम छालका रस और कसेरुका रस। प्रदर रोगमें गुरिचका रस, अशोक छालका काढ़ा और रक्त शोधक अन्यान्य औषध। रजःस्राव करानेके लिये मुसब्बर, उलटा कमल, लताफिटकिरीका पत्ता और अड़उलके फूलका रस। अग्निमान्द्य रोगमें अजवाइन, अजमोदा और सौफ भिङ्गोया पानी, तथा पीपर, पिपला मूल, गोलमिरच, चाभ, शोंठ और हींगका,

चूर्ण क्रिमि रोगमें बिड़ङ्ग चूर्ण, अनारके जड़का काढ़ा और अनारसका पत्ता, खजूरका पत्ता, चम्पाका पत्ता और निसिन्दा पत्तेका रस। वमन रोगमें बड़ी इलायचीका काढ़ा या चूर्ण। वायु रोगमें त्रिफला भिङ्गोया पानी, सतावरका रस, बरियारेका काढ़ा, बिदारीकन्द, आमला या त्रिफला भिङ्गोया पानी। शुक्र-वृद्धि और शरीर पुष्टिके लिये मक्खन, दूधकी मलाई, दूध, कंवाचकी बीज, बिदारीकन्द, असगन्ध, सेमरकी मुसलीका रस और अनन्तमूलका काढ़ा अनुपान व्यवस्था करना।

अवस्था विशेष की व्यवस्था।—रोग और रोगीकी अवस्था विचारकर उक्त अनुपानोमें काढ़ा या भिङ्गोया हुआ पानी एक छटांक, द्रव्यका रस २ तोले या एक तोला और चूर्ण एक आना या आधा आनेभर प्रयोग करना। चूर्ण अनुपानके साथ उपयुक्त सहत मिलाना चाहिये पित्तके आधिक्यके सिवाय अन्यान्य सब अवस्थामें सहत देना चाहिये। वटिका और चूर्ण औषधमें ही यह सब अनुपान व्यवहृत होता है। मोदक, गुग्गुलु और गुड़ आदि औषध, अवस्था विशेषमें अनुपान ठण्ढा पानी, गरम पानी और गरम दूधके साथ सेवन कराना। घृत केवल एक छटांक गरम दूध और चार आनेभर चीनीके साथ मिलाकर पीना चाहिये।

धातु आदिका शोधन और मारण विधि।

—०:०:०—

सर्व्वधातु शोधन विधि।—स्वर्णादि धातुका बहुत पतला पत्तर काटना फिर आगमें गरम कर यथाक्रम तेल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र और कुरथीके काढ़ेमें बुझाना, इसी प्रकार तीन बार करनेसे सब धातुका शोधन होता है। रांगा जल्दी गल जाता है, इससे इसका पत्तर न बनाकर केवल गलाकर तैलादि पदार्थोंमें बुझाना।

स्वर्णभस्म।—शोधित सोनेके पत्तरको कैंचीसे छोटा छोटा टुकड़ा कर काटना, फिर समभाग पारेके साथ मर्द्दन कर एक गोला बनाना। एक मिट्टीके कटोरेमें सोनेके वजन बराबर गन्धक चूर्ण रख उपर वह गोला रखना, फिर ऊपरसे गन्धक चूर्ण भर मिट्टीका लेप करना तथा ३० जङ्गली कण्डेके पुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकालकर फिर वैसही पारेके साथ खलकर गन्धक मिला पुटपाक करना। इसीतरह १४ बार मर्द्दन और पुटपाक करनेसे स्वर्णका भस्म तयार होता है।

रौप्य भस्म।—सोनेकी तरह चांदीकाभी पत्तर बनाकर समभाग पारेके साथ मर्द्दन करना। फिर समानभाग हरिताल, गन्धक और नीबूके रसमें खलकर सोने की तरह फूंकना। इसी तरह १२ पुट देनेसे चांदीका भस्म तयार होता है।

ताम्रभस्म।—समभाग पारा गन्धककी कज्जली बड़े नीबूके रसमें खलकर विशुद्ध ताम्बेके पात्रमें इसी कज्जलीका लेप-

कर मिट्टीके बरतनमें रखना तथा उपरसे ढकना रख पुटपाकमें फूंकना। पारा गन्धक के अभावमें बड़े नीबूके रसमें हिङ्गुल मिलाकर उसीका लेप करनेका भी उपदेश है। ताम्रभस्म तयार होनेपर उसका अमृतीकरण करना चाहिये, इससे वमन, भ्रम और विरेचन आदि ताम्र सेवन जनित उपद्रव नहो होता। जारित ताम्र किसी खट्टे रसमें खलकर एक गोला बनाना फिर वह गोला एक सूरणके भीतर रख सूरणके चारो तरफ मिट्टी लपेट सुखाकर गजपुटमें फूंकना, इसीको अमृतीकरण कहते है। पित्तल और कांसा भी इसी रीतिसे भस्म होता है।

वङ्ग भस्म।—लोहेकी कढ़ाईमें रांगा गलाना और क्रमशः उसमें रांगेके समान हल्दीका चूर्ण, अजवाईनका चूर्ण, जीरेका चूर्ण, इमलीके छालका चूर्ण और पीपलके छालका चूर्ण एक एक कर डालना तथा लगातार चलाते रहना। सफेद रंग और साफ चूर्ण हो जानेपर रांगेका भस्म तयार हुआ जानना। जस्ता भी इसी रीतिसे भस्म होता है।

सीसक भस्म।—लोहेके कढ़ाईमें सीसा और जवाक्षार एकत्र धीमी आंचपर चढ़ाना, सीसेको राख न होनेतक बार बार उसमें जवाक्षार मिलाकर हिलाना चाहिये। लाल रंग होजाने पर नीचे उतार कर पानीसे धो फिर आंचपर सुखा लेना। इस रीतिसे सीसेका पीला भस्म तयार होता है। काला भस्म करना हो तो, सीसा आंचपर गल जानेसे मैनसिल का चूर्ण मिलाकर चलाना जब धूलीको तरह हो जाय तब नीचे उतार रखना, फिर गन्धकका चूर्ण मिलाकर नीबूके रसमें खलकर पुटपाक करना। यह दोनो प्रकारका भस्म औषधादिमें प्रयोग होता है।

लौह भस्म।—पूर्व्वोक्त विधिके अनुसार लोहा शोधकर

अर्थात् लोहेका पत्र गरम कर क्रमशः दूध, कांजी, गोमूत्र और त्रिफलाके काढ़ेमें तीन तीनबार बुझाना। दूध, कांजी और गोमूत्र लोहेका दूना और लोहेका आठगूना त्रिफला, चौगूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहने पर छान लेना। इसी तरह निषेक कार्य्यके बाद लौहपत्रका चूर्णकर २० बार गजपुटमें फूंकना, प्रत्येक बार गोमूत्रकी भावना देना चाहिये। लोहा जितनी बार फूंका जायगा उतनही उसका गुणभी अधिक होगा। सहस्रपुटित लौह सबसे अधिक उपकारी और सब कार्य्यमें प्रशस्त है।

अभ्र भस्म।—भस्मके लिये कृष्णाभ्र लेना। पहिले कृष्णाभ्र आंचमें जलाकर दूधमें देना फिर तबक अलग अलग कर चौराईके रसमें या किसी अम्ल रसमें ८ पहर भावना देनेसे अभ्र शोधित होता है। वही शोधित अभ्रके चार भागका एक भाग शालिधान्यके साथ एक कम्बलमें बांधकर तीन दिन पानीमें भिंगा रखना, फिर हाथसे मर्द्दन करनेसे बहुत छोटा छोटा बालूकी तरह अभ्रकणा निकलता है। वही भस्म करने योग्य है। इस अभ्रको धान्याभ्र कहते है। धान्याभ्र गोमूत्रमें मर्द्दन कर गजपुटमें फूंकनेसे अभ्रभस्म तयार होता है। जबतक अभ्र भस्मका चन्द्र अर्थात् चमकीला अंश नष्ट न होजाय तबतक औषधादिमें व्यवहार करना उचित नही है। सहस्रपुटित अभ्र सब काममें प्रयोग करना चाहिये। अभ्रभस्मका अमृतीकरण विधि—त्रिफलाका काढ़ा २ सेर, गायका घी एक सेर और जारित अभ्र सवासेर यह सब द्रव्य एकत्र लोहेकी कढ़ाईमें धीमी आंचपर चढ़ाना, पाक शेषमें चूर्ण हो जानेपर अमृतीकरण शेष हुआ जानना।

मण्डूर।—लौह जलाती वक्त उसमेंसे जो मैल निकलता है, उसको मण्डूर कहते हैं। सौवर्षसे अधिक दिनका पुराना मण्डूर औषधके लिये ग्रहण करना। ६० वर्षका पुराना भी ले सकते है, किन्तु इससे कम दिनका मण्डूर कदापि नही लेना। मण्डूर आगमें सात बार गरम कर गोमूत्रमें बुझाना। फिर वही मण्डूर चूर्णकर गजपुटमें फूंकनेसे औषधके उपयोगी होता है।

स्वर्ण माक्षिक।—तीन भाग स्वर्णमाक्षिक और एक भाग सैन्धा लवण बड़े नीबूके रसमें मर्द्दनकर लौहपात्रमें पाक करना, पाकके समय बार बार हिलाना। लौहपात्र जब लाल हो जाय तब स्वर्णमाक्षिक विशुद्ध हुआ जानना फिर वही स्वर्णमाक्षिक कुरथीके काढ़ेमें किम्बा तिलके तैलमें अथवा मट्ठा किम्बा बकरीके दूधमें मर्द्दनकर गजपुटमें फूंकना। रौप्य-माक्षिक कांकरोल, मेड़ाशृङ्गी और बड़े नीबूके रसमें भिंगोकर तेज धूपमें रखनेसे विशुद्ध होता है।

तुतियाकी शोधन विधि।— बड़े नीबूके रसमें खल-कर लघु पुटमें पाक कर तीन दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे तुतिया शुद्ध तथा औषधके काम लायक होती है।

शिलाजीत शोधन।—गोमूत्रकी तरह गन्ध, काला रंग, तिक्त और कषाय रस, शीतल, स्निग्ध, मृदु और भारी हो ऐसी शिलाजीत लेना। शिलाजीत पहिले एक पहर गरम पानी में भिंगो रखना, फिर कपड़ेसे एक मिट्टीके बरतनमें छानकर दिनभर धूपमें रखना। शामको पानीके उपरवाली मलाईकी तरह पदार्थ एक बरतन में निकाल लेना, इसी तरह रोज धूपमें रखकर उसमेंकी सब मलाई लेना। यही मलाई शोधित शिला-

जीत है। असल शिलाजीत आगमें देनेसे लिङ्गकी तरह उपर को उठता है तथा उसमेंसे धूंआ नही निकलता।

सिन्दूर शोधन—दूध और किसी खट्टे रसकी भावना देनेसे सिन्दूर शुद्ध होता है।

रसाञ्जन शोधन।—रसाञ्जन चूर्ण बड़े नीबूके रसमें मिलाकर दिनभर धूपमें रखनेसे अथवा पानीमें मिलाकर छान लेनेसे भी शोधित होता है।

सोहागा शोधन—आगपर रख इसका लावा हो जानेसे यह शुद्ध होता है। फिटकिरी भी इसी तरह शुद्ध होती है।

शङ्खादि शोधन—शङ्ख, शुक्ति (सीप) और कपर्द्दक (कौड़ी) कांजीमें एक पहर दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। तथा मिट्टीके बरतनमें रख आगमें जला लेनेसे भस्म तयार होता है।

समुद्रफेन शोधन—कागजी नीबूके रसमें पीसनेसे समुद्रफेन शुद्ध होता है।

गेरुमिट्टी—गायके दूधमें घिसनेसे अथवा गायके घीमें भून लेनेसे गेरुमिट्टी शुद्ध होती है।

हिराकस—भङ्गरईयाके रसमें एक दिन भिंगोनेसे हिराकस शुद्ध होता है।

खर्पर।—सात दिन दोला यन्त्रमें गोमूत्रके साथ औटानेसे खपरिया शुद्ध होता है, फिर आगपर चढ़ा, गल जानेपर क्रमशः सैन्धव चूर्ण देना और पलासकी लकड़ीसे चलाना, राखकी तरह हो जानेपर नीचे उतार लेनेसे खर्पर तयार होता है।

हीरक भस्म।—कटेली की जड़में हीरा रखकर कुरथी या कोदोके काढ़ेमें तीन दिन दोला यन्त्रमें औटानेसे हीरा शुद्ध होता है। फिर वही हीरा आगमें खूब गरम कर हींग और सेन्धा

नमक मिलाये कुरथीके काढ़े में डूबाना, इसी तरह २१ बार डुबा-नेसे हीराभस्म तयार होता है। वक्रान्त भी इसी तरह शुद्ध और भस्म होता है।

अन्यान्य रत्न शोधन।—अन्यान्य रत्न जयन्ती पत्तेके रसमें एक पहर दोलायन्त्रमें औटाकर शुद्ध करना, फिर आगमें गरम कर यथाक्रम घिकुआरके रसमें चौलाईके रसमें और स्तनदूध में सात सात बार बूझालेनेसे भस्म तयार होता है।

मोठाविष शोधन—विषका छोटा छोटा टुकरा कर तीन दिन गोमूत्रमें भिंगोनेसे शुद्ध होता है, गोमूत्र रोज बदलना चाहिये। फिर उसकी छाल निकाल डालना।

सर्पविष शुद्धि—काले सर्पका विष पहिले सरसोंके तेलमें मिला कर धूपमें सुखाना, फिर पानका रस, अगस्तोपत्रका रस और कूठ के काढ़ेको यथाक्रम तीन तीन बार भावना देनेसे शुद्ध होता है।

जयपाल शुद्धि—जमालगोटाके बीजके मध्यभागमें जो पतला पत्ता रहता है वह निकालकर दोलायन्त्रमें दूधमें औटानेसे शुद्ध होता है।

लांगलीविष—दिनभर गोमूत्रकी भावना देनेसे शोधित होता है।

धतुरेका बीज—कूटकर गोमूत्रमें चार पहर भिंगो रखनेसे धतुरेकी बीज शुद्ध होती है।

अफीम—अदरखके रसकी १२ दफे भावना देनेसे शोधित होता है।

भांग—पहिले पानीसे खूब साफ धोकर सुखा लेना फिर दूध की भावना देकर लेनेसे शुद्ध होती है।

कुचिला—घीमें भून लेनेसे कुचिला शोधित जानना।

गोदन्त शोधन।—एक हांड़ीमें थोड़ा गोबर रखना, उसके उपर एक पान रखकर गोदन्त रखना तथा हांड़ीका मुह

बान्धकर कपड़ा और मिट्टीका लेपकर चार पहर आगमें रखनेसे गोदन्त उपरको संलग्न हो जायगा, वही विशुद्ध गोदन्त जानना। दारुमुज नामक विष हरितालकी तरह शोधन करना।

भल्लातक शोधन—पक्का भेलावा जो पानीमें डूब जाय वह लेना, फिर ईटके चूर्णमें घिसनेसे शुद्ध होता है।

नखी शोधन।—गोबरका रस या गोबर मिलाये पानीमें नखी औटाना, तथा धोकर सुखा लेना फिर घीमें भूनकर गुड़ और हरीतकीके पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखनेसे शुद्ध होता है।

हींग शोधन—लोहेकी कढ़ाईमें थोड़ा घीमें भूनना, हिलाते हिलाते तब लाल हो जाय जब शुद्ध जानना।

नौसादर शोधन।—नौसादर चूनेके पानीमें दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। अथवा गरम पानीमें खलकर मोटे कपड़ेसे छान वह पानी एक बरतनमें रखना, ठण्डा हो जानेपर नीचे जो पदार्थ जम जाय उसीको शुद्ध नौसादर जानना।

गन्धक शोधन।—लोहेकी कलछीमें थोड़ा घी गरम कर उसमें गन्धक चुर्ण देना तथा गन्धक गल जानेपर पानी मिलाये दूधमें डालना। इसी तरह सब गन्धक गलाकर दूधमें डाल देना तथा अच्छी तरह धोकर सुखा लेनेसे गन्धक शोधित होता है।

हरिताल शोधन।—पहिले सफेद कोहड़ेके रसमें फिर क्रमशः चूनेका पानी और तेल एक एकबार दोला यन्त्रमें औटानेसे हरिताल शुद्ध होता है। वंशपत्र हरिताल केवल सात दिन चूनेके पानीको भावना देनेसे शुद्ध होता है।

हिङ्गुल शोधन—हिङ्गुल चूर्ण नीबूका रस और भैसका दूध अथवा भेड़ीके दूधकी सात बार भावना देनेसे शुद्ध होता है।

हिङ्गुलसे पारा निकालना।—हिङ्गुलसे पारा निकालना। बड़े नीबूका रस अथवा नीमके पत्तेके रसमें एक पहर खलकर एक हांड़ोमें रखना तथा उसके उपर दूसरी हांड़ो पानी भरी रख संयोग स्थलको मिट्टीसे अच्छी तरह बन्द करना। उपरके हांड़ोका पानी गरम न हो इसलिये पानी बदलते रहना। इसो रीतिसे हिङ्गुलका पारा उपरवाली हांडीकी पेंदीमें लग जायगा। उसको निकाल लेना। यह पारा बहुत शुद्ध जानना इसको स्वतन्त्र रूपसे शोधन करना नही पड़ता।

पारा शोधन।—अन्यान्य पारा पहिले घिकुआर, चीतामूल, लाल सरसों, वृहती और त्रिफला इन सबके काढ़ेमें खल करना, फिर मकड़ोका जाला, ईटका चूर्ण, कालाजोरा, मेष रोमका भस्म, गुड़, सैन्धव और कांजोके साथ तीन दिन मर्द्दन करना। फिर पारेका चौथाई हिस्सा हरिद्रा चूर्ण और घिकुआरके रसमें मर्द्दन करना। साधारणतः इसी रीतिसे पारा शोधा जाता है।

शोधित पारेका ऊर्द्धपातन विधि।—पारा शोधित करनेमें कई प्रकार पातनक्रिया करना चाहिये। तीनभाग पारा और एकभाग ताम्बा एकत्र बड़े नीबूके रसमें खलकर एक गोला बनाना, वह पिण्ड एक हांड़ीमें रख उसके उपर पानी भरी दूसरी हांड़ी रख सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द कर हांड़ी चुल्हेपर रखना। उपरके हांड़ोका पानी गरम होनेसे गरम पानी निकालकर ठण्डा पानी देना। इस रीतिसे नीचेवाला हांड़ीका पारा जलभरी हांड़ीकी पेंदीमें लग जाता है, वही पारा ग्रहण करना। इसीको पारेका ऊर्द्धपातन विधि कहते है।

पारेका अधःपातन विधि।—अधःपतन करना हो तो पहिले त्रिफला, सैजनकी बीज, चीतामूल सैंधव और राई इन

सब द्रव्योंके साथ पारा खलकर कीचकी तरह होने पर एक हांड़ीके बीचमें लेप करना। दूसरी पानीभरी हांड़ीके उपर पहिली हांड़ी औंधी रख सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द करना, फिर एक गढ़ेमें दोनो हांड़ी गाड़ उपरसे आगका थोड़ा अङ्गारा रखना। गरमी पाकर उपरकी हांड़ीका पारा नीचेवाली पानीभरी हांड़ीमें गिर जायगा। इस प्रक्रियाकी पारेका अधःपतन कहते है।

तिर्य्यक्पातन विधि।—तिर्य्यक्पातन, एक घड़ेमें शोधित पारा और दूसरे घड़ेमें पानीभर दोनोके मुहपर मिट्टीका ढकना रख कपड़मिट्टीसे बन्द करना; फिर दोनो घड़ेके गलेमें छेदकर बांसकी नलीका दो भाग छेंदमें लगा सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हांड़ीमें आग लगानेसे पारा नलीके रास्तेसे पानी भरे घड़ेमें चला जायगा। इसीको तिर्य्यक्पातन कहते है। पारेका यह तीन प्रकार पातन विधि होनेसे वह शुद्ध होता है।

कज्जली प्रस्तुत विधि।—शोधित पारा और शोधित गन्धक समभाग अच्छी तरह खल करना, दोनो मिलकर काला चूर्ण हो जाय तथा पारेकी चमक बिलकुल जाती रहे तब कज्जली तयार हुई जानना। औषध विशेषमें गन्धक दूना मिलाकर कज्जली बनानेकी विधि है। वहां पारेका दूना गन्धक मिलाकर कज्जली बनाना, औषध बनानेके नियमोंमें कज्जली जहां नही लिखी है अलग अलग पारा और गन्धक लिखा है वहां पारा और गन्धककी कज्जली बनाकर व्यवहारमें लाना चाहिये।

रससिन्दूर।—शोधित पारा ४ भाग, शोधित गन्धक एक भाग और कृत्रिम गन्धक एक भाग एक दिन खलकर कज्जली

बनाना फिर एक काले कांचका दलदार बोतलका शिर थोड़ा काट कर लगातार तीनबार कपड़ा और मिट्टी लगाकर सुखा लेना, फिर उसमें कज्जली भरकर बालूभरी हांड़ीमें रखना। बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये तथा हांड़ीके नीचे कानी अङ्गुली जासके इतना बड़ा छेद करना। फिर वह बालु भरी बोतलवाली हांड़ी चुल्हेपर चढ़ा, चार दिन तक आंच देना अर्थात् पहिले बोतलसे धुंआ निकलकर नीली रंगकी शिखा होगी फिर धूंआ वगैरह बन्द हो लाल रंगकी आंच निकले तब पाक शेष हो रससिन्दूर तयार हुआ है जानना, तब नीचे उतार कर बोतलको तोड़ उपरको तरफ लगा हुआ सिन्दुर रंगका पदार्थ निकाल लेना इसी को रससिन्दूर कहते हैं।

मकरध्वज प्रस्तुत विधि।—सोनेके पत्तरका टुकड़ा ८ पल और पारा ८ पल पहिले खल करना फिर उसके साथ १६ पल गन्धक मिला खल करना; कज्जली तयार होनेपर घिकुआरके रसमें खल करना। फिर रससिन्दूरकी तरह बोतलमें भरकर तीन दिन वालूका यन्त्रमें फूंकना। रससिन्दुरकी तरह इसका भी पाक शेष अनुमान करना। मकरध्वजका पूरी मात्रा १ यव, यह अनुपान विशेषके साथ सब रोगोंमें प्रयोग होता है।

षड्गुण बलिजारण विधि।—बालुभरी हांड़ीमें मिट्टीका एक भांड़ रख, पहिले उसमें पारेका समभाग गन्धक देना, गन्धक गलकर तेलकी तरह हो जानेपर पारा देना, ऐसही क्रमशः पारा ६ गूना देनेपर बालूभरी हांड़ी नीचे उतार कर पारेका भांड़ अलग करना तथा उसके नीचे एक छेद कर पारा निकाल लेना। इसीको षड़गुण बलिजारित पारा कहते है।

इससे मकरध्वज तयार होनेसे उसको षड़गुण बलिजारित मकरध्वज कहते है।

बिना शोधित द्रव्यका अनिष्ट।—जो सब द्रव्योंको शोधन विधि लिखी गई है उसमें कोई भी दवा बिना शोधे दवा-योंमें प्रयोग नहो करना तथा धातु आदि जो सब द्रव्य भस्म करनेकी विधि लिखी है वह सब द्रव्यका भस्म प्रयोग करना अन्यथा प्रयोग करनेसे विविध अनिष्ट होता है।

यन्त्र-परिचय।

—०:*:०—

औषध तयार करनेके लिये नानाप्रकारके यन्त्रोंकी जरूरत पड़ती है। यहां हम सब प्रकारके यन्त्रोंकी तस्वीर और नाम व्योरेवार लिखते हैं।

एक हांड़ीमें पानी भरकर गढ़ेमें रखना, तथा दूसरी हांड़ीमें दवा लपेटकर, पहिली हांड़ीके उपर औंधी रख संयोग स्थलको मिट्टीसे बन्द करना। फिर उपरवाली हांड़ीके ऊपर आगका अंगारा रखनेसे उसका औषध नीचेवाली पानीभरी हांड़ीमें क्रमशः गिर जायगा। पारेकी अधःपतन विधि इसी यन्त्रसे होता है।
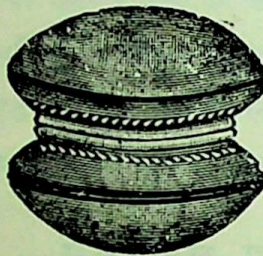
भूधर यन्त्र
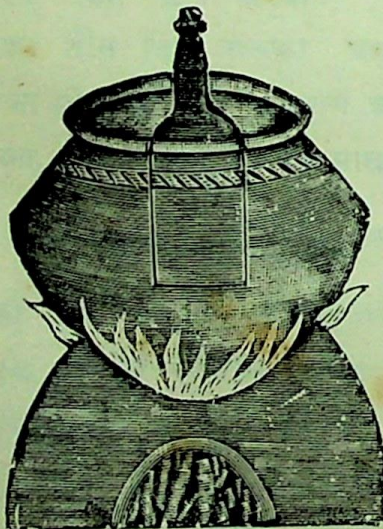
एक हांड़ीमें कवची अर्थात् औषधपूर्ण और मिट्टी लपेटा बोतल रखो, बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये। फिर हांड़ी चुल्हेपर चढ़ाकर निर्द्दिष्ट समय तक आग पर रखना। इसीका बालुकायन्त्र कहते हैं। इसी यन्त्रमें रस-सिन्दूर और मकरध्वज आदि तयार होता है।

यन्त्र बालुका यन्त्र।

एक हाथ गहिरा गढ़ा खोदकर उसमें एक हांड़ी रखो, तथा दूसरी हांड़ीमें औषध भर उसका मुह एक छेदवाले ढकनेसे बन्दकर नीचेवाली हांड़ी पर औंधी रख संयोग स्थल अच्छी तरह मिट्टीसे बन्द करो तथा मिट्टीसे गढ़ा उपरवाली हांड़ीपर आग जलाओ इससे उपरवाली हांड़ीकी दवा ढकनेसे छेदसे नीचेवाली हांड़ीमें गिर जायगी। आग ठण्ढी होनेपर गढ़ेसे हांड़ी निकाल भीतर की दवा निकाल लेना। इसीको पाताल यन्त्र कहते हैं।
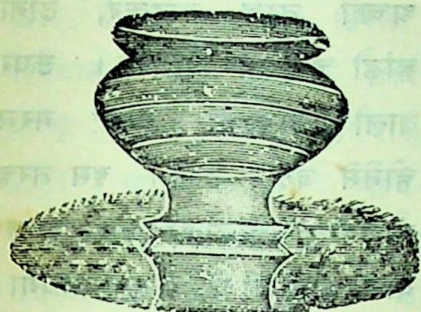
पाताल यन्त्र।

दो लम्बी हांड़ी एकमें पारा और दूसरीमें पानीभर दोनो हांड़ीका मुह टेढ़ाकर मिलाना तथा संयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हांड़ीमें आंच लगातेही पारा उड़कर पानीभरी हांड़ीमें क्रमश: चला जायगा। इसीको तिर्य्यकपातन यन्त्र कहते हैं। दोनो हांड़ीके गलेमें नल लगाकर भी एक प्रकार तिर्य्यकपातन यन्त्र बनता है। जिसका विवरण तिर्य्यकपातन विधिमें लिख आये हैं।

तिर्य्यकपातन यन्त्र।

एक हांड़ीमें पारा दूसरी हांड़ीमें पानीभर उसके उपर रखना तथा संयोगस्थल मिट्टीसे अच्छी तरह बन्दकर, दोनो हांड़ी चुल्हेपर चढ़ाना। ऊपर वाली हांड़ीका पानी गरम होनेसे बदल देना। इस तरह नीचेवाली हांड़ीका पारा उपर-वाली हांड़ीकी पेंदीमें लग जायगा। पाक शेषमें हांड़ी ठण्ढी होनेसे नीचे उतार कर पेंदीका पारा निकाल लेना। इसको विद्याधर यन्त्र कहते हैं। पारेकी ऊर्द्ध पातनक्रिया इसी यन्त्रसे होती है।
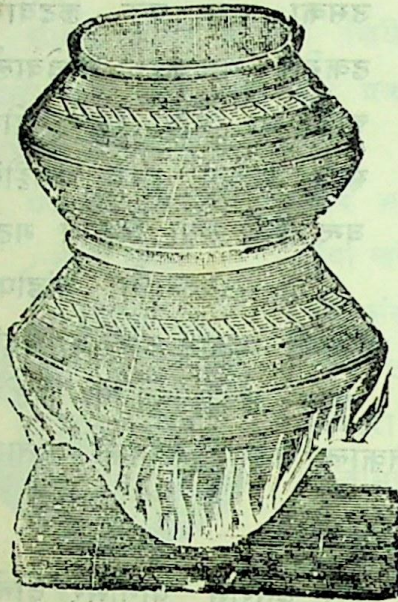
विद्याधर यन्त्र।

जो सब पदार्थ दोलायन्त्रमें पाक करना हो उसकी एक पोटली बनाना और हांड़ीका आधा अंश निर्दिष्ट द्रव पदार्थ या चूर्णसे पूर्ण करना तथा मुह पर लम्बी लकड़ी रख उसमें वह पोटली बांधकर हांड़ीमें लटका देना। फिर हांड़ी चुल्हेपर रख आग लगाना। इसीको दोला यन्त्र कहते है। अनेक पदार्थ स्विन्न या सिद्ध करनेके लिये यह यन्त्र व्यवहृत होता है।

दोलायन्त्र।
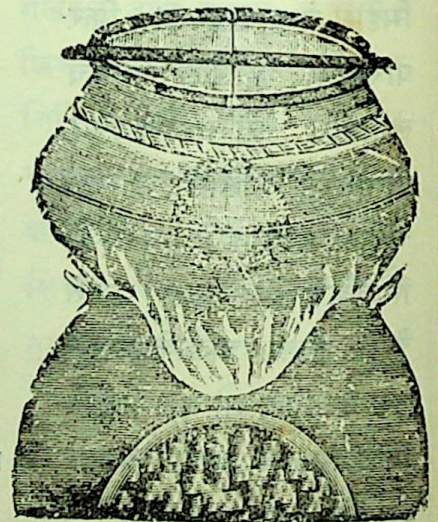
डमरू यन्त्रमें उपरवाली हांड़ी नीचेवाली हांड़ीपर औंधा रखना तथा संयोग-स्थल मिट्टीसे बन्द करना। नीचेवाली हांड़ीमें पारा आदि पदार्थ और उपरवाली हांड़ी खाली रहे। नीचे-वाली हांड़ी चुल्हेपर रख उपरवाली पर पानी को धार देनेसे नीचेकी हांड़ी-का पारा उपरवाली हांड़ीमें लग जायगा। डमरू और विद्याधर यन्त्र प्रायः एकही काममें व्यवहृत होता है।

डमरू यन्त्र।
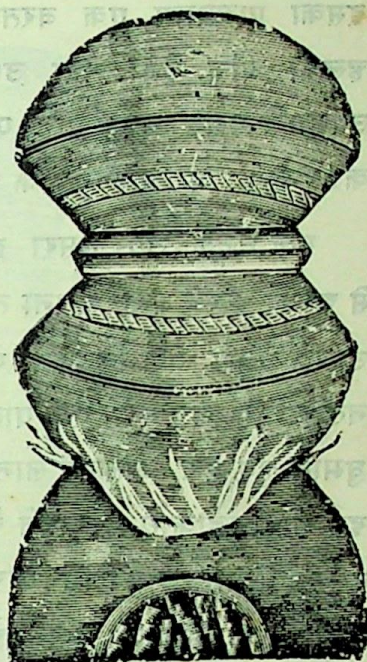
वकयन्त्रमें जो सब पदार्थ पाक करना हो उस पदार्थसे आधी हांड़ी पूर्ण करना तथा उसके उपर दो नलवाला पात्र रख संयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। नलवाले पात्रके किनारे-के नीचे एक अङ्गुल चौड़ी कार्निस रहना चाहिये ; उसी कार्निस पर एक नल लगा

वकयन्त्र।

उसका प्रान्तभाग बोतलमें रखना ; तथा उसी पात्रके उपर चारो तरफ दो अङ्गुल ऊंचा किनारा लगाकर और एक नल लगाना इसका प्रान्तभाग एक बरतनमें रखना, फिर उस हांड़ोके नीचे हलकी आंच देना तथा उपरवाले पात्रमें बार बार पानी देना। उपरवाले नलसे वही पानी पात्रमें आगिरेका। इसीको वकयन्त्र कहते है। शराब और अर्क इसी यन्त्रसे उतारा जाता है।

एक घड़ेके उपर दूसरा छोटा घड़ा औंधारख संयोगस्थान मिट्टी से अच्छी तरह बन्द करना तथा उपरके घड़ेमें एक छिद्रकर एक नल लगाना यह नल एक पात्रसे घुमाते हुए एक बोतलमें लाना। इसीको नाड़ीकायन्त्र कहते है। दूसरे पात्रमें अर्थात् जिस पात्रसे नल घुमें उसमें पानी भरा रहे। आंच लगानेसे भाफ उपर उठकर नलसे बाहर हो पानीके बरतनमें ठण्ढा होनेसे पानी हो जायगा तथा नलके प्रान्तभागसे बाहर निकलेगा। तब वहां एक बोतल रख वह पानी लेना चाहिये। इस यन्त्रसे भी सुरा अर्क आदि उतारा जा सकता है।
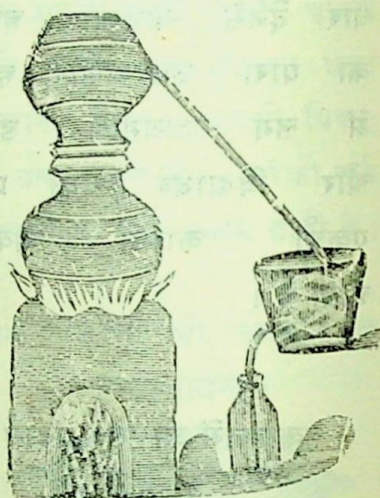
नाड़िकायन्त्र।

कवची यन्त्र—न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा एक मोटा बोतल, मिट्टी और कपड़ेसे अच्छी तरह लपेटकर सुखा लेना। उसीको कवचीयन्त्र कहते है। रससिन्दूरादि पाक करनेमें इसकी जरूरत पड़ती है। इसमें दवा भर बालुकायन्त्रमें पाक करना चाहिये।

वारुणी यन्त्र प्राय: नाड़िका यन्त्रकी तरह होता है। पर नाड़िका यन्त्रका नल एक पात्रमें गेरूडी मारे रहता है; इसमें उसके बदले बोतल हो ठण्ढा पानी भरे एक पात्रमें रखना। नलसे भाफ आकर पानीभर पात्रमें बोतल रहनेसे ठण्ढापाकर साफ पानी हो जाता है। सुतरां नाड़िका यन्त्र और वारुणी यन्त्र दोनो एकही प्रकारके कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

वारुणीयन्त्र।
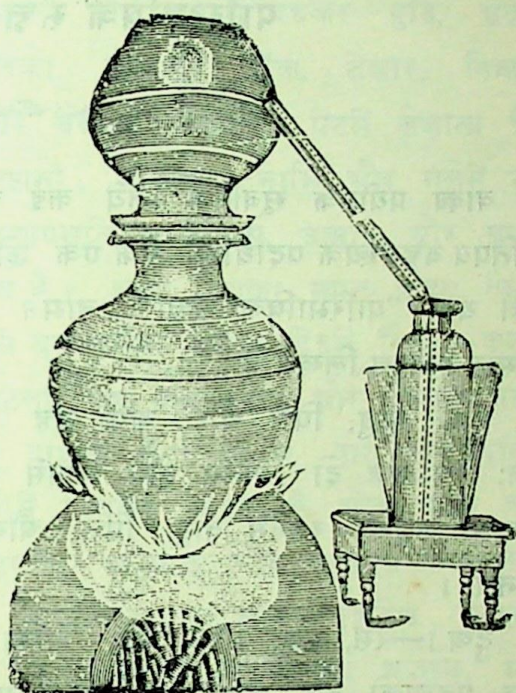
अन्धमूषायन्त्र।—फूसकी राख २ भाग, दीमककी मिट्टी १ भाग, मण्डूर १ भाग, सफेद पत्थरका चूर्ण १ भाग, बकरीका दूध २ भाग और मनुष्य केश एकत्र खलकर गोस्तनकी तरह एक प्रकार पात्र बनाना। इसीको मूषा कहते है। मूषा सूख जानेसे उसमें पारा आदि पदार्थ रख दूसरा मूषा उसके उपर औंधारख दोनोका संयोग स्थान मूषा बनानेके उपादानसे अच्छी तरह बन्द करना। इसीको अन्धमूषा कहते है। अन्धमूषाको वज्रमूषा भी कहते है।

पारिभाषिक संज्ञा।

वाक्य प्रयोगके सुबीतेके लिये कई लम्बे चौड़े विषय और कतिपय बहुसंख्यक पदार्थोंका एक एक छोटा नाम रखा गया है। वही यहां "पारिभाषिक संज्ञा" नामसे अभिहित कर उसका विस्तृत विवरण लिखते है।

दोष—वायु, पित्त और कफ यह तीन शरीर दोष और रजः तम यह दो मानस दोष नामसे अभिहित है। त्रिदोष शब्दका उल्लेख रहनेसे वायु, पित्त और कफ यह तीन दोष जानना।

दुष्य।—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा और शुक्र यह सात पदार्थको दुष्य कहते हैं। रोग मात्रमें इनमेंसे कोई एक अवश्यही दूषित होता है। अविकृत अवस्थामें ये सब शरीरको धारण करते है इससे दूसरा नाम धातु है।

मल।—मल, मूत्र, स्वेद, क्लेद और सिङ्घानक आदि पदार्थको मल कहते है, इसका नाम किट्ट भी है। किसी किसी जगह वातादि दोषत्रय भी मल नामसे अभिहित होता है।

कोष्ठ।—आमाशय, ग्रहणी नाड़ी, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय (प्लीहा और यकृत्) हृदय, फुसफुस और गुह्यनाड़ी, यह आठ स्थानको कोष्ठ कहते है।

शाखा।—रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और त्वक यह सात अवयवको शाखा कहते है।

पञ्चवायु।—पञ्चवायु।—प्राण, अपान, **समान**; उदान और व्यान; नाम भेदसे शरीरमें पांच प्रकार वायु है। प्राण वायु मस्तक, छाती और कण्ठमें रहकर बुद्धि, हृदय, इन्द्रिय और चित्तवृत्तिको चलाना, छींक, ढेकार, निश्वास आदिका निकालना और अन्नादि पदार्थको पेटमें लेजाता है। उदान वायुका स्थान छाती; नासिका, नाभि और गलेमें यह बिचरण करता है। वाक्यप्रभृति कार्य्योद्यम, उत्साह और स्मरण आदि उदान वायुके कार्य्य है। व्यान बायुका स्थान हृदय किन्तु यह अति वेगवान है इससे यह सर्व्वदा समस्त देहमें विचरण करता है। चलना, उठना, बैठना, आंख बन्द करना और बोलना आदि यावतोय क्रिया व्यान वायुकी है। समान वायु पाचकादिके पास कोष्ठके सब स्थानोमें विचरण करता है और अपक्व अन्न आमाशयमें लेजाकर उसका परिपाक और मलमूत्र निकालना आदि कार्य्य करता है। अपान वायुका स्थान गुह्यदेश; नितम्ब, वस्ति, लिङ्ग और ऊरूमें यह विचरण करता है तथा आर्त्तव, मल, मूत्र और गर्भको निकालता।

पञ्चपित्त।—पञ्चपित्त।—शरीरका पित्त कार्य्यभेदके अनुसार पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक, भ्राजक ये पांच प्रकारमें विभक्त है। जो पित्त आमाशय और पक्वाशयमें रहकर खाये हुए पदार्थको पचाता है उसको अग्नि और जो अन्नको पचाकर उसका सार और मल अलग अलग विभक्त करता है तथा रञ्जकादि बाकी ४ प्रकारके पित्तोंको बढ़ाता है उसको पाचक कहते है। जो पित्त आमाशयमें रहकर रसको रक्तवर्ण बनाता है उसका नाम रञ्जक है। जो पित्त हृदयमें रहकर बुद्धि, मेधा और अभिमानादि द्वारा अभिप्रेत विषयोंको कराता है उसका

नाम साधक है। जो पित्त आंखमें रहकर रूपको देखता है उसको आलोचक कहते है और जो पित्त त्वचामें रहकर त्वचाको दीप्ति बढ़ाता है उसको भ्राजक कहते है।

पञ्चश्लेष्मा।—पञ्चश्लेष्मा।—शरीरका कफभी भिन्न भिन्न कार्य्यके अनुसार अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक, और श्लेषक ये पांच नामसे विभक्त है, जो कफ छातीमें रहकर अपने क्लेद पदार्थसे सन्धिस्थान आदि अन्यान्य स्थानके कार्य्यमें मदद देता है उसको अवलम्बक कहते है। जो आमाशयमें रहकर कठिन अन्नको नरम करता है उसको क्लेदक कहते है। जो रसनामें रहकर मधुरादि रसका अनुभव कराता है उसका नाम बोधक है। जो मस्तकमें रहकर चक्षु आदि इन्द्रिय समूहोका तृप्तिसाधन करता है उसका नाम तर्पक और जो कफ सन्धिस्थानमें रहकर सन्धिस्थानका मिलन आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य करता है उसको श्लेषक कहते है।

त्रिकटु—शोंठ, पीपल और गोलमिरच यह तीन द्रव्यको त्रिकटु या त्र्यूषण कहते है।

त्रिफला—आंवला, हर्रा और बहेड़ा ये तीन द्रव्यका नाम त्रिफला।

त्रिमद—बाभिरङ्ग, मोथा और चीतामूल यह तीनको त्रिमद कहते है।

त्रिजात—दालचीनी, बड़ीलायची और तेजपत्ता इसको त्रिजात या त्रिसुगन्ध कहते है।

चातुर्जात—दालचीनी, बड़ीलायची, तेजपत्ता और नागकेशर ये ४ द्रव्यको चातुर्जात कहते है।

चातुर्भद्रक—शोंठ, अतोस, मोथा और गुरिच यह चार द्रव्यका चातुर्भद्रक हैं।

पञ्चकोल - पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोंठ यह पांच द्रव्यको पञ्चकोल कहते है।

चतुरम्ल और पञ्चाम्ल—बैर, अनार, इमली और थैकल यह चार अम्ल पदार्थको चतुरम्ल और इसके साथ जम्बोरी नीबू मिलानेसे पञ्चाम्ल कहते हैं।

पञ्चगव्य—दही, दूध, घृत, गोमूत्र और गोमय, यह पांचको पञ्चगव्य कहते है।

पञ्चपित्त—वराह, छाग, महिष, रोहित मछली और मयूर यह पांच जीवके पञ्चपित्त कहते है।

लवणवर्ग—एक लवणका उल्लेख हो तो सैन्धव, द्विलवण शब्दमें सैन्धव और सौवर्च्चल, त्रिलवणमें सैन्धव, शौवर्च्चल और काला नमक; चतुर्लवणमें सैन्धव, सौवर्च्चल, कालानमक और सामुद्र; पञ्चलवणमें संधव, सौवर्च्चल, कालानमक, सामुद्र और औद्भिद पांच प्रकार लवण जानना। लवणवर्गका उल्लेख रहनेसे यही पांचो ग्रहण करना।

चीरिवृक्ष—गुल्लर, बड़, पीपर, पाकड़ और वेतस यह पांचको चीरिवृक्ष कहते है।

स्वल्पपञ्चमूल—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह पांच पदार्थको स्वल्प पञ्चमूल कहते हैं।

वृहत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गम्भारी पाटला और गणियारी, यह पांच द्रव्यको वृहत् पञ्चमूल कहते है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु यह पांचको तृण पञ्चमूल कहते हैं।

मधुर वर्ग—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, चोरकाकोली, मुलेठी, मुगानी माषोणी और जीवन्ती यह दस द्रव्यका मधुर वर्ग या जीवनीयगण कहते है।

अष्टवर्ग—मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, काकोली, चीरकाकोली ऋद्धि और वृद्धि यह आठ द्रव्य को अष्टवर्ग कहते हैं।

जीवनीय कषाय—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, चीरकाकोली, मुगाणी, माषाणी, जीवन्ती और मुलेठी यह दस द्रव्यको जीवनीय अर्थात् आयुवर्द्धक कहते है।

वृंहणीय कषाय—सत्यानासी, राजचत्रक, बरियारा, बनकपास, श्वेतबिदारीकन्द और बिधारा यह छ द्रव्य वृंहणीत अर्थात् पुष्टिकारक है।

लेखनीय कषाय—मोथा, कूठ, हलदी, दारुहलदी, वच, अतीस, कुटकी, चीतामूल, करञ्ज और श्वेत वच यह दस द्रव्य लेखनीय अर्थात् मलखुरचकर निकालनेकी तरह सञ्चित दोषोंका नाशक है।

भेदनीय कषाय—त्रिवृत मूल, अकवन, एरण्ड, भेलावा, दन्ती मूल, चीतामूल, करञ्ज, शङ्खपुष्पी, कुटकी और सत्यानासी यह दश द्रव्य भेदनीय अर्थात् मलविरेचक है।

सन्धानीय कषाय—मुलेठी, गुरिच, पिठवन, अकवन, बराहक्रान्ता, माचरस, धवड़फूल, लोध, प्रियङ्गु और कटफल यह दसको सन्धानीय अर्थात् टूटी हड्डीका संयोजक।

दीपनीय कषाय—पीपल, पीपलामूल चाभ, चीतामूल, शोंठ, अम्लवेतस, (थैकल) मिरच अजवाइन, भेलवा और हींग यह दस द्रव्य दीपनीय अर्थात् अग्नि उद्दीपक है।

वल्यकषाय - बड़ाखीरा, कंवाच, शतावर बिदारीकन्द, असगंध, सरिवन, कुटकी, बरियारा और पीला बरियारा यह दस वल्य अर्थात् बलकारक है।

वर्ण्य कषाय—लालचन्दन, पतङ्गवृक्ष, पद्माक, खसकी जड़, मुलेठी, मजीठ, अनन्तमूल, काकोली, चीनी और दूर्वा यह दस वर्ण्य अर्थात् वर्णकी उज्वलता बढ़ाता है।

कण्ठ्य कषाय—अनन्तमूल, ईक्षुमूल, मुलेठी, पीपल, द्राक्षा, बिदारीकन्द, कटफल, खुलकुड़ि, वृहती और कंकारी यह दसकी कण्ठ्य अर्थात् स्वरशुद्धिकारक कहते है।

हृद्य कषाय—आम, अमड़ा, मदार, करञ्ज, आमरुल, अम्लवेतस, शेयाफूल, बैर, अनार और बड़ानीबू यह हृद्य अर्थात् रुचिकारक है।

तृप्तिघ्न कषाय—शोंठ, चीतामूल, चाभ, विड़ङ्ग, मूर्व्वामूल, गुरिच, बच, मोथा, पीपल और परवर यह दस तृप्तिघ्न अर्थात् अक्षुधा या आहारमें अनिच्छा नाशक है।

अर्शोघ्न कषाय—कुरैया, बेलकी गिरी, चीतामूल, शोंठ, अतीस, हर्रा, जवासा, दारुहल्दी, वच और चाभ यह दस अर्शनाशक है।

कुष्ठघ्न कषाय—खैर, हरीतकी, आंवला, हल्दी भिलावा, छातीम छाल, अमिलतास, करवीर, विड़ङ्ग और जातीफूलका नरम पत्ता यह दस कुष्ठनाशक है।

कण्डुघ्न कषाय—लालचन्दन, खसकी जड़, अमिलतास, करञ्ज, नीम, कुरैया, सरसो, मुलेठी, दारुहल्दी और मोथा यह दस-कण्डुनाशक है।

क्रिमिघ्न कषाय—सैजन, मिरच, शमठशाक, केऊ, विड़ङ्ग, समालु, लताफिटकिरी, गोक्षुर, बभनेठी और चूहाकानी यह दस द्रव्य क्रिमिनाशक है।

विषघ्न कषाय—हल्दी, मजीठ, रास्ना, छोटी इलायची, श्यामालता, लालचन्दन, निर्म्मली फल, शिरीष, सम्हालू और छातिम यह दस द्रव्य विषनाशक है।

स्तन्यजनन कषाय—खसकी जड़, शालिधान, साठीधान, ईक्षुवालिका, दर्भ कुशकी जड़, काशकी जड़, गुरिच, कण्डा और गन्धतृण यह दस स्तनदुग्धजनक है।

स्तन्यशोधन कषाय—अकवन, शोंठ, देवदारु, मोथा, मूर्व्वामूल, गुरिच, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, यह दस स्तन्यदूधका शुद्धिकारक है।

शुक्रजनन कषाय—जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, सरिवन, पिठवन, मेदा, बांदरी, जटामांसी और काकड़ासिङ्गी, यह दस द्रव्य शुक्रवर्द्धक है।

शुक्रशोधन कषाय—कूठ, एलवालुक, कटफल, समुद्रफेन, कदमका गोंद, इक्षु, खागड़ा, कुलेखाड़ा, मौलसरीका फूल और खसकी जड़ यह दस शुक्रशोधक है।

स्नेहोपग कषाय—द्राक्षा, मुलेठी, गुरिच, मेदा, बिदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी; यह द्रव्य स्नेहोपग अर्थात् स्नेहक्रियामें व्यवहृत होता है।

स्वेदोपग कषाय—सेंजन, एरण्ड, अकवन, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, यव, तिल, कुरथी, उरद और बेर; यह दस स्वेदोपग अर्थात् स्वेदक्रियामें व्यवहृत होता है।

वमनोपग कषाय—सहत्, मुलेठी, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, कदम्ब, जलवेतस, तेलाकुचा, शणपुष्पी, अकवन और अपामार्ग; यह दस द्रव्य वमनोपग अर्थात् वमन कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

विरेचनोपग कषाय—द्राक्षा, गाम्भारी फल, फालसा, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, बड़ी बेर, छोटी बेर, शियाफूल और पीलूफल यह दस द्रव्य विरेचनोपग अर्थात् जुलाबमें व्यवहृत होता है।

आस्थापनोपग कषाय—त्रिवृतमूल, बेल, पीपल, कूठ, सरसो, बच, इन्द्रयव, सोवा, मुलेठी और मेनफल यह दस द्रव्य आस्थापनोपग अर्थात् वस्तिक्रिया (पिचकारी) में व्यवहृत होता है।

अनुवासनोपग कषाय—रास्ना, देवदारू, बेत, मैनफल, सोवा, श्वेतपुनर्नवा, गोक्षुर, गणियारी और श्योनाक छाल, यह दस द्रव्य अनुपासनोपग अर्थात् स्नेह पिचकारीमें व्यवहृत होता है।

शिरोविरेचनोपग कषाय—लताफिटकिरी, नकछिकनी, मिरच, पीपल, विड़ङ्ग, सैजनकी बीज सरसो, श्वेत अपराजिता, अपामार्गकी बीज और नील अपराजिता, यह दस द्रव्य शिरोविरेचन अर्थात् नस्यक्रियामें उपयोगी है।

छर्द्दिनिग्रह कषाय—जामुनका पत्ता, आमका पत्ता, बड़ा नीबू, खट्टी बेर, अनार, यव, मुलेठी, खसकी जड़, सौराष्ट्रमृत्तिका और धानका लावा, यह दस वमन निवारक है।

हिक्कानिग्रह कषाय—शठी, कूठ, बेरके गुठलीका गूदा, कण्टकारी, वृहती, बांदरी, हरीतकी पीपल, जवासा और काकड़ाशिङ्गी; यह दस हिक्का (हुचकी) निवारक है।

पूरीष संग्रहणीय कषाय—प्रियङ्गु, अनन्तमूल, आमकी गूठली, मुलेठी, मोचरस, बाराहक्रान्ता, धवईफूल, बभनेठी और पद्मकेशर यह सब द्रव्य पूरीष संग्राहक अर्थात् मलरोधक है।

पूरीष विरजनीय कषाय—जामुनकी छाल, शल्लकी छाल, कवांच, मुलेठी, मोचरस, गन्धाविरोजा, जली मिट्टी, विदारीकन्द,

नीला कमल और बिनाछिलकेका तिल, यह दस द्रव्य पूरीष विरजनीय अर्थात् दोषके कारण मलका रंग विकृत होनेसे इससे प्रकृत वर्ण होता है।

मूत्रसंग्रहणीय कषाय—जामुनको बीज, आमकी गुठली, पाकड़, बड़, अमड़ा, गुल्लर, पीपर, भेलावा, अम्लकुचा और खेर; यह दस द्रव्य मूत्रसंग्राहक है।

मूत्रविरेचनीय कषाय—बांदरी, गोक्षुर, बकफूल, हुड़हुड़, पाथरचूर, शरमूल, कुशमूल, काशमूल, गुरिच और दर्भमूल; यह मूत्रविरेचक है।

मूत्रविरजनीय कषाय—थोड़ा सूखा पद्म, नीला कमल, लाल-पद्म, श्वेत उत्पल, सुगन्धयुक्त नीलोत्पल, श्वेतपद्म, शतदल पद्म, मुलेठी, प्रियङ्गु, और धवईफुल, यह दस द्रव्य मूत्रको विवर्णता नाशक है।

कासहर कषाय—द्राक्षा, हरीतकी, आंवला, पीपल, अमिलतास, कांकड़ाशिङ्गी, कण्टकारी, लाल पुनर्नवा, सफेद पुनर्नवा और भूंई आंवला, यह दस द्रव्य कासनाशक है।

श्वासहर कषाय—शठी, कूठ, अम्लवेतस, इलायची, हींग, अगुरू, तुलसी, भूंई आमला, जीवन्ती और शङ्खपुष्पी, यह दस द्रव्य श्वासनाशक है।

शोथहर कषाय—पाटला, गणियारी, बेल, श्योनाक, गाम्भारी, कण्टकारी, वृहती, सरिवन, पिठवन और गोक्षुर, यह दस द्रव्य शोथनाशक है।

ज्वरहर कषाय—अनन्तमूल, चीनी, अकवन, मजीठ, द्राक्षा, चिरौंजी, फालसा, हरीतकी, आंवला और बहेड़ा, यह दस द्रव्य ज्वरनाशक है।

श्रमहर कषाय—द्राक्षा, खजूर, चिरौंजी, बैर, अनार, काकगुल्लर, फालसा, ईक्षु, जौ और साठीधान, यह दश द्रव्य श्रान्तिनाशक है।

दाहप्रशमन कषाय—धानका लावा, श्वेतचन्दन, गाम्भारी फल, मुलेठी, चीनी, नीलोत्पल, खसकी जड़, अनन्तमूल, गुरिच और बाला, यह दस द्रव्य दाह निवारक है।

शीतप्रशमन कषाय—तगरपादुका, अगुरू, धनिया, शोंठ, अजवाईन, बच, कण्टकारी, गणियारी, श्योनाक और पिपल, यह दस द्रव्य शीत निवारक है।

उदर्द्द प्रशमन कषाय—गाब, पियाल फूल, खैर, पपड़ी खैर, छातिम शाल, अर्ज्जुन, पीतशाल और जङ्गली बबूल, यह दस द्रव्य उदर्द्द रोग नाशक है।

अङ्गमर्द्द प्रशमन कषाय—शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, एरण्डमूल, काकोली, लाल चन्दन, खसकी जड़, इलायची और मुलेठी यह दस द्रव्य अङ्गमर्द्द निवारक है।

शूल प्रशमन कषाय—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, गोलमिरच, अजवाईन, अजमोदा, जीरा और शालिंचा, यह दस द्रव्य शूल निवारक है।

शोणित स्थापन कषाय—सहत, मुलेठी, केशर, मोचरस, जली मिट्टी वा सोन्धी मिट्टी, लोध, गेरूमिट्टी, प्रियङ्गु, चीनी और धानका लावा यह दस द्रव्य रक्तरोधक है।

वेदनास्थापन कषाय—शाल, कायफल, कदम्ब, पद्मकाष्ठ, पुन्न ग, मोचरस, शिरीष, वेतस, एलवा और अशोक; यह दस द्रव्य वेदनास्थापक अर्थात् जहांको दर्द आराम न होनेसे विपत्तिकी आशङ्का है वहां यह सब द्रव्य प्रयोग करना चाहिये।

संज्ञास्थापन कषाय—हींग, कटफल, जङ्गलीबबूल, बच, ओर-पुष्पी, ब्रह्मीशाक, भूतकेशी, जटामांसी, गुग्गुलु और कुटकी ; यह दस द्रव्य संज्ञास्थापक है।

प्रजास्थापन कषाय—बड़ा खीरा, ब्रह्मीशाक, दूर्व्वा, श्वेतदूर्व्वा, पाटला, आमला, हरीतकी, कुटकी, बरियारा और प्रियङ्गु ; यह दस द्रव्य प्रजासंस्थापक अर्थात् गर्भस्राव आदि निवारक है।

वयःस्थापन कषाय—गुरिच, हरीतकी, आंवला, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतमूली, थानकुनी, शालपाणी और पुनर्नवा, यह दस द्रव्य वयःस्थापक अर्थात् जरा प्रभृति निवारक है।

विदारी गन्धादिगण—शालपानी, बिदारीकन्द, गोरक्षचाकुला, शतमूली, अनन्तमूल, श्यामालता, जीवक, ऋषभक, माषोणी, मुगानी, वृहती, कण्टकारी, पुनर्नवा- एरण्डमूल, गोवालकी लत्ता, बिछुटी, कंवाच इन सबको बिदारी गन्धादि कहते है। यह बन-स्पति पित्त, वायु, शोथ, गुल्म अङ्गमद और ऊर्द्ध्वश्वास और खांसी आदि रोगोंको आराम करता है।

आरग्वधादिगण—कंवाच, मैनफल, केवड़ेका फुल, कुरैया, अकवन, कांटेदार बैगन, रक्तलोध, मूर्व्वा, इन्द्रयव, छातिमकी छाल, नीमकी छाल, पीतझांटी, नीलझांटी, गुरुच, चिरायता, महाकरञ्ज, नाटाकरञ्ज, डहर करञ्ज, परबरकी लत्ती, चिरायतेकी जड़, करेला, इन सबको आरग्वधादिगण कहते है यह कफ, विष, मेह, कोढ़, ज्वर, कै खजुली इन सबका आराम करता है।

बरुणादिगण—बरुण, नीलझांटी, सैजन, रक्तसेजन, जयन्ती, मेढ़ाश्रृङ्गी, डहरकरञ्ज, करञ्ज, मूर्व्वा, गणियारी, श्वेतझांटी, पीतझांटी, तेलाकुचा, अकवन, बड़ी पीपल, चीतामूल, शत-मूली, बेलकी गिरी, काकड़ाश्रृङ्गी, कुशमूल, वृहती, कण्टकारी,

इन सबको वरुणादिगण कहते है। इससे कफ मेदोरोग, शिरका दर्द, गुल्म और अन्तर्विद्रधि रोग आराम होता है।

वीरतर्व्वादिगण—अर्ज्जुनका छाल, नीलझांटी, पीतझांटी, कुशमूल, फुनगी, गुरिच, नरकटका जड़, काशमूल, पाथरचूर, गणियारी, मुर्वा, अकवन, गजपीपल, शिवनाक, सफेद झाटी, नीला-कमल ब्रह्मी और गोत्तुर इनको वीरतर्व्वादिगण कहते है। इससे वायुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात आराम होता है।

सालसारादिगण—साल, आसन, खैर, पपड़िया खैर, तमाल, सुपारी, भोजपत्र, मेषशृङ्गी, तिनिस, चन्दन, लालचन्दन, शिसीं, शिरीष, पियाशाल, धव, अर्ज्जुन, साल, सगवान, करञ्ज, डहरकरञ्ज, लताशाल, अगुरु और कालिया काष्ठ, इन सबको सालसारादिगण कहते है। इससे कुष्ठ, प्रमेह, पांडु, कफ और मेदोरोग दूर होता है।

लोध्रादिगण—लोध, सावर, लोध, पलाश, शिवनाक, अशोक, बारङ्गी, कायफल, एलवा, कंवर्त्त मोथा, शल्लकी, जिङ्गिनी, कदम्ब, शाल और कदली, इन सबका लोध्रादिगण कहते है, यह मेदोरोग, कफ और योनिदोष निवारक, स्तम्भनकारक, व्रण-शोधक और विषनाशक है।

अर्कादिगण—अकवन, सफेद अकवन, करञ्ज, डहर करञ्ज, हाथीसुंड़, अपामार्ग, बभनेठी, रास्ना, बिदारीकन्द, बीनुटा, अकवन वृत्त, इङ्गुदी वृत्त, इनको अर्कादिगण कहते है, इससे कफ मेदोरोग क्रमि और कुष्ठरोग आराम होता है। तथा यह व्रण रोगमें विशेष उपकारी है।

सुरसादिगण—तुलसी, सफेद तुलसी, क्षुद्रपत्र तुलसी, बन-तुलसी, काली तुलसी, गन्धतृण, कालकासुंदी, अपामार्ग, नाग-दाना, विड़ङ्ग, जायफल, सरसों, समालु, कुकसीमा, चुहाकानी,

बभनेठी, प्राचीबल. काकमाची और कुचिला इसको सुरसादिगण कहते है। यह क्रमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास, कास रोग निवारक और व्रण शोधक है।

मुष्ककादिगण—घण्टापाटला, पलाश, धव, चीतामूल, धतुरा, शिसीं, सेहुड़ और त्रिफला इनको मुष्ककादिगण कहते है यह मेदोरोग, प्रमेह, अर्श, पाण्डु, शकरा और अश्मरीरोग निवारक है।

पिप्पल्यादिगण—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, गोलमिरच, बड़ी पीपल, रेगनी, इलायची. अजवाइन, इन्द्रयव, अकवन जीरा, सरसों, बड़ी नीमका फूल. बभनेठा. हींग, मूर्व्वा, अतीस, बच, विड़ङ्ग, कुटकी इनको पिप्पल्यादिगण कहते है। इससे कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि गुल्म और शूल दूर होता है। यह आमदोषका पाचक और अग्निका उद्दीपक है।

एलादिगण—ईलायची, तगरपादुका, कूठ, जटामांसी, गन्ध-तृण, दालचिनी, तेजपत्ता, नागकेशर. प्रियङ्गु, रेनुका, नखी, सिंहुड़, चोरपुष्पी, गठिवन, गन्धाबिरोजा, चोरक नामक गंधद्रव्य, बाला गुग्गुल, राल, घण्टापाटला, कुन्दुरखोटी, अगुरू, चुकशाक, खसकी जड़, देवदारू केशर और नागेश्वर, इन सबको एलादिगण कहते है। इससे वायु, कफ, विषदोष, खजुली, फोड़ा और कुष्ठरोग दूर हो शरीरकी कान्ति उज्वल होती है।

वचादिगण—बच, मोथा, अतीस, हरीतकी, देवदारू और नागकेशर इसको बचादिगण कहते है।

हरिद्रादिगण—हल्दी, दारुहल्दी, पिठवन, इन्द्रयव और मुलेठी, इसको हरिद्रादिगण कहते है।

उक्त वचादि और हरिद्रादिगण स्तनदुग्ध शोषक आमातिसार नाशक और दोषपाचक है।

श्यामादिगण—अनन्तमूल, श्यामालता, श्वितमूल, शङ्ख-पुष्पी, लोध, कमलागुड़, बड़ी नीम, सुपारी चुहाकानी गवाची, अमिलतास, करञ्ज, डहर करञ्ज, गुरिच, नवमालिका, शरतृण, राल, बीजताड़क, सेहुंड़ और सत्यानासी, इनको श्यामादिगण कहते हैं। यह गुल्म, विषदोष, आनाह, उदररोग, उदावर्त्त निवारक और विरेचक है।

वृहत्यादिगण—वृहती, कण्टकारी, इन्द्रयव, अकवन और मुलेठी, इनको वृहत्यादिगण कहते हैं। इससे पित्त, कफ, अरुचि, वमन, वमनोद्वेग और मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

पटोलादिगण—परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, मूर्व्वा, गुरिच, अकवन और कुटकी इनको पटोलादिगण कहते हैं। यह पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, व्रण, वमन, कण्डू और विषदोष निवारक है।

काकोल्यादिगण—काकोली, चीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुगानी, माषोणी, मेदा, महामेदा, गुरिच, काकड़ाशृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुण्डरियाकाष्ठ, ऋद्धि, वृद्धि, द्राचा, जीवन्ती और मुलेठी इनको काकोल्यादिगण कहते हैं। यह रक्तपित्त और वायुनाशक तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकर, शुक्र और रतिशक्ति जनक, स्तन्यवर्द्धक और कफकर है।

ऊषणादिगण—चारमृत्तिका, सैन्धव लवण, शिलाजतु, श्वेत हिराकस, रक्त हिराकस, हींग और तुतिया इनको ऊषणादिगण कहते हैं। इससे कफ, मेदरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और गुल्म रोग दूर होता है।

अञ्जनादिगण—अञ्जन, रसाञ्जन, नागकेशर, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, खसकी जड़, पानी आंवला, कुङ्कुम और मुलेठी इनको अञ्जनादि

कहते है। इससे रक्तपित्त, विष और भीतर का दाह शान्त होता है।

परूषकादिगण—फालसा, किसमिस, कायफल, अनार, पलाश वृक्ष, निर्म्मली फल, शिरीष, जायफल, आंवला हरीतकी और बहेड़ा इनको परूषकादिगण कहते है। इससे वायु मूत्रदोष और पिपासा दूर हो भूख बढ़ती है।

प्रियङ्गादिगण—प्रियङ्ग, बराहक्रान्ता, धवईफूल, नागकेशर, रक्तचन्दन, पतङ्गवृक्ष, मोचरस, रसाञ्जन, टोकापानी, स्रोतोञ्जन, पद्मकेशर, मजीठ और श्यामालता इसको प्रियङ्गादिगण कहते है।

अम्बष्ठादिगण—अकवन, धवईफूल, बराहक्रान्ता, श्योनाक, मुलेठी, बेलकी गिरी, लोध, साबर लोध, पलाश, तूतवृक्ष और पद्मकेशर इनको अम्बष्ठादिगण कहते है। उक्त दोनो गण पक्वातिसार नाशक व्रण रोधक और भग्नस्थान संयोजक है।

न्यग्रोधादिगण—बट, गुल्लर, अश्वत्थ, पाकर, मुलेठी, आमड़ा, अर्जुन, आम, कोषाम्र, पिड़िंशाक, तेजपत्ता, बड़ा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, शल्लकी, लोध, साबर लोध, भेलावा, पलाश, मेषशृङ्गी इनको न्यग्रोधादिगण कहते है। यह व्रणनाशक, मलरोधक, भग्नस्थान, संयोजक, तथा रक्तपित्त, दाह, मेदोरोग और योनिदोष निवारक है।

गुड़च्यादिगण—गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, चन्दन और पद्मकाष्ठ इनको गुड़च्यादिगण कहते हैं इससे सब प्रकारका ज्वर, वमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उत्पलादिगण—नीलोत्पल, रक्तोत्पल, श्वेतोत्पल, सुगन्धि नीलोत्पल, कुवलय, (थोड़ा नीला श्वेतोत्पल) श्वेतपद्म और

मुलेठी, इसको उत्पलादिगण कहते हैं। इससे दाह, रक्तपित्त, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छा दूर होता है।

मुस्तादिगण—मोथा, हलदी, दारुहलदी, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, कूठ, सत्यानासी, बच, अकवन, कुटकी, बड़ा करौंदा, अतीस, इलायची, भेलावा और चीतामूल इसको मुस्तादिगण कहते हैं। यह कफनाशक, योनिदोष निवारक, स्तन्यशोधक और पाचक है।

आमलक्यादिगण—आंवला, हरीतकी, पीपल और चीतामूल इनको आमलक्यादिगण कहते हैं। यह सब प्रकारका ज्वर, कफ और अरुचिका नाशक तथा चक्षु हितकर, अग्नि उद्दीपक और रतिशक्ति वर्द्धक है।

त्रपादिगण—वङ्ग, सीसक, ताम्र, रौप्य, कान्तलौह, स्वर्ण और मण्डूर इसको त्रपादिगण कहते हैं। यह दूषित विषदोष, क्रिमि, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, पाण्डु और प्रमेह रोग नाशक है।

लाक्षादिगण—लाक्षा, जम्बीर, कुरैया, करवीर, कायफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नीम, छातिम, मालती, वला और गुल्लर इन सबको लाक्षादिगण कहते हैं। यह कषाय, तिक्त, मधुर रस, कफ और पित्तजनित पीड़ा नाशक, कुष्ट और क्रिमि निवारक तथा दुष्टव्रण शोधक है।

त्रिफला—हरीतकी, आंवला और बहेड़ा ये तीनको त्रिफला कहते हैं। यह वायु, कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ, विषम ज्वरनाशक, चक्षु हितकर और अग्नि उद्दीपक है।

त्रिकटु—पीपल, मिरच और शोंठ यह तीन द्रव्यको त्रिकटु कहते हैं। त्रिकटुसे कफ, मेदोरोग, प्रमेह, कुष्ठ, चर्म्मरोग, गुल्म, पीनस और मन्दाग्नि दूर होता है।

स्वल्प पञ्चमूल—गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, सरिवन और पिठवन यह पांच द्रव्यके मूलको स्वल्पपञ्चमूल कहते है। यह कषाय तिक्त-मधुर रस, वायुनाशक, पित्तप्रशमक, बलकर और पुष्टिकारक है।

महत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला, और गणि-यारी। यह पांचद्रव्यके मूलको महत् पञ्चमूल कहते है। यह तिक्त मधुर रस, कफ वायुनाशक, लघुपाक और अग्नि उद्दीपक है।

दशमूल—स्वल्प और महत् पञ्चमूलको मिलानेसे दशमूल होता है। यह श्वास कफ, पित्त और वायुनाशक आमदोष पाचक और सर्व्वज्वर निवारक है।

वल्ली पञ्चमूल—सरिवन, अनन्तमूल, हल्दी, गुरिच और मेषशृङ्गी, इन सबके मूलको वल्ली पञ्चमूल कहते है।

कण्टक पञ्चमूल—करौंदा, गोक्षुर, नीलझांटी, शतमूली और कालिया कड़ा इनके मूलको कण्टक पञ्चमूल कहते है।

वल्ली पञ्चमूल और कण्टक पञ्चमूल रक्तपित्त, शोथ सब प्रकार-का प्रमेह और शुक्रदोष निवारक है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, नरकट, कण्डा और इक्षु, इन सबके मूलको तृणपञ्चमूल कहते है। यह दूधके साथ देनेसे मूत्र-दोष और रक्तपित्त जल्दो आराम होता है।

विशेषत: यह पांचमूलमें स्वल्प और महत् पञ्चमूल वायुनाशक तृणपञ्चमूल पित्तनाशक और कण्टक पञ्चमूल कफनाशक है।

यवक्षार।—जौके छिलकेको राख एक सेर ६४ सेर पानीमें मिलाकर मोटे कपड़ेमें वह पानी क्रमश: २१ दफे छान लेना। फिर यह पानी किसी पात्रमें रख औटाना पानी जलकर चूर्णवत् पदार्थ बाकी रहनेपर उसको यवक्षार कहते हैं।

यवक्षार गरम पानीमें मिलाकर थोड़ी देर रखनेसे नीचे जम

जाता है फिर उपरका पानी आहिस्तेसे निकाल कर सुखा लेनेसे यवक्षार शोधित होता है। अन्यान्य पदार्थका क्षार बनानेकी रीति प्राय: इस तरह है।

वज्रक्षार।—यवक्षार और सोरा एक बरतनमें रख आग पर चढ़ाना पानीकी तरह गल जानेपर उसमें फिटकिरीका चूर्ण मिलाना, इससे उसका मैला कटकर उपरको उठनेपर वह झारिसे आहिस्ते बाहर निकाल देना। फिर किसी चौड़े पात्रमें ढालकर वह जमा देनेसे उसको वज्रक्षार कहते है। यह अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, शोथ आदि विविध रोगनाशक है।

बुद्धिमान चिकित्सक रोग और रोगीको अवस्था विचार कर इस अध्यायकी सब दवायोंका काढ़ा लेप और इसके साथ तैल घी आदि पाककर प्रयोग करनेसे उपयुक्त उपकार प्राप्त होवेंगे।

पथ्य प्रस्तुत विधि।

——:०:——

यवागू।—थोड़ा कूटा हुआ चावल या जौके चावलका यवागू तयार करना। मण्ड, पेय और लपसी यह तीन प्रकारको यवागू होता है। चावल १८ गूने पानीमें खूब सिजाकर छान लेनेसे माण्ड होता है, ११ गूने पानीमें खूब सिजा लेनेसे पेय कहते है और ८ गूने पानीमें सिजानेसे लपसी कहते है। पेय और लपसी छानी नही जाती। यवागू पानीकी तरह होनेसे पेय और गाढ़ा होनेसे लपसी कहते है।

धानके लावाका मांड—टटका धानका लावा थोड़े गरम पानीमें थोड़ी देर भिंगो रखना, फिर कपड़ेमें छाननेसे जो मांडकी तरह पदार्थ निकलेगा उसको धानके लावाका मांड कहते है।

बार्लि और एरारुट।— बार्लि और एरारुट बनाना हो तो पहिले गरम पानीमें खूब मिला लेना, फिर दूध, मिश्री मिलाकर औटाना। सागू बनानेकी भी रीति यही है, पर सागू थोड़ी देर ठण्ढे पानीमें भिङ्गोकर सिजाना चाहिये।

मानमण्ड।—मानकन्दका चूर्ण दो भाग और चावलका चूर्ण एक भाग १८ गूने पानीमें औटानेसे मानमण्ड तयार होती है। यवागू आदि पथ्य रोगीकी अवस्था विचारकर मिश्री, कागजी नीबूका रस २।३ बूंद या छोटी मछलीका शूरवा अथवा मांसका रस मिलाकर दिया जाता है।

उपवास या यवागू आदि हलके भोजनके बाद अन्न पथ्य देना हो तो चावल पांच गूने पानीमें सिजाना चावल खूब गलजानेपर मांड निकाल डालना। तरकारी आदिमें भी थोड़ा तेल और नमक मिलाना चाहिये।

दालका जूस।—मूंग और मसूरका जूस बनाना हो तो, दाल १८ गूने पानीमें सिजाना तथा तेल, नमक और मसाला बहुत कम मिलाना। २।३ तेजपत्ता, थोड़ी गोलमिरच और थोड़ी पिसी हुई धनियाके सिवाय और कोई मसाला देना उचित नहो है।

मांसका रस।—रोगके अवस्थानुसार छाग कबूतर या मुरगा आदिके कोमल मांसका छोटा छोटा टुकड़ा कर उसकी चर्व्वी निकाल उपयुक्त पानीमें अन्दाज एक घण्टा भिंगो रखना, फिर उसमें थोड़ा नमक, हल्दी और समूची धनिया मिला मुंह

बन्दकर हल्को आंचमें सिजाना। सुसिद्ध होनेपर एक पात्रमें रस और दूसरे पात्रमें मांस निकाल रखना। फिर मांस अच्छी तरह मसलकर उसका भी रस दूसरे पात्रवाले रसमें मिला देना। थोड़ी देर बाद रसके उपर चर्व्वी दिखाई देगी, वह एक साफ कपड़ेके टुकड़ेसे निकाल लेना। रोगीकी अवस्थाके अनुसार २।४ तेज-पत्ता और राईकी फोड़न देकर थोड़ा गोलमिरचका चूर्ण मिलाना। इसीको मांस रस कहते है। आजकल बोतलमें भर-कर मांस बनानेकी एक प्रकार रीति है, उसे भी तयार कर सकते है। मांस रस एक दफे बनाकर ५।६ घंटेके बाद फिर वह कामका नही रहता है, जरूरत होनेपर फिरसे बनाना चाहिये।

आटेकी रोटी।—जल्दी हजम होनेवाली रोटी बनाना हो तो, पहिले आटा एक घंटातक उपयुक्त पानीमें भिंगो रखना, फिर खूब मसलकर गोला बनाना, तथा एक बरतनमें पानी चुल्हेपर चढ़ा वह गोला १५।२० मिनट सिजाकर बाहर निकाल लेना। फिर उस गोलेको अच्छी तरह मसलकर पतली रोटी बनाकर सेंक लेना। यह रोटी बहुत जल्द हजम होती हैं और किसी तरह के बदहजमीका डर नही रहता है।

ज्वराधिकार ।

—:○:—

वातज्वरमें ।

विल्वादि पञ्चमूल।—बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला (पढ़) और गणियारी (एरणी) यह पांच वृक्षके जड़की छाल २ तोले, आधासेर पानीमें औटाना आधा पाव रहते उतार कर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

किराताति। चिरायता, मोथा, गुरिच, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, सरिवन, पिठवन और शोंठ, यह काढ़ा वातज्वर नाशक हैं।

रास्नादि। रास्ना, अमिलतास, देवदारु, गुरिच, एरण्ड और पुनर्नवा, इन सबके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वातज्वर आराम होता है, तथा तज्जनित बदनका दर्द आदि भी निवृत्ति होता है।

पिप्पल्यादि।—पीपल, गुरिच और शोंठ किम्बा पीपल, अनन्तमूल, द्राक्षा, सोवा और सम्भालुकी बीज, यह दो में किसी एकका काढ़ा पीनेसे भी वातज्वर आराम होता है।

गुड़ूच्यादि। वातज्वरके सातवें दिन जब सम्पूर्ण लक्षण प्रकाशित हो तब गुरिच, पीपलामूल और शोंठका काढ़ा देना चाहिये।

द्राक्षादि। द्राक्षा, गुरिच, गाम्भारी, गुल्लर और अनन्तमूल, इस काढ़ेमें गुड़ मिलाकर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

पित्तज्वरमें।

कलिङ्गादि। इन्द्रयव, कटफल, लोध, अकवन, परवरका पत्ता और मजीठ ; यह काढ़ा पीनेसे पित्तज्वरका दोष परिपाक होताहै।

लोध्रादि। लोधकी छाल, उत्पल, गुरिच, पद्मकाष्ठ और अनन्त-मूलका काढ़ा थोड़ी चीनी मिलाकर पिलानेसे पित्तज्वर दूर होताहै।

पटोलादि। पित्तज्वरमें दाह और पिपासा प्रवल होती पर-वरका पत्ता, यव, धनिया और मुलेठीका काढ़ा पिलाना।

दुरालभादि। जवासा, पित्तपापड़ा, प्रियङ्गु, चिरायता, अड़ूसा और कुटकीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पिलानेसे तृष्णा, रक्तपित्त, ज्वर और दाह प्रशमित होता है।

त्रायमाणादि। गुल्लर, मुलेठी, पीपलामूल, चिरायता, मोथा महुवेका फूल और बहेड़ाका काढ़ा चीनी मिलाकर पीनेसे पित्त ज्वर आराम होता है।

श्लेष्मज्वरमें।

पिप्पल्यादिगण। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता, शोंठ, गोलमिरच, गजपीपल, सम्भालुकी बीज, इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसो, बड़ी नीमका फल, हींग, वभनेटी, मूर्व्वा, अतीस बच, विड़ङ्ग और कुटकी, इन सबको पिप्पल्यादिगण कहते है। इससे श्लेष्मज्वर दूर होता है तथा कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल आराम होता है।

कटुकादि। कुटकी, चीतामूल, नीमकी छाल, हल्दी, अतीस, बच, कूठ, इन्द्रयव, मूर्व्वा और परवरका पत्ता, इन सबके काढ़ेमें गोलमिरचका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे कफज्वर नाश होता है। किसी किसी ग्रन्थकारके मतसे कुटकीसे बचतक एक योग और कूठसे परवरके पत्तेतक दूसरा योग है।

निम्बादि। नीमकी छाल, शोंठ, गुरिच, देवदारु, शठी, चिरायता, कूठ, पीपल और वृहतीका काढ़ा कफज्वर नाशक है।

वातपित्त ज्वरमें।

नवाङ्ग। शोंठ, गुरिच, मोथा, चिरायता, सरिवन, पिठवन, कण्टकारी और गोत्तुरका काढ़ा पीनेसे वातपित्तज्वर जलदी आराम होता है।

पञ्चभद्र। गुरिच, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और शोंठ, इनका काढ़ा वातपित्त ज्वरमें उपकारी है।

त्रिफलादि। त्रिफला, सेमरकी जड़, रास्ना, अमिलतासका फल और अड़ूसेका काढ़ा वातपित्त ज्वर नाशक है।

निदिग्धिकादि। कण्टकारी, बरियारा, रास्ना, गुल्लर, गुरिच और मसूर (किसीके मतसे श्यामालता) के काढ़ेसे वातपित्त ज्वर आराम होता है।

मधुकादि। मुलेठी, अनन्तमूल, श्यामालता, द्राक्षा, महुवेके फूल, लालचन्दन, उत्पल, गाम्भारी, पद्मकाष्ठ, लोध, आंवला, हरीतकी, बहेड़ा, पद्मकेशर, फालसा और खसकी जड़, रातको साफ पानीमें भिंगोना और सबेरे छान लेना, इसमें सहत, धानके लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर खिलानेसे पित्तजनित तृष्णा, वमन, भ्रम आदि उपद्रव जल्दी प्रशमित होता है।

वातश्लेष्म ज्वरमें।

गुड़ूच्यादि। गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, पद्मकाष्ठ और लालचन्दनका काढ़ा पीनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर प्रशमित होता है। तथा अरुचि, सर्द्दी, पिपासा और दाह दूर होताहै।

मुस्तादि। वातश्लेष्म ज्वरमें वमन, दाह और मुखशोष रहनेसे मोथा, पित्तपापड़ा, शोंठ, गुरिच और जवासेका काढ़ा पिलाना।

दार्व्वादि। वातकफ ज्वरमें हिक्का, मुखशोष, गलबद्धता, कास, श्वास और मुखप्रषेक हो तो देवदारू, खेतपापड़ा, बभनेठी, मोथा, बच, धनिया, कटफल, हरीतकी, शोंठ और नाटाकरञ्ज, इनका काढ़ा हींग और सहत मिलाकर पिलाना।

चातुर्भद्रक। कफका वेग प्रवल हो तो चिरायता, शोंठ, मोथा और गुरिचका काढ़ा पिलाना।

पाठासप्तक। ज्वरका वेग प्रवल हो तो चिरायता, शोंठ, गुरिच, अकवन, वाला और खसकी जड़का काढ़ा उपकारी है।

कण्टकार्य्यादि। कंटकारी, गुरिच, बभनेठी, शोंठ, इन्द्रयव, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, मोथा, परवरका पत्ता और कुटकी का काढ़ा पिलानेसे दाह, तृष्णा, अरुचि, कास और हृदय तथा पार्श्व वेदना दूर होती हैं।

पित्तश्लेष्म ज्वरमें।

पटोलादि। परवरका पत्ता, लालचन्दन, मूर्व्वा, कुटकी, अकवन और गुरिचका काढ़ा पित्तश्लेष्म ज्वर, अरुचि, वमन, कण्डू और विषदोष नाशक है।

अमृताष्टक। गुरिच, नीमकी छाल, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, कुटकी, शोंठ, लालचन्दन और मोथाके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे पित्तश्लेष्म ज्वर दूर होता है; तथा तज्जनित वमन, अरुचि, तृष्णा, वमनवेग और दाह प्रशमित होता है।

पञ्चतिक्त। कंटकारी, गुरिच, शोंठ, चिरायता और कूठ यह पञ्चतिक्त काढ़ा पीनेसे आठ प्रकारका ज्वर आराम होता है।

नये ज्वरमें।

ज्वराङ्कुश। पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हिङ्गुल ३ भाग,

जमालगोटेको बीज ४ भाग, यह सब दन्तीमूलके काढ़ेमें खलकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान चोनीका शर्ब्बत।

स्वच्छन्द भैरव। पारा, गन्धक, मीठाविष, जायफल और पीपल, समभाग पानीमें खलकर आधी रत्ती वजनकी गोली बनाना, अनुपान अदरखका रस, पानका रस और सहत।

हिंगुलेश्वर। पीपल, हिंगुल और मिठाविष, समभाग पानीमें खलकर आधी रत्तीकी गोली बनाना। यह सहतमें देनेसे वातिक ज्वर आराम होता है।

अग्निकुमार रस।—गोलमिरच २ मासे, बच २ मासे, कूठ २ मासे, मोथा २ मासे, और मीठा विष ८ मासे, अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान आम-ज्वरके प्रथमावस्थामें शोंठका चूर्ण और सहत, कफज्वरमें अद-रखका रस; पीनस और प्रतिश्यायमें भी अदरखका रस, अग्नि-मान्द्यमें लौंगका चूर्ण, शोथमें दशमूलका काढ़ा, आमातिसारमें धनिया और शोंठका काढ़ा, पक्वातिसारमें कुरैया का काढ़ा और सहत, ग्रहणी रोगमें शोंठका चूर्ण, सन्निपातके पहिली अवस्थामें पीपलका चूर्ण और अदरखका रस, खांसीमें कण्टकारीका रस, श्वासमें सरसोका तेल और पुराना गुड़। इसकी केवल दो गोली सेवन करनेसे रोगीको आराम मालूम होता है। सब प्रकारके रोगोंमें आमदोषके शान्तिके लिये यह औषध देना चाहिये। इससे अग्निवृद्धि होती है, इससे इसका नाम अग्निकुमार रस रखा गया है।

श्रीमृत्युञ्जय रस।—विष (मीठा विष) १ भाग, गोल-मिरच एक भाग, पीपल एक भाग, जङ्गली जीरा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा १ भाग, हिंगुल २ भाग, (यहां हिंगुल

जम्बोरी नीबूके रसकी भावना देकर लेना; यदि इसमें १ भाग पारा मिलाया जाय तो हिंगुल मिलानेकी जरुरत नही है) अदरखके रसमें खूब खलकर मूंगके बराबर गोलो बनाना। इसका साधारण अनुपान सहत, वातज्वरमें दहोका पानी, सन्निपातमें अदरखका रस, जीर्ण ज्वरमें जम्बीरी नीबूका रस, विषम ज्वरमें काला जोराका चूर्ण और पुराना गुड़, इसकी पूरीमात्रा ४ गोली है, पर बूढ़े, बालक और दुर्व्वल मनुष्यको एकही गोलो देना चाहिये। यदि कफका आधिक्य न हो तथा रोगी सवल हो तो कच्चे नारियलका पानो और चीनोके साथ सेवन कराना। इससे वातपैत्तिक दाह भी दूर होता है।

सर्व्वज्वराङ्कुश वटी।—पारा, गोलमिरच, शोंठ, पोपल, जमालगोटेकी छाल, चीता और मोथा, इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर एक रत्तो बराबर गोली बनाना। यह गोली सेवनकर शरोर कपड़ेसे ढाके रखना चाहिये। इससे आठ प्रकारका ज्वर, प्राकृत, वैकृत विषम आदि सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

चण्डेश्वर रस।—पारा, गन्धक, मीठा विष और ताम्बा, यह सब समभाग लेकर एक पहर खल करना, फिर अदरखके रसको ७ बार और समाल पत्रके रसकी ७ सात बार भावना देकर एक रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सब प्रकारका ज्वर जल्दी आराम होता है।

चन्द्रशेखर रस।—पारा एकभाग गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा २ भाग, गोलमिरच २ भाग और सबके समान चीनी, रोहित मछलीके पित्तकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी

गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस और ठंढापानी। इससे अत्युग्र पित्तश्लेष्म ज्वर तीन दिनमें आराम होता है।

वैद्यनाथ वटी।—पारा आधा तोला और गन्धक आधा तोला खलकर कज्जली बनाना, फिर कुटकीका चूर्ण २ तोले मिलाकर करेलीका रस अथवा त्रिफलाके काढ़ेकी तीन दफे भावना देकर मटरके बराबर गोली बनाना। अनुपान पानका रस किम्बा करेलीका रस और गरम पानी। दोषका बलाबल विचारकर एकसे चार गोलीतक देनेकी व्यवस्था है। यह बालकोंके लिये हलका जुलाब है।

नवज्वरेभसिंह।— पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सीसा, गोलमिरच, पीपल और शोंठ प्रत्येक समभाग, मीठा विष आधा भाग (कोई कोई समष्टिका आधा विष कहते हैं।) २ दिन पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे घोरतर नवज्वर आदि रोग नष्ट होता है।

मृत्युञ्जय रस।—पारा, एकभाग, गन्धक दो भाग, सोहागीका लावा ४ भाग विष ८ भाग, धतूरेकी बीज १६ भाग, त्रिकटु ६२ भाग धतूरेके रसमें खलकर एक मासा वजनकी गोली-बनाना। इससे सबप्रकारका ज्वर आराम होता। कच्चे नारियलका पानी और चीनीसे वातपैत्तिक ज्वर, सहतसे श्लैष्मिक ज्वर और अदरखके रसमें देनेसे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

प्रचण्डेश्वर रस।—विष, पारा और गन्धक समान वजन दोपहर खलकर समालू पत्रके रसकी २१ दफे भावना देना तथा इसकी तिलके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखके रसमें यह नवज्वरकी अकसीर दवा है।

त्रिपुरभैरव रस।—विष एक भाग, सोहागा २ भाग, गन्धक ३ भाग, तांबा ४ भाग, दन्तीबीज ५ भाग, दन्तीके काढ़ेमें एक पहर खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस अथवा शोंठ, पीपल और गोलमिरचका काढ़ा और चीनी। इससे नवज्वर मन्दाग्नि, आमवात, शोथ, विष्टम्भ, अर्श: और क्रिमि दूर होता है।

शीतारि रस।—पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा एक भाग, जमालगोटेका बोज २ भाग, सैंधव एक भाग, मिरच एक भाग, इमलीकी छालका भस्म १ भाग और मीठाविष एक भाग यह सब द्रव्य जम्बीरी नीबूके रसमें खलकर दो रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह वातश्लेष्म और शीतज्वरकी उत्कृष्ट औषध है।

कफकेतु।—शङ्खभस्म, शोंठ, पीपल, मिरच, सोहागेका लावा आदि एक एक भाग, मोठाविष ५ भाग यह आदीके रसमें तीन दफे खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान आदीका रस, इससे कफ जन्य कण्ठरोध, शिरोरोग और भयानक सन्निपात दूर होता है।

प्रताप मार्त्तण्ड रस—मीठाविष, हिंगुल और सोहागा समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे ज्वर तुरन्त आराम होता है।

ज्वरकेशरी।—पारा, गन्धक, मीठाविष, शोंठ, पीपल, मिरच, हरीतकी, आंवला, वहेड़ा और जमालगोटेकी बीज, प्रत्येक समभाग भङ्गरइयाके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। बच्चाके लिये सरसों बराबर। पित्तज्वरमें चीनी, सन्निपात ज्वरमें मिरच और दाहज्वरमें पीपल और जीरेके काढ़ेमें

विरेचनके लिये प्रयोग करना। साधारणतः यह केवल गरम पानीके साथ प्रयुक्त होता है।

ज्वरमुरारि।—हिंगुल, मीठाविष, शोंठ, पीपल, मिरच, सोहागेका लावा और हरीतकी, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर जमालगोटेकी बीज पानीके साथ खलकर उरदके बराबर गोली बनाना। आदीके रसके साथ विरेचनके लिये दिया जाता है। यह भी सद्यः ज्वर निवारक है।

सन्निपात ज्वरमें।

क्षुद्रादि—कण्टकारी, गुरिच, शोंठ और कूटका काढ़ा पोनेसे सन्निपात ज्वर, कास, श्वास अरुचि और पार्श्वशूल आराम होता है ; यह वातश्लैष्मिक ज्वरमें भी दिया जा सकता है।

चातुर्भद्रक—चिरायता, शोंठ, मोथा और गोलमिरचका काढ़ा पोनेसे सान्निपातिक ज्वर आराम होता है। यह कफाधिक्य सन्निपातमें प्रशस्त है।

नागरादि—शोंठ, धनिया, बभनेठी, पद्मकाष्ठ, लालचन्दन, परवरका पत्ता, नोमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी, बरियारा, कुटकी, मोथा, गजपीपल, अमिलतास, चिरायता, गुरिच, दशमूल और कण्टकारीके काढ़ेमें चोनी मिलाकर पोनेसे त्रिदोषोल्वण सन्निपात ज्वर आराम होता है।

चतुर्दशाङ्ग—पुराना ज्वर या वातश्लेष्मिक सन्निपात ज्वरमें पूर्व्वोक्त दशमूल और किरातादिगण अर्थात् चिरायता मोथा, गुरिच और शोंठ के काढ़ेके साथ आधा तोला निशोथका चूर्ण मिलाकर पोनेको देना।

वातश्लेष्महर अष्टादशाङ्ग—वात, कफाधिक्य, सान्निपातिक ज्वरमें, हृदय और पार्श्ववेदना तथा कास, श्वास, हिक्का और

वमनवेग रहनेसे पूर्व्वोक्त दशमूल, शठी काकड़ाशिङ्गी, कूठ, जवासा, बभनेठी, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी, यही अष्टादशाङ्ग का काढ़ा देना।

पित्तश्लेष्महर-अष्टादशाङ्ग—चिरायता, देवदारु, दशमूल, शोंठ, मोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनिया और गजपीपलके काढ़ेसे तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह और मोह आदि उपद्रवयुक्त सान्निपातिक ज्वर जल्दी आराम होता है।

भार्ग्यादि—बभनेठी, हरीतकी, कुटकी, कुठ, पितपापड़ा, मोथा, पीपल, गुरिच, दशमूल और शोंठका काढ़ा पीनेसे सान्निपातिक ज्वर नाश होता हैं, तथा सततादि घोरतर ज्वर, वहिस्थ और शीत संयुक्त ज्वर तथा मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथभी विनष्ट होता है।

शठ्यादि—शठी, कूठ, वृहती, काकड़ाशिङ्गी, जवासा, गुरिच, शोंठ, आकनादि, चिरायता और कुटकी, यह शठ्यादि क्वाथ सान्निपातिक ज्वर नाशक हैं।

वृहत्यादि—वृहती, कण्टकारी, कूठ, बभनेठी, शठी, काकड़ाशिङ्गी, जवासा, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी, यह वृहत्यादि क्वाथ सेवन करनेसे सान्निपातिक ज्वर और उसके उपद्रव कासादि दूर होता है।

व्योषादि—शोंठ, पीपल, मिरच, त्रिफला, परवरका पत्ता, नीमकी छाल, अडूसा, चिरायता, गुरिच और जवासा का काढ़ा त्रिदोषज्वर नाशक है।

त्रिवृतादि—त्रिवृतमूल, गोरक्षचाकुला, त्रिफला, कुटकी और अमिलतासके काढ़ेमें, जवाक्षार मिलाकर पीनेसे त्रिदोषजनित ज्वर आराम होता है।

अभिन्यास ज्वरमें।

कारव्यादि—कालाजीरा, कूठ, एरण्डमूल, बड़ा गुल्लर, शोंठ, गुरिच, दशमूल, शठी, काकड़ाशिङ्गी, जवासा और पुनर्नवा, गोमूत्रमें औटाकर पीनेसे घोरतर अभिन्यास ज्वर आराम होता है।

शृङ्गयादि।—काकड़ाशिङ्गी, बभनेठी, हरीतकी, कालजीरा, पीपल, चिरायता, पितपापड़ा, देवदारु, बच, कूठ, जवासा, कायफल, शोंठ, मोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्रयव, अकवन, रेणुका, गजपीपल, अपामार्ग, पीपलामूल, चीतामूल, बड़ा खीरा, अमिलतास, नीमकी छाल, बकुची, विड़ङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, अजवाइन अजमोदाके काढ़ेमें हींग और आदीका रस मिलाकर पीनेसे उत्कट अभिन्यास ज्वर, तेरह प्रकारका सन्निपात ज्वर और तन्द्रा, मोह, हुचकी, कर्णशूल, श्वास, कास, आदि उपद्रव शान्त होता है।

स्वल्पकस्तुरी भैरव—हिंगुल, विष, सोहागेका लावा, जावित्री, जायफल, मिरच, पीपल और कस्तुरी, प्रत्येक द्रव्य समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती प्रमाण गोली बनाना। यह सन्निपात ज्वरमें आदरखके रसमें देना।

बृहत् कस्तुरी भैरव।—कस्तुरी, कपूर, धवईका फूल, तांबा, केवांच बीज, चांदी, सोना, मोती, मूंगा, लोहा, अकवन, विड़ंग, मोथा, शोंठ, बाला, हरिताल और आंवला इन सबका समभाग चूर्ण मदारके पत्तेके रसमें खलकर १ रत्ती वजनकर गोली बनाना, अनुपान आदीका रस, इससे सब प्रकारका ज्वर तथा और कई प्रकारके रोग आराम होता है।

श्लेष्माकालान्तक रस।—हिङ्गुलोत्थ पारा, गन्धक, तांबा, तुतिया, मैनसिल, हरिताल, कटफल, धतूरेको बीज, हींग स्वर्णमाक्षिक, कूठ, निशोथ, दन्ती शोंठ, पीपल, मिरच, अमिलतास, वङ्ग और सोहागेका लावा, यह सब द्रव्य सेहुंड़के दूधमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे कफोल्वण सन्निपात आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

कालानल रस।—पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागेका लावा, मैनसिल, हिंगुल, काले सर्पका विष, दारमुज विष और ताम्बा प्रत्येक २ तोला लेकर बहुत महीन चूर्ण करना। लाङ्गली मूल घोषालताका मूल, लाल चीताकी जड़, नरम भूंई आंवला, बभनेठी, अकवनकी जड़ और पञ्चतिक्त रसकी भावना देकर राईके बराबर गोली बनाना। इससे सन्निपातका विकार शान्त होता है।

सन्निपात भैरव।—पारा, विष, गन्धक, हरिताल, बहेड़ा, आंवला, हर्रा, जमालगोटेकी बीज, निशोथ मूल, सोना, तांबा, सीसा, अभ्र, लोहा, मदारका दूध, लांगली और स्वर्णमाक्षिक, यह सब द्रव्य समभाग लेकर नीचे लिखे प्रत्येक काढ़ेकी ३० बार भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना।

भावनाके द्रव्य—अकवन, श्वेत अपराजिता, मुण्डरी, हुड़हुड़, कालाजीरा, काकजङ्घा, श्योंनाक छाल, कूठ, शोंठ, पीपल, मिरच, बड़चो, लाल सूर्य्यमणि फूल, श्रीखण्डचन्दन, समालू, रुद्रजटा, धतूरा और दन्ती, इससे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

वेताल रस।—पारा, गन्धक, विष, मिरच और हरिताल, समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली

बनाना। इससे साध्यासाध्य १२ प्रकारका सान्निपातिक ज्वर और तज्जनित मूर्च्छा आदि शान्त होता है।

सूचिकाभरण रस।—कालकूट विष, काले सर्पका विष और दारमुज प्रत्येक एक भाग, हिंगुल ३ भाग, रोहित मछली, बराह महिष, छाग और मोरके पित्तकी क्रमशः भावना देकर सरसोंके बराबर गोली बनाना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी या मिस्रीका शर्बत। इसको सेवन कर तिलतैलका मर्द्दन और अन्यान्य शीतल क्रिया करना चाहिये। इससे विकारग्रस्त मृतप्राय रोगीभी आराम होते देखा गया है।

घोरनृसिंह रस।—ताम्बा १ भाग, वङ्ग तीन भाग, लोहा २ भाग, अभ्र चार भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग, पारा १ भाग, गंधक एक भाग, मैनसिल एक भाग, काले सर्पका विष ४ भाग, कुचिला २२ भाग और काष्ठविष ८८ भाग, यह सब द्रव्य, रोहित मछली, महिष, मयूर और शूकरका पित्त और चीतामूलके रसमें एक एक प्रहर भावना देकर सरसों बराबर गोली बनाकर धूपमें सुखा लेना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी। इससे १३ प्रकारका सन्निपात, हैजा और अतिसार आदि रोग आराम होता है।

चक्री (चाकी)।—पारा, गन्धक, विष, धतूरेकी बीज, मिरच, हरिताल और स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर दन्तीके काढ़ेकी भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे साध्य और असाध्य १३ प्रकारका सान्निपातिक ज्वर आराम होता है।

ब्रह्मरन्ध्र रस।—पारा, गन्धक, अभ्र, हरिताल, हिंगुल, मिरच, सोहागेका लावा और सेंधानमक प्रत्येक समभाग सबके

समान विष, तथा समष्टीका चौथा हिस्सा महिषके पित्तमें खल करना। औषध सेवनमें असमर्थ रोगीको ब्रह्मरन्ध्र रस शरीर थोड़ा चीर कर लगानेसे सन्निपातके विकारकी अज्ञानता दूर होती है। रोगीको उख आदि शीतल द्रव्य देना चाहिये।

मृगमदासव।—मृतसञ्जीवनी ५० पल, सहत २५ पल, पानी २५ पल, कस्तुरी ४ पल, मिरच, लौंग, जायफल, पीपल और दालचीनी प्रत्येक २ पल, यह सब एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख, फिर छान लेना। यह उचित मात्रासे विसूचिका, हुचकी और सन्निपातिक ज्वरमें दिया जाता है।

मृतसञ्जीवनी सुरा।—एक वर्षसे भी अधिक पुराना गुड़ ३२ सेर, कूटी हुई बबूलकी छाल २० पल, अनारकी छाल, अडूसेकी छाल, मोचरस, बराहक्रान्ता, अतीस, असगन्ध, देवदारु, बेलकी छाल, श्योनाककी छाल, पाटलाकी छाल, शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोत्तुर, बैर, बड़े खौरेकी जड़, चीतामूल, आलकुशी बीज और पुनर्नवा यह सब मिलाकर १० पल लेना तथा कूटकर १५६ सेर पानीमें मिलाकर बड़े मिट्टीके बरतनमें रख मुह बन्द करना। १६ दिनके बाद कूटी हुई सुपारी ४ सेर, धत्रीको जड़, लौंग, पद्मकाष्ठ, खस, लालचन्दन, सोवा, अजवाईन, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा, शठी, जटामांसी, दालचिनी, इलायची, जायफल, मोथा, गठिबन्, शोंठ, मेथी, मेष-शृङ्गी और चन्दन प्रत्येक २ पल; कूटकर मिलाना तथा मुह बन्द कर देना फिर ४ दिनके बाद बकयन्त्रमें चुआकर शराब बनाना। बल अग्नि और उमरके अनुसार इसकी मात्रा स्थिर करना। इससे घोर सन्निपात ज्वर और विसूचिका आदि नानाप्रकारके

रोग आराम होता है तथा शरीरकी कान्ति, बल, पुष्टि और दृढ़ता होती है।

स्वच्छन्दनायक।—पारा, गन्धक, लोहा और चांदी समभाग लेकर नीचे लिखे द्रव्यके रसकी भावना तीन तीन दिन देना। हुड़हुड़, समालू, तुलसी, श्वेत अपराजिता, चीतामूल, अदरख, लाल चीतामूल, भांग, हरीतकी, काकमाची और पञ्चतिक्त। एक कटोरेमें रख बालुकायन्त्रमें फूंकना। इसके चूर्ण की मात्रा एक मासा। इससे अभिन्यास नामक सन्निपात आराम होता है। बकरीका दूध और मूंगका जूस रोगीको पथ्य देना।

जीर्ण और विषम ज्वर।

—०:०:०—

निदिग्धिकादि।—कण्टकारी, शोंठ और गुरिचके काढ़ेमें दो आनाभर पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे विषमज्वर, जीर्णज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य और पीनस रोग आराम होता है। इससे ऊर्द्धगत रोग आराम होता है इस लिये शामको पिलाना चाहिये। रातके ज्वरमें यह काढ़ा शामको और दूसरेमें सवेरे पिलाना। पित्तप्रधान मालूम हो तो पीपलके बदलेमें सहत मिलाना।

गुडूच्यादि—गुरिच, मोथा, चिरायता, आंवला, कण्टकारी, शोंठ, बेलकी छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, गणियारी छाल, कुटकी, इन्द्रयव और जवासाके काढ़ेमें

६) आनेभर पीपलका चूर्ण और सहत २ मासे मिलाकर पीनेसे वातज, पित्तज, द्वन्दज और चिरोत्पन्न रात्रिज्वर आराम होता है।

द्राक्षादि—जीर्णज्वरमें कास, श्वास, शोथ और अरुचि हो तो; द्राक्षा, गुरिच, शठी, काकड़ाशिङ्गी, मोथा, लालचन्दन, शोंठ, कुटकी, अम्बष्ठा, चिरायता, जवासा, खस, धनिया, पद्मकाष्ठ, बाला, कण्टकारी, कूठ और नीमकी छाल, यह अष्टादशाङ्ग काढ़ा देना।

महौषधादि—शोंठ, पिपलामूल, तालमूली, मार्कण्डिका, अमिलतास, बाला और हरीतकी। इस सबके काढ़ेमें जवाक्षार मिलाकर पिलाना। यह पाचक, रेचक और विषमज्वर नाशक है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, मुलेठी, कुटकी, मोथा और हरीतकी, इनका काढ़ा अथवा त्रिफला, गुरिच और अडूसेका काढ़ा, किम्बा दोनो प्रकारका मिला हुआ काढ़ा विषम ज्वर नाशक है।

वृहत् भार्ग्यादि—बारंगी, हरीतकी, कुटकी, कूठ, पित्तपापड़ा, मोथा, पीपल, गुरिच, दशमूल और शोंठका काढ़ा पीनेसे धातुगत शततादि घोरतर ज्वर, वहिस्थ और शीतसंयुक्त ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथ आराम होता है।

भार्ग्यादि—बारंगी, कूठ रास्ना, बेलकी छाल, अजवाइन शोंठ, दशमूल और पीपल; इसका काढ़ा पीनेसे विषम ज्वर, सान्निपातिक ज्वर और तज्जनित कास, श्वास, अग्निमान्द्य, तन्द्रा, हृदय और पार्श्वशूल आदि उपद्रव दूर होता है।

मधुकादि—मुलेठी, लालचन्दन, मोथा, आंवला, धनिया, खस, गुरिच और परवरके पत्तेके काढ़ेमें २ मासे सहत और

२ मासे चीनी मिलाकर पीनेसे आठ प्रकारका ज्वर, सततादि ज्वर आदि जल्दी आराम होता है ।

दार्व्यादि ।—नीलपुष्प, देवदारु, इन्द्रयव, मजीठ, श्यामालता, अम्बष्ठा, शठी, शोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाणा, पद्मकाष्ठ, हड़जोड़, धनिया, मोथा, सरलकाष्ठ, सैजनकी छाल, बाला, कण्टकारी, पित्तपापड़ा, दशमूल, कूटकी, अनन्तमूल, गुरिच और कूठके काढ़ेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे धातुस्थ विषम ज्वर, त्रिदोषजनित ज्वर, ऐकाहिक ज्वर और द्वाहिक ज्वर, कामज्वर, शोकजनित ज्वर, वमनयुक्त ज्वर, क्षयजनित ज्वर, सततक और दुःसाध्य जीर्ण ज्वर आराम होता है ।

दार्व्यादि ।—दारुहल्दी, इन्द्रयव, मजीठ, वृहती, देवदारु, गुरिचा, भूंई आंवला, पित्तपापड़ा, श्यामालता, हरसिङ्गारका पत्ता, गजपीपल, कण्टकारी, नीमकी छाल, मोथा, कूठ, शोंठ, पद्मकाष्ठ, शठी, अडूसे का मूल, त्रायमाना, हड़जोड़, चिरायता, भेलावा, अम्बष्ठा, कुशमूल, कुटकी, पीपल और धनियाके काढ़ेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर और शीत, कम्प, दाह, कार्श्य, पसीना निकालना, वमन, ग्रहणी, अतिसार, कास, श्वास, कामला, शोथ, अग्निमान्द्य, अरुचि, आठ प्रकारका शूल, बीस प्रकारका प्रमेह, प्लीहा, अग्रमास, यकृत् और हलीमक आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है ।

महौषधादि—शोंठ, गुरिच, मोथा, लालचन्दन, खस और धनियाके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसे तृतीयक (एक दिन अन्तरका) ज्वर आराम होता है ।

उशीरादि—तृतीयक ज्वरमें तृषा और दाह हो तो खस-

लालचन्दन, मोथा, गुरिच, धनिया और शोंठके काढ़ेमें चीनी तथा सहत मिलाकर पीनेसे तृतीयक ज्वर आराम होता है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, नीमकी छाल, किसमिस, श्यामालता, त्रिफला और अडूसेके काढ़ेमें चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे भी तृतीयक ज्वर आराम होता है।

वासादि—अडूसेकी छाल, आंवला, सरिवन, देवदारु, हरीतकी और शोंठ, इसका काढ़ा चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे चातुर्थक अर्थात् दो दिन अन्तरका ज्वर आराम होता है।

मुस्तादि—मोथा, अम्बष्ठा और हरीतकीका काढ़ा किम्वा दूधके साथ त्रिफलाका काढ़ा पीनेसे भी चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

पथ्यादि—हरीतकी, सरिवन, शोंठ, देवदारु, आंवला और अडूसेका काढ़ा, चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे चातुर्थक ज्वर जल्दी आराम होता है।

निदिग्धिकादि—निदिग्धिकादिगण (सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर) हरीतकी और बहेड़ेके काढ़ेमें यवक्षार और पीपलका चूर्ण २ मासे मिलाकर पीनेसे प्लीहा और यकृत्‌युक्त ज्वर आराम होता है, तथा प्लीहा आदि भी उपशम होता है।

सुदर्शन चूर्ण।—कृष्णागुरु (अभावे अगुरु), हल्दी, देवदारु, बच, मोथा, हरीतकी, जवासा, काकड़ाशिङ्गी, कण्टकारी, शोंठ, त्रायमाणा, खेतपापड़ा, नीमकी छाल, पीपलामूल, बाला, शठी, कूठ, पीपल, मूर्व्वामूल, कुरैयाकी छाल, मुलेठी, सैजनकी बीज, नीलोत्पल, इन्द्रयव, शतमूली, दारुहल्दी, लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, सरलकाष्ठ, खस, दालचीनी, सौराष्ट्र, मृत्तिका, सरिवन, अजवाईन, अतोस, बेलकी छाल, गोलमिरच, गन्धतृण,

आंवला, गुरिच, कुठकी, चोतामूल, परवरका पत्ता और पिठवन; यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण और सबसे बराबर चिरायतेका चूर्ण मिलाना। इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है। मात्रा ⁄) आने भरसे आधा तोला तक। इससे सब प्रकार जीर्ण और विषम ज्वर विरुद्ध औषध सेवन जनित ज्वर, प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि जल्दो आराम होता है।

ज्वरभैरव चूर्ण।—शोंठ, त्रायमाणा, नीमकी छाल, जवासा, हरीतकी, मोथा, बच, देवदारु, कण्टकारी, काकड़ाशिङ्गी, शतावर, पितपापड़ा, पीपलामूल, इन्द्रवारुणीकी जड़, कूठ, शठी, मूर्व्वामूल, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, लालचन्दन घण्टापाटला, इन्द्रयव, कूरैयाकी छाल, मुलेठी, चीतामूल, सैजनकी बीज, बरियारा, अतीस, कुटकी, तालमूली, पद्मकाष्ठ, अजवाईन, सरिवन, गोलमिरच, गुरिच, बेलकी छाल, वाला, पङ्कपर्पटी, तेजपत्ता, दालचीनी, आंवला, पिठवन, परवरका पत्ता, गन्धक, पारा, लोहा, अभ्रक और मैनसिल; यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण तथा समष्टिका आधा चिरायतेका चूर्ण एकत्र मिलाना। दोषका बलाबल विचार कर दो आने भरसे ॥) तक मात्रा प्रयोग करना। इससे भी सुदर्शन चूर्णकी तरह सब प्रकारका ज्वर आराम होता है। अधिकन्तु उदर, अन्त्रवृद्धि पांडू, रक्तपित्त चर्म्मरोग, शोथ, शिरःशूल और वातव्याधि प्रभृति रोगभी आराम होता है।

चन्दनादि लौह—लालचन्दन, बाला, अम्बष्ठा, खस, पीपल, मोथा, समभाग तथा सबके बराबर लोहा मिलाकर पानीमें खल कर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे जीर्ण और विषम ज्वर जल्दी आराम होता है।

सर्व्वज्वरहर लौह।—चीतामूल, बहेड़ा, आंवला, हरीतकी, शोंठ, पीपल, मिरच, बिड़ङ्ग, मोथा, गजपीपल, पिपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, परवरका पत्ता, वाला, कुटकी, कण्टकारी, सैजनकी बीज, मुलेठी और इन्द्रयव, प्रत्येक समभाग और समष्टिके बराबर लोहा मिलाना। फिर पानीके साथ खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे सब प्रकारका ज्वर, प्लीहा, यकृत् और अग्रमांस आराम होता है।

वृहत् सर्व्वज्वरहर लौह।—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, सोना, चांदी और शोधित हरिताल प्रत्येक २ तोले, कान्तलौह, आठ तोले, यह सब द्रव्य करेलोका पत्ता दशमूल, पित्तपापड़ा, त्रिफला, गुरिच, पान, काकमाची, समालुका पत्ता, पुनर्नवा और अदरख, इन सबका स्वरस या काढ़ेका सात दिन भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह महौषध सेवन करनेसे ज्वर चाहे वैसाही क्योंनहो सात दिनमें अवश्य आराम होता है। अनुपान पुराना गुड़ और पीपलका चूर्ण।

पञ्चानन रस।—विष २ तोले, मिरच ४ तोले, गन्धक ३ तोले, हिङ्गुल २ तोले, ताम्बा २ तोले, यह सब द्रव्य मदारके रसमें भावना देकर एक रत्ती वजनका गोली बनाना। इससे प्रवल ज्वरभी आराम होता है। इसको देकर शीतक्रियादि करना चाहिये।

ज्वराशनि रस।—पारा, गन्धक, सेन्धानमक, मीठाविष, और ताम्बा प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर लोहा और अभ्रक एकत्र मिलाकर, लोहेका खल और लोहेके दण्डसे समालु पत्तेके रसमें खल करना। फिर पारेके वजन बराबर गोलमिरचका चूर्ण

मिला मर्द्दनकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। इससे बहुत दिनका पुराना ज्वर, विषम ज्वर, धातुस्थ प्रवल ज्वर, दाहज्वर, यकृत्, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोथ, श्वास और कास जल्दी आराम होता है।

ज्वरकुञ्जर पारीन्द्र।—पारा २ तोले, अभ्र १ तोला, चांदी, स्वर्णमाक्षिक, रसाञ्जन, गेरुमिट्टी, मैनसिल, गन्धक और सोना ; यह सब प्रत्येक ४ तोले नीचे लिखे द्रव्योंके स्वरसकी तीन तीन बार भावना देकर ४ रत्ती वजनकी गोली बनाना। भावना के द्रव्य—मदार, तुलसीका पत्ता, पुनर्नवा, गणियारी भूंई आंमला घोषालता, चिरायता, पद्मकी गुरिच, इशलाङ्गला, लताफिटकिरी, मुगानि और गन्धतृण। इसको सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और क्षयरोग आराम होता है।

जयमङ्गल रस।—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, सोहागेका लावा ताम्बा, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक और गोलमिरच प्रत्येक ॥) और चांदी ॥) एकत्र मिलाकर धतूरेके पत्तेका रस हर-शिङ्गारके पत्तेका रस दशमूलका काढ़ा और चिरायताके काढ़ेकी तीन तीन बार भावना देकर २ रत्ती वजनका गोली बनाना। अनुपान जीराका चूर्ण और सहत। इससे चाहे जैसा ज्वर क्यों न हो अवश्य आराम होता है। यह बल और पुष्टि बढ़ानेमें भी उत्कृष्ट औषध है।

विषम ज्वरान्तक लौह।—पारा २ भाग, गन्धक २ भाग, ताम्बा १ भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग और लोहा ६ भाग, जयन्ती, पत्तेका रस, तालमखानेके पत्तेका रस, पानका रस, अदरखका रस और अडूसेके रसकी अलग अलग पांच दफे

भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना। इससे विषम ज्वर, गुल्म और प्लीहा आराम होता है। अधिकन्तु यह अग्निकारक, हृदयकी उत्कर्षता जनक, बल और पुष्टिकारक है।

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह।—हिङ्गुलोत्थ पारा १ तोला, गन्धक एक तोला, इसको कज्जली बनाकर पर्प्पटीकी तरह फूंकना। इसके साथ चौथाई तोला सोना, लोहा, अभ्र और ताम्बा प्रत्येक २ तोले, बङ्ग, गेरूमिट्टी और प्रबाल प्रत्येक आधा तोला, यह सब द्रव्य पानीमें खलकर सीपमें बन्दकर मिट्टीका लेपकर २०।२५ गोयठेमें फूंक लेना। इसकी मात्रा २ रत्ती; अनुपान पीपलका चूर्ण, हींग और सेंधानमक। इससे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु, कामला, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी, आदि कई प्रकारके रोग जल्दी आराम होता है।

कल्पतरु रस।—पारा, गन्धक, विष और ताम्बा प्रत्येक समभाग, पञ्चपित्त अर्थात् बराह, छाग, महिष, रोहूमछली और मोरके पित्तको यथाक्रम ५ दिन, समालूके पत्तेके रसको ७ दिन और अदरखके रसको ३ दिन भावना दे सरसोंके बराबर गोली बनाकर छायामें सुखा लेना। दोष, अग्नि और उमर विचारकर लगातार २१ दिनतक एक एक गोली सेवन कराना, तथा पसीना निकलनेतक कपड़ा ओढ़कर सोना चाहिये। पसीना निकल जानेपर बिछौनेसे उठकर दहीमें चीनी मिलाकर पिलाना। इसका अनुपान पीपलका चूर्ण और गरम पानी। इससे जीर्णज्वर विषम ज्वर, ज्वरातिसार, पाण्डु और कामला आराम होता है। श्वास, कास और शूलयुक्त रोगीको यह देना उचित नहीं है।

वराहकारि रस।—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग,

मैनशिल १ भाग, हरताल १ भाग, अतीस ४ भाग, लोहा २ भाग और चांदी आधा भाग ; यह सब द्रव्य नीमके छालके रसमें खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अतीसका काढ़ा। इससे त्र्याहिकादि सब प्रकारका विषम ज्वर नाश होता है।

चातुर्थकारि रस।—पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, हरिताल, प्रत्येक समभाग, सोना पारेका आधा भाग, यह सब एकत्र कर काला धतूरा और मौलसरी फूलके रसमें खलकर २ रत्ती प्रमाणकी गोली बनाना। अनुपान चम्पका रस। इससे चौथैया आदि विषम ज्वर आराम होता है। ज्वर छूटजाने पर त्र्याहिकारि और चातुर्थकारि सब प्रकारका रस देना चाहिये।

अमृतारिष्ट।— गुरिच, १२॥ सेर। दशमूल १२॥ सेर २५६ सेर पानीसे औटाना ६४ सेर पानी रहनेपर नीचे उतारकर छान लेना। फिर उसी काढ़ेमें ३७॥ सेर गुड़ २ सेर कालाजीरा १ पाक पित्तपापड़ा, छातिमछाल, शोंठ, पीपल, मिरच, मोथा, नागेश्वर, कुटकी अतीस, इन्द्रयव प्रत्येक १ पल उसमें मिला मुह बन्दकर १ महीना रखना। यह अरिष्ट सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

अङ्गारक तैल।—तिलका तेल ४ सेर, कांजी १६ सेर, कल्कार्थ मुर्व्वाका जड़, लाह, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, इन्द्रवारुणकी जड़, वृहती, सेंधानिमक, कूठ, रासन, जटामांसी और सतावर सब मिलाकर १ सेर पीसकर १६ सेर पानीमें औटाना पाकशेष होनेपर तैल छान लेना। फिर कर्पूर छडीला नखी प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिला रखना। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

बृहत् अङ्गारक तैल—मूर्च्छित तिलका तैल ४ सेर, पानी ६ सेर, सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, शोंठ और अङ्गारक तैलोक्त सब द्रव्यका कल्क एक सेर। यह तैल मर्द्दन करनेसे ज्वर, शोथ और पाण्डुरोग आराम होता है।

लाक्षादि तैल—मूर्च्छित तिलका तैल ४ सेर, कांजी २४ सेर, लाह, हलदी और मजीठ का कल्क एक सेर, पानी ४ सेर यथाविधि पाक करना। इससे दाह और शीतज्वर आराम होता है।

महालाक्षादि तैल।—मूर्च्छित तिलका तैल ४ सेर, लाहका काढ़ा १६ सेर (लाह ८ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, सोवा, हल्दी, मूर्व्वाकी जड़, कूठ, समालुकी बीज, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, मोथा और लाल चन्दन प्रत्येक दो तोलेका कल्क। तैलपाक समाप्त होनेपर यथाविधि छड़ीला, नखी और कपूर प्रत्येक दो तोले तैलमें मिला रखना। यह तैल मालिश करनेसे ज्वर और अन्यान्य रोग प्रशमित होता हैं।

किरातादि तैल।—मूर्च्छित सरसोंका तैल ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर, कांजी ४ सेर, चिरायतेका काढ़ा ४ सेर, मूर्व्वाकी जड़, लाह, हल्दी, इन्द्रवारुणी की जड़, वाला कूठ, रास्ना, गजपीपल, मिरच, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, सेन्धानमक, सोचल नमक, कालानमक, अडूसेकी छाल, सफेद अकवनकी जड़, श्यामालता, देवदारु, गड़तुम्बी सब मिलाकर एक सेरका कल्क। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु और शोथ आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

बृहत् किरातादि तैल।—मूर्च्छित सरसोंका तैल ८ सेर, चिरायता १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, मूर्व्वामूल ४ सेर,

पानी ३२ सेर शेष ८ सेर, कांजो ८ सेर, लाहका काढ़ा ८ सेर, कांजी ८ सेर, दहीका पानी ८ सेर, कल्कार्थ चिरायता, गजपीपल, रास्ना, कूठ, लाक्षा, इन्द्रवारुणीकी जड़ मजीठ, हल्दी, मूर्व्वामूल, मुलेठी, मोथा, पुनर्नवा, सेंधानमक, जटामांसी, वृहती, कालानमक, वाला, शतावर, लालचन्दन, कुटकी, असगन्ध, सोवा, समालुकी, बीज, देवदारु, खस, पद्मकाष्ठ, धनिया, पीपल, बच, शठी, त्रिफला, अजवाइन, अजमोदा, कांकड़ाशिंगी, गोक्षुर, सरिवन, पिठवन, दन्तीमूल, विड़ङ्ग, जीरा, कालाजीरा, नीमकी छाल, हीवेर और जवाक्षार प्रत्येक ४ तोले। पाक शेष होनेपर गन्धद्रव्य मिलाना। वह तेल मर्द्दन करनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर, प्लीहा, शोथ, प्रमेह ज्वर और पाण्डुरोग आराम होता है।

दशमूल षट्पलक घृत।—दशमूल ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, जवाक्षार प्रत्येक ८ तोले दूध ४ सेर, यह सब द्रव्यके साथ विधिपूर्व्वक ४ सेर घृत पाक करना, यह घृत विषमज्वर, प्लीहा, कास, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नाशक है।

वासाद्य घृत।—अडूसा, गुरिच, त्रिफला, त्रायमाणा, और जवासा सब मिलाकर ८ सेर, ६४ सेर पानीमें औटाना, शेष १६ सेर रखना। कल्कार्थ पीपलामूल द्राक्षा, लालचन्दन, नील कमल और शोंठ सब मिलाकर १ सेर। दूध ८ सेर। विधिपूर्व्वक इसके साथ ४ सेर घृत पाक करना। यह जीर्ण ज्वर नाशक है।

पिप्पलाद्य घृत।—मूर्च्छित घी ४ सेर, पानी १६ सेर कल्कार्थ पीपल, लालचन्दन, मोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, अजटा

(भुंई अंवरा), अनन्तमूल, अतीस, सरिवन, द्राक्षा, आंवला, बेलकी छाल, त्रायमाणा और कण्टकारी, सब मिलाकर एक सेर, दूध १६ सेर विधिपूर्व्वक पाक करना। इससे जीर्णज्वर, श्वास, कास, हिक्का, क्षय, शिरःशूल, अरोचक, अग्निवैषम्य और अङ्गसन्ताप दूर होता है।

यह सब घृत पहिले आधा तोला मात्रासे सेवन करना। सहने पर क्रमशः मात्रा २ तोलेतक देना चाहिये। अनुपान गरम दूध।

प्लीहा और यकृत्।

—०:※:०—

माणकादि गुड़िका।—एक वर्षका पुराना माणकन्द, अपामार्गके जड़को राख, गुरिच, अड़ूसेकी जड़, सरिवन, सेंधानमक, चीतामूल, शोंठ और ताड़के जटाका क्षार प्रत्येक ६ तोले, कालानमक, सौवर्च्चल नमक, जवाक्षार और पीपल, प्रत्येक २ तोले; इन सबका चूर्ण १६ सेर गोमूत्रमें पाककर, मोदककी तरह गाढ़ा होनेपर नीचे उतार लेना, ठण्डा होनेपर ३ पल (२४ तोले) सहत उसमें मिलाना। इसको आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा यकृत् आदि नानाप्रकारके उदर रोग आराम होता है।

बृहत् माणकादि गुड़िका।—पुराना माणकन्द, अपामार्गका क्षार, सरिवन, चीतामूल, सेंहुड़की जड़, शोंठ, सेंधानमक,

ताड़के जटाके चार, विड़ंग, ह्रीवेर, चाभ, वच, काला नमक, सौवर्च्चल नमक, जवाचार, पीपल, शरपुङ्ख, जीरा और पालिधामदार की जड़, प्रत्येक ४ तोला, एकत्र २४ सेर गोमूत्रमें पाक करना मोदक की तरह गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ, शठी, त्रिवृत्त, दन्तीमूल और इन्द्रवारुणी की जड़ प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिलाना। ठण्डा होनेपर २४ तोले सहत मिलाना। इसकी आधा तोला मात्रा गरम पानीमें प्रयोग करना। इससे यकृत्शूल और पार्श्वशूल आराम होता है।

गुड़पिप्पली।—विड़ंग, त्रिकटु, कूठ, हींग, पञ्चलवण, जवाचार, सर्ज्जीचार, सोहागा, समुद्रफेन, चीतामूल, गजपीपल, कालाजीरा, ताड़के जटाकी राख, कोहड़ेके डालकी राख, अपामार्ग भस्म और इमलीकी छालका भस्म, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर पीपलका चूर्ण, सब समष्टीका दूना पुराना गुड़ एकत्र मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ प्लीहा आदि रोगमें देना चाहिये।

अभयालवण।—नीमकी छाल, पलाशकी छाल, सेहुंड़की छाल, अपामार्ग, चीतामूल, वरुणकी छाल, गणियारीकी छाल, बथुआ शाक, गोखरु, वृहती, कंटकारी, नाटा, हाफरमाली, कुरैयाकी छाल, घोषालता और पुनर्नवा यह सबको कूट एक हांड़ीमें रख तिलकी लकड़ीके आंचसे राख करना। यह राख २ सेर, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतारकर क्रमशः २१ दफे छान लेना। इस खार पानीमें सेंधानमक २ सेर, बड़ी हर्रका चूर्ण एक सेर और गोमूत्र १६ सेर मिलाना। गाढ़ा होनेपर कालाजीरा, त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ और शठी प्रत्येकका चूर्ण ४ तोले मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम

पानीके साथ देनेसे प्लीहा, गुल्म, आनाह, अष्ठीला और अग्निमान्द्य आदि आराम होता है।

महामृत्युञ्जय लौह।—पारा, गन्धक और अभ्रक प्रत्येक आधा तोला, लोहा १ तोला, ताम्बा २ तोले, जवाखार, सज्जीखार, सेन्धानमक, कालानमक, कौड़ीका भस्म, शङ्खभस्म, चीतामूल, मेनसिल, हरिताल, हींग, कुटकी, त्रिवृत, इमलीके छालका भस्म, इन्द्रवारुणी की जड़, धलाआंकड़ीका मूल, अपामार्ग भस्म, अम्लवेतस, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, इन्द्रयव, हरीतकी, अजमोदा, अजवाईन, तूतिया, शरपुङ्ख और रसांजन प्रत्येक द्रव्य आधा तोला इन सबको अदरख और गुरिचके रसको भावना दे २ पल सहत मिलाकर २ रत्ती मात्राकी गोली बनाना यह दोष विशेषके आधिक्यानुसार उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करनेसे विषम ज्वर, काश, श्वास और गुल्म आदि पीड़ा आराम होता है।

वृहत् लोकनाथ रस।—पारा १ तोला, गन्धक २ तोले की कज्जली तथा अभ्रक १ तोला, घिकुआरके रसमें खलकरो फिर ताम्बा २ तोले, लोहा १ तोला और कौड़ीका भस्म ८ तोले मिलाकर काकमाचीके रसमें खलकर एक गोला बना सुखाकर फिर वह गोला गजपुटमें फूकना। २ रत्ती मात्रा अनुपान सहत। इससे प्लीहा, यकृत् और अग्रमास रोग आराम होता है।

यकृदरि लोह।—लोहा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, ताम्बा २ तोले, पातीनीबूके जड़की छाल ८ आठ तोले और अन्तर्धूमसे भस्मकिया कृष्णसार मृगका चर्म्म ८ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर ८ घुङ्घुची बराबर गोली बनाना। दोषानुसार उपयुक्त अनुपानसे प्रयोग करना।

वृहत् प्लीहारि लौह।—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, लौह, अभ्रक, जमालगोटा, सोहागा और शिलाजीत प्रत्येक १ तोला, ताम्बा, मैनसिल और हल्दी प्रत्येक २ तोले एकत्र खलकर दन्तीमूल, त्रिवृतमूल, चीतामूल, समालूका पत्ता, त्रिकटु, अदरख और भीमराज यथासम्भव इन सबके रस या काढ़ेको अलग अलग भावना देकर बैरकी गुठली बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे पाण्डु, कासलादि रोग प्रशमित होता है।

यकृत् प्लीहोदरहर लौह।—लोहा एकभाग, लोहेका आधा भाग अभ्रक, अभ्रकका आधा भाग रससिन्दूर, अभ्रक और लोहाके समष्टिका तिगुना त्रिफला, इन समष्टिके ६ गुन पानीमें औटाना अष्टमांस रहनेपर उतार कर उसके साथ समान भाग घी और लोहा तथा अभ्रकका दूना सतावरका रस और दूध मिलाकर फिर औटाना। (लोहेका आधा भाग औटाती वख्त देना बाकी आधा भाग रख छोड़ना) गाढ़ा होनेपर वही आधा भाग लोहा और सूरण, कापालिका, चाभ, विड़ङ्ग, लोध, शरपुङ्ख, अस्वष्ठा, चीतामूल, शोंठ, पञ्चलवण, जवाक्षार, बीजदारक, अजवाईन और मोम प्रत्येक लोहा और अभ्रकके बराबर मिलाना। विचार कर दो आनेसे चार आनेतक माला गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होता है। प्लीहोदर निवारणके लिये यह मानकन्द और जिमिकन्दके रसमें खलकर दो दफे पुटमें फूंकनेपर काममें लाना चाहिये।

वज्रक्षार।—सामुद्र, सैन्धा, सांभर और सौवर्च्चल नमक, सोहागा, जवाक्षार और सर्ज्जीक्षार प्रत्येकके समभाग को अकवन और सेहुंड़के दूधको ३ दिन भावना दे सुखा लेना फिर बन्द तारवेके पात्रमें फूंकना। फिर दो गुना वजन त्रिकटु, त्रिफला,

जीरा, हल्दी और चीतामूलका चूर्ण प्रत्येक आधा हिस्सा मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानी या गोमूत्रके अनुपानमें देना।

महाद्रावक।—अडूसा, चीतामूल, अपामार्ग, इमलीकी छाल, कोहड़ेका डण्डा, सेहुंड़को जड़, ताड़की जटा, पुनर्नवा और वेत। यह सब द्रव्यका भस्म समभाग, पातीनीबूके रसमें मिलाकर छान लेना। फिर धूपमें सूखाकर २ पल परिमित खारमें जवाक्षार २ पल, फिटकिरी एक पल, नौसादर १ पल, सैंधव ४ तोले, सोहागा २ तोले, हीराकस १ तोला, मुर्दाशङ्ख १ तोला, गोदन्त २ तोले और समुद्रफेन १ तोला, यह सब द्रव्यका भी चूर्ण उससे मिलाकर वकयन्त्रमें चुआ लेना। ५।६ बूंद मात्रा ठण्ढे पानीमें मिलाकर पीनेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होता हैं।

शङ्खद्रावक।—अकवनकी छाल, सेहुंड़की जड़, इमलीकी छाल, तिलकी लकड़ी, अमिलतासका छाल, चीतामूल, और अपामार्गका भस्म समभाग पानीमें घोलकर छान लेना तथा हलकी आंचमें औटाना, पानीका स्वाद लवण होनेपर नीचे उतार ४ तोले क्षार लेना, तथा उसके साथ जवाक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा, समुद्रफेन, गोदन्त, हरिताल, हीराकस और सोरा प्रत्येक ४ तोले, तथा पंच लवण प्रत्येक ८ तोले मिलाना। फिर बड़ेनीबूके रसमें सब द्रव्य मिला एक बोतलमें भर सात दिन रखना। तथा उसमें ८ तोले शङ्खचूर्ण मिलाकर वारुणीयन्त्रमें चुया लेना। इसको भी मात्रा और अनुपान महाद्रावक की तरह व्यवस्था करना।

महाशङ्ख द्रावक।—इमलीकी छाल, पीपलकी छाल, सेहुंड़की छाल, अकवनकी छाल और अपामार्ग, इन सबका क्षार

अलग अलग बनाना। फिर सोहागा, जवाक्षार, सज्जीक्षार, हींग, हरिताल, लौंग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती, हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, गन्धबोल, मीठाविष, समुद्रफेन, सोरा, फिटकिरी, शङ्खचूर्ण, शङ्खनाभि चूर्ण, मनसिल, हीराकस, यह सब द्रव्य सम-भाग लेकर वेतसके रसकी भावना देकर एक बोतलमें रखो। फिर बोतल कपड़ेसे लपेटकर सात दिन गरम स्थानमें रखना, सात दिनके बाद वारुणीयन्त्रसे चुया लेना। एक रत्ती मात्रा पानके साथ सेवन करनेसे कास, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, रक्तपित्त, उरःक्षत, गुल्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, शूल और आमवात आदि रोग आराम होता है।

चित्रकघृत।—घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये चीतामूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कांजी ८ सेर, दहीका पानी १६ सेर; कल्कार्थ पीपल मूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, तालीशपत्र, यवक्षार, सेंधानमक, जीरा, काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिरच, सब मिलाकर १ सेर यथाविधि पाक करना। इस घीसे प्लीहा, यकृत् उदराध्मान, पाण्डु, अरुचि और शूल आदि पीड़ामें उपकार होता है।

———

ज्वरातिसार।
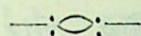
ह्रीवेरादि—वाला, अतीस, मोथा, शोंठ, बेलकी गिरि और धनिया, इसका काढ़ा पीनेसे मलकी चिकनाहट, विवद्धता, शूल और आमदोष तथा सरक्त, सज्वर और विज्वर अतिसार आराम होता है।

पाठादि—ज्वरातिसारके आमावस्थामें अम्बष्ठा, चिरायता, इन्द्रयव, मोथा, खेतपापड़ा, गुरिच और शोंठका काढ़ा देना। इससे सज्वर, आमातिसार प्रशमित होता है।

नागरादि—शोंठ, चिरायता, गुरिच, अतीस और इन्द्रयवका काढ़ा सब प्रकारका ज्वर और अतिसार नाशक हैं।

गुडूच्यादि—गुरिच, अतीस, धनिया, शोंठ, बेलकी गूदी, मोथा, वाला, अम्बष्ठा, चिरायता, कुरैया, लालचन्दन, खस और पद्म-काष्ठका काढ़ा ठण्ढाकर पीनेसे ज्वरातिसार, वमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उशीरादि।—खसकी जड़, वाला, मोथा, धनिया, शोंठ, बराहक्रान्ता, धवइका फूल, लोध और बेलकी गिरी, इसका काढ़ा पीनेसे अग्निकी दीप्ति और आम परिपाक होता है तथा सवेदन, सरक्त, सज्वर या विज्वर अतिसार अरुचि और मलकी पिच्छिलता तथा विवद्धता बिनष्ट होता है।

पञ्चमूलादि।—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, बरियारा, बेलकी गिरी, गुरिच, मोथा, शोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, बाला, कुरैयाकी छाल और इन्द्रयव, इन काढ़ेसे सब

प्रकारका अतिसार, ज्वर, वमन, शूल और भयङ्कर श्वास काम विनष्ट होता है।

कलिङ्गादि।—ज्वरातिसार और दाहमें नीचे लिखा काढ़ा देना। इन्द्रयव, अतीस, शोंठ, चिरायता, वाला और जवासा; अथवा इन्द्रयव, देवदारु, कुटकी, गजपीपल, गोक्षुर, पीपल, धनिया, बेलकी गिरी, अंवष्ठा और अजवाइन, किम्वा शोंठ, गुरिच, चिरायता, बेलकी गिरी, बाला और इन्द्रयव, मोथा, अतीस और खस, यह योगत्रयका काढ़ा विचारकर प्रयोग करना। इस योगत्रयमें पहिले योगका नाम कलिङ्गादि है।

मुस्तकादि—मोथा, बेलकी गिरी, अतीस, अम्बष्ठा, चिरायता और इन्द्रयवके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे ज्वरातिसार निवृत्त होता है।

घनादि—मोथा, बाला, अम्बष्ठा, अतीस, हरीतकी, नील कमल, धनिया, कुटकी, शोंठ और इन्द्रयवका काढ़ा ज्वरातिसार नाशक है।

बिल्वपञ्चक—ज्वरातिसारमें वमन हो तो सरिवन, पिठवन, वरियारा, बेलकी गिरी और अनारके फलकी छालका काढ़ा देना।

कुटजादि—कुरैयाकी छाल, शोंठ, मोथा, गुरिच और अतीस का काढ़ा पीनेसे ज्वरातिसार आराम होता है।

व्योष्यादि चूर्ण।—शोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, नीमकी छाल, चिरायता, भीमराज, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, दारुहल्दी और अतीस प्रत्येक समान भाग सबके बराबर कुरैयाके जड़की छालका चूर्ण; एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा चावलके पानीके साथ पीनेसे या दूने सहतमें मिलाकर चाटनेसे ज्वरातिसार,

तृष्णा, अरुचि, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डु और शोथ रोग आराम होता है। यह पाचक और मल-संग्रहक है।

कलिङ्गादि गुड़िका।—इन्द्रयव, बेलकी गिरी, जामुन और आमकी गुठलीका गूदा, कयेथका पत्ता, लाह, हलदी, दारुहल्दी, वाला, कायफल श्योनाक छाल, लोध, मोचरस, शङ्खभस्म, धवईका फूल और बडकोसोर, यह सब द्रव्य समभाग ले चावलके पानीमें पीसकर दो मासे वजनकी गोली बना छायामें सुखा लेना। इससे ज्वरातिसार, रक्तातिसार और पेटकी दर्द आराम होता हैं।

मध्यम गङ्गाधर चूर्ण।—बेलकी गिरी, सिङ्घाड़ा, अनारका पत्ता, मोथा, अतीस, सफेद राल, धवईका फूल मिरच, पीपल, शोंठ, दारुहल्दी, चिरायता, नीमकी छाल, जामुनका छाल, रसांजन, इन्द्रयव, अम्बष्ठा बराहक्रान्ता, वाला, मोचरस, भांग और भृङ्गराज प्रत्येक समभाग तथा कुरैयाकी छालका चूर्ण सबके बराबर एकत्र मिलाना। एक आनाभर मात्रा अनुपान बकरीका दूध, मण्ड या सहत। इससे ज्वरातिसार, अतिसार, ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

बृहत् कुटजावलेह।—कुरैयाके जड़की छाल १२॥० सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर रहनेपर छान लेना, इसमें २॥ सेर चीनी मिलाकर औटाना गाढ़ा होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। अम्बष्ठा वराहक्रान्ता बेलकी गिरी धवईका फूल, मोथा, अनारके फलकी छाल, अतीस, लोध, मोचरस, सफेद राल, रसांजन, धनिया, खस और बाला, यह सब द्रव्यके प्रत्येकका चूर्ण २ तोले। ठण्ढा होनेपर एक पाव सहत मिलाकर भांड़में रखना। इससे सब प्रकारका

अतिसार, ग्रहणी, रक्तस्राव, ज्वर, शोथ, वमन, अर्श अम्लपित्त, शूल और अग्निमान्द्य रोग विनष्ट होता है।

मृतसञ्जीवनी वटिका—पीपल एकभाग, वत्सनाभ विष एक-भाग, हिंगुल २ भाग, यह तीनो द्रव्य जामुनके रसमें खलकर मूलीके बीज बराबर गोली बनाना। यह वटिका ठण्ढे पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, विसूचिका और सान्निपातिकज्वर दूर होता है।

सिद्ध प्राणेश्वर रस।—गन्धक, पारा और अभ्रक प्रत्येक ४ मासे, सज्जीक्षार सोहागेका लावा, जवाक्षार, पांचो लवण, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रयव, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, अज-वाईन, विड़ङ्ग और सोवा प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा; एकत्र पानीमें खलकर एकमासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। औषध सेवनके बाद गरम पानी पीना। इससे प्रबल ज्वरातिसार और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

कनकसुन्दर रस—हिङ्गुल, मिरच, गन्धक, पीपल, सोहागेका लावा, मिठाविष और धतूरेकी बीज यह सब समभाग ले भांगके रसमें एक पहर खलकर चने बराबर गोली बनाना। इससे तीव्र ज्वर, अतिसार, ग्रहणी और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य दही या मट्ठा और भात।

गगनसुन्दर रस—सोहागेका लावा हिङ्गुल गन्धक और अभ्रक समभाग ले मदारके रसको तीन दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सफेद राल २ रत्ती और सहत। इससे रक्तातिसार और आमशूल दूर होता है। यह अग्निवृद्धिकर है। पथ्य मट्ठा और बकरीका दूध।

आनन्दभैरव—हिंगुल त्रिकटु, सोहागेका लावा, मीठाविष और गंधक समभाग पानीमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान कुरैयाके छालका चूर्ण और सहत इससे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

मृतसञ्जीवन रस।—पारा एकभाग, गन्धक एकभाग, मीठाविष चौथाई भाग, और सबके बराबर अर्थात् सवा दो भाग अभ्रक; धतूरेके पत्तेका रस और गन्धनाकुलीके रसमें एक एक पहर खल करना, तथा धवईफूल, अतीस, मोथा, शोंठ, जीरा, बाला, अजवाईन, धनिया, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा, हरीतकी, पीपल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, कयेथबेल और कच्चा अनार, यह १६ द्रव्य, प्रत्येक २ तोले कूटकर चौगूने पानीमें औटाना, चतुर्थांश रहनेपर इसी काढ़ेसे उक्त पारा आदिको तीन दिन भावना देकर एक मिट्टीके बरतनमें रख मुंह मिट्टीसे बन्दकर हलकी आंचपर वालुकायन्त्रमें पाक करना। इस औषधका नाम मृत-सञ्जीवनी रस है। इसकी एक रत्ती मात्रा अतिसारनाशक द्रव्यके अनुपानके साथ देनेसे सब प्रकारका दुर्निवार अतिसार आराम होता है।

कनकप्रभा वटी—धतुरेकी बीज, मिरच, गोयालिया लता, पीपल, सोहागेका लावा, विष और गन्धक, यह सब द्रव्य भांगके रसमें खलकर गुंजा बराबर गोली बनाना। इसके सेवन करनेसे अतिसार, ग्रहणी, ज्वर और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य—दही भात, ठण्ढापानी और बटेर आदि पक्षीका मांस।

अतिसार।

—०:*:०—

आमातिसारमें।

पिप्पल्यादि—पीपल, शोंठ, धनिया, अजवाईन, हरीतकी और बच, यह सब द्रव्य समभाग अर्थात् सब मिलाकर दो तोले अच्छी तरह कूटकर पूर्व्वोक्त नियमसे काढ़ा बनाना। इससे आमातिसार आराम होता है।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, शोंठ, बेलकी गिरी, हींग, जौ, मोथा और लालचीता, इन सबका काढ़ा पीनेसे आमातिसार आराम होता है।

पथ्यादि—आमातिसारमें हरीतकी, देवदारु, बच, मोथा, शोंठ और अतीसका काढ़ा पिलाना।

यमान्यादि—अग्निकी दीप्ति और आमरसको पचानेके लिये अजवाईन, शोंठ, खस, धनिया, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी, सरिवन और पिठवनका काढ़ा प्रयोग करना।

कलिङ्गादि—कुरैयाकी छाल, अतीस, हींग, बड़ीहर्र, सौवर्च्चल नमक और बच, इन सबका काढ़ा पीनेसे शूलकी दर्द, स्तम्भ और मलकी विवद्धता नाश तथा अग्निकी दीप्ति और आमदोषका परिपाक होता है।

त्र्यषणादि—प्रवल अतिसारमें शोंठ, पीपल, मिरच, अतीस, हींग, वरियारा, सौवर्च्चल नमक और बड़ी हर्र, इन सबका चूर्ण समान भाग गरम पानीमें देना।

वातातिसारमें

पूतिकादि—वातातिसारके शान्तिके लये करञ्ज, पीपल, शोंठ, वरियारा, धनिया और बड़ी हर्र ; इन सबका काढ़ा देना।

पथ्यादि—प्रबल वातातिसारमें बड़ी हर्र, देवदारु, बच, शोंठ, अतीस और गुरिचका काढ़ा प्रयोग करना।

बचादि—बच, अतीस, मोथा, इन्द्रयवका काढ़ा वातातिसार की उत्कृष्ट औषध है।

पित्तातिसारमें।

मधुकादि—पित्तातिसारमें मुलेठी, कायफल, लोध, कच्चे अनारका फल और छिलका। इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीके साथ देना।

बिल्वादि—आमपित्तातिसारमें बेलकी गिरी, इन्द्रयव, मोथा, बाला और अतीसका काढ़ा पिलाना।

कट्फलादि—कायफल, अतीस, मोथा, कुरैयाकी छाल, और शोंठ, इन सबके काढ़ेमें थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे पित्तातिसार की निवृत्ति होता है।

कञ्चटादि—चौराईका पत्ता, अनारका पत्ता, जामुनका पत्ता, सिंघाड़ेका पत्ता, बाला, मोथा और शोंठ, इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे अति प्रबल अतिसारभी बन्द होता है।

किराततिक्तादि—चिरायता, मोथा, इन्द्रयवके काढ़ेमें रसाञ्जन और सहत मिलाकर पीनेसेभी पित्तातिसार आराम होता है।

अतिविषादि—अतीस, कुरैयाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीमें लेनेसे पित्तातिसार बन्द होता है।

कफातिसारमें।

पथ्यादि—हरीतकी, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, बच, मोथा, इन्द्रयव और शोंठका काढ़ा या कल्कसे कफातिसार दूर होता है।

कृमिशत्रुादि—बिड़ङ्ग, बच, बिल्वमूल, धनिया और कायफलका काढ़ा भी कफातिसार नाशक है।

चव्यादि—चाभ, अतीस, शोंठ, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बड़ी हर्रका काढ़ा पीनेसे कफातिसार और वमन निवृत्त होता है।

त्रिदोषातिसार।

समङ्गादि—बराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, शोंठ, बाला, धवइ का फुल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बेलकी गिरी इन सबका काढ़ा पीनेसे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

पञ्चमूली बलादि—पञ्चमूल (पित्ताधिक्यमें स्वल्प पञ्चमूल और वातकफाधिक्यमें वृहत् पञ्चमूल), बरियारा, बेलकी गिरी, गुरिच, मोथा, शोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, बाला, कुरैयाकी छाल, और इन्द्रयवका काढ़ा पीनेसे त्रिदोषज अतिसार, ज्वर, वमन, शूल उपद्रवयुक्त श्वास और दारुण कास आराम होता है।

शोकादिजातिसार।

पृश्निपर्ण्यादि—पिठवन, बरियारा, बेलकी गिरी, धनिया, नीला कमल, शोंठ, विड़ङ्ग, अतीस, मोथा, देवदारु, अम्बष्ठा और कुरैयाकी छालके काढ़ेमें गोलमिरच, का चूर्ण मिलाकर पीनेसे शोकजातिसार आराम होता है।

पित्तकफातिसार।

मुस्तादि—मोथा, अतीस, मुर्रा, बच और कुरैयाकी छालके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकफातिसार आराम होता है।

समङ्गादि—बराहक्रान्ता, धवइका फूल, बेलकी गिरी, आमकी गुठली और पद्मकेसर; किम्बा बेलकी गिरी, मोचरस, लोध और कुरैयाकी छाल; इन सबका काढ़ा अथवा चावल भिंगोये पानीमें कल्क पीनेसे पित्तकफातिसार और रक्तस्राव बन्द होता है।

वातकफातिसार।

चित्रकादि—चीता, अतीस, मोथा, बरियारा, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बड़ी हरका काढ़ा वातकफातिसार नाशक है।

वातपित्तातिसार।

कलिङ्गादि कल्क—वातपित्तातिसारग्रस्त रोगीको इन्द्रयव, वच, मोथा, देवदारु और अतीस; यह सब द्रव्य समभाग पीसकर चावल भिंगोये पानीके साथ पिलाना।

पक्वातिसार।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, बेलकी गिरी, बाला और मोथा का काढ़ा पिलानेसे आम और शूलविशिष्ट पुराना अतिसार भी बन्द होता है।

कुटज पुटपाक।—कीड़ोंको न खाई हुई, कच्ची और मोटी कुरैयाके जड़की छाल कूटकर चावल भिंगोये पानीसे तर करना फिर जामुनके पत्तेसे लपेट कर चारो तरफ गाढ़ी मिट्टीका लेपकर पुटपाक करना। उपरकी मिट्टी जब लाल हो जाय तब बाहर निकाल उसका रस निचोड़ लेना। इसके दो तोले रसमें थोड़ा सहत मिलाकर देना। यह सब प्रकारके अतिसारकी प्रधान औषध है।

कुटजलेह।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतार कर छान लेना। तथा इसी काढ़ेको फिर औटाना गाढ़ा होनेपर इसमें सौवर्चल नमक, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, पीपल, धवईका फूल, इन्द्रयव और जीरा, इन सबका समभाग चूर्ण १६ तोले मिलाकर उतार लेना।

मात्रा एक तोला सहतके साथ चटाना। इससे पक्का, कच्चा, नानावर्ण और वेदनायुक्त अतिसार तथा दुर्निवार्य्य ग्रहणी आराम होता है।

कुटजाष्टक।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर उसमें नीचे लिखी दवायोंका चूर्ण मिलाना। मोचरस, अम्बष्ठा, बराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी और धवईका फूल, प्रत्येक ८ तोले। इससे सब प्रकारका अतिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि आराम होता है। अनुपान गरम दूध या ठण्ढा पानी, वस्तिदोषमें भातका माड़ रक्तस्रावमें बकरीका दूध।

नारायण चूर्ण।–गुरिच, बिधारेकी बीज, इन्द्रयव, बेलकी गिरी, अतीस, भृङ्गराज, शोंठ और भांगका पत्ता, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आना या दो आने मात्रा, शोंठ अथवा सहतके साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार, शोथ, पाण्डु, कामला, अग्निमान्द्य और ज्वर आदि पीड़ा दूर होता है।

अतिसार वारण रस—हिंगुल, कर्पूर, मोथा और इन्द्रयव इन सब द्रव्योंको अफीम भिंगोये पानीकी भावना देकर एक रत्ती वजन सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातिफलादि वटिका—जायफल, पिण्डखजूर और अफीम समभाग पानके रसमें खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मट्ठा। इससे प्रबल अतिसार बन्द होता है।

प्राणेश्वर रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागीका लावा, सोवा, अजवाईन और जीरा प्रत्येक ४ तोले, जवाक्षार, हींग, पञ्च लवण, बिड़ङ्ग, इन्द्रयव, राल और चीता प्रत्येक २ तोले, यह

सब द्रव्य पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे अतिसार आराम होता है।

अमृतार्णव रस।—हिङ्गुलोत्थ पारा, लोहा, गन्धक, सोहागेका लावा, शठी, धनिया, बाला, मोथा, अम्बष्ठा, जीरा और अतीस, प्रत्येक एक तोला, बकरीके दूधमें पीसकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। धनिया, जीरा, भांग, शालबीज चूर्ण, सहत, बकरीका दूध, ठण्ढा पानी, केलेके जड़का रस अथवा कण्टकारीके साथ सबेरे लेना चाहिये। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, ग्रहणी, अर्श और अम्लपित्त आराम होता है।

भुवनेश्वर—सेंधानमक, त्रिफला, अजवाईन, बेलकी गिरी और धूसमल यह सब द्रव्य पानीमें पीसकर एक मासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानी, इससे भी सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफल रस।—पारा, गन्धक, अभ्रक, रससिन्दूर, जायफल, इन्द्रयव, धतूरेको बीज, सोहागेका लावा, त्रिकटु, मोथा, हरीतकी, आम्रकेशी, बेलकी गिरी, शाल बीज, अनारकी छाल और जीरा; यह सब द्रव्य समभाग भांगके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान कुरैया की छालका काढ़ा। यह आमातिसार नाशक तथा अग्निदीप्तिकारक है। रक्तजग्रहणी रोगमें बेलके गिरीका काढ़ा और सहतके अनुपानसे तथा अतिसारमें शोंठ और धनियाके काढ़ेमें यह गोली देना।

अभयनृसिंह रस—हिङ्गुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागेका लावा, गन्धक, अभ्रक और पारा प्रत्येक समभाग सबके बराबर अफीम; यह सब द्रव्य नीबूके रसमें खलकर दो रत्ती वजनकी

गोली बनाना । भुने हुए जोरेका चूर्ण और सहतमें देनेसे अतिसार संग्रह ग्रहणी आराम होता है ।

कर्पूर रस—हिङ्गुल, अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कर्पूर ; यह सब समभाग लेकर पानीमें पीसकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना । कोई कोई इसमें एकभाग सोहागेका लावा भी मिलाते है । ज्वरातिसार, अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणी रोग का यह महौषध है ।

कुटजारिष्ट ।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, मूनक्का ६। सवा छ सेर, महुयेका फूल १० पल, गाम्भारीका छाल १० पल पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर ; इस काढ़ेमें धवइका फुल २० पल और गुड़ १२॥ सेर मिला मुह बन्दकर एक भाग रख छोड़ना । फिर उसे छान लेना । इस अरिष्टसे दुर्निवार ग्रहणी, रक्तातिसार और सब प्रकारका ज्वर आराम हो अग्निकी वृद्धि होती है ।

अहिफेनासव—महुवेकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल मोथा, जायफल इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक एक एक पल ; यह सब द्रव्य एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख छोड़ना फिर छान लेना ।

षड़ङ्ग घृत—इन्द्रयव, दारुहल्दी, पीपल, शोंठ, लाह और कुटकी ; यह ५ द्रव्योंके कल्कमें यथाविधि घी पाककर सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है । यह घी सेवनके बाद यवागू पथ्य देना चाहिये ।

ग्रहणी।

—:०:—

शालपर्ण्यादि कषाय सरिवन, पिठवन, बेलको गिरी, धनिया और शोंठ इसका सृतकषाय पोनेसे वातज ग्रहणी और उसके उपद्रव उदराध्मान और शूलवत् वेदना प्रशमित होता है।

तिक्तादि—कुटको, शोंठ, रसाञ्जन, धवईका फूल, हरीतकी, इन्द्रयव, मोथा, कुरैयाको छाल और अतीसका काढ़ा पीनेसे सब प्रकार ग्रहणीरोग और उसके उपद्रव गुह्यशूल आदि आराम होता है।

श्रीफलादि कल्क—बेलके गिरीके कल्कमें थोड़ा गुड़ और शोंठका चूर्ण मिलाकर मट्ठेके साथ सेवन करनेसे अति उग्र ग्रहणी रोग आराम होता है।

चातुर्भद्र कषाय—गुरिच, अतीस, शोंठ और मोथा, इसका काढ़ा आमदोषयुक्त ग्रहणी नाशक, मलसंग्राहक, अग्निदीपक और दोषपाचक है।

पञ्चपल्लव—जामुन, अनार, सिंघाड़ा, अम्बष्ठा और कांचड़ाके पत्तेमें नरम बेलका फल लपेटकर पानीमें उबालना, दूसरे दिन वही बासी बेलका गुदा थोड़ा गुड़ और शोंठका चूर्ण मिलाकर खानेसे तथा भोजनके बाद उसका पानो पीनेसे सब प्रकारका अतिसार और प्रबल ग्रहणी रोग आराम होता है।

चित्रक गुड़िका—चीतामूल, पीपलमूल, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा, सौवर्च्चल, काला औद्भिद और सामुद्रलवण, त्रिकटु, हींग, अजमोदा और चाभ, यह सब द्रव्योंके चूर्णको बड़े नीबूका रस अथवा

अनारके रसकी भावना देकर चार आने मात्राको गोली बनाना। यह आम परिपाचक और अग्निवर्द्धक है।

नागरादि चूर्ण—शोंठ, अतीस, मोथा, धवईका फूल, रसाञ्जन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, बेलकी गिरी, पाठा और कुटकी इन सबका समभाग चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीका रक्तभेद, अर्श, हृद्रोग और आमाशयके रोग आराम होते है। मात्रा ।) आनेसे ॥) तक।

रसाञ्जनादि चूर्ण—रसाञ्जन, अतीस, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, शोंठ और धवईका फूल, इन सबका चूर्ण सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणी, रक्तातिसार, पित्तातिसार और अर्शरोग आराम होता है।

रास्नादि चूर्ण—रास्ना, हरीतकी, शठी, शोंठ, पोपल, गोल-मिरच, जवाक्षार, सज्जीक्षार, पांचोनमक और पीपलामूलका समभाग चूर्ण बड़े नीबूका रस और अम्लरसके साथ लेनेसे कफज ग्रहणी शान्त होता है।

पिप्पलीमूलादि चूर्ण—पीपलामूल, पोपल, जवाक्षार, सज्जीक्षार, सेंधानमक, कालानमक, सौवर्च्चल नमक, औद्भिद और सामुद्रलवण, बड़े नोबूका जड़, हरीतकी, रास्ना, शठी, गोलमिरच और शोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण समभाग गरम पानीके साथ सबेरे सेवन करनेसे कफज ग्रहणी विनष्ट तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

मुण्डयादि गुड़िका—गोरखमुण्डी, सतावर, मोथा, कवांच बीज, क्षीरीवृक्ष, गुरिच, मुलेठी और सैन्धव, सबका समभाग चूर्ण, भूजी भांग दो गुनी, यह सब द्रव्य दशगुने दूधसे घृत भा ड में पाक करना, जबतक गोला न हो जाय तबतक हलकी आंचपर रखना।

पाक समाप्त होनेपर सहतके साथ सेवन करानेसे वातपित्तज ग्रहणी दूर होता है।

कर्पूरादि चूर्ण—कर्पूर, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, रास्ना, पांचो-नमक, हरीतकी, सज्जीचार, जवाचार और बड़ा नीबू, सबका समभाग चूर्ण ।) भर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, वात-कफज ग्रहणी दोष दूर होकर बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

तालिशादि वटी—तालीशपत्र, चाभ और गोलमिरच प्रत्येक एक एक पल, पीपल और पीपलामूल प्रत्येक २ पल, शोंठ ३ पल और चातुर्जात (दालचीनी ईलायची नागेश्वर तेजपत्ता) प्रत्येक २ पल इन सबके चूर्णमें तोगूना गुड़ मिलाकर ६ मासेकी गोली बनाना। इससे वातकफजनित उत्कट ग्रहणी, वमन, कास, श्वास, ज्वर, अरुचि, शोथ, गुल्म, उदर और पाण्डुरोग आराम होता है।

भूनिम्बादि चूर्ण चिरायता २ तोले, कुटकी, त्रिकटु, मोथा, और इन्द्रयव प्रत्येक १ तोला चीतामूल २ तोला और कुरैयाकी छाल १६ तोले एकत्र चूर्ण बनाकर उपयुक्त मात्रा गुड़के शरबतके साथ पीनेसे ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार रोग आराम होता है।

पाठाद्य चूर्ण।—पाठा, बेलकी गिरी, चितामूल, त्रिकटु, जामुनकी छाल, अनारके फलकी छाल, धवईका फूल, कुटकी, मोथा, इन्द्रयव, अतीस, दारुहल्दी और चिरायता, इन सबका समभाग चूर्ण और सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणी अरोचक और अग्निमान्द्य विनष्ट होता है।

स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण।—मोथा, सेन्धानमक, शोंठ, धव-ईका फुल, लोध, कुरैयाकी छाल, बेलकी गिरी, मोचरस, पाठा,

इन्द्रयव, बाला, आम्रकेशी, अतीस और बराहक्रान्ता, इन सबका समभाग चूर्णकर सहत और चावल भिंगोये पानीके साथ देना। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, संग्रह ग्रहणी और सूतिका रोग आराम होता है।

वृहत् गङ्गाधर चूर्ण।—बेलको गिरी, मोचरस, पाठा, धवईका फूल, धनिया, बराहक्रान्ता, शोंठ, मोथा, अतीस, अफीम, लोध, कच्चा अनारके फलकी छाल, कुरैयाकी छाल, पारा और गन्धक, प्रत्येक समभाग खल करना। अनुपान चावल भिंगोये पानी या माठेके साथ। इससे आठ प्रकारका ज्वर, अतिसार, और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

स्वल्प लवंगादि चूर्ण।—लौंग, अतीस, बेलकी गिरी, मोथा, पाठा, मोचरस, जीरा, धवईका फूल, लोध, इन्द्रयव, बाला, धनिया, सफेदराल, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, शोंठ, बराहक्रान्ता, जवाक्षार, सेंधानमक और रसाञ्जन; यह सब द्रव्य समभाग ले चूर्णकर एकत्र मिलाना। मात्रा १०से २० रत्ती अनुपान सहत और चावल भिंगोये पानी अथवा बकरीका दूध। इससे अग्निमान्द्य, संग्रह ग्रहणी, सशोथ अतिसार, पाण्डु, कामला, कास, श्वास, ज्वर, बमन, अम्लपित्त, शूल और सान्निपातिक सब प्रकारका रोग नष्ट होता है।

वृहत् लवंगादि चूर्ण।—लौंग, अतीस, मोथा, पीपल, गोलमिरच, सैन्धव, हीबेर, धनिया, जायफल, कूठ, रसाञ्जन, जावित्री, जायफल, कालाजीरा, सौवर्चल लवण, धवइका फूल, मोचरस, अम्बष्ठा, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, चीतामूल, काला नमक, तितलौकी, बेलकी गिरी, दालचीनी, इलायची, पीपलामूल, अजमोदा, अजवाईन, बराहक्रान्ता, इन्द्रयव, शोंठ, अनारके फलकी

छाल, जवाक्षार, नीमकी छाल सफेद राल, सज्जीक्षार, समुद्रफेन, सोहागेका लावा, बाला, कुरैयाकी छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, कुटकी तथा शोधित अभ्र, लौह, गन्धक और पारा, प्रत्येक का समभाग चूर्ण। मात्रा एक आना। अनुपान सहत और चावल भिंगोया पानी। इससे उत्कट ग्रहणी, सब प्रकारका अतिसार, ज्वर, अरोचक, अग्निमान्द्य, कास, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिक्का, प्रमेह, हलीमक, पाण्डु, अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, शोथ, पीनस, आमवात, अजीर्ण और प्रदर आदि नानाप्रकारके रोग दूर होता है।

नायिका चूर्ण।—पांचोनमक प्रत्येक १॥ डेढ़ तोला, त्रिकटु प्रत्येक २ तोले, गन्धक १ तोला, पारा आधा तोला, भांगका पत्ता ८॥ तोले, इन सबका चूर्णकर एकत्र मिलाना। मात्रा एक मासासे आरम्भ कर आधा तोला तक। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक और ग्रहणी नाशक है।

जातीफलादि चूर्ण।—जायफल, बिड़ङ्ग, चीतामूल, तगरपादुका, तालीश पत्र, लालचन्दन, शोंठ, लौंग, कालाजीरा, कर्पूर, हरीतकी, आंवला, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, भांगका चूर्ण ७ पल और चीनी सबके बराबर एकत्र मर्दन करना। इससे ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, कास, क्षय, श्वास, अरोचक, पीनस, वातकफरोग और प्रतिश्याय निवारित होता है।

जीरकादि चूर्ण।—जीरा, सोहागेका लावा, मोथा, पाठा, बेलकी गिरी, धनिया, बाला, सोवा, अनारकी छाल, बराहक्रान्ता, कुरैयाकी छाल, धवईका फूल, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची मोचरस, इन्द्रयव, अभ्र, गन्धक और पारा प्रत्येक समभाग

और समष्टीके बराबर जायफल का चूर्ण, यह सब द्रव्य एकत्र मिला मर्द्दन करना। इससे दुर्निवार ग्रहणी, सब प्रकार का अतिसार, कामला, पाण्ड् और मन्दाग्नि का नाश होता है।

कपित्थाष्टक चूर्ण।—अजवाईन, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, नागकेशर, शोंठ, मिरच, चीतामूल, बाला, कालाजीरा, धनिया और सोवर्चल नमक, प्रत्येक एक एक तोला, अम्लवेतस, धवईफूल, पीपल, बेलकी गिरी, अनारका छिलका और गाबछाल, प्रत्येक तीन तीन तोले, चीनी ६ तोले, कयिथका गूदा ८ तोले, एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अतिसार ग्रहणी, क्षय, गुल्म, कण्ठरोग, कास, श्वास, अरुचि और हिक्कारोग प्रशमित होता है।

दाड़िमाष्टक चूर्ण—वंशलोचन २ तोले, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची और नागेश्वर, प्रत्यक चार तोले, अजवाईन, धनिया, कालाजीरा, पीपलामूल और त्रिकट, यह सब प्रत्येक आठ तोले, अनारका छिलका ८ पल और चीनी ८ पल; एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कपित्थाष्टक चर्णोक्त सब रोग दूर होता है।

अजाज्यादि चूर्ण—जीरा २ पल, जवाक्षार १ पल, मोथा २ पल, अफीम १ पल, मदारकी जड़का चूर्ण ४ पल, यह सब चूर्ण एकत्र मिलाकर २से ६ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे अतिसार, रक्तातिसार ज्वरातिसार, ग्रहणी और विसूचिका रोग विनष्ट होता है।

कञ्चटावलेह।—कञ्चट (चौराई) एक सेर, तालमूली एक सेर, १६ सेर पानीमें औटाना ४ सेर रहनेपर नीचे उतार छान लेना। इस काढ़ेमें एकसेर चीनी मिलाकर पाक करना, चौथाई हिस्सा रहनेपर उससे बराहक्रान्ता, धवईफूल, पाठा, बेलकी गिरी, पीपल, भांग, अतीस, जवाक्षार, सौवर्चल

नमक, रसांजन और मोचरस प्रत्येक का चूर्ण २ तोले मिलाना। इसको मात्रा दोष, काल और उमर विचारकर स्थिर करना। पाक शेष तथा ठंढ़ा होनेपर एकपाव सहत मिलाना। यह सब प्रकारका अतिसार, संग्रहग्रहणी, अम्लपित्त, उदरशूल और अरोचक नाशक है।

दशमूल गुड़।—दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेमें पुराना गुड़ १२॥ सेर और अदरखका रस ४ सेर मिलाकर धीमी आंचमें औटाना। अवलेहकी तरह गाढ़ा होनेपर पीपल, पीपलामूल, मिरच, शोंठ, हींग, विड़ङ्ग, अजमोदा, जवाक्षार, सज्जीक्षार, चीतामूल, चाभ और पञ्चलवण, यह सब द्रव्य प्रत्येक एक एक पल मिलाकर चलाना तथा पाक समाप्त होनेपर स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला। इससे अग्निमान्द्य, शोथ, आमजग्रहणी, शूल, प्लीहा, उदर, अर्श और ज्वर आराम होता है।

मुस्तकाद्य मोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, चीतामूल, लौंग, जीरा, कालाजीरा, अजवाईन, अजमोदा, सौंफ, पान, सोवा, शतमूली, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, मेथी और जायफल, प्रत्येक २ तोले मोथा ४८ तोले, चीनी १॥ सेर। यथाविधि पाककर मोदक बनाना; मात्रा आधा तोलासे एक तोलातक। यह शामको ठण्ढे पानीमें लेनेसे ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि अरोचक, अजीर्ण, आमदोष और विसूचिका रोग आराम हो देहका बल, वर्ण और पुष्टि सम्पादन करता हैं।

कामेश्वर मोदक।—आंवला, सैन्धव, कूठ, कटफल, पीपल, शोंठ, अजवाईन, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, शठी, कांकड़ाशिङ्गी, बच, नागेश्वर, तालीशपत्र, दालचीनी तेजपत्ता, इलायची, मिरच, बड़ीहर्र और बहेड़ा, प्रत्येक का

चूर्ण समभाग ; सबके बराबर थोड़ा भूंजी हुई बीज समेत भांगका चूर्ण, तथा समष्टिको दो गुनो चीनो ; चीनोकी चाशनी गाढ़ी होनेपर उक्त सब चूर्ण मिलाना, फिर थोड़ा घी और सहत मिला मोदक तयार कर भूंजो तिलका चूर्ण और कर्पूरसे अधिवासित करना। इससे ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोगोंकी शान्ति, बल, वीर्य्य और रतिशक्तिकी वृद्धि होती है।

मदन मोदक।—घीमें भूंजी हुई सबीज भांगका चूर्ण १२ तोले, त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, कूठ, धनिया, सैन्धव, शठी, तालीशपत्र, कटफल, नागेश्वर, अजमोदा, अजवाइन, मुलेठी, मेथी, जीरा और कालाजीरा प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, चीनी ४२ तोले, पाकयोग्य पानीमें औटाना, पाकशेष होनेसे घी और सहत मिलाकर मोदक बना दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची का चूर्ण मिलाना। उपयुक्त मात्रा सबेरे सेवन करनेसे वातकफ रोग, कास, सब प्रकारका शूल, आमवात और संग्रहग्रहणी विनष्ट होता है।

जीरकादि मोदक।—जीरा ८ पल, घीमें भूंजी भांगके बीजका चूर्ण ४ पल, लोहा, वंग, अभ्र, सौंफ, तालीशपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग, छड़ीला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, द्राक्षा, शठी, सोहागेका लावा, मुलेठी, वंशलोचन, बाला, गोरक्षचाकुला, त्रिकटु, धवईकाफूल, बेलकी गिरी, अर्ज्जुनकी छाल, सोवा, देवदारु, कपूर, प्रियङ्गु, जीरा, मोचरस, कुटकी, पद्मकाष्ठ और नालुका प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले और समष्टिको दूनी चीनी, पाक शेष होनेपर घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा सबेरे ठण्ढे पानीके साथ लेनेसे सब प्रकारकी ग्रहणी,

अग्निमान्द्य, अतिसार, रक्तातिसार, बिषमज्वर, अम्लपित्त और सब प्रकारका उदर रोग आदि पीड़ा दूर होती है।

बृहत् जीरकादि मोदक।—जीरा, कालाजीरा, कूठ, शोंठ, पीपल, मिरच, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, लौंग, छड़ीला, लालचन्दन, सफेद चन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जविची, जायफल, मुलेठी, सौंफ, जटामांसी, मोथा, सौवर्च्चल नमक, शठी, धनिया, देवताड़, मूरामांसी, द्राक्षा, नखी, सोवा, पद्मकाष्ठ, मेथी, देवदारु, बाला, नालुका, सैन्धानमक, गजपीपल, कपूर, प्रियङ्गु, प्रत्येक एक एक भाग, लोहा, अभ्र और वंग प्रत्येक २ भाग; सब चूर्णके बराबर भूंजे हुए जीराका चूर्ण। समष्टी की दूनी चीनीकी चाशनीकर उक्त सब चूर्ण तथा घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। अनुपान गायका घी और चीनी। इससे अस्सी प्रकारका वायुरोग चालीस प्रकारका पित्तज रोग, सब प्रकारका अतिसार शूल, अर्श, जीर्णज्वर, विषमज्वर, सूतिकारोग, प्रदर आदि नानाप्रकार का रोग दूर होता है।

मेथी मोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कायफल, कूठ, कांकड़ाशिंगी, अजवाईन, सैन्धव, कालानमक, तालीशपत्र, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, बड़ी इलायची, जायफल, जाविची, लौंग, मुरामांसी, कपूर और लालचन्दन, इन सबका चूर्ण समभाग तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण। यह मोदक दो गुना पुराने गुड़में बनाना, पाक शेष होनेपर घी और सहत मिलाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, पाण्ड, कास, यक्ष्मा और कामला रोग आराम होता है।

वृहत् मेथी मोदक ।—त्रिफला, धनिया, शोंठ, मिरच, पिपल, कायफल, सेंधा नमक, कांकड़ाशिंगी, जीरा, कालाजीरा, कूठ, अजवाईन, नागेश्वर, तेजपत्ता, तालीशपत्र, कालानमक, जायफल, दालचोनी, इलायची, जाविन्नी, कपूर, लौंग, सोवा, मुरामांसी, मुलेठी, पद्मकाष्ठ, चाभ, सौंफ और देवदारु, प्रत्येकका चूर्ण समभाग और सबके बराबर मेथीका चूर्ण तथा सब समष्टिका दूनी चीनीकी चाशनीमें यह सब चूर्ण मिला नीचे उतार घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा आधा तोला, इससे अग्निमान्द्य, आमदोष, आमबात, ग्रहणी, प्लीहा, पाण्ड, अर्श, प्रमेह, कास, श्वास, सर्दी, अतिसार और अरोचक रोग आराम होता है।

अग्निकुमार मोदक ।—खसकी जड़, बाला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, नागेश्वर, जीरा, कालाजीरा, कांकड़ाशिंगी, कायफल, कूठ, शठी, त्रिकटु, बेलकी गिरी, धनिया, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तलौह, छड़ीला, वंशलोचन, इलायची, जटामांसी रास्ना, तगरपादुका, बराहक्रान्ता, बरियारा, अभ्र, मुरामांसी और वंग, यह सब द्रव्य प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण और मेथीका आधा भाग भांगका चूर्ण, तथा सब चूर्णकी दूनी चीनी; पाकशेष होनेपर सहत मिला मोदक बनाना। ठण्ढा पानी अथवा बकरीके दूधमें आधा तोला मात्रा सबेरे सेवन करानेसे दुर्निवार ग्रहणी, श्वास, कास, आमवात, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विषमज्वर, आनाह, शूल, यकृत्, प्लीहा, उदर, अठारह प्रकारका कुष्ठ, उदावर्त्त और गुल्म रोग आराम होता है।

ग्रहणीकपाट रस ।—सोहागेका लावा, जवाखार,

गन्धक, पारा, जायफल, खैर, जीरा, सफेदराल, कवाचकीबीज और बकपुष्प, प्रत्येक द्रव्यका आधातोला चूर्ण; बेलका पत्ता कपासका फल, शालिंच, कटेरी, शालिंचमूल, कुरैयाकी छाल चौराई-पत्तेके रससे मर्द्दन कर एकरत्ती वजनकी गोली बनाना। यह औषध तीन दिन देना तथा औषध खानेके बाद आधपाव दही पिलाना, इससे सब प्रकारकी ग्रहणी, आमशूल, ज्वर, कास, श्वास शोथ और प्रवाहिका आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

२ ग्र ग्रहणीकपाट रस।—मोती, सोना, पारा, गन्धक, सोहागेका लावा, अभ्रक, कौड़ी भस्म और विष प्रत्येक १ तोला; शंख भस्म ८ तोले, सब एकत्रकर अतीसके काढ़ेकी भावना दे एक गोला बना दो पहर गजपुटमें फूकना, आग ठण्ढो होनेपर औषध निकालकर लोहेके पात्रमें धतूरा, चीता और ताल-मूलीके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान वाताधिक्य ग्रहणीमें घी और गोलमिरच; पित्ताधिक्य ग्रहणीमें सहत और पीपल तथा कफाधिक्य ग्रहणीमें भांगका रस या घी मिलाया त्रिकटु। इससे ग्रहणी, क्षय, ज्वर, अर्श मन्दाग्नि, अतिसार, अरोचक, पीनस और प्रमेह नष्ट होता हैं।

ग्रहणीशार्द्दूल वटिका—जायफल, लौंग, जीरा, कूठ, सोहागेका लावा, कालानमक, दालचीनी, इलायची, धतूरेकी बीज, और अफीम, प्रत्येक समभाग; गंधालीके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना इससे ग्रहणी, नानाप्रकार अतिसार और प्रवाहिका रोग आराम होता है।

ग्रहणीगजेन्द्र वटिका।—पारा, गन्धक, लोहा, शङ्ख-भस्म, सोहागेका लावा, हींग, शठी, तालिशपत्र, मोथा, धनिया, जीरा, सैन्धानमक, धवईका फूल, अतीस, शोंठ, गृहधूम,

हरीतको, भेलावा, तेजपत्ता, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, वाला, बेलगिरी और मेथी ; यह सब द्रव्य भांगके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना, यह ग्रहणी, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कण्ड, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और क्रिमिरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निजनक है।

अग्निकुमार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकटु, सोहागेका लावा, लौहभस्म, अजमोदा और अफीम प्रत्येक समभाग, सबके बराबर अभ्रभस्म, एकत्र चीतामूलके काढ़ेमें एक पहर खलकर गोलमिरचके बराबर गोली बनाना। इससे अजीर्ण और ग्रहणी रोग दूर होता है।

जातीफलाद्य वटी।—जायफल, सोहागेका लावा, अभ्रभस्म और धतूरेको बीज प्रत्येक एक तोला, अफीम २ तोले, यह सब द्रव्य गन्धाली पत्तेके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह गोली ग्रहणी रोगमें सहतके साथ और दोषानुसार अनुपान विशेषके साथ सब प्रकारके अतिसारमें भी प्रयोग कर सकते हैं। गोली सेवन बाद दही और भात भोजन कराना चाहिये।

महागन्धक।—पारा २ तोले, गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाना। कज्जलीमें थोड़ा पानी मिला एक लोहेके पात्रमें रख गरम करना फिर जायफल, लौंग, जावित्री और नीमका पत्ता प्रत्येकका चूर्ण २ तोले इसमें मिलाना। फिर दो सीपमें यह औषध बन्दकर केलेका पत्ता लपेट मिट्टीका लेप करना। सूखजानेपर गजपुटमें फूंकना, उपरकी मिट्टी लाल हो जानेपर दवा आगसे निकालकर एकदफे और खल करना। इसकी पूरी मात्रा २ रत्ती। ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, कास, श्वास और बालकोंके उदरामय रोगोंमें इससे विशेष उपकार होता है।

महाभ्र वटी।—अभ्रक, ताम्बा, लौह, गन्धक, पारा, मनसिल, सोहागीका लावा, जवाक्षार और त्रिफला प्रत्येक ८ तोले, मीठाविष आधा तोला; एकत्र मर्द्दन कर, भांग, सोमराजी, भृंगराज, बेलका पत्ता, पालिधापत्र, गनियारी, बिधारा, धनिया, खुलकुड़ी, निर्गुण्डी, नाटाकरञ्ज, धतूरेका पत्ता, श्वेत अपराजिता, जयन्ती, अदरख, अडूंसा और पान यथासम्भव इन सबके प्रत्येकके पत्तेका रस ८ तोला, या भिंगोये हुये पानीकी अलग अलग भावना देकर थोड़ा गिला रहनेपर ८ तोले गोलमिरचका चूर्ण मिला, एक रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान विशेषके साथ यह ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, शूल, शोथ, अग्निमान्द्य, आमवात और प्रदर आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

पीयुषवल्ली रस।—पारा, गन्धक, अभ्र, रौप्य, लोहा, सोहागीका लावा, रसाञ्जन, स्वर्णमाक्षिक, लौंग, लालचन्दन, मोथा, पाठा, जीरा, धनिया, बराहक्रान्ता, अतीस, लोध, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दालचीनी, जायफल, शोंठ, नीमकी छाल धतूरेकी बीज, अनारकी छाल, लज्जालुलता, धवईफल और कूठ प्रत्येक आधा तोला, इन सबको एकत्र मिला कसेरूका रस और बकरीके दूधकी भावना देकर चने बराबर गोली बनाना। भूंजा बेल और गुड़के साथ देनेसे रक्तातिसार, ग्रहणी और रक्तप्रदर आदि विविध पीड़ा इससे आराम होती है।

श्रीनृपतिवल्लभ।—जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागीका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्रक, पारा, गंधक और ताम्बा प्रत्येक एक पल, गोलमिरच २ पल एकत्र बकरीका दूध और आंवलेके रसकी

भावना देकर एक आनाभरकी गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, शूल, कास, श्वास, शोथ, भगन्दर, उपदंश और गुल्म आदि पीड़ा आराम होती है।

बृहत् नृपवल्लभ।—पारा, गन्धक, लोहा, अभ्र, सोना, चीतामूल, मोथा, सोहागेका लावा, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, वंग, तेजपत्ता, कालाजीरा, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, गोलमिरच और ताम्बा प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्णभस्म आधा तोला, इन सब द्रव्योंको अदरख और आंवलेके रसकी भावना दे चने बराबर गोली बनाना। इससे भी ग्रहणी, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि उदरामय रोग आराम होता है।

ग्रहणीवज्रकपाट—पारा, गंधक, जवाक्षार, अजवाईन, अभ्रक, सोहागेका लावा और जयन्ती समभाग ले, जयन्ती, भीमराज और जम्बीर नीबूके रसमें एक एक दिन खलकर गोला बनाना। धीमी आंचमें गोला गरम कर ठण्ढा हो जानेपर भांग, सेमर और हरीतकीके रसकी सात सात दफे भावना देना। उपयुक्त मात्रासे सहतके साथ देनेसे ग्रहणी रोग विनष्ट होता है।

राजवल्लभ रस—जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, शोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्र, ताम्बा, पारा, गंधक, गोलमिरच, तिवड़ी और रौप्य, प्रत्येक समभाग आंवलेके रसकी भावना दे दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह औषध अनुपान विशेषके साथ देनेसे ग्रहणी, गुल्म, शूल, अतिसार और अर्श आदि पीड़ा आराम होता है।

चांगेरी घृत—घी ४ सेर, चौपतियाशाक का रस १६ सेर, दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ शोंठ, पीपलमूल, चीतामूल, गजपीपल, गोक्षुर, पीपल, धनिया, बेलकी गिरी, पाठा और अजवाईन सब मिला-

कर एक सेर ; यथाविधि घृत पाककर प्रयोग करनेसे ग्रहणी, प्रवाहिका और वातकफजनित रोग आराम होता है।

मरिचाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूल ६ सेर, पानी ३२ सेर, शेष ८ सेर ; दूध ८ सेर कल्कार्थ गोलमिरच, पीपलामूल, शोंठ, पीपल, भेलावा, अजवाईन, विड़ङ्ग, गजपीपल, हींग, सौवर्च्चल, काला, सैंधव और कटैलानमक, चाभ, जवाखार चीतामूल और वच प्रत्येक ४ तोले यथाविधि पाक करना। यह अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्लीहा, अर्श, भगन्दर, आमदोष, क्रिमि, श्वास और कास नाशक है।

महाषट्पलक घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर, चुक्र ४ सेर, दूध ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर और कांजी ४ सेर। कल्कार्थ पञ्चकोल, सौवर्च्चल, सैन्धव, काला और पाङ्गानमक, हीवेर, अजमोदा, जवाखार, हींग, जीरा, कालाजीरा, और अजवाईन प्रत्येक ४ तोले। यथाविधि पाक करना। इससेभी ग्रहणी, अर्श, श्वास, कास और क्रिमि आदि रोग आराम होता है।

विल्वतैल।—तिलका तैल ४ सेर, बेलका गूदा ६ सेर और दशमूल ६ सेर एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर ; अदरखका रस ४ सेर, कांजी ४ सेर, दूध ४ सेर। कल्कार्थ धवईफूल, बेलगिरी, कूठ, शठी, रास्ना, पुनर्नवा, त्रिकटु, पीपलामूल, चीतामूल, गजपीपल, देवदारु, बच, कूठ, मोचरस, कुटकी, तेजपत्ता, अजमोदा और अष्टवर्ग प्रत्येक चार चार तोले, हलकी आंचपर यथाविधि पाक करना। यह संग्रह ग्रहणी, अतिसार, गुल्म और सूतिका आदि बहुरोग नाशक है।

ग्रहणीमिहिर तैल।—तिलका तैल ४ सेर, क्वाथार्थ कुरैयाकी छाल किम्बा धनिया १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, अथवा तक्र (मट्ठा) १६ सेर, कल्कार्थ धनिया, धवईका-

फूल, लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, खसकी जड़, मोथा, बाला, मोचरस, रसवत, बेलकी गिरी, नीलोत्पल, तेजपत्ता, नागेश्वर, पद्मकेशर, गुरिच, इन्द्रयव, श्यामालता, पद्मकाष्ठ, कुटकी, तगरपादुका, जटामांसी, कुरैयाकी छाल, दालचीनी, कसेरु, और जीरा प्रत्येक २ तोले, यथाविधि पाक करना। ग्रहणी आदि विविध रोगोंमें यह प्रयोग होता है।

बृहत् ग्रहणीमिहिर तैल।—तिलका तेल ४ सेर; क्वाथार्थ कुरैयाकी छाल और धनिया प्रत्येक १२॥ सेर; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना, प्रत्येकका शेष १६ सेर, मट्ठा १६ सेर और कल्कार्थ धनिया, धवईका फूल, लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, लौंग, बाला, सिंघाड़ेका पत्ता, रसवत्त, नागेश्वर, पद्मकाष्ठ, गुरिच, इन्द्रयव, प्रियङ्गु, कुटकी, पद्मकेशर, तगरपादुका, शरमूल, भृङ्गराज, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल और कदमकी छाल, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाक करना। यह तैल ग्रहणीमिहिर तैलसे भी विशेष उपकारी है।

दाड़िमाद्य तैल।—तिलका तेल १६ सेर; अनारके फलकी छाल, बाला, धनिया और कुरैयाकी छाल प्रत्येक द्रव्य ८ सेर अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर यह सब काढ़ा प्रत्येकका १६ सेर मट्ठा ८ सेर और कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चाभ, जीरा, सैंधव, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, सौंफ, जटामांसी, लौंग, जावित्री, जायफल, धनिया, अजवाईन, अजमोदा, बाला, कचूटी, अतीस, खुलकुड़ी, सिंघाड़ेका पत्ता, वृहती, कण्टकारी, आमकी छाल, जामुनकी छाल, स[illegible]वन, पिठवन, बराहक्रान्ता, इन्द्रयव, सतावर, धवईका फूल, बेलकी गिरी, मोच-

रस, तालमूली, कुरैयाकी, छाल, बरियारा, गोक्षुर, लोध, पाठा, खदिर काष्ठ, गुरिच और सेमरको छाल, प्रत्येक ४ तोले, अरवा चावल भिंगोये पानीमें पीसकर यथाविधि पाक करना। यह ग्रहणी, अर्श:, प्रमेह आदि बहुविध रोग निवारक है।

दुग्धवटी।—पारा, गन्धक, मीठाविष, ताम्बा, अभ्रक, लोहा, हरिताल, हिंगुल, सेमरका खार और अफीम; प्रत्येक समभाग दूधमें खलकर आधा जौ बराबर गोली बनाना। यह दूधके अनुपानके साथ देनेसे शोथ युक्त ग्रहणी आदि रोग आराम होता है। इसमें पानी पीना और नमक खाना मना है। प्यास लगेतो पानीके बदले दूध पीना चाहिये। दाल तर्कारीके बदले केवल दूधभात या दूधमें औटाया दूसरा पदार्थ मंड आदि पथ्य देना उचित है। पानी और नमक बन्द करना कठिन मालूम हो तो, सेन्धानमक केसुरियाके रसमें भूनकर वही नमक दाल और तरकारीमें बहुत थोड़ा मिलाकर देना तथा पानी गरम कर बहुत मांगनेपर थोड़ा पीनेको देना चाहिये।

लौहपर्प्पटी।—पारा २ तोले और गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाकर उसमें २ तोले लोहाभस्म मिलाना तथा लोहेके पात्रमें मर्द्दन करना। फिर लोहेकी कलछीमें घी लगाकर आगपर रख कज्जली गला लेना, फिर वह कज्जली गरम रहतेही, गोबरके उपर केलेका पत्ता रख उसपर ढालना तथा उपरसे दूसरा केलेका पत्ता रखकर गोबरसे ढांक देना। थोड़ी देर बाद जो चिपटा पदार्थ जम जायगा उसीको लौह पर्प्पटी कहते है। मात्रा एक रत्तीसे आरम्भकर थोड़ा थोड़ा बढ़ाना, अनुपान ठण्ढा पानी या धनिया और जीरेका काढ़ा। इससे ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, पाण्डु, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होता है।

स्वर्णपर्प्पटी।—पारा ८ तोले और सोनेका भस्म १ तोला, एकत्र खूब मर्द्दन कर उसमें ८ तोले गन्धक मिला कज्जली बनाना। फिर लोहपर्पटीकी तरह पर्प्पटी बनाकर उसी मात्रासे प्रयोग करना। इससे ग्रहणी, यक्ष्मा, शूल, आदि रोग आराम होता है।

पञ्चामृत पर्प्पटी।—गन्धक ८ तोले, पारा ४ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक एक तोला और ताम्बा आधा तोला, एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर पूर्व्ववत् पर्प्पटी बनाना। २ रत्ती मात्रा घी और सहतके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी, शोथ, अर्श, ज्वर, रक्तपित्त, क्षय, कास, अरुचि, वमन और पुराना अतिसार आदि रोगोंका नाश होता है।

रसपर्प्पटी।—समभाग पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर पूर्व्ववत् पर्प्पटी तयार करना। यहभी ग्रहणी आदि विविध पीड़ानाशक है। मात्रा २ रत्ती। इस पर्प्पटी सेवनके समयमें भी दुग्धवटीकी तरह जलपान और लवण भोजन परित्याग करना चाहिये।

विजय पर्प्पटी।—गन्धक के चूर्ण को भंगरैया के रसको ७ वार अथवा ३ वार भावना देकर सुखा लेना। फिर वही गन्धक लोहेके पात्रमें गलाकर भंगरैयाके रसमें डालना। थोड़ी देर बाद निकालकर सूखा लेना। यह गन्धक ८ तोले, शोधित पारा ४ तोले, चांदीका भस्म २ तोले, सोनेके भस्म १ तोला, वैक्रान्त भस्म आधा तोला और मोती चार आनेभर एकत्र खल-कर कज्जली बनाना। बैरकी लकड़ीके अंगारेपर इसे गलाकर पर्प्पटी तयार करना। यह पर्प्पटी यथानियम २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे दुर्निवार ग्रहणी, शोथ, आमशूल, अतिसार, यक्ष्मा, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, वातरक्त, विषम ज्वर और प्रमेह आदि

विविध रोग निराकृत होता है तथा रोगी क्रमश: बल और पुष्टि लाभकर थोड़ेही दिनोंमें चङ्गा हो जाता है। यह औषध सेवन करनेसे स्त्रीसहवास, रात्रिजागरण, कसरत और तिक्त द्रव्य तथा कफजनक द्रव्य भोजन निषिद्ध हैं। व्यञ्जनादि पथ्य देना हो तो धनिया, हींग, जीरा, शोंठ, सेंधव और घीसे पाक करना चाहिये। वायु कुपित होनेसे विशेष विचारकर कच्चे नारियलका पानी थोड़ा देना, नहीतो दूधके सिवाय और कोई पदार्थ नही पिलाना।

अर्शोरोग (बवासीर)।

—०:०:०—

चन्दनादि काढ़ा—लालचन्दन, चिरायता, जवासा और शोंठ प्रत्येक आधा तोला यथाविधि औटाकर पिलाना। यह खूनी बवासीर नाशक है।

मरिच्यादि चूर्ण—गोलमिरच, पीपल, कूठ, सैंधव, जीरा, शोंठ, बच, हींग, बिड़ङ्ग, हरोतकी, चीतामूल और अजवाईन, इन सबका समभाग चूर्ण और समष्टीका दो गुना पुरानागुड़ एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे देना।

समशर्कर चूर्ण—बड़ी इलायची, एक भाग, दालचीनो २ भाग, तेजपत्ता ३ भाग, नागेश्वर ४ भाग, गोलमिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और शोंठ ७ भाग, एकत्र चूर्णकर समष्टीके बराबर चीनी मिलाना। यह चार आनेभर अथवा अवस्था विशेषमें उससे भी अल्पाधिक मात्रा पानीसे देना।

कर्पूराद्य चूर्ण।—कर्पूर, लौंग, इलायची, दालचीनी, नागेश्वर, जायफल, खसकी जड़, शोंठ, कालाजीरा, कृष्णागुरु, वंशलोचन, जटामांसी, नीलाकमल, पीपल, लालचन्दन, तगरपादुका, बाला और शीतलचीनीका समभाग चूर्ण एकत्रकर सब द्रव्यको आधी चीनी मिलाना। यह वातार्शको श्रेष्ठ औषध है तथा अतिसार, गुल्म, ग्रहणी और हृद्रोग आदि पीड़ा नाशक है।

विजय चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात, बच, हींग, अम्बष्ठा, जवाक्षार, हरिद्रा, दारुहल्दी चाभ, कुटकी, इन्द्रयव, चीतामूल, सोवा, पांचो नमक, पीपलामूल, बेलकी गिरी और अजवाईन, सब समभाग एकत्र चूर्णकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अर्श ग्रहणी, वातगुल्म, कास, श्वास, हिक्का और पार्श्वशूल आदि विविध पीड़ा नाश होती है।

करञ्जादि चूर्ण—करञ्ज फलका गूदा, चीतामूल, सैन्धव, शोंठ, इन्द्रयव और श्योनाक (शोना) छाल; इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा मट्ठेके साथ देनेसे भी रक्तार्श आराम होता है।

भल्लातकामृतयोग—गुरिच, ईशलांगला, कांकड़ाशिङ्गी, बड़ी खुलकुड़ी, गुञ्जापत्र और केतकी पत्रके रसके साथ भेलावेकी नरम बीज एक एक दिन खूब खलकर २ मासे मात्रा प्रयोग करनेसे रक्तार्श आराम होता है।

दशमूल गुड़—दशमूल, चीतामूल और दन्तीमूल, प्रत्येक ५ पल, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते छानकर उसी काढ़ेके साथ १२॥ सेर गुड़ औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिवृत चूर्ण १ सेर मिलाना। इसकी मात्रा आधा तोला। अर्श, अजीर्ण और पांडूरोगकी श्रेष्ठ दवा है।

नागराद्य मोदक—शोंठ, भिलावा और बिधारा की बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण दो गुने गुड़में मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा पानीके साथ देना।

स्वल्प शूरण मोदक—गोलमिरच एक भाग, शोंठ दो भाग, चीतामूल ४ भाग, जंगली जिमिकन्द ८ भाग और सबके बराबर गुड़, एकत्र मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा पानीके साथ देना, इससे अर्श:, गुल्म, शूल, उदर रोग, श्लीपद, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होता है।

वृहत् शूरण मोदक।—जिमिकन्द का चूर्ण १६ तोले, चीतामूल, ८ तोले, बेलका गिरी ४ तोले, गोलमिरच २ तोले; त्रिफला, पीपल, शतावर, तालीस पत्र, भिलावा और विड़ङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले, तालमूली ८ तोले, बिधाराकी बीज १६ तोले, दालचीनी २ तोले और बड़ी इलायची २ तोले, यह सब द्रव्य १८० तोले पुराने गुड़में मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा एक तोला ठण्ढे पानीके साथ। इससे स्वल्प शूरणोक्त रोग समूह तथा शोथ, ग्रहणी, प्लीहा, कास और श्वास आदि रोगभी आराम होता है।

कुटजलेह।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना ८ सेर रहते छानकर फिर औटाना, गाढ़ा हो जानेपर भिलावा, बिड़ङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, रसाञ्जन, चीतामूल, इन्द्रयव, वच, अतीस और बेलकी गिरी प्रत्येक का चूर्ण ८ तोले। पुराना

गुड़ ३॥ सेर, घी एक सेर और सहत एक सेर, यह सब एकत्र मिलाना । आधा तोला मात्रा ठण्ढा पानी, मट्ठा अथवा बकरीके दूधमें देनेसे रक्तार्श: रक्तपित और रक्तातिसार आदि रोग नष्ट होता है ।

प्राणदा गुड़िका ।—शोंठ ३ पल, गोलमिरच १ पल, पीपल २ पल, चाभ १ पल, तालीशपत्र १ पल, नागेश्वर ४ तोले पीपलामूल २ पल, तेजपत्ता १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी १ तोला, खसकी जड़ १ तोला, पुराना गुड़ ३० पल ; यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा प्रयोग करना । अनुपान दूध या पानी । कोष्ठवद्व हो तो शोंठके बदले बड़ीहर्र देना ।

चन्द्रप्रभा गुड़िका ।—विड़ङ्ग, चीतामूल, त्रिकट, त्रिफला, देवदारु, चाभ, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, शठी, बच, स्वर्णमाक्षिक, सेन्धव, सौवर्च्चल नमक, जवाक्षार, सज्जीक्षार हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, गजपीपल और अतीस, प्रत्येक २ तोले, शिलाजीत ८ पल, शोधित गुग्गुल २ पल लोहा २ पल, चीनी ४ पल, बंशलोचन १ पल, दन्तीमूल, त्रिवृत, दालचीनी, तेज-पत्ता और इलायची प्रत्येक द्रव्य २ तोला ; कज्जली ८ तोले अथवा रससिन्दूर ८ तोले, यह सब एकत्र खल करना । मात्रा पहिले ४ रत्ती फिर रहनेपर बढ़ा देना । अनुपान घी और सहत ।

रसगुड़िका ।—रसन्दिूर एकभाग, गोलमिरच, विड़ङ्ग, और अभ्रक प्रत्येक ४ भाग ; एकत्र जङ्गली पालकी शाकके रसमें ७ बार भावना दे खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना । यह अर्श और अग्निमान्द्य नाशक है ।

जातीफलादि वटी—जायफल, लौंग, पीपल, सेन्धव, शोंठ,

धतूरेकी बीज, हिङ्गुल और सोहागेका लावा; समभाग नीबूके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

पञ्चानन बटो—रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताम्बा और गन्धक, प्रत्येक एक एक तोला, शोधित भेलावा ५ तोले; ८ तोले जङ्गली जिमिकन्दके रसमें खलकर एक मासा वजन की गोली बनाना।

नित्योदित रस—पारा, गन्धक, ताम्बा, लोहा, अभ्रक और मीठाविष प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर भेलावा, सब एकत्र खलकर जिमिकन्द और मानकन्दके रसकों तीन दिन भावना दे उरद बराबर गोली बनाना, अनुपान घी।

दन्त्यरिष्ट।—दन्तीमूल आठ तोले चीतामूल ८ तोला और दशमूल प्रत्येक ८ तोले, एकत्र कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना। औटाती वक्त हरीतकी, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक आठ तोले एकत्र पीसकर मिलाना, फिर १६ सेर पानी रहते छानकर इसमें पुराना गुड़ १२॥ सेर मिलाकर घीके बरतनमें मुह बन्दकर रखना। १५ दिनके बाद १ भरी मात्रासे प्रयोग करना।

अभयारिष्ट।—हरीतकी एक सेर, आंवला २ सेर, कपित्थ की गिरी १० पल, इन्द्रवारुणी ४ तोले, विड़ङ्ग, पीपल, लोध, गोलमिरच, भेलवा, प्रत्येक दो दो पल, यह सब द्रव्य एकत्र ६ मन १६ सेर पानीमें औटाना ६४ सेर रहते उतारकर छान लेना। फिर उसमें २५ सेर पुराना गुड़ मिला घृत भावित पात्रमें १५ दिन रखना। पूर्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोथ, अग्निमान्द्य और क्रिमि आदि रोग दूर होता है।

चव्यादि घृत—घी ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर, पानी १६ सेर; कल्कार्थ चाभ, त्रिकटु, अम्बष्ठा, जवाक्षार, धनिया, अजवाईन, पीपलामूल, कालानमक, सेंधानमक, चीतामूल, बेलकी छाल और हरीतकी सब मिलाकर एक सेर यथानियम पाककर सेवन करनेसे मल और वायुका अनुलोम होता है तथा गुदभ्रंश, गुह्यशूल, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होता है।

कुटजाद्य घृत—घी ४ सेर, कल्कार्थ इन्द्रयव, कुरयाकी छाल, नागकेशर, नीलाकमल, लोध और धवईका फूल सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि पाक करना। यह रक्तार्श निवारक हैं।

काशीशाद्य तैल—तिलका तैल १ सेर, कांजी ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, दन्तीमूल, सैंधव नमक, कनैलकी जड़ और चीतामूल प्रत्येक एक छटांक, यथाविधि पाक करना, प्रयोग करनेके वक्त अकवनका दूध थोड़ा मिला लेना चाहिये।

वृहत् काशीशाद्य तैल—तिलका तैल ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, सैंधव, पीपल, शोंठ, कूठ, ईशलाङ्गला, पत्थरचूर, कनैलकी जड़ दन्तीमूल, विड़ङ्ग, चीतामूल, हरिताल, मैनसिल, सनाय और सेहुंड़का दूध सब मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर; एकत्र यथाविधि पाक करना।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

—:○:—
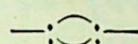
वडवानल चूर्ण—सेंधानमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चाभ ४ भाग, चीतामूल ५ भाग, शोंठ ६ भाग और हरीतकी ७ भाग; इन सबका चूर्ण सेवन करनेसे अग्निका दीप्ति होती है। मात्रा एक आनासे चार आनेभर तक। अनुपान गरम पानी।

सैन्धवादि चूर्ण—सेंधानमक, हरीतकी, पीपल और चीतामूल, इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर मात्रा ।) आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, अग्निकी अतिशय दीप्ति होती है। इससे नया चावलका भात, घृतपक्व पदार्थ और मछली आदि भी थोड़ेही देरमें हजम होता है।

सैंधवाद्य चूर्ण—सैंधव, चीतामूल, हरीतकी, लौंग, मिरच, पीपल, सोहागा, शोंठ, चाभ, अजवाईन, सौंफ और बच; यह १२ द्रव्योंका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर २१ दिन नीबूके रसकी भावना देना। यह चूर्ण २ मासे, गरम पानी, नमक मिलाया मट्ठा, दहीका पानी या कांजीके साथ सेवन करनेसे, सद्यः अग्निकी दीप्ति होती है।

हिङ्गाष्टक चूर्ण—त्रिकटु, अजवाईन, सैन्धव, जीरा, काला जीरा और हींग; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाना। भोजनके समय पहिले ग्रासमें यह चूर्ण और घी मिलाकर खानेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—हींग १ भाग, बच २ भाग, पीपल ३ भाग,

शोंठ ४ भाग, अजवाईन ५ भाग, हरोतको ६ भाग, चोतामूल ७ भाग, कूठ ८ भाग ; एकत्र चूर्ण करना। दधिमण्ड, सुरा या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लोहा, कास और वायु शान्त हैं।

वृहत् अग्निमुख चूर्ण।— यवाक्षार, सज्जीक्षार, चोतामूल, अम्बष्ठा, करञ्जमूल की छाल, पांचोनमक, छोटी इलायची, तेजपत्ता, बभनेठो, बिड़ङ्ग, होंग, कूठ, शठी, दारुहल्दी, तेवड़ी, मोथा, बच, इन्द्रयव आंवला, जोरा, गजपीपल, कालाजोरा, अम्लवेतस, इमली अजवाईन, देवदारु, हरोतको, अतीस अनन्तमूल, ह्रीवेर, अमिलतास का गूदा, तिलके लकड़ोका खार, सैंजनके जड़को छालका क्षार, कुलेखाड़ाका खार, पलाशका खार, बनपलास का खार और गरम गोमूत्रमें ७ बार भिंगोया मण्डूर, यह सब द्रव्य समभाग ले, ३ दिन नोबूके रसको, २ दिन कांजोकी और २ दिन अदरखके रसको भावना दे चूर्ण कर लेना। यह चूर्ण २ तोले मात्रा, भोजनके द्रव्योंमें मिलाकर घो डालकर खानेसे अजोर्ण, अग्निमान्द्य, प्लोहा, गुल्म, अष्टीला और अर्श आदि पोड़ा शान्त होती है।

भास्कर लवण।—पीपल, पीपलामूल, धनिया, कालाजोरा, सेंधानमक, कालानमक, तेजपत्ता, तालीश पत्र और नागकेशर प्रत्येक २ पल, सौवर्च्चल नमक ५ पल, गोलमिरच, जोरा और शोंठ प्रत्येक एक पल, दालचीनो बड़ोलायचो प्रत्येक ४ तोला, कटेलानमक ८ पल, अनारके फलको छाल ४ पल, अम्लवेतस २ पल. इन सब द्रव्योंका चर्ण एकत्र मिलाकर मट्ठा या कांजोके साथ सेवन करनेसे वातकफ, वातगुल्म, वातशूल, प्लोहा और पांडूरोगादि नानाप्रकारको पीड़ा आराम हो अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है।

अग्निमुख लवण।—चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवड़ीमूल और कूठ, प्रत्येक का समभाग चूर्ण, सबके बराबर सैन्धव नमक, एकत्र सेहुंड़के दूधकी भावना देकर, सेहुंड़के डण्डेमें भर मिट्टीका लेपकर आगमें रखना। जलजानेपर बाहर निकाल चूर्ण करना। इस चूर्णको मात्रा २ रत्ती। गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है तथा प्लीहा और गुल्म आदि नानाप्रकारके रोग नाश होता है।

वाडवानल रस—शोधित पारा २ तोले और शोधित गन्धक २ तोलेकी कज्जली तथा पीपल, पांचोनमक, गोलमिरच, त्रिफला, जवाक्षार, सज्जीक्षार और सोहागा प्रत्येक दो तोले एकत्र चूर्ण-कर निर्गुण्डीके पत्तेके रसकी एक दिन भावना दे, एकरत्ती वजन की गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

हुताशन रस—गन्धक एकभाग, पारा एकभाग, सोहागेका लावा एक भाग, विष ३ भाग, मिरच ८ भाग; यह सब द्रव्य एकत्र नीबके रसमें एक दिन खलकर मूंगके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। यह शूल, अरुचि, गुल्म, विसूचिका, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, शिरःपीड़ा और सन्निपात आदि रोगमें प्रयोग होता है।

अग्नितुण्डी वटी—पारा, गन्धक, विष, अजवाईन, त्रिफला, सज्जीक्षार, यवाक्षार, चीतामूल, सेंधानमक, जीरा, सौवर्च्चल नमक, विड़ङ्ग, कटेलानमक और सोहागेका लावा; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुचिला, एकत्र वड़े नीबूके रसमें खलकर गोलमिरच बराबर गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य रोग दूर होता है।

लवङ्गादि मोदक—लौंग, पीपल, शोंठ, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा, नागकेशर, तगरपादुका, इलायची, जायफल, वंश-

लोचन, कटफल, तेजपत्ता, पद्मबीज, लालचन्दन, शीतल चोनी, अगुरु, खसकी जड़, अभ्र, कर्पूर, जाविची, मोथा, जटामांसी, जौका चावल, धनिया और सोवा, प्रत्येकका समभाग चूर्ण, और चूर्णकी दूनी चीनी मिला यथाबिधि मोदक बनाना। इससे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, कामला, अरुचि और ग्रहणी आदि रोग दूर होता हैं ।

सुकुमार मोदक—पोपल, पीपलामूल, शोंठ, गोलमिरच, हरीतकी, आंवला, चीतामूल, अभ्र, गुरिच और कुटकी सबका चूर्ण १ तोला, दन्तोचूर्ण ६ तोले, तेवड़ोचूर्ण १६ तोले, चीनी २४ तोले; सहत मिलाकर मोदक बनाना। इससे वातजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त्त और आनाह रोग प्रशमित होता है।

त्रिवृत्तादि मोदक—तेवड़ीमूल, पीपलामूल, पोपल, चीतामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, गुरचकी चीनी ५ पल, शोंठका चूर्ण ५ पल और गुड़ ३० पल, इसका मोदक बनाना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलातक। यह अतिशय अग्निवृद्धि कारक होता है।

मुस्तकारिष्ट—मोथा २५ सेर, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर, यह काढ़ा छानकर उसमें ३७॥ सेर गुड़, धवईकाफुल १६ पल, अजवाईन, शोंठ, गोलमिरच, लौंग, मेथी, चीतामूल, जीरा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल मिलाना फिर मुह बन्दकर एक महीना रख द्रवांश छान लेना। इससे अजीर्ण अग्निमान्द्य विसूचिका और ग्रहणी रोग आराम होता है।

क्षुधासागर रस—त्रिकटु, त्रिफला, पांचोनमक, जवाक्षार, सज्जीक्षार, सोहागीका लावा, पारा, गन्धक प्रत्येक एक एक भाग विष २ भाग; एकत्र पानीमें खलकर एकरत्ती बराबर गोली

बनाना। यह गोली सहत और ५ लौंगके चूर्णमें मिलाकर चाटना। इससे सब प्रकारका अजीर्ण, आमवात, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त और मन्दाग्नि दूर होती है।

टङ्कनादि वटी—सोहागेका लावा, शोंठ, पारा, गन्धक, मीठाविष और गोलमिरच; प्रत्येक समभाग एकत्र मदारके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

शङ्खवटी—पारा ३ तोले, गन्धक ३ तोले, विष ६ तोले, गोलमिरच १२ तोले, शङ्खभस्म १२ तोले, तथा शोंठ सज्जीखार, हींग, पीपल, सैजन, सौवर्च्चल नमक, कालानमक, सेंधा और पांगानमक प्रत्येक १० तोले कागजी नीबूके रसकी भावना दे गोली बनाना। इससे ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होकर अग्निकी वृद्धि होती है।

महाशङ्ख वटी।—पीपलामूल, चीतामूल, दन्तीमूल, पारा, गंधक पीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोहागेका लावा, पांचोनमक, गोलमिरच, शोंठ, विष, अजमोदा, गुरिच, हींग और इमलीके छालकी राख; प्रत्येक एक तोला, शङ्खभस्म २ तोले; यह सब द्रव्यमें अम्लवर्ग अर्थात् शरबती नीबू, बिजौरा नीबू, चुकपालकी, चांगेरी (चौपतिया शाक) इमली, बेर और करञ्जके रसकी भावना देकर बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। खट्टे अनारका रस, मट्ठा, दहीका पानी, शराब, सीध, कांजी अथवा गरम पानीके अनुपानसे देना। इससे अग्निवृद्धि होकर अर्श, ग्रहणी, क्रिमि, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, पथरी, कास, पाण्डु, कामला आदि रोग दूर हो जाता है।

भास्कर रस ।—विष, पारा, गंधक, त्रिफला, त्रिकटु, सोहागेका लावा और जीरा, प्रत्येक एकभाग, लौह, शङ्खभस्म, अभ्र, और कौड़ीभस्म प्रत्येक २ भाग ; सबके बराबर लौंगचूर्ण ; इन सबको ७ दिन शरबती नीबूके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। इसे पानके साथ चिबाकर खाना चाहिये। इससे अग्निकी वृद्धि होकर सब प्रकारका शूल, विसूचिका और अग्निमान्द्य रोगमें विशेष उपकार होता है ।

अग्नि घृत ।—पीपल, पीपलामूल, चीतामूल, गजपीपल, हींग, चाभ, अजवाईन, पांचोनमक, जवाखार, सज्जीखार, और हीबेर, प्रत्येक का कल्क चार चार तोले, कांजी ४ सेर, मट्ठा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर, दही ४ सेर, घी ४ सेर, यथाविधि पाक करना। यह घी मन्दाग्निमें विशेष उपकारी है। इससे अर्श:, गुल्म, उदर, ग्रन्थि, अर्व्बुद, अपची, कास, ग्रहणी, शोथ, मेद, भगन्दर, वस्तिगत और कुक्षिगत रोग समूह आराम होता है ।

विसूचिका ।

—:*:—

अहिफेनासव—महुवेके फूलकी शराब १२॥ से , अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और बड़ी इलायची प्रत्येक एक एक पल, यह द्रव्य एकत्र एक पात्रमें रख मुह बन्दकर एकभाग रखना , फिर द्रव्यांश छान लेना। इससे उग्र अतिसार और प्रबल विसूचिका रोग आराम होता है ।

मुस्ताद्य वटी—मोथा एक तोला, पोपल, हींग और कर्पूर प्रत्येक आधा तोला, यह सब एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी बनाना। विसूचिका और प्रवल अतिसारमें विशेष उपकारी है।

कर्पूर रस—हिङ्गुल, अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कर्पूर. यह सब द्रव्य समभाग पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। कोई कोई इसमें सोहागेका लावा १ तोला मिलाते है। यह ज्वरातिसार, अतिसार और ग्रहणी रोग में उपकारी है।

क्रिमिरोग

—:०:—

पारसीयादि चूर्ण—पलाशवीज, इन्द्रयव, विड़ङ्ग, नीमकी छाल और चिरायताका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने भर मात्रा गुड़के साथ ५ दिन सेवन करनेसे अथवा पलाशबीज और अजवाइन का चूर्ण एकत्र मिलाकर खानेसे क्रिमि नष्ट होता है।

दाड़िमादि कषाय—अनारके छालके काढ़ेमें तिलका तेल चार आने भर मिलाकर पीनेसे, पेटके कीड़े निकल जाते है।

सुस्तकादि कषाय—मोथा, चुहाकानी, त्रिफला, देवदारू और सैजनकी बीजके काढ़ेमें पीपलचूर्ण और बिड़ङ्ग चूर्ण एक एक मासा मिलाकर पीनेसे, सब प्रकारकी क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता है।

क्रिमिमुद्गर रस—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अज-मोदा २ तोले, विड़ङ्ग ४ तोले, कुचिला ५ तोले, पलाशबीज, ६ तोले एकत्र खल करना। मात्रा एक मासासे ४ मासेतक

सहतमें मिलाकर चाटना तथा उपरसे मोथिका काढ़ा पीना। यह औषध सेवन करनेसे ३ दिनमें क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता हैं।

क्रिमिघ्नरस—बिड़ङ्ग, किंशुक, पलाशबीज और निमबीज यह सब द्रव्य चुहाकानीके रसमें खलकर ६ गुंजा बराबर गोली बनाना। इससे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्ग रस—पारा, गन्धक गोलमिरच, जायफल, लौङ्ग, पीपल, हरिताल, शोंठ और वङ्ग, प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर लौह भस्म, तथा सब द्रव्यके बराबर बिड़ङ्ग एकत्र पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे भी क्रिमि नाश होती है।

क्रिमिघातिनी बटिका—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अजमोदा ३ तोले, बिड़ङ्ग ४ तोले, बभनेठीकी बीज ५ तोले, केऊ ६ तोले, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह औषध सेवनके बाद पियास लगनेसे मोथा अथवा चुहाकानीके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीना। इससे बहुत जल्दी क्रिमि नष्ट होती है।

त्रिफलाद्य घृत—घी ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ त्रिफला तेवड़ी, दन्तीमूल, बच और कमलागुंडी सब मिलाकर एक सेर यथाबिधि पाककर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे क्रिमि नष्ट होता है।

विड़ङ्ग घृत—हरीतकी १६ पल, बहेड़ा १६ पल, आंवला १६ पल, बिड़ङ्ग १६ पल, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोंठ मिलाकर १६ पल, दशमूल १६ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, घृत ४ सेर, कल्कार्थ सेन्धानमक २ सेर, चीनी एक यथाविधि पाक करना। यह घी पान करनेसे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विड़ङ्गतैल—सर्षपतैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर कल्कार्थ विड़ङ्ग, गन्धक और मैनसिल सब मिलाकर १ एकसेर, एकत्र पाक करना। यह तैल मस्तकमें लगानेसे केशका कीड़ा नष्ट होता हैं।

धुस्तूर तैल—सरसोंका तैल ४ सेर, धतूरेके पत्तेका रस १६ सेर, कल्कार्थ धतूराका पत्ता एक सेर एकत्र औटाना। यह तैल मस्तकमें मर्द्दन करनेसे भी केशके कीड़े नष्ट होते हैं।

पाण्डु और कामला।

—०:०:०—

फलत्रिकादि कषाय—त्रिफला, गुरिच, अडूसा, कुटकी, चिरायता और नीमकी छालके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाण्डु और कामला रोग प्रशमित होता है।

वासादि कषाय—अडूसा, गुरिच, नीमकी छाल, चिरायता और कुटकीके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और कफज रोग आराम होता है।

नवायस लौह—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग और चीतामूल, प्रत्येक एक एक तोला, लोहा ९ तोले, सबका चूर्ण एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान सहत और घी।

त्रिकत्रयाद्य लौह।—मण्डूर एक पल, चीनी एक पल कान्तलौह, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, हरीतकी, आमला, बहेड़ा, चीतामूल, मोथा और बिड़ङ्ग; प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र लोहेके खलमें गायका घी एक पल और सहत एक पलके साथ लोहेके दण्डसे ६ दिन खलकर दिनकी धूप और रातको ओसमें रख-कर खल करना। मिट्टीके बरतनमें भी रख सकते है। मात्रा

एक मासा, भोजनके पहिले मध्य और अन्त ग्रासके साथ सेवन करना। इससे पाण्डु; कामला और हलीमक आदि रोग आराम होता है। भोजनके साथ सेवन करनेसे विशेष कष्ट और भोजनमें अप्रवृत्ति होनेसे दूसरे समय दूधसे अनुपानसे देना।

धात्रीलौह—आंवला, बहेड़ा, लौहभस्म, शोंठ, पीपल, गोलमिरच हल्दी, सहत और चीनी, यह सब द्रव्य एकत्र खलकर सेवन करनेसे कामला और हलीमक रोग आरोग्य होता है।

अष्टादशाङ्ग लौह—चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, मोथा, गुरिच, कुटकी, परवलका पत्ता, जवासा, खेतपापड़ा, नीम, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, चीतामूल आंवला, बहेड़ा, हरीतकी और विड़ङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, चूर्णकी समष्टीके बराबर लौह भस्म, घी और सहत मिलाकर गोली बनाना। यह सेवन करनेसे पाण्डु, हलीमक, शोथ और ग्रहणी रोग आराम होता है। अनुपान मट्ठा।

पुनर्नवा मण्डूर।—शोधित मण्डूर ५ पल, पाकार्थ गोमूत्र पांच सेर, आसन्न पाकमें पुनर्नवा, तेवड़ीमूल, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, बिड़ङ्ग, देवदारु, चीतामूल, कूठ, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, चाभ, इन्द्रयव, कुटकी, पीपलामूल और मोथा प्रत्येकका चुर्ण एक एक तोला मिला खूब चलाकर नीचे उतारना। मात्रा ४ मासे। इससे पाण्डु और शोथ, आदि अनेक रोग आराम होता है।

पाण्डु पञ्चानन रस।— लौह, अभ्रक, ताम्बा, प्रत्येक एक एक पल, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, चाभ, कालाजीरा, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, तेवड़ीमूल, मानकन्दमूल, इन्द्रयव, कुटकी, देवदारु, बच और मोथा, प्रत्येक दो दो तोले, सब समष्टी

का दूना मण्डूर, मण्डूरका आठगुना गोमूत्र, पहिले गोमूत्रमें मण्डूर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर लोहा, अभ्रक आदि द्रव्य मिलाना। गरम पानीके साथ सवेरे सेवन करना चाहिये। इससे पाण्डु हलीमक और शोथ आदि रोग शान्त होता है।

हरिद्राद्य घृत—भैंसका घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर; कल्कार्थ हल्दी, त्रिफला, नीमकी छाल, बरियारा और मुलेठी सब मिलाकर एक सेर। मात्रा आधा तोला। यह घी सेवन करनेसे कामला नष्ट होता है।

व्योषाद्य घृत—त्रिकटु, बेलकी छाल, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, मोथा, लौहचूर्ण, अम्बष्ठा, विड़ङ्ग, देवदारु, विछौटी और बभनेठी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर। यथाविधि पाक करना। यह घी पीनेसे मृत्तिका भक्षण जनित पाण्डुरोग आराम होता है।

पुनर्नवा तैल—तिलका तेल ४ सेर, क्वाथार्थ श्वेतपुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला काकड़ाशिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, देवदारु, रेणुक, कूठ, पुनर्नवामूल, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, पद्मकाष्ठ, तेजपत्ता और नागेश्वर, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाककर मालिश करनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और जीर्णज्वर आराम होता है।

———

रक्तपित्त ।

—:०:—

धान्यकादि हिम—धनिया, आंवला, अडूसा, किसमिस और खेतपापड़ा, इन सबका शीतकषाय पोनेसे, रक्तपित्त, ज्वर, दाह और शोथ आराम होता है ।

ह्रीवेरादि क्वाथ—बाला, निलोत्पल, धनिया, लाल चन्दन, मुलेठी, गुरिच, खसको जड़ और तेवड़ीके काढ़ेमें चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त जल्दी आराम होकर तृष्णा, दाह और ज्वर दूर होता है ।

अटरूषकादि क्वाथ—अड़ूसेकी जड़की छाल, किसमिस और हरीतकीका काढ़ा, चीनी और सहत मिलाकर पोनेसे श्वास, कास और रक्तपित्त आराम होता है ।

एलादि गुड़िका—बड़ी इलायची एक तोला, तेजपत्ता १ तोला, दालचीनी १ तोला, पीपल ४ तोले, चीनी मुलेठी, पिण्डखर्जूर, द्राक्षा, प्रत्येक एक एक पल, सबके चूर्णमें सहत मिलाकर गुड़िका बनाना, दोषोंका बलाबल विचार कर मात्रा स्थिर करना । इससे कास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, रक्तवमन और तृष्णा आदि रोग आराम होता है ।

कुष्माण्ड खण्ड ।—सफेद कोंहड़ा कोसा, पानी निचोड़ा तथा धूपमें थोड़ी देर सुखाया हुआ १०० पल, ४ सेर घोमें भूनना, थोड़ा लाल होनेपर कोंहड़ेका पानी १६ सेर, चीनी १२॥ सेर मिलाकर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंके चूर्ण मिला खूब चलाकर ठण्ढा होनेपर दो सेर

सहत मिलाकर घीके बरतनमें रखना। प्रक्षेप द्रव्य—पीपल, शोंठ और जीरा प्रत्येक दो दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, गोलमिरच और धनिया प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले। मात्रा एक तोलासे दो तोलेतक। अग्नि और बलका बिचार कर मात्रा स्थिर करना। छागादि दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। यह वृष्य, पुष्टिकर, बलप्रद और स्वरदोष निवारक है। यह औषध सेवन करनेसे रक्तपित्त और क्षयादि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

वासा कुष्माण्ड खण्ड।—अडूसेके जड़की छाल ६४ पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, सफेद कोंहड़ा पिसाहुआ ५० पल, ४ सेर घीमें भूनकर, १०० पल चीनी, अडूसेका काढ़ा और पिसाहुआ कोंहड़ा यह तीन द्रव्य एकत्र औटाना, फिर उपयुक्त समयमें सोंठ, आंवला, वंशलोचन, बारङ्गी, दालचीनी तेजपत्ता और इलायची इन सबका चूर्ण दो दो तोले, एलवा, शोंठ, धनिया और मिरच प्रत्येक एक एक पल और पीपल ४ पल उसमें मिलाकर खूब चलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। इससे कास, श्वास, क्षय, हिक्का, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस रोग आराम होता है।

खण्डकाद्य लौह।—शतावर, गुरिच, अडूसेके जड़की छाल, मुण्डरी, बरियारा, तालमूली, खदिर काष्ठ, त्रिफला, बारङ्गी और कूठ, प्रत्येक पांच पांच पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढ़ेमें मैनसिल या स्वर्णमाक्षिकके साथ फुंका हुआ कान्तलौह १२ पल, चीनी १६ पल, घी १६ पल, एकत्र पाक करना, गाढ़ा होनेपर वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, कांकड़ाशिंगी, विड़ङ्ग, पीपल, शोंठ और जायफल प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल

और त्रिफला, धनिया, तेजपत्ता, गोलमिरच, नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले उसमें मिलाना। गाढ़ा होनेपर दो सेर सहत मिलाना। मात्रा दो आनेसे चार आनेभर तक। दूधके साथ सेवन करनेसे दुर्निवार रक्तवमन, रक्तस्राव, अम्लपित्त, शूल, वातरक्त, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, क्षय, कास वमन आदि पीड़ा आराम होता है। यह पुष्टिकारक बलवर्द्धक, कान्ति और प्रीतिजनक तथा चक्षु हितकर है।

रक्तपित्तान्तक लौह—अभ्रभस्म, लौह, माक्षिक, हरताल और गन्धक समभाग, इन सबको मुलेठी द्राक्षा और गुरिचके काढ़ेमें एक दिन खल करना। एक मासा मात्रा चीनी और सहतके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर और दाह आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं। (पारा, गन्धक, हरिताल और दारमुज विष एकत्र मर्द्दनकर वालुकायन्त्रमें एक पहर पाक करनेसे एक प्रकारका पीला पदार्थ होता है उसको रसतालक कहते हैं)।

वासाघृत—अडूसेका छाल, पत्र और मूल मिलाकर ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ अडूसेका फूल ४ पल, घी ४ सेर; यथाविधि पाक करना। यह घी थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त रोग शान्त होता है।

सप्तप्रस्थ घृत—शतावर, वाला, द्राक्षा, भूमिकुष्माण्ड, उख और आंवला; प्रत्येकका रस चार चार सेर, घी ४ सेर; यथा-विधि औटाना। फिर चौथाई वजन चीनी मिलाना मात्रा आठ आनेभरसे दो तोलेतक सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत क्षय, पित्तशूल आदि रोग दूर होते हैं। यह बल, शुक्र और ओजःवृद्धि कारक भी है।

ह्रीवेराद्य तैल।— तिलका तैल ४ सेर, लाहका काढ़ा

१६ सेर, दूध ४ सेर, कल्कार्थ वाला, खसकी जड़, लोध, पद्मकेशर, तेजपत्ता, नागेश्वर, वेलकी गिरी, नागरमोथा, शठी, लालचन्दन, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, त्रिफला, शोंठ, बहेड़ाकी छाल, आमकी गुठली, जामुनकी गुठली और लालकमलकी जड़, प्रत्येक दो दो तोले यथाविधि पाककर यह तेल मालिश करनेसे त्रिविध रक्तपित्त, कास, श्वास और उरःक्षत रोग आराम होता है तथा वल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

राजयक्ष्मा।

—०:※:०—

लवङ्गादि चूर्ण।—लौंग, शीतलचीनी, खसकी जड़, लालचन्दन, तगरपादुका, नीलोत्पल, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगुरू, दालचीनी, नागेश्वर, शोंठ, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन, प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, चीनी ८ भाग एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास और ग्रहणी आदि रोग शान्त होता है। यह रोचक, अग्नि-दीपक, तृप्तिकर, बलप्रद, शुक्रजनक और त्रिदोषनाशक है।

सितोपलादिलेह—दालचीनी एक भाग, बड़ी इलायची दो भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग, चीनी १६ भाग एकत्र [illegible] और सहतके साथ चाटनेसे अथवा बकरीके दूधके साथ [illegible] करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास, कर्णशूल और क्षयादि रोग प्रशमित होता है। यह हाथ पैर और ऊर्द्धग रक्तपित्तमें प्रशस्त है।

बृहद्वासावलेह ।—अडूसेकी जड़की छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, चीनी १२॥ सेर ; त्रिकटु, दालचीनी, तेज-पत्ता, इलायची, कटफल, मोथा, कूठ, कमोला, श्वेत जीरा, काला-जीरा, तिवड़ी, पीपलामूल, चाभ, कुटकी, हरीतकी, तालीशपत्र और धनिया ; प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले यथाविधि पाक करना । ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना । मात्रा एक तोला, अनुपान गरम पानी ; इससे राजयक्ष्मा, स्वरभङ्ग, कास और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होता है ।

च्यवनप्राश ।—बेलकी छाल, गणियारी की छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, बरियारीकी छाल, सरिवन, पिठवन, मुगानि, माषाणी, पीपल, गोखुर, बृहती, कण्टकारी, कांकड़ाशिंगी, बिदारीकन्द, द्राक्षा, जीवन्ती, कूठ, अगरू, हरीतकी, गुरिच, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, शठी, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोत्पल, लालचन्दन, भूमिकुष्माण्ड, अडूसेकी छाल, काकोली और काकजङ्घा, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल ; ५०० या सात सेर १३ छटांक आंवलेकी पोटली, यह सब एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर काढ़ा छान लेना और आंवला पोटलीसे निकाल बीज अलगकर ६ पल घी और ६ पल तेलमें अलग अलग भूनकर सिल पर पीस लेना । फिर मिश्री ५० पल, ऊपर कहा काढ़ा और पिसा हुआ आंवला एकत्र पाक करना । गाढ़ा होनेपर वंशलोचन ४ पल, पीपल २ पल, दारुचीनी २ तोले, तेजपत्ता २ तोले, इलायची २ तोले नागेश्वर २ तोले, इन सबका चूर्ण मिलाकर उतार लेना । ठण्ढा होनेपर उसमें सहत ६ पल मिलाकर घीके पात्रमें रखना । इसकी

मात्रा आधा तोलासे २ तोले तक। अनुपान बकरीका दूध। इससे स्वरभङ्ग, यक्ष्मा और शुक्रगत दोष आदि शान्त होता है तथा अग्निवृद्धि, इन्द्रिय सामर्थ, वायुको अनुलोमता, आयुकी वृद्धि और बूढ़ाभी जवानको तरह बलवान होता हैं। यह दुर्बल और क्षीण व्यक्तिके हकमें अति उत्कृष्ट औषध है।

द्राक्षारिष्ट—द्राक्षा ६।० सवा छ सेर, पानी १२८ सेर, शेष ३२ सेर। इस काढ़ेमें २५ सेर गुड़ मिलाना, तथा दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, प्रियङ्गु, मिरच, पीपल और कालानमक प्रत्येक एक एक पल इसमें मिलाकर चलाना तथा घीके बरतनमें रख मुह बन्धकर एक महीना रख छोड़ना। फिर छानकर काममें लाना। इससे उरःक्षत, क्षयरोग, कास, श्वास, और गलरोग निराकृत हो बलको वृद्धि तथा मल साफ होता है।

वृहत् चन्द्रामृत रस—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रक ४ तोले, कर्पूर आधा तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, लोहा २ तोले, विधारे को बीज, जीरा, बिदारीकन्द, शतमूली, तालमखाना, बरियारेको जड़, लौंग, भांगको बीज और सफेद राल प्रत्येक आधा तोला; यह सब द्रव्य सहतमें खलकर ४ रत्तो बराबर गोली बनाना। अनुपान पोपलका चूर्ण और सहत।

क्षयकेशरी—त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल और लौंग, प्रत्येक एक एक तोला और लोहभस्म ८ तोले बकरीके दूधमें पीसकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत, इससे क्षयरोग दूर होता है।

मृगाङ्क रस—पारा १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, मुक्ताभस्म २ तोले, गंधक २ तोले, सोहागेका लावा २ माशे; यह सब कांजीमें पीसकर गोला बनाकर सुखा लेना फिर मुषेमें रख लवण यन्त्रमें

पाक करना। मात्रा ४ रत्ती। १० दाना गोलमिरच या १० पीपलका चूर्ण और सहतमें मिलाकर चाटना।

महामृगाङ्क रस।—स्वर्णभस्म एक भाग, रससिन्दूर २ भाग, मुक्ताभस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक ५ भाग, प्रवाल ७ भाग, सोहागेका लावा २ भाग; यह सब द्रव्य शर्व्वती नीबूके रसमें ३ दिन खलकर गोला बनाना और वह गोला तेज धूपमें सुखाकर मूषामें रख ४ पहर लवण यन्त्रमें पाक करना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकाल लेना। इसके साथ हीरा (अभावमें वैक्रान्त) एक भाग मिलाना। मात्रा २ रत्ती, अनुपान गोल-मिरच और घी किम्बा पीपलके चूर्णके साथ मिरच और घी। इससे यक्ष्मा, ज्वर, गुल्म, अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, स्वरभेद और कास आदि नानाप्रकारके रोग शान्त होते है।

राजमृगाङ्क रस।—रससिन्दूर ३ तोले, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, मनसिल २ तोले, हरताल २ तोले और गन्धक २ तोले। यह सब द्रव्य एकत्र खलकर बड़ी कौड़ोमें भरकर उसका मुह बकरीके दूधमें सोहागा पीसकर उससे बन्द करना। फिर एक हाड़ीमें रख उसका मुह बन्दकर मिट्टीका लेपकर गजपुटमें फूंकना ठण्ढा होनेपर चूर्ण करना; मात्रा दो रत्ती। अनुपान घी सहत और १० पीपल या १९ गोलमिरचके साथ। इससे सब प्रकारका क्षयरोग नाश होता है।

काञ्चनाभ्र—सोना, रससिन्दूर, मोती लोहा, अभ्रक, प्रवाल, रौप्य, हरीतकी, कस्तुरी और मैनसिल, प्रत्येक समभाग, पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, प्रमेह, कास आदि पीड़ा शान्त होकर बलवीर्य्य बढ़ता है।

वृहत् काञ्चनाभ्र रस।—सोना, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूंगा, वैक्रान्त, ताम्बा, रौप्य, वङ्ग, कस्तुरी, लौंग, जावित्री और एलवा यह सब समभाग द्रव्य एकत्र घीकुआरके रसमें केशुरियाके रसमें और बकरीके दूधमें ३ दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, श्वास, कास, प्रमेह और यक्ष्मा आदि रोग शान्त होता है।

रसेन्द्रगुड़िका।—शोधित पारा २ तोले, जयन्ती और अदरखके रसमें खलकर गोला बनाना, फिर जलकर्णा और काकमाचीके रसको अलग अलग भावना दे, तथा भंगरैयाके रसको भावना दिये हुए गन्धकका चूर्ण एक पल, उक्त पारेमें मिलाकर कज्जली बनाना, फिर छागदूध २ पलमें खलकर उरद बराबर गोला बनाना। अनुपान छागदूध किम्बा अडूसेके पत्तेका रस और सहत। इससे क्षयकास, रक्तपित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

वृहत् रसेन्द्रगुड़िका।—घिकुआरका रस, त्रिफलाचूर्ण, चीताका रस, राईका चूर्ण, झूल, हल्दीका चर्ण, ईंटका चूर्ण, अलम्बुषाके पत्तेका रस और अदरखके रसमें ४ तोले पारा अलग अलग खलकर पानीसे धोकर गाढ़े कपड़ेमें छान लेना। फिर जयन्ती, जमकर्णा और काकमाचीके रसको अलग अलग भावना देकर धूपमें सुखा लेना। तथा भंगरैयाके रसमें शोधा हुआ गन्धक एक पल, गोलमिरच, सोहागा, स्वर्णमाक्षिक, तुतिया, हरिताल और अभ्रक प्रत्येक चार चार तोले, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान आदीका रस। औषध सेवनके बाद दूध और मांसका जूस पिलाना चाहिये।

इससे चयकास, श्वास, रक्तपित्त, अरोचक, क्रिमि और पाण्डु आदि रोग नष्ट हो बलवीर्य्य बढ़ता है।

हेमगर्भपोट्टली रस—रससिन्दूर ३ भाग, सोनेका भस्म १ भाग जारित ताम्र एक भाग, गन्धक एक भाग, यह सब द्रव्य चीताके रसमें दोपहर खलकरनेसे बाद कौड़ीमें भरकर सोहागेसे मुह बन्द-कार हाड़ीमें गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर चूर्ण २ रत्ती वजन सेवन करना। इससे राजयक्ष्मा आराम होता है।

रत्नगर्भ पोट्टली रस।—रससिन्दूर, हीरा, सोना, चांदी, सीसा, लोहा, ताम्बा, मोती, स्वर्णमाक्षिक, मूंगा मिरच, तुतिया और शङ्खभस्म, समभाग आदीके रसमें ७ दिन खलकर कौड़ीमें भर उसका मुह अकवनके दूधमें पिसा हुआ सोहागेसे बन्दकर हांड़ीमें रख उसका मुह बन्दकर गजपुटमें फूंकना। ठण्ढा होनेपर निर्गुण्डीके रसमें सातबार. आदीके रसमें सातबार और चीताके रसको २१ बार भावना देकर सुखा लेना। इसकी मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और पीपलका चूर्ण अथवा घी और गोलमिरचका चूर्ण। इससे कष्टसाध्य यक्ष्मा, आठ प्रकारका महारोग और ज्वरादि नानाप्रकार पीड़ा शान्त होती है। (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और ग्रहणी इन आठ रोगोंको महारोग कहते हैं।)

सर्व्वाङ्गसुन्दर रस।—पारा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा दो भाग (सोहागे लावेका चूर्ण कपड़ेसे छान लेना) मोती, मूंगा और शङ्ख प्रत्येक एक भाग और स्वर्णभस्म आधा भाग इन सब द्रव्यको कागजी नीबूके रसको भावना देकर गोला बनाना तथा मूषेमें बन्दकर गजपुटमें तेज आंचसे फूंकना। ठण्ढा होनेपर लोहा आधा भाग और लोहेका आधाभाग हिंगुल उसमें मिलाना।

मात्रा २ रत्ती। अनुपान पीपलका चूर्ण, सहत घी, पानका रस, चीनी अथवा आदीका रस। इससे राजयक्ष्मा, वातिक और पैत्तिकज्वर, सन्निपातज्वर, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, प्रमेह, भगन्दर और कास आदि नानाप्रकारके रोग दूर होता है।

अजापञ्चक घृत—बकरीका घी ४ सेर, बकरीके बीटका रस ४ सेर, छागमूत्र ४ सेर, छाग दूध ४ सेर और छागदधि ४ सेर, एकत्र पाककर एक सेर जवाक्षारका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। मात्र एक तोला। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, कास और श्वासरोग आराम होता है।

बलागर्भ घृत—पुराना घी ४ सेर, दशमूलका काढ़ा ८ सेर, बकरीके मांसका काढ़ा ४ सेर, दूध ४ सेर। कूटे हुए बरियारेका कल्क एक सेर यथानियम पाक करना। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, शूल, क्षत क्षय और उत्कट कासरोग आराम होता है।

जीवन्त्याद्य घृत—पुराना घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ—जीवन्ती, मुलेठी, द्राक्षा, इन्द्रयव, शठी, कूठ, कण्टकारी, गोक्षुर, वरियारा, नीलोत्पल, भूंईआमला, जवासा और पीपल सब मिलाकर १ सेर। यथाविधि पाक करना। यह घी पीनेसे ११ प्रकारका उग्र यक्ष्मारोग आराम होता है।

महाचन्दनादि तैल।—तिलका तैल १६ सेर कल्कार्थ लालचन्दन, सरिवन, पिठवन, कण्टकारी, वृहती, गोक्षुर, मुगानी, माषाणी बिदारीकन्द, असगन्ध, आंमला, शिरीषछाल, पद्मकाष्ठ, खस, सरलकाष्ठ, नागेश्वर, गन्धाली, मूर्व्वामूल, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, वाला, बरियारा, गुलशकरी, पद्ममूल, पद्मडण्डा और शालूक मिलाकर ५० पल, श्वेत बरियारा ५० पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, बकरीका दूध, शतावरका रस, लाहका

काढ़ा, कांजी और दहीका पानी प्रत्येक १६ सेर। हरिण, छाग और शशक प्रत्येकका मांस आठ आठ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, (इन सबका काढ़ा अलग अलग रखना) कल्कार्थ श्वेत-चन्दन, अगरु, शीतलचीनी, नखी, छड़ीला, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, मृणाल, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, रक्तोत्पल, तगरपादुका, कूठ, त्रिफला, फरुषाफल, मूर्व्वामूल, नालुका, देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्मकाष्ठ, खस, धाईफूल, बेलकी गिरी, रसाञ्जन, मोथा, शिलारस, वाला, बच, मजीठ, लोध, सौंफ, जीवन्तीयगण, प्रियङ्गु, शठी, इलायची, कुङ्कुम, खटासी, पद्मकेशर, रास्ना, जावित्री, शोंठ और धनिया, प्रत्येक ४ तोले। यथाविधि औटाना। पाकशेष होनेपर बड़ी इलायची, लौंग, शिलारस, श्वेत-चन्दन, जातीफूल, खटासी शीतलचीनी, अगरु, लताकस्तूरी यह सब गन्ध द्रव्य मिलाकर फिर पाक करना। पाककी अन्तमें छानकर केशर, कस्तुरी और कपूर थोड़ा मिला रखना, यह तैल मालिश करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और धातुदौर्व्वल्यादि रोग आराम होता है।

कासरोग।

—०:*:०—

कटफलादि काढ़ा—कायफल, गन्धतृण, बारङ्गी, मोथा, धनिया, बच, हरीतकी, कांकड़ाशिङ्गी, खेतपापड़ा, शोंठ और देवदारु, इन सबके काढ़ेमें मधु और हींग मिलाकर पीनेसे वातश्लैष्मिक कास, श्वास, क्षय, शूल, ज्वर और कण्ठरोग नष्ट होता है।

मरिचाद्य चूर्ण—गोलमिरच का चूर्ण २ तोले, पीपलका

चूर्ण १ तोला, अनारके बीजका चूर्ण ८ तोले, पुराना गुड़ १६ तोले और जवाक्षार १ तोला; यह सब द्रव्य एकत्र मर्द्दनकर यथायोग्य मात्रा देनेसे अति दुःसाध्य कास और जिस कासमें पीव आदि निकलता है वहभी आराम होता है।

समशर्कर चूर्ण—लोंग २ तोले, जायफल २ तोले, पीपल २ तोले, गोलमिरच ४ तोले, शोंठ ४ पल इस सबका चूर्ण तथा सबके बराबर चीनी, यह सब द्रव्य एकत्र खल करना। ।) भर मात्रा सेवन करनेसे श्वास, कास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, अग्निमान्द्य और ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

वासावलेह।—अडूसेकी छाल २ सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर, चीनी १ सेर, और घी एक पाव मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर पीपलका चूर्ण १६ तोले मिलाकर नीचे उतारना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा आधा तोला। यह अवलेह राजयक्ष्मा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृच्छूल ज्वर और रक्तपित्त आदि रोग नाशक है।

तालीशादि चूर्ण और मोदक।—तालीशपत्र १ तोला गोलमिरच २ तोले, शोंठ ३ तोले पीपल ४ तोले, दारचीनी और इलायची प्रत्येक आधा तोला; चीनी आधा सेर एकत्र मिलाकर ।) आने मात्रा यह चूर्ण सेवन करनेसे काश श्वास और अरुची आराम हो भूख बढ़ती है। इसमें चीनीके समान पानी मिलाकर यथानियमसे मोदक बनाना, यह चूर्ण की अपेक्षा हलका है। यह मोदक सेवन करनेसे कास, श्वास, अरुचि, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा, शोथ, अतिसार, जीमचलाना और शूल आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होता। (कोई कोई इसके साथ ५ भाग वंशलोचन भी मिलाते है; पैत्तिक कासमें वंशलोचन मिलाना भी उचित है।)

चन्द्रामृत रस।—त्रिकटु, त्रिफला, चाभ, धनिया, जीरा, सेंधानमक; प्रत्येक एक एक तोला, पारा, गन्धक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले, सोहागेका लावा ८ तोले, गोलमिरच ४ तोले; यह सब बकरीके दूधमें पीसकर ६ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान रक्तोत्पल, नीलोत्पल, कुरथी, छाग दूध और अदरख किसी एकका रस अथवा पीपलका चूर्ण और सहत। इससे नानाविध कास, श्वास, रक्तवमन, ज्वर, दाह, भ्रम, और जीर्णज्वर आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होता है। यह अग्नि-वर्द्धक, बलकारक और वर्णकारक है। औषध सेवनकर अडूसा, गुरिच, बारङ्गी, मोथा और कण्टकारी सब मिलाकर २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना आधा पाव पानी रहते छानकर सहत मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है।

कासकुठार रस—हिंगुल, गोलमिरच, गन्धक, त्रिकटु और सोहागेका लावा, यह सब द्रव्य एकत्र पानीमें खलकर २ रत्तीकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सन्निपात और सब प्रकारका कासरोग नष्ट होता है।

शृङ्गाराभ्र।—अभ्रक १६ तोले, कपूर, जावित्री, बाला, गजपीपल तेजपत्ता, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, दालचीनी, नागेश्वर, कूठ और धवईफूल, प्रत्येक आधा तोला, हरीतकी, आंमला, बहेड़ा और त्रिकटु, प्रत्येक चार आनेभर, इलायची और जायफल प्रत्येक एक तोला, गन्धक एक तोला, पारा आधा तोला, यह सब द्रव्य पानीमें खलकर भिंगे चने बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरख और पानका रस। औषध सेवनके बाद थोड़ा ठंढा पानी पीना चाहिये। इससे कासादि विविध रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्यकी वृद्धि होती है।

वृहत् शृङ्गाराभ्र।—पारा, गन्धक, सोहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, तेजपत्ता, धतूरेकी बीज (कोई २ स्वर्णभस्म भी मिलाते हैं) प्रत्येक दो दो तोले, अभ्रभस्म ८ तोले तालीश-पत्र, सोया, कूठ, जटामांसी, दालचीनी, धाईफूल, इलायची, त्रिकटु, त्रिफला और गजपीपल, प्रत्येक चार चार तोले, एकत्र पीपलके काढ़ेमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह दालचीनीका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, अरुचि, पाण्डु, कामला, उदर, शोथ, ज्वर, ग्रहणी, कास, श्वास और यक्ष्मा आदि नानाप्रकारसे रोग दूर हो बल, वर्ण और अग्नि-की वृद्धि होती है।

सार्व्वभौम रस—पूर्व्वोक्त शृङ्गाराभ्रमें या लोहा २ मासे मिलानेसे उसको सार्व्वभौम रस कहते हैं। यह शृङ्गाराभ्रसे अधिक बल-कारक हैं।

कासलक्ष्मीविलास।—वङ्ग, लोहा, अभ्रक, ताम्बा, कांसा, पारा, हरिताल, मैनशिल और खपरिया प्रत्येक एक एक पल, एकत्र केशुरियाका रस और कुलथीके काढ़ेकी ३ दिन भावना देना। फिर इसके साथ इलायची, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, अजवाईन, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगरपादुका, दालचीनी और वंशलोचन प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर फिर केशुरियाका रस और कुलथीके काढ़ेमें खलकर चना बराबर गोली बनाना। अनुपान ठण्ढा पानी। यह राजयक्ष्मा, रक्तकास, श्वास, हलीमक, पाण्डु, शोथ, शूल, अर्श और प्रमेह आदि रोग नाशक तथा अग्निकारक और बलवर्द्धक है।

समशर्कर लौह।—लौंग, कायफल, कूठ, अजवाईन, त्रिकटु, चीतामूल, पीपलामूल, अडूसेके जड़की छाल, कण्टकारी,

चाभ, कांकड़ाशिङ्गी दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, नागेश्वर, हरीतकी, शठी, शीतलचीनी, मोथा, लोहा, अभ्रक और जवाखार प्रत्येकका एक एक भाग और समष्टीके बराबर चीनी एकत्र मिलाकर घृत भाण्डमें रखना। यह सब प्रकारका कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निवृद्धिकारक है। मात्रा ४ मासे।

वसन्ततिलक रस।—स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रक २ तोले, लोहा ३ तोले, पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, वङ्ग २ तोले, मोती २ तोले और प्रवाल २ तोले; यह सब द्रव्य अडूसा, गोखुर और ईखके रसमें खलकर बद्धमूषिमें रख जङ्गली कंडेकी आंचसे वालुकायन्त्रमें सात पहर फूंकना। फिर बाहर निकालकर कस्तुरी और कपूर मिलाकर खल करना। यह कास और क्षयकी महौषध है। मात्रा २ रत्ती। प्रमेह, हृद्रोग, ज्वर, शूल, अश्मरी, पांडु और विषदोषमें विशेष उपकारी है।

वृहत् कण्टकारी घृत।—कण्टकारी जड़, पत्ता और शाखाका काढ़ा १६ सेर, घी ४ सेर, कल्कद्रव्य बरियारा, त्रिकटु, विड़ङ्ग, शठी, चीतामूल, सौवर्चल नमक, जवाखार, बेलकी छाल, आंवला, कूठ, श्वेतपुनर्नवा, वृहती, बड़ीहर्र, अजवाईन, अनारका फल, ऋद्धि द्राक्षा, रक्तपुनर्नवा, चाभ, जवासा, अम्लवेतस, काकड़ाशिङ्गी, भूंईआंमला, बारङ्गी, रास्ना, और गोखुर यह सब द्रव्य मिलाकर एक सेर अच्छी तरह कुटकर इसके साथ घी पाक करना। इस घीसे सब प्रकारका कास, कफरोग, हिक्का, श्वास आदि रोग नष्ट होता है।

दशमूलाद्य घृत—घी ४ सेर दशमूलका काढ़ा १६ सेर। कल्कार्थ—कूठ, शठी, बेलकी जड़, शोंठ, पीपल, मिरच और

हींग प्रत्येक दो दो तोले। यथाविधि घृत पाककर सेवन करनेसे वातश्लेष्मोल्वण, कास और सब प्रकारका श्वास दूर होता है।

चन्दनाद्य तैल।—तिलका तेल ८ सेर। कल्कार्थ—श्वेतचन्दन, अगरू, तालीश पत्र, नखी, मजीठ, पद्मकाष्ठ, मोथा, शठी, लाह, हल्दी और लालचन्दन, प्रत्येक एक पल। क्वाथार्थ बारङ्गी, अडूसेकी छाल, कण्टकारी, बरियारा, गुरिच सब मिलाकर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; इसी काढ़ेकी साथ कल्क औटाना, कल्क पाक करनेमें दूसरा पानी देनेकी कोई जरूरत नहीं है। तेल औट जानेपर गन्धद्रव्य मिलाकर फिर औटाना। गन्धद्रव्यमें शिलारस, कुङ्कुम, नखी, श्वेतचन्दन, कपूर, इलायची और लौंग, यह सब द्रव्य तेल नीचे उतारकर मिलाना। यह तेल मालिश करनेसे यक्ष्मा और कास रोग आराम हो बल वर्णकी वृद्धि होती है।

वृहत् चन्दनाद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, क्वाथार्थ लाह २ सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर; दहीका पानी १६ सेर। कल्कार्थ—लालचन्दन, बाला, नखी, कूठ, मुलेठी, छड़ीला, पद्मकाष्ठ, मजीठ, सरलकाष्ठ, देवदारू, शठी, इलायची, खटासी, नागेश्वर, तेजपत्ता, शिलारस, मुरामांसी, कक्कोल, प्रियङ्गु, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, लताकस्तूरी, लौंग, अगरू, कुङ्कुम, दालचीनी, रेणुका और नालुका, प्रत्येक दो दो तोले, अच्छी तरह कूटकर १६ सेर पानीमें औटाना। फिर गन्धद्रव्य मिलाकर पाकशेष करना। ठण्ढा होनेपर कस्तूरी आदि गन्धद्रव्य देना चाहिये। इसे मालिश करनेसे रक्तपित्त, क्षय, श्वास और कास आराम होता है।

हिक्का और श्वासरोग।

—:०◯:०—

भार्गी गुड़।—बारंगीकी जड़ १२॥ सेर, दशमूल प्रत्येक सवा सेर, बड़ीहर्र १०० वस्त्रका ढीली पोटलीमें बांध ११६ सेर पानीमें औटाना २८ सेर पानी रहते नीचे उतार छान लेना। फिर इसी पानीमें उक्त हर्र और १२॥ सेर पुराना गुड़ मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले और जवाखार ४ तोले मिलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर तीन पाव सहत मिलाना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलेतक और हर्र एक एक खाना। इससे प्रबल श्वास और पञ्चकासादि रोग दूर होता है।

भार्गी शर्करा।—बारंगीकी जड़ सवा ६। सेर अड़ूसेकी छाल ६। सेर, कण्टकारी ६। सेर, पानी ८६ सेर शेष २४ सेर। ४ चमगीदड़का मास, पानी १६ सेर शेष ४ सेर। दोनो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसमें चीनी २ सेर मिलाकर औटाना। गाढ़ा होनेपर नीचे उतार उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तालीशपत्र, नागेश्वर, बारंगीकी जड़, बच, गोक्षुर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, जीरा, अजवाईन, अजमोदा, वंशलोचन, कुलथी, कायफल, कूठ और काकड़ाशिंगी प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाना। रोग बिचारकर उपयुक्त अनुपानके साथ आधा तोलासे एक तोलातक मात्रा सेवन करना। इससे प्रवल श्वास, पञ्चप्रकार कास, हिक्का, यक्ष्मा और जीर्णज्वर आराम हो शरीर पुष्ट होता है।

शृङ्गीगुड़ घृत।—कण्टकारी, वृहती, अड़ूसे जड़की छाल और गुरिच प्रत्येक पांच पल, सतावर १५ पल,

बारंगी १० पल, गोक्षुर, पिपलामूल प्रत्येक आठ तोले, पाटला छाल २४ तोले ; यह सब द्रव्य कूटकर चौगुने पानीमें औटाना चतुर्थांश पानी रहते नीचे उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ १० पल, घी ५ पल और दूध १० पल मिलाकर फिर औटाना। गाढ़ा होनेपर कांकड़ाशिंगी २ तोले, जायफल ३ तोले, तेजपत्ता ३ तोले, लौंग ४ तोले, वंशलोचन ४ तोले, दालचीनी २ तोले, इलायची २ तोले, कूठ ४ तोले, शोंठ ७ तोले पीपल ७ तोले, पीपलमूल ८ तोले, तालीशपत्र ३ तोले, जाविती १ तोला, यह सब द्रव्यका चूर्ण डालकर नीचे उतार लेना, तथा ठण्ढा होनेपर आठ तोले सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे प्रबल श्वास, उपद्रवयुक्त पांच प्रकारके कास, क्षय और रक्तपित्त आदि रोग आराम होता है।

पिप्पल्याद्य लौह—पीपल, आंमला, मुनक्का, बैरकी गुठलीकी गिरी, मुलेठी, चीनी, विड़ङ्ग और कूठ, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, लोहा ८ तोले पानीमें खलकर ५ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोष विचारकर अलग अलग अनुपानोंके साथ देनेसे, हिक्का, वमन और महाकास आराम होता है। यह हुचकी की महौषध है। खासकर यह हिक्का रोगका महौषध है।

महाश्वासारि लौह।—लोहा ४ तोले, अभ्रक १ तोला, चीनी ४ तोले, सहत ४ तोले और त्रिफला, मुलेठी. मुनक्का, पीपल, बेरके गुठलीकी गिरी, वंशलोचन, तालीशपत्र, विड़ंग, इलायची. कूठ और नागेश्वर, प्रत्येकका मिहीन चूर्ण एक एक तोला ; यह सब द्रव्य लोहेके खरलमें २ पहर खल करना। मात्रा चार रत्तीसे २ मासेतक। सहतके साथ सेवन करनेसे महाश्वास पांचप्रकार कास और रक्तपित्तादि रोग निश्चय आराम होता है।

श्वासकुठार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकटु, सोहागेका

लावा, मिरच और त्रिकटु, इन सबका समभाग चूर्ण आदीके रसमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें देनेसे वातकफजनित श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासभैरवरस—पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु, मिरच, चाभ और चन्दन इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान पानी। इससे श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासचिन्तामणि।—लौहभस्म ४ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रक २ तोले, पारा १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मोती आधा तोला, सोना आधा तोला; यह सब द्रव्यको कण्टकारीका रस, अदरखका रस, बकरीका दूध और मुलेठीके काढ़ेकी भावना दे ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत और बहेड़ेका चूर्ण। यह श्वास, कास और यक्ष्मारोगमें उपकारी है।

कनकासव।—धतूरेका फल पत्ता, जड़ और शाखा कूटा हुआ ३२ तोले, अडूसेके जड़की छाल ३२ तोले, मुलेठी, पीपल, कण्टकारी, नागेश्वर, शोंठ, बारंगी, तालीशपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६ तोले। धवईका फूल २ सेर, मुनक्का २॥ सेर, पानी १२८ सेर, चीनी २॥ सेर, सहत ६। सेर, यह सब एक पात्रमें रख मुह बन्दकर एकमास बाद द्रव्यांश छान लेना; इससे सब प्रकारका श्वास, कास और रक्तपित्त आदि नाना प्रकारके रोग दूर होता है।

तेजोवत्याद्य घृत।—घी ४ सेर, दूध २ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ चाभ हरीतकी, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवाईन, गन्धतृण, पलाशछाल, चीतामूल, शठी, सौवर्चल, नमक, भूईआमला, सेंधानमक, बेलकी गिरी, तालीशपत्र, जीवन्ती और बच, प्रत्येक

२ तोले, हींग आधा तोला ; पाकार्थ पानी १६ सेर, शेष ४ सेर। यथानियम औटाकर पोनेसे हिक्का, श्वास, शोथ, वातज अर्श, ग्रहणो और हृदय पार्श्व शूल दूर होता है।

स्वरभङ्गरोग।

—०:○:०—

मृगनाभ्यादि अवलेह—कस्तुरी, छोटी इलायची, लौंग और वंशलोचन ; इन सबका चूर्ण घी और सहतमें मिलाकर चाटनेसे वाकस्तम्भ (तोतलापन) और स्वरभंग शान्त होता है।

चव्यादि चूर्ण—चाभ, अम्लवेतस, त्रिकटू, इमली, तालीश-पत्र, जीरा, वंशलोचन, चीतामूल, दालचीनी तेजपत्ता और इलायची यह सब द्रव्य समभाग पुराने गुड़में मिलाकर खानेसे, स्वरभङ्ग, पीनस और कफज अरुचि आराम होती हैं।

निदिग्धिकावलेह।—कण्टकारी १२॥ सेर, पीपलामूल १२॥ सेर, चीतामूल ३ सेर २ छटांक दशमूल ३ सेर २ छटांक यह सब द्रव्य एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर छान लेना, तथा उसमें पुराना गुड़ ८ सेर मिलाकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर पीपलका चूर्ण १ सेर, त्रिजातक (दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची) एक पल, गोलमिरचका चूर्ण ८ तोले मिलाकर नीचे उतारना। ठण्डा होनेपर आधा सेर सहत मिलाना। अग्निका बल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे स्वरभेद, प्रतिश्याय, कास और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होता हैं।

व्याघ्रकाभ्र ।—अभ्रभस्म ८ तोलेको कण्टकारी, बरियारा, गोक्षुर, घृतकुमारी, पीपलामूल, भंगरैया, अडूसा, बैरका-पत्ता, आंमला, हल्दी और गुरिच प्रत्येकके आठ आठ तोले रसकी अलग अलग भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे सब प्रकारका स्वरभंग, श्वास, कास, हुचकी आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं।

सारस्वत घृत ।—ब्रह्मीशाककी जड़ और पत्तेका रस १६ सेर, घी ४ सेर। हल्दी, मालतीका फूल, कूठ, तिवड़ीकी जड़ और बड़ीहर्र प्रत्येकका कल्क आठ आठ तोले; हलकी आंचपर औटाना। इसके पीनेसे स्वरविकृति, कुष्ठ, अर्श, गुल्म और प्रमेह आदि नानाप्रकारके रोग दूर हो रतिशक्ति बढ़ती है। इसको ब्राह्मी घृत भी कहते है।

भृङ्गराजाद्य घृत।—घी ४ सेर, भंगरैया, गुरिच, अडूसेकी जड़, दशमूल और कसौंदी (कासमर्द) इन सब द्रव्योंका काढ़ा १६ सेर, पीपलमूलका कल्क, १ सेर, एकत्र यथानियम पाककर ठण्ढा होनेपर ४ सेर सहत मिलाना। उपयुक्त मात्रा यह घी सेवन करनेसे स्वरभग और कासरोग आराम होता है।

अरोचक।

—:०:—

यमानीषाड़व।—अजवाईन, इमली, शोंठ, अम्लवेतस, अनार और खट्टी बेर प्रत्येक दो दो तोले; धनिया, सौवर्च्चल नमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक एक एक तोला, पीपल १००, गोलमिरच

२०० चीनी ३२ तोले, यह सब द्रव्य एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अरोचक रोग आराम होता है।

कलहंस—सैंजनकी बीज १८, गोलमिरच १०, पीपल २०, अदरख ८ तोले, गुड़ ८ तोले, कांजी ८ सेर और कालानमक ८ तोले एकत्र मिलाकर इसके साथ चातुर्जात चूर्ण ८ तोले मिलाना, इससे स्वरभंगमें भी विशेष उपकार होता है।

तिन्तोड़ी पानक।—बीजशून्य पक्की इमली ५ पल, चीनी २० पल, पीसी धनिया ४ तोले, अदरख ४ तोले, दालचीनी १ तोला, तेजपत्ता १ तोला, बड़ी इलायची १ तोला, नागेश्वर १ तोला और पानी ६ सेर १० छटांक नये मिट्टीके पात्रमें एकत्र मिलाना तथा थोड़ा गरम दूध मिलाकर छान लेना, फिर कपूर आदि सुगन्धि द्रव्य मिलाकर उपयुक्त मात्रासे प्रयोग करना।

रसाला—खट्टी दही ८ सेर, चीनी २ सेर, घी ८ तोले, सहद आठ तोला, गोलमिरचका चूर्ण ४ तोला, सोंठ ४ तोले और चातुर्जातक प्रत्येक एक एक तोला एकत्र मिलाना। इसे भी कर्पूरादिसे सुवासित करना चाहिये।

सुलोचनाभ्र।— अभ्रभस्म १ तोला, हीरक भस्म १ तोला; चाभ, बैर, खसकी जड़, अनार, आंमला, चीपतिया, बड़ानीबू, प्रत्येक १० तोले, एकत्र खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना, उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे अरुचि, श्वास, कास, स्वरभेद, अग्निमान्द्य, अम्लपित्त, शूल, वमन, दाह, अश्मरी, अर्श और दौर्बल्य आदि रोग दूर होते है।

वमनरोग।

—:०:—

एलादि चूर्ण।—इलायची, लौंग, नागेश्वर, बैरके बीजकी गिरी, धानका लावा, प्रियंगु, मोथा, लालचन्दन और पीपल; प्रत्येक का चूर्ण समभाग एकत्रकर चीनी और सहतमें मिलाकर चाटना।

रसेन्द्र।—जीरा, धनिया, पीपल, सहत, चिकटु और रससिन्दूर समभाग खलकर उपयुक्त मात्रासे प्रयोग करना।

वृषध्वज रस।—पारा, गंधक, लोहा, मुलेठी, चन्दन, आमला, छोटी इलायची लौंग, सोहागा, पीपल और जटामांसी समभाग सरिवन और इखुके रसकी अलग अलग सात सात दिन भावना देकर फिर बकरीके दूधमें एक प्रहर खल करना। मात्रा २ रत्ती की गोली बनाना, अनुपान सरिवनके रस साथ देना।

पद्मकाद्य घृत।—पद्मकाष्ठ, गुरिच, नीमकी छाल, धनिया और चन्दन इन सब द्रव्योंका काढ़ा और कल्कमें यथाविधि ४ सेर घी पाककर उपयुक्त मात्रा देनेसे वमन, अरुचि, तृष्णा और दाह आदि रोग दूर होते हैं।

———

तृष्णारोग।

—:०:—

कुमुदेश्वर रस।—ताम्र २ भाग और वङ्ग १ भाग एकत्र मुलेठीके काढ़ेकी भावना दो २ रत्ती मात्रा देना। अनुपान—

चन्दन, अनन्तमूल, मोथा, छोटी इलायची और नागेश्वर प्रत्येक समभाग और सबकी बराबर धानका लावा, १६ गूने पानीमें औटाना आधा पानी रहनेपर छानकर उसमें सहत और चीनी मिलाना। इस काढ़ेके अनुपानमें देनेसे तृष्णा और वमन रोग आराम होता है।

मूर्च्छा, भ्रम और सन्यासरोग।

——०:०:०——

सुधानिधि रस—रससिन्दूर और पीपलका चूर्ण एकत्र समभाग मिलाकर ४ रत्ती मात्रा सहतके साथ देना।

मूर्च्छान्तक रस—रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्णभस्म, शिलाजीत और लौहभस्म सब द्रव्य समभाग, सतावर और बिदारीकन्दके रसकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली वनाना। सतावरका रस और त्रिफला भिंगोये पानी आदि वायुनाशक अनुपानमें देना।

अश्वगन्धारिष्ट।—असगन्ध ५० पल, तालमूली २० पल, मजीठ, बड़ीहर्र हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, रास्ना, विदारीकन्द, अर्जुनछाल, मोथा और तिवड़ीमूल प्रत्येक १० पल; तथा अनन्तमूल, श्यामालता, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बच, चीतामूल प्रत्येक आठ आठ पल, यह सब द्रव्य ५ मन १२ सेर पानीमें औटाना, ६४ सेर पानी रहनेपर उतारकर छान लेना, फिर

उसमें धवईकाफूल १६ पल, सहत ३७॥ सेर, त्रिकटु प्रत्येक २ पल; दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक ४ पल, प्रियङ्गु ४ पल और नागेश्वर २ पल, यह सब द्रव्य मिलाकर पात्रका मुह बन्दकर एक मास रखना; फिर छानकर एक तोलासे ४ तोले तक मात्रा प्रयोग करना। इससे मूर्च्छा, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कृशता, अर्श, अग्निमान्द्य, तथा वायुजनित रोग आराम होता है।

मदात्ययरोग।

—०:०:०—

फलत्रिकाद्य चूर्ण—त्रिफला, तेवड़ी, श्यामालता, देवदारु, शोंठ, अजवाईन, अजमोदा, दारुहल्दी, पांचोनमक, सोवा, वच, कूठ, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची और एलवालुक, (एलवा) प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर अवस्थानुसार एक आनासे आठ आनेतक मात्रा ठण्ढे पानीसे देना।

एलाद्य मोदक।—बड़ी इलायची, मुलेठी, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, रक्तशालि, पीपल, द्राक्षा, पिण्डखर्जूर, तिल, जौ, विदारीकन्द, गोक्षुरबीज, तेवड़ी और शतावर प्रत्येक समभाग समष्टीकी दूनी चीनी मिला यथाविधि मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूध या मूंगके जूसके अनुपानसे देना।

महाकल्याण वटिका—स्वर्ण, अभ्रक, पारा, गंधक, लोहा और मोती प्रत्येक समभाग, आमलाके रसमें खलकर, १ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मक्खन और चीनी अथवा तिलका चूर्ण सहतके साथ देना।

पुनर्नवाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध ४ सेर, पुनर्नवा का काढ़ा १२ या १६ सेर मुलेठी का कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना, उपयुक्त मात्रा प्रयोग करनेसे मदात्यय रोग दूर होकर वीर्य्य और ओजकी वृद्धि होती है।

बृहत् धात्रीतैल।—तिल का तेल ४ सेर, आंवला, शतावर और बिदारीकन्द प्रत्येक का रस चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, बरियारा, असगन्ध, कुरथी, जौ और उरद प्रत्येकका काढ़ा चार चार सेर; कल्कार्थ—जीवनीयगण, जटामांसी, मजीठ, इन्द्रवारुणी की जड़, श्यामालता, अनन्तमूल, शैलज, सोवा, पुनर्नवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, इलायची, दालचीनी, पद्ममूल, केलिकाफूल, बच, अगरू, हरीतकी और आंवला मिलित इन सबका कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना।

श्रीखण्डासव।—श्वेतचन्दन, गोलमिरच, जटामांसी, हलदी, दारूहलदी, चीतामूल, मोथा, खसकी जड़, तगरचण्डी द्राक्षा, लालचन्दन, नागेश्वर, अम्बष्ठा, आमला, पीपल, चाभ, लौंग, एलवा और लोध प्रत्येक चार चार तोले कूटकर १२८ सेर पानीमें भिगोना, फिर मुनक्का ६० पल, गुड़ ३७॥ सेर और धवई-फूल १२ पल मिला पात्रका मुह बन्दकर एक मासके बाद द्रव्यांश छान लेना। मात्रा एक तोलासे ४ तोलेतक अवस्थानुसार प्रयोग करना। इससे पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम रोग आराम होता है।

———

दाहरोग ।

—:०:—

चन्दनादि काढ़ा—लालचन्दन, खेतपापड़ा, खसकी जड़, बाला, मोथा, कमलकी जड़, कमलका डण्डा, सौंफ, धनिया, पद्मकाष्ठ और आंवला मिलाकर दो तोले, आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव पानी रहनेपर छानकर सहत मिला पीनेको देना।

त्रिफलाद्य—त्रिफला और अमिलतासके गूदाके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसे दाह, रक्तपित्त और पित्तशूल आराम होता है।

पर्प्पटादि—दवनपापड़ा, मोथा और खसकी जड़; इन सबका काढ़ा ठण्ढाकर पीनेसे दाह और पित्तज्वर आराम होता है।

दाहान्तक रस—पारा ५ तोले और गन्धक ५ तोलेकी कज्जली शर्ब्बती नीबूके रसमें खलकर पानके रसकी भावना देना, फिर इस कज्जली को एक तोला वजन तांबेके पत्रमें लपेटना सूख जानेपर गजपुटमें फूंकना। भस्म हो जानेपर २ रत्ती मात्रा अदरखका रस और त्रिकटु चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाह, सन्ताप और पित्तज मूर्च्छा शान्त होती है।

सुधाकर रस—रससिन्दूर, अभरख, सोना और मोतीका भस्म प्रत्येक समभाग, त्रिफला भिंगोये पानी और सतावरके रसकी सातबार भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे दाह, आमरक्त और प्रमेह रोग आराम होता है।

कांजिक तैल—तिलका तेल ४ सेर, ६४ सेर कांजीके साथ औटाकर मालिश करनेसे दाह ज्वर आराम होता है।

———

उन्माद।

—:०:—

सारस्वत चूर्ण—कूठ, असगन्ध, सेंधानमक, अजवाईन, अज-मोदा, जीरा, कालाजीरा, त्रिकटु, पाठा और शंखपुष्पी; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर बचका चूर्ण ब्रह्मीशाक के रसको ३ बार भावना दे सुखाकर चूर्ण करना। ।) आने मात्रा घी और सहतके अनुपानमें देना।

उन्माद गजांकुश।—२ तोला पारा यथाक्रम, धतुरेका रस, जलपिप्पलीकारस और कुचिलाके रसको अलग अलग तीन दिन भावना देकर उसी पारेका ऊर्द्ध पातन करना फिर २ तोला गंधक मिला कज्जली बना वही कज्जली ताम्र पत्रमें लपेटकर सूखा लेना तथा स्वल्प गजपुटमें फूंकना, फिर धतूरेको बीज २ तोले, अभरख २ तोले, गंधक २ तोले और मीठाविष २ तोले उसमें मिलाकर ३ दिन पानीमें खल करना। एक रत्ती मात्रा वायुनाशक अनुपानमें देना।

उन्मादभञ्जन रस।—त्रिकटु, त्रिफला, गजपीपल, विड़ङ्ग, देवदारू, चिरायता, कुटकी, कण्टकारी, मुलेठी, इन्द्रयव, चीतामूल, इन्द्रवारूणी की जड़, वंग, चांदी अभरख और मूंगा; प्रत्येक समभाग और सबके बराबर लौह भस्म एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना।

भूतांकुश रस।—पारा, लोहा, चांदी, ताम्बा और मोती प्रत्येक एक एक तोला; हीरा दो मासे, हरिताल, गंधक, मनसिल, तुतिया, शिलाजतु, सौवीरांजन, समुद्रफेन, रसांजन और पांचोनमक प्रत्येक एक एक तोला, यह सब द्रव्य भङ्गरैया, दन्तीका रस, और सीजके दूधमें खलकर एक गोला बनाना, सूखजानेपर गजपुटमें

फूंकना। २ रत्ती मात्रा अदरखके रसमें मिलाकर चटावे फिर उपरसे दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। तथा सर्व्वाङ्गमें सरसोंका तेल मालिश कर तितलौकी का बफारा लेना चाहिये।

चतुर्भुज रस।—रससिन्दूर २ भाग, सोना एक भाग मैनसिल १ भाग, कस्तूरी एक भाग और हरताल एक भाग, एकत्र घीकुआरके रसमें एक दिन खलकर गोला बनाना उपरसे रेंड़का पत्ता लपेटकर ३ दिन धानमें रखना। फिर चूर्णकर २ रत्ती मात्रा शहत और त्रिफलाके चूर्णमें प्रयोग करना।

पानीय कल्याणक और क्षीरकल्याण घृत।—घी ४ सेर, इन्द्रवारुणीकी जड़, त्रिफला, सम्भालुकी बीज, देवदारु, एलवा, सरिवन, तगरचण्डी, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, प्रियङ्गु, नीलाकमल, इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारकी बीज, नागेश्वर, तालीशपत्र, वृहती, मालतीफूल, विड़ंग, पिठवन, कूठ, लालचन्दन और पद्मकाष्ठ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; पानी १६ सेर यथाविधि पाक करना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलातक। यही घी दूने पानी और चौगुने दूधमें औटा लेनेसे उसे क्षीरकल्याण घृत कहते है।

चैतस घृत—घी ४ सेर गम्भारीके सिवाय बाकी ९ दशमूल, रास्ना, रेंड़की जड़, बरियारा, त्रिवृतमूल, मूर्व्वामूल और सतावर, प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेका चौगुना दूध और पानीय कल्याणक के कल्क समूहके साथ यथाविधि पाक करना।

शिवाघृत।—घी ४ सेर, गीदड़का मांस ६। सेर, पानी ३२ सेर शेष आठ सेर और दशमूल ६। सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; बकरीका दूध ८ सेर कल्कार्थ—मुलेठी, मजीठ, कूठ,

लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, बरियारा, बड़ीहर्र, आमला, बहेड़ा वृहती, तगरचण्डी, विड़ङ्ग, अनारकी बीज, देवदारू, दन्तीमूल, सम्भालुके बीज, तालीशपत्र, नागेश्वर, श्यामालता, इन्द्रवारुणी की जड़, सरिवन, प्रियङ्गु, मालतीफूल, काकोली, चीरकाकोली, नीलपद्म, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची एलवा और पिठवन ; प्रत्येक का दो दो तोले कल्क ; यथाविधि औटाना। यह उन्माद आदि वायुरोग में उपकारी है।

महा शाल्विक घृत।—गो घृत ४ सेर, कल्कार्थ—जटामांसी, हरीतकी, भूतकेशी, स्थलपद्म या ब्राह्मीशाक, कवांचकी बीज, बच, त्रायमाना, जयन्ती, चीरकाकोली, कुटकी, छोटी इलायची, बिदारीकन्द, सौंफ, सोवा, गुग्गुलु, शतावर, आंवला, रास्ना, गन्धरास्ना, गन्धाली, बिछौटी और सरिवन सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर उन्माद और अपस्मार आदि रोगमें प्रयोग करना।

———

अपस्मार।

—:०:—

कल्याण चूर्ण—पञ्चकोल, मिरच, त्रिफला, कालानमक, सेंधा नमक, पीपल, विड़ङ्ग, पूतिकरञ्ज, अजवाईन, धनिया और जीरा ; प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाना, मात्रा ।) चार आने, अनुपान गरम पानी।

वातकुलान्तक—कस्तुरी, मैनसिल, नागकेशर, बहेड़ा, पारा, गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग प्रत्येक दो दो तोले एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। वायुनाशक अनुपानके साथ देना।

चण्डभैरव—पारा, गन्धक, तामा, लोहा, हरताल, मैनसिल और रसाञ्जन प्रत्येक समभाग गोमूत्रमें खलकर, फिर दो भाग और गन्धक मिलाकर थोड़ी देर लोहेके पात्रमें औटाना। मात्रा दो से ५ रत्ती, अनुपान हींग, सौवर्च्चल नमक और कूठका चूर्ण मिलाकर २ तोले तथा गोमूत्र और घृत।

स्वल्पपञ्चगव्य घृत—गायका घी ४ सेर, गोबरका रस ४ सेर, गायकी खट्टी दही ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, पानी १६ सेर यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला।

वृहत् पञ्चगव्य घृत।—क्वाथार्थ—दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुरैयाकी छाल, अपामार्गकी जड़, नीलवृक्ष, कुटकी, अमिलतास, गुल्लरकी जड़, कूठ और जवासा प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ बारङ्गी, पाठा, त्रिकटु, तेवड़ी की जड़, इन्द्रजव बीज, गजपीपल, अरहर, मूर्व्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता, चीतामूल, श्यामालता, अनन्तमूल, रोहितक छाल, गन्धतृण और मल्लिकाफूल प्रत्येकका दो दो तोलेका कल्क। गोबरका रस ४ सेर गोमूत्र ४ सेर, गायका दूध ४ सेर और गौकी दही ४ सेरके साथ गायका घी ४ चार सेर यथाविधि औटाना।

महाचैतस घृत।—क्वाथार्थ—शनकी बीज, तेवड़ीकी जड़, मूल, शतावर, दशमूल, रास्ना, पीपल और सैजनकी जड़, प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ—बिदारीकन्द, मुलेठी, मेद, महामेद, काकोली, चीरकाकोली, चीनी, पिण्डखर्जूर, मुनक्का, शतावर, ताड़का गूदा, गोक्षुर और चैतस घृतके सब कल्कद्रव्य सब मिलाकर एक सेर, ४ चार सेर घृत एकत्र यथाविधि पाक करना।

ब्राह्मीघृत—पुराना घी चार सेर, ब्राह्मीशाकका रस १६ सेर,

कल्कार्थ—बच, कूठ और शंखपुष्पी मिलाकर एक सेर ; यथाविधि पाक करना।

पलङ्कशाद्य तेल—कल्कार्थ—गुग्गुलु, बच, बड़ीहर्र, बिछौटोकी जड़, अकवनकी जड़, सरसों, जटामांसी, भूतकेशी, ईशलाङ्गला, चोरपुष्पी, लहसुन, अतीस, दन्ती, कूठ और गिद्ध आदि मांसभोजी पक्षीकी विष्ठा, सब मिलाकर एक सेर और छागमूत्र १६ सेरके साथ, ४ सेर तिलका तेल यथाविधि पाककर मालिश करना।

वातव्याधि।

—:०:—

रास्नादि काढ़ा—रास्ना, गुरिच, अमिलतास, देवदारू, गोक्षुर, रेंड़की जड़ और पुनर्नवा ; इन सबके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना।

माषवलादि—उड़द, बरियारा, आंवलेकी जड़, गन्धतृण, रास्ना, असगन्ध और रेंड़की जड़, इन सबके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिला नाकके रास्ते अथवा असमर्थ रोगीको मुखसे पिलाना।

कल्याणावलेह—हल्दी, बच, कूठ, पीपल, शोंठ, जीरा, अजमोदा, मुलेठी और सेन्धानमक, इन सबका समभाग चूर्ण घीके साथ मिलाकर चाटना। मात्रा आधा तोला।

स्वल्प रसोनपिण्ड—छिलका निकाला तथा पीसाहुआ लहसन १२ तोले, हींग, जीरा, सेंधानमक, सोवर्चल नमक और त्रिकटु, प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा, यह सब एकत्र खलकर मात्रा आधा तोला रेंड़के जड़के काढ़ेके साथ देना।

त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु—बबूलकी छाल, असगन्ध, हौवेर, गुरिच, सतावर, गोक्षुर, बिधारेकी बीज, रास्ना, सोवा, शठी, अजवाईन, और शोंठ प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला; गुग्गुलु १२ तोले और घी ६ तोले। पहिले घीके साथ गुग्गुलु मिलाकर पीछे और सब दवायोंका चूर्ण मिलाना; मात्रा आधा तोला, अनुपान गरम दूध या गरम पानी।

दशमूलाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध ४ सेर दशमूलका काढ़ा १२ सेर, जीवनीयगण मिलेहुएका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाना।

छागलाद्य घृत—घी ४ चार सेर, छागमांस ५० पल, दशमूल ५० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध ४ सेर, शतावरका रस ४ चार सेर, जीवनीयगण मिलेहुएका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाना।

बृहत् छागलाद्य घृत।—घी १६ सेर, छागमांस, दशमूल, वरियारा और असगन्ध प्रत्येक द्रव्य १०० पल, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर अलग अलग पात्रमें रखना। फिर १६ सेर दूध और सतावरका रस १५ सेर प्रत्येक पात्रमें मिलाकर औटाना और एकत्र कल्क पाक करना। कल्क द्रव्य—जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलाकमल, मोथा, लालचन्दन, रास्ना, मोगानी, माषाणी, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, त्रिफला, तगरचण्डी, तालीशपत्र, पद्मकाष्ठ, इलायची, तेजपत्ता, शतावर, नागेश्वर, जातीपुष्प, धनिया, मजीठ, अनार, देवदारू, सम्भालुकी बीज, एलवा, वायविड़ङ्ग और जीरा, प्रत्येक ४ तोले पाकशेष और ठंढा होनेपर छानकर

२ सेर चीनी मिलाना। यह घी ताम्रपात्रमें हलकी आंचपर औटाना चाहिये।

चतुर्म्मुख रस।—पारा, गन्धक, लोहा और अभ्रक प्रत्येक एक एक तोला, सोनेका भस्म ३ तीन मासे; एकत्र घीकुआरके रसमें खलकर गोला बना उपरसे रेंड़का पत्ता लपेटकर धानके टीलेके भीतर ३ दिन तक रख देना। तीन दिन बाद बाहर निकाल २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान सहत और त्रिफलेका पानी।

चिन्तामणि चतुर्म्मुख—रससिन्दूर २ तोले, लोहा एक तोला अभरख एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रसमें मर्द्दनकर गोला बना रेंड़का पत्ता लपेट उपर कहे अनुसार धानमें रखना। मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और त्रिफलाका पानी।

बातगजाङ्कुश—पारा, लोहा, स्वर्णमाक्षिक, गन्धक, हरताल, बड़ीहर्र, कांकड़ाशिङ्गी, मिठाविष, त्रिकटु, गणियारी और सोहागेका लावा, एकत्र गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक एक दिन खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पीपलका चूर्ण और छोटी हर्रका काढ़ा।

वृहत् वातगजाङ्कुश—पारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, ताम्बा, हरताल, सोना, शोंठ, बरियारा, धनिया, कायफल, मीठाविष, कांकड़ाशिङ्गी, पीपल, मिरच और सोहागेका लावा प्रत्येक समभाग हरीतकी दो भाग गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके रसमें एक दिन खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस।

योगेन्द्र रस—रससिन्दूर १ तोला, सोना, लोहा, अभ्रक, रौप्य और वङ्ग प्रत्येक आधा आधा तोला, एकत्र घिकुआरके

रसकी भावना दे उपर कहे रीतिसे धानमें ३ दिन रख २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान त्रिफलाका पानी और चीनी।

रसराज र॰।—रससिन्दूर ८ तोले, अभ्रक २ तोला और सोना १ तोला, एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर इसके साथ लोहा, चांदी, वङ्ग, असगन्ध लौंग, जावित्री और क्षीर-काकोली प्रत्येक आधा तोला मिलाना, फिर काकमाचीके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान दूध या चीनीका शर्व्वत।

चिन्तामणि रस।—रससिन्दूर और अभ्रक प्रत्येक २ तोला, लोहा एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अवस्था विचार-कर वायुनाशक अनुपानके साथ देना। इससे प्रमेह, प्रदर, सुतिका आदि रोगमें भी उपकार होता है।

वृहत् वातचिन्तामणि–सोना ३ भाग, चांदी २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोहा ५ भाग मूंगा ३ भाग, मोती ३ भाग और रससिन्दूर ७ भाग, एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान विचारकर देना।

स्वल्प विष्णुतैल—तिलका तेल ४ सेर, गाय या बकरीका दूध १६ सेर, सरिवन, पिठवन, वरियारा, सतावर, रेंड़की जड़, वृहती, कण्टकारी, पोईकी जड़, गुलशकरी और भांटीमूल प्रत्येक के एक एक पलका कल्क, यथाविधि औटाकर वातज रोगमें प्रयोग करना।

वृहत् विष्णुतैल।–तिलका तेल १६ सेर, सतावरका रस १६ सेर, पानी ३२ सेर। मोथा, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, शठी, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, सौंफ, देवदारु,

पद्मकाष्ठ, शैलज, जटामांसी, इलायची, दालचीनी, कूठ, बच, लाल-चन्दन, केशर, मजीठ, कस्तुरी, श्वेतचन्दन, रेणुका सरिवन पिठवन मागोनी माषोणी कुन्दरखोटी गेठेला और नखी प्रत्येकके एक एक पलका कल्क; यथाविधि औटाकर सब प्रकारके वायुरोगोंमें प्रयोग करना।

नारायण तैल।—तिलका तेल १६ सेर शतावरका रस १६ सेर दूध ६४ सेर बेल, गणियारी, श्योनाक, पाटला इन सबके मूलकी छाल और गन्धाली, असगन्ध, वृहती, कण्टकारी, वरियारा, गुलशकरी, गोक्षुर और पुनर्नवा प्रत्येक १० पल २५६ सेर पानी, शेष ६४ सेर यह काढ़ा, तथा सोवा, देवदारू, जटामांसी, शैलज, बच, लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, पिठवन, मागोनी, माषोनी, रास्ना, असगन्ध, सैंधव और पुनर्नवाकी जड़ प्रत्येकके दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाना।

मध्यमनारायण तैल।–तिलका तेल ३२ सेर; बेल, असगन्ध, वृहती, गोक्षुर, श्योनाक, बरियारा, कण्टकारी, पुनर्नवा, गुलशकरी, गणियारी, गन्धाली और पाटला, इन सबकी जड़ २॥ अढ़ाई सेर एकत्र १२ मन ३२ सेर पानीमें औटाना तथा ३ मन आठ सेर पानी रहते उतार लेना। बकरी या गायका दूध ३२ सेर सतावरका रस ३२ सेर; कल्कार्थ रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारू, कूठ, सरिवन, पिठवन, मागोनी, माषोनी, अगरू, नागेश्वर, सेंधानमक, जटामांसी, हलदी, दारुहलदी, शैलज, लालचन्दन, कूठ, इलायची, मजीठ, मुलेठी, तगरपादुका, मोथा, तेजपत्ता, दालचीनी, जीवक, ऋषभक, काकोली, चीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, बाला, बच, पलाशमूल, गठेला, श्वेतपुनर्नवा और

चोरपुष्पी प्रत्येक दो दो पल, यथानियम औटाकर, सुगन्धके लिये कपूर केशर और कस्तूरी प्रत्येक एक एक पल मिलाना।

महानारायण तैल।—तिलका तैल ४ सेर शतावर सरिवन, शठी, बरियारा, रेंड़की जड़, कण्टकारी, कण्टकरिजा की जड़, गुलशकरी और भांटीमूल, प्रत्येक १० पल पानी ६४ सेर शेष १६ सेर गाय या बकरीका दूध ८ सेर शतावरका रस ४ चार सेर, तथा पुनर्नवा, बच, देवदारू, सोवा, लालचन्दन, अगरू शैलज, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, बरियारा, असगन्ध, सैंधव और रास्ना प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना।

सिद्धार्थक तैल—तिलका तैल ४ सेर, शतावरका रस ८ सेर, दूध १६ सेर, आदीका रस ४ सेर सोवा, देवदारू, जटामांसी, शैलज, बरियारा लालचन्दन तगरपादुका कूठ इलायची सरिवन रास्ना असगन्ध बराहक्रान्ता श्यामालता अनन्तमूल पिठवन बच गन्धतृण सेंधानमक और शोंठ मिलाकर एक सेरका कल्क यथानियम औटाना।

हिमसागर तैल।—तिलका तैल ४ सेर, शतावर, विदारीकन्द, सफेद, कोंहड़ा, आंवला, सेमरकी जड़, गोक्षुर और केलेकी जड़ प्रत्येकका रस ४ सेर, नारियलका पानी ४ सेर, दूध १६ सेर; लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, मजीठ, सरलकाष्ट, अगरू, जटामांसी, मूरामांसी, शलज, सुलैठी, देवदारू, नखी, बड़ी-हर्र, खटासी, पिड़िंशाक, कुन्दुरखोटी, नालुका सतावर, लोध, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, लौंग, जावित्री, सौंफ, शठी, चन्दन, गेंठेला और कपूर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि पाक करना। यह वायुरोगोंका श्रेष्ठ औषध है।

वायुच्छायासुरेन्द्र तैल।—तिलका तेल ४ सेर, बरियारा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; यह दो काढ़ा और मजीठ, लाल चन्दन, कूठ, इलायची, देवदारू, शैलज, सेंधानमक, बच, कक्कोल पद्मकाष्ठ, काकड़ाशिङ्गा, तगरपादुका, गुरिच, मोगानी, माषोनी, सतावर, अनन्तमूल, श्यामालता, सावा और पुनर्नवा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथारीतिसे औटाना। यह तेल विविध वायुरोगनाशक तथा चीण शुक्र पुरुष और चीणातवा स्त्रियोंके लिये विशेष उपकारी है।

माषबलादि तैल।—तिलका तेल ४ सेर, उरद, बरियारा, रास्ना, दशमूल, गन्धाली और सोवा; प्रत्येकका काढ़ा ४ सेर, कांजी ४ सेर; शतावर और बिदारीकन्द प्रत्येक रस दो दो सेर तथा सोवा, सौंफ, मेथी, रास्ना, गजपीपल, मोथा, असगन्ध, खसकी जड़ मुलेठी, सरिवन, पिठवन, बरियारा और भूंईआंवला, प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथारीति तेलमें मिलाकर औटाना।

सैन्धवाद्य तैल—तिलका तेल ४ सेर, कांजी २२ सेर, तथा सेंधानमक २ पल, शोंठ पांच पल, पिपलामूल २ पल, चितामूल २ पल और भेलावा २० का कल्क यथारीति औटाना, यह गृध्रसी आदि वातरोग नाशक है।

पुष्पराजप्रसारिणी तैल।—तिलका तेल ४ सेर, गन्धाली १०० पल (१२॥ सेर) पानी ६४ सेर शेष १६ सेर असगन्ध ६। सेर पानी ६४ सेर शेष १६ सेर गाय या भैंसका दूध १६ सेर, पद्म और शतावर प्रत्येक का रस ४ सेर तथा पीपल, बड़ीलायची,

कूठ, कण्टकारी, शोंठ, मुलेठी, देवदारु, सरिवन पुनर्नवा, मजीठ, तेजपत्ता, रास्ना, वच, पुष्करमूल, अजवाइन गन्धतृण, जटामांसी, वरियारा, चीतालमू गोक्षुर, मृणाल और सतावर प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि औटाना। इससे कुब्ज, पङ्गु, गृध्रसी और अर्द्दित आदि वायुरोग तथा वात कफके रोग समूह दूर होता है।

महामाष तैल।—तिलका तेल ४ सेर, उरद ४ सेर, दशमूल ६। सेर, बकरेका मांस ३० पल एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते नीचे उतार लेना। उरद और बकरेके मांसको अलग पोटली बांधकर औटाना चाहिये। दूध १६ सेर तथा रेंड़की जड़, कंवाचकी जड़, सोवा, सेंधा, बाला, सौवर्चल नमक, जीवनीयगण, मजीठ, चाभ, चीतामूल, कायफल, त्रिकटु पीपलामूल, रास्ना, मुलेठी, देवदारु, गुरिच, कुरथी, असगन्ध, वच और शठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर लकवा, अर्द्दित, कम्प, गृध्रसी, अववाहुक आदि वायुरोगमें प्रयोग करना।

वातरक्त।
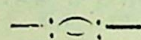
अमृतादि काढ़ा—गुरिच, शोंठ और धनिया प्रत्येक दो दो तोले; १६ गुने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते छान लेना, और ८ तोले पिलाना।

रास्नादि—अडूसा, गुरिच और अमिलतास का फल, इन सबके काढ़ेमें आधा तोला रेंड़ीका तेल मिलाकर पिलाना।

नवकार्षि।—आंवला, हर्रा, वहेड़ा, नीमकी छाल, मजीठ, बच, कुटकी, गुरिच और दारुहल्दी, प्रत्येक "५ रत्तीका एक मासा" इसी हिसाबसे एक कर्ष अर्थात् तेरह आना २ रत्तीभर ले १६ गूने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते नीचे उतार ८ तोले मात्रा प्रयोग करना।

पटोलादि—परवरका पत्ता, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गुरिचके काढ़ेसे वातरक्त और तज्जनित दाह दूर होता है।

निम्बादि चूर्ण।—नीमकी छाल, गुरिच, बड़ीहर्र आंवला और सोमराजी प्रत्येक एक एक पल, सोंठ, वायविड़ङ्ग, कचवड़की जड़, पीपल, अजवाईन, बच, जीरा, कुटकी, खैरकी, लकड़ी, सैन्धव, यवाक्षार, हल्दी, दारूहल्दी, मोथा, देवदारु और कूठ प्रत्येक दो दो तोले, इन सबका चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गुरिचके अनुपानके काढ़ेके अनुपानमें देनेसे आमवातका शोथ, पिलही और गुल्म आदि रोग शान्त होता है।

कैशोर गुग्गुलु।—ढीली पोटलीमें बंधा हुआ महिषाक्ष गुगगुलु २ सेर, त्रिफला २ सेर, गुरिच ४ सेर, एकत्र १६ सेर पानी में औटाकर ४८ सेर पानी रहते उतार लेना। औटाती वखत वीच वीचमें हिला देना उचित है। फिर छानकर पोटलीके गुग्गुलुमें घी मिलाकर उक्त काढ़ेमें मिला लोहेके बरतनमें औटाना, गाढ़ा होनेपर इसके साथ त्रिफलाके प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, त्रिकटुका चर्ण १२ तोले, विड़ंग ४ तोले, तेवड़ीमूल २ तोले, दन्तीमूल दो तोले और गुरिच ८ तोले मिलाकर एक सेर घी मिलाना। चना भिंगोया पानी, गुरिचका काढ़ा अथवा दूधके अनुपानमें एक तोला मात्रा प्रयोग करना चाहिये।

रसाभ्र गुग्गुलु।—गुरिच दो सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर ; यह दो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसमें गुग्गुलु एक सेर, पारा, गन्धक और लौहभस्म प्रत्येक ४ तोले तथा अभ्रक भस्म ८ तोले मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, गुरिच, इन्द्रवारुणी की जड़, वायविड़ंग नागेश्वर और तेवड़ी की जड़ प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर चलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गुरिचका काढ़ा। यह वातरक्त और कुष्ठ रोगका श्रेष्ठ औषध है।

वातरक्तान्तक रस।—पारा, गन्धक, लोहा, मोथा, मनसिल, हरताल, शिलाजीत, गुग्गुलु, वायविड़ङ्ग, त्रिफला, त्रिकटु, समुद्रफेन, गदहपुन्ना, देवदारू चीतामूल, दारुहलदी और श्वेत अपराजिता ; यह सब द्रव्यको त्रिफलाका काढ़ा और भङ्गरैयाकी रसको तीन तीन बार भावना देकर उरद बराबर गोली बनाना। यह औषध घी और नीमका पत्ता, फूल और छालके काढ़ेके अनुपानमें प्रयोग करना।

गुड़ुच्यादि लौह—गुरूचिका सत्त, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद प्रत्येक एक एक तोला, लोहा १० तोले ; एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गुरिचका काढ़ा या धनिया और परवरके पत्तेका काढ़ा।

महातालेश्वर रस।—हरिताल भस्म और गन्धक प्रत्येक समभाग एकत्र मिला दोनोंके बराबर ताम्रभस्म मिलाना, फिर एक मिट्टीके कटोरेसे रख दूसरा कटोरा ढांप मिट्टीसे लेपकर बालुका यन्त्रमें फूंकना। मात्रा दो रत्ती अनुपान विशेषके साथ देनेसे वातरक्त, कुष्ठ, श्वित्र आदि पीड़ा शान्त होती है। हरताल

भस्म करनेकी विधि—हरताल ८ तोला, मीठाविष २ तोले, एकत्र अङ्कोटक (ढेरा) के रसमें खलकर एक गोला बनाना, फिर एक हांड़ी में १६ तोले पलाशका खार रखकर उपर वह गोला रखना तथा उसके उपरसे २४ तोले चिरचिड़ीका खार रखकर गोला ढांक देना, तथा हांड़ीके उपर एक ढकना ढांक मिट्टीसे लेपकर सुखा लेना और चुल्हेपर रख २४ घण्टे आंच लगाना। इससे हांड़ीके ढकनेके नीचे कर्पूर की तरह पदार्थ जम जायगा, उसीको हरिताल भस्म कहते हैं। २ रत्ती मात्रा हरिताल भस्म अनुपान विशेषके साथ देनेसे वातरक्त, कुष्ठ, विस्फोट, विचर्चिका; शोथ, हलीमक, शूल, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि रोग दूर होता है।

विश्वेश्वर रस।--पारा १० तोले, गन्धक १० तोले, तूतिया १० तोले, मिठाविष ५ तोले, पलाश बीज ५ तोले और कटैली, कनेलकी जड़, धतूरा, हड़जोड़की लता, नीलवृक्ष, जटामांसी, दालचीनी, कुचिला और भेलावा प्रत्येक १० तोलेका एकत्र चूर्ण करना। मात्रा २ या ३ रत्ती सेवन करनेसे वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, अरुचि और सब प्रकारके विषज रोग आराम होता है।

गुड़ची घृत—घी ४ सेर, गुरिचका काढ़ा १६ सेर, दूध ४ सेर और गुरिचका कल्क एक सेर यथाविधि औटाना।

अमृताद्य घृत—घी ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, पानी १२ सेर कल्कार्थ गुरिच, मुलेठी, मुनक्का, त्रिफला, शोंठ, बरियारा, अडूसा, अमिलतास, श्वेत पुनर्नवा, देवदारु, गोक्षुर, कुटकी, सतावर, पीपल, गाम्भारी फल, रास्ना, तालमखाना, एरण्डमूल, बिधारा, मोथा और नीलोत्पल, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि पाक कर उपयुक्त मात्रासे अन्नादि भोज्यवस्तुके साथ सेवन करना।

वृहत् गुड़ूची तैल।—तिलका तैल ४ सेर, गुरिच १०० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा, दूध १६ सेर; असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, चीरकाकोली, सफेद चन्दन, सतावर, गुलशकरी, गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, बायविड़ङ्ग, त्रिफला, रास्ना, त्रायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, पीपलामूल, त्रिकटु, हाकुचबीज, अनारकी बीज, इन्द्रबारुणी की जड़, मजीठ, लाल-चन्दन, हल्दी, सोवा और छातियानकी छाल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना यह नस्य और मालिश करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, प्रमेह, कामला, पाण्डु, विस्फोट, विसर्प तथा हाथ पैरका जलन दूर होता है।

महारुद्र गुड़ूची तैल।—सरसोंका तैल ४ सेर, गुरिच १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; नीमछाल ८ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गुरिच, सोमराजी को बीज, दन्तीमूल, कनैलकी जड़, त्रिफला, अनारकी बीज, नीमका बीज, हलदी, दारुहलदी, वृहती, कण्टकारी, गुलशकरी, त्रिकटु, तेजपत्ता, जटामांसी, पुनर्नवा, पीपलामूल, मजीठ, असगन्ध, सोवा, लाल-चन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, छातियानकी छाल और गोबरका रस प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इसे वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विसर्प आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

रुद्र तैल।—सरसोंका तैल ४ सेर, गुरिच ४ सेर, पानी, १६ सेर, शेष ४ सेर; दूध ४ सेर, अड़ूसेका रस ४ सेर; पुनर्नवा, हलदी, नीमछाल, बैगन, वृहती, दालचीनी, कटेली, करञ्ज, निर्गुण्डी, अड़ूसेकी जड़, चिरचिरी, परवरका पत्ता, धतूरा, अनार-का छिलका, जयन्तीमूल, दन्तीमूल और त्रिफला प्रत्येक ४ तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना, फिर कृष्णागुरु, शठी, काकोली, चन्दन,

गेंठेला, नखी, खटासी, नागेश्वर और कूठ, इन सब द्रव्योंसे यथाविधि गन्धपाक करना। यह तैल मालिश करनेसे अस्थिमज्जागत कुष्ठ, हाथ पैरका घाव, पामा, विचर्च्चिका, कण्डू, मसूरिका, दाद और गात्रवैवर्ण आदि विविध रक्त और त्वकदोषजनित पीड़ा शान्त होती है।

महारुद्र तैल।—सरसोंका तैल ४ सेर, अडूसेके पत्तेका रस ४ सेर, गुरिच ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा, पुनर्नवा, हलदी, नीमछाल, वार्ताकू, अनारकी छाल, वृहती, कण्टकारी, नाटामूल, अडूसेकी छाल, निर्गुण्डी, परवरका पत्ता, धतूरा, चिरचिरीकी जड़, जयन्ती, दन्ती और त्रिफला प्रत्येक चार चार तोले, मिठाविष १६ तोले, त्रिकटु प्रत्येक तीन तीन पल, ४ सेर पानीसे यथाविधि औटाना। यह भी वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विविध चर्म्मरोग नाशक है।

महापिण्ड तैल।—सरसोंका तैल ४ सेर, गुरिच, सोमराजी और गंधाली प्रत्येक १२॥ सेर; अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। दूध १६ सेर शिलारस, राल, निर्गुण्डी, त्रिफला, भांग, वृहती, दन्तीमूल, कक्कोल, पुनर्नवा, चीतामूल, पीपलामूल, कूठ, हलदी, दारुहलदी, चन्दन, लालचन्दन, खटासी, करञ्ज, सफेद, सोमराजी बीज, चकुन्द बीज, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कंवाच बीज, असगन्ध, सरलकाष्ठ, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इस तैलके मालिश करनेसे वातरक्तादि विविध पीड़ा शान्त होती है।

उरुस्तम्भ।

—:०:—

भल्लातकादि काढ़ा—भेलावा, गुरिच, शोंठ, देवदारू, हरीतकी, पुनर्नवा और दशमूल; यथाविधि इन सबका काढ़ा बनाकर पीनेसे उरुस्तम्भ रोग आराम होता है।

पिप्पल्यादि—पीपल पीपलामूल और भेलावेकी जड़के काढ़ेमें सहत मिलाकर पीना। ये तीन द्रव्योंका कल्क भी सहतके साथ चटाया जासकता है।

गुञ्जाभद्रक रस—पारा १॥ तोला, गन्धक ६ तोले, घुङ्घची २ तोले, जयपालका बीज आधा तोला; यह सब द्रव्य जयन्ती पत्र, जम्बीरी नीबू, धतूरेकी पत्ता और काकमाचीके रसकी एक एक दिन भावना दे घीमें खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान हींग, सेंधानमक और सहत।

अष्टकट्वर तैल—सरसोंका तेल ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर, कट्वर अर्थात् दहीका मट्ठा ३२ सेर; पीपलामूल और शोंठ प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाना। यह तेल मालिश करनेसे ऊरुस्तम्भ और गृध्रसी रोग आराम होता है।

कुष्ठाद्य तैल—सरसोंका तेल ४ सेर, कूठ, नवनीतखोटी, श्वेता, सरलकाष्ठ, देवदारू, नागकेशर, अजमोदा और असगन्ध मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर सहतके साथ यह तेल पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग विनष्ट होता है।

महासैन्धवाद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, सैन्धव, कूठ, शोंठ, बच, बारंगी, मुलेठी, सरिवन, जायफल, देवदारू, शोंठ,

शठी, धनिया, पीपल, कायफल, कूठ, अजवाईन, अतीस, एरण्ड मूल, नीलवृक्ष और नीलाकमल, सब मिलाकर एक सेर ; कांजी १६ सेर ; यथाविधि औटाकर पान नस्य मर्द्दन करनेसे ऊरुस्तम्भ, आमवात और पक्षाघात आदि पीड़ा शान्त होती है।

आमवातरोग।

—:०:—

रास्नापञ्चक—रास्ना, गुरिच, एरण्डमूल, देवदारू और शोंठ, यह पांच द्रव्योंको रास्नापञ्चक कहते हैं। यह काढ़ा सब प्रकार आमवातनाशक है।

रास्नासप्तक—रास्ना, गुरिच, अमिलतासका फल, देवदारू, गोक्षुर, एरण्डमूल और पुनर्नवा इन सबको रास्नासप्तक कहते हैं। इसके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे जङ्घा, ऊरु, त्रिक और पृष्ठ शूल आराम होता है।

रसोनादि कषाय—लहसन, शोंठ और निर्गुण्डीका काढ़ा आमवातको श्रेष्ठ औषध है।

महारास्नादि क्वाथ।—रास्ना, एरण्डमूल, अडूसा, जवासा, शठी, देवदारू, बरियारा, मोथा, शोंठ, अतीस, हर्रा, गोक्षुर, अमिलतास, सौंफ, धनिया, पुनर्नवा, असगन्ध, गुरिच, पीपल, बिधारा, सतावर, वच, झिंटीमूल, चाभ, वृहती और कण्टकारी ; इन सब द्रव्योंमें रास्नाके सिवाय बाकी सब द्रव्य समभाग रास्ना दो भाग ; आठ गुने पानीमें औटाना आठ भागका एक भाग पानी रहते उतार कर शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। अजमोदादि

चूर्ण और अलम्बुषाद्य चूर्णके अनुपानमें भी यह दिया जाता है। आमवात आदि वातवेदना इससे शान्त होती है।

हिङ्ग्वाद्य चूर्ण—हींग एक भाग, चाभ दो भाग, काला नमक ३ भाग, शोंठ ४ भाग, पीपल ५ भाग, जीरा ६ भाग और कूठ ७ भाग एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा गरम पानी या उक्त काढ़ेके अनुपानसे देना।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—मुण्डरी, गोक्षुर, गुरिच, बिधारेको बीज, पीपल, तेवड़ी, मोथा, बरुणमूल, पुनर्नवा, त्रिफला और शोंठ; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा दहीका पानी, मट्ठा या कांजीके अनुपानमें देना, इससे पिलही, गुल्म, आनाह, अर्श और अग्निमान्द्य आदि पीड़ा आराम होती है।

वैश्वानर चूर्ण—सेंधानमक २ भाग, अजवाईन २ भाग, अजमोदा ३ भाग, शोंठ ५ भाग और हर्रा १२ भाग, एकत्र चूर्णकर गरम पानी या उक्त अनुपानसे प्रयोग करना। यह भी अलम्बुषादिकी तरह विविध रोग नाशक है।

अजमोदादि वटक।—अजमोदा, गोलमिरच, पीपल, विड़ङ्ग, देवदारू, चीतामूल, सोवा, सैन्धव और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, शोंठ १० पल, बिधारेको बीज १० पल, हर्रा पांच पल और सबके बराबर गुड़। पहिले गुड़में थोड़ा पानी मिलाकर औटाना चाशनी होनेपर सबका चूर्ण मिलाकर आधा तोला वजनकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी।

योगराजगुग्गुलु।—चीतामूल, पीपलामूल, अजवाईन, काला जीरा, विड़ङ्ग, अजमोदा, जीरा, देवदारू, बड़ी इलायची, चाभ, सैंधव, कूठ, रास्ना, गोक्षुर, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, दाल-

चीनी, खसकी जड़, जवाखार, तालीशपत्र और तेजपत्ता प्रत्येकका समभाग चूर्ण और सबके बराबर गुग्गुलु। पहिले गुग्गुलु घीमें अच्छी तरह मिलाना फिर सब चूर्ण मिलाकर थोड़ा घी मिलाकर मर्द्दन करना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध या उक्त काढ़ा।

बृहत् योगराज गुग्गुलु।— त्रिकटु, त्रिफला, अम्बष्ठा, सोवा, हलदी, दारुहल्दी, अजमोदा, बच, हींग, हीवेर, गजपीपल, छोटी इलायची, शठी, धनिया, काला नमक, सौवर्च्चल नमक, सेंधानमक, पीपलामूल, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, गन्धतुलसी, लौहभस्म, राल, गोत्तुर, रास्ना, अतीस, शोंठ, जवाखार, अम्लवेतस, चीतामूल, कूठ, चाभ, महादा, अनार, एरण्डमूल, असगन्ध, तेवड़ी, दन्तीमूल बैरके बीजकी गिरी, देवदारु, हलदी, कुटकी, मूर्व्वामूल, त्रायमाणा, जवासा, विड़ङ्ग, वङ्गभस्म, अजवाईन, अडूसेकी छाल और अभरख भस्म प्रत्येकका चूर्ण समभाग और सबके बराबर गुग्गुलु ; घीमें मर्द्दन कर उपर कहे अनुसार तयार करना तथा पूर्व्वोक्त मात्रा और अनुपानसे प्रयोग करना।

सिंहनाद गुग्गलु।— हर्रा, आंवला और बहेड़ा प्रत्येक चार चार सेर और एक सेर गुग्गुलुकी पोटली ९६ सेर पानीमें औटाना २४ सेर रहते नीचे उतार छानकर इसी काढ़ेमें पोटलीका गुग्गुलु और आधा सेर रेंड़ीका तेल मिलाकर औटाना गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, बिछौटी की जड़, गुरिच, चीतामूल, तेवड़ी, दन्तीमूल, चाभ, सूरन, मानकन्द, प्रत्येक चार चार तोले ; जयपाल बीज १००० एक हजार अच्छी तरह चूर्णकर उसमें मिलाना। मात्रा चार आनेभर अनुपान गरम पानी या गरम दूध। इससे विरेचन हो आमवात आराम होता है।

रसोनपिण्ड।—लहसन १२॥ सेर, सफेद तिल आधा सेर; हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पांचोनमक, सोवा, कूट, पोपलामूल, चीतामूल, अजमोदा, अजवाइन और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल; चूर्ण एक पात्रमें रख उसमें १ सेर तिलका तेल २ सेर कांजो मिलाकर १६ दिनतक धानकी राशिके भीतर रखना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी। इससे श्वास, कास, शूल आदि पीड़ा शान्त होती है।

महारसोनपिण्ड।—कुटाहुआ लहसन १०० पल, सफेद तिल ५० पल, गायकी दहीका मट्ठा १६ सेर; त्रिकटु, धनिया, चाभ, चोतामूल, गजपीपल, अजमोदा, दालचीनी, इलायची और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, चीनी ८ पल, मरिच १ पल, कुठ ४ पल, कालाजीरा ४ पल, सहत ॥ सेर, अदरख ४ पल, घी ८ पल, तिलका तेल ८ पल, कांजी २० पल, सफेद सरसो ४ पल, राइ ४ पल, हींग दो तोला, पांचोनमक प्रत्येक दो दो तोले, यह सब द्रव्य एकत्र धूपसे सुखाकर धान्यराशिमें १२ दिन रख देना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी।

आमवातारि वटिका—पारा, गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रभस्म, तुतिया, सोहागा और सैंधव प्रत्येक समभाग; सबका दूना गुग्गुलु, चतुर्थांश तेवड़ीका चूर्ण और चीतामूलका चूर्ण; यह सब द्रव्य घीमें मिलाकर मर्द्दन करना। चार आनेभरकी गोली। अनुपान त्रिफला भिंगोया पानी। यह औषध पाचक और विरेचक है।

वातगजेन्द्रसिंह—अभ्रभस्म, लौहभस्म, पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, सोहागा, मीठाविष, सैंधव, लौंग, हींग और जायफल प्रत्येक एक एक तोला, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, त्रिफला और

जोरा प्रत्येक आधा तोला ; यह सब द्रव्य घिकुआरके रसमें मर्द्दन कर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे आमवात और अन्यान्य वायुविकार आराम होता है।

वृहत् सैन्धवाद्य तेल—रेंडीका तेल ४ सेर, सोवाका काढ़ा ४ सेर, कांजी ८ सेर, दही का पानी ८ सेर ; सैन्धव, गजपीपल, रास्ना, सोवा, अजवाईन, सफेद राल, मिरच, कूठ, शोंठ, सौवर्च्चल नमक, काला नमक, बच, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कूठ और पीपल प्रत्येक ४ तोले ; यथानियम औटाकर पान, अभ्यङ्ग और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करना।

प्रसारिणी तेल—रेंडीका तेल ४ सेर, १६ सेर गंधालीके रसमें औटाना ; आधा तोला मात्रा दूधमें मिलाकर पीनेसे आमवात और सब प्रकारके श्लैष्मिक रोग शान्त होता है।

विजयभैरव तैल।—पारा, गन्धक, नीमकी छाल और हरिताल प्रत्येक समभाग, कांजीसे पीसकर कपड़ेके एक टुकड़े में लेपकर सुखा लेना फिर उसकी बत्ती बनाकर बत्तीके अग्रभागमें तेल लगाकर जलाना, तथा जलती हुई बत्तीपर थोड़ा थोड़ा सरसो या रेंड़ीका तेल देते रहना, इस रीतिसे नीचेके पात्रमें जो तेलका बूंद गिरेगा उसीका नाम विजय भैरव तेल है। उक्त द्रव्योंमें एक भाग अफीम मिलाकर तेल तयार करनेसे उसे महाविजयभैरव तैल कहते है। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका वातरोग आराम होता है।

———

शूलरोग।

—०:※:०—

सामुद्राद्य चूर्ण—कटैला नमक, सेंधानमक, जवाचार, सज्जीचार, सौवर्च्चल नमक, साम्भर, कालानमक, दन्तीमूल, लौहभस्म, मण्डुर, तिवड़ीमूल और जिमिकन्द प्रत्येक समभाग ; और सबका चौगूना दही, दूध और गोमूत्र प्रत्येक समभाग एकत्र सब मिलाकर हलकी आंचमें औटाना। चूर्णको तरह होजानेपर नीचे उतार लेना। मात्रा दो आने या चार आनेभर गरम पानीसे देना। इससे सब प्रकारका शूल आराम होता है।

शम्बुकादि गुड़िका—शम्बुक भस्म, शोंठ, पीपल, मिरच, सैंधव, काला, सौवर्च्चल, सामुद्र और औद्भिद लवण प्रत्येक समभाग, कलमीशाक के रसमें खलकर एक आनेभर की गोली बनाना। सबेरे या भोजनके वख्त यह गोली खानेसे परिणाम शूलमें आशु उपकार होता है।

नारिकेल चार—पानीभरा नारियलमें सेंधानमक भरकर उपरसे मिट्टीका लेपकर सुखा लेना, फिर कण्डेको आंचमें उसे जला लेना। नारियलके भीतरका नमक और गूदाके बराबर पीपलका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आनाभर मात्रा पानीके साथ लेनेसे परिणाम शूल आराम होता है।

तारामण्डुर गुड़—शोधित मण्डुर ८ पल, गोमूत्र १८ पल, गुड़ ८ पल, उपयुक्त पानीमें औटाना, पाक शेष होनेपर बायविड़ङ्ग, चितामूल, चाभ, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाकर धीमी आंच देना, पानी सूख जानेपर नीचे उतार

स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला भोजनके पहिले बीचमें या पोछे सेवन करना।

शतावरी मण्डूर—शोधित मण्डूर चूर्ण ८ पल, सतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ४ पल, एकत्र यथारीतिसे औटाना तथा पिण्डकी तरह हो जानेपर उतार लेना। भोजनके पहिले मध्य और शेषमें प्रत्येक बार एक आनाभर मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल दूर होता है।

बृहत् शतावरी मण्डूर।—पहिले मण्डूर गरम कर त्रिफलाके काढ़ेमें डालकर शोधन करना, फिर वही मण्डूर ८ पल, सतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, आंवलेका रस ८ पल और घी ४ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, पीपल और बड़ी हर्र; प्रत्येकका चूर्ण आधा तोला मिलाना। शतावरी मण्डूरकी तरह सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल और अम्लपित्त आराम होता है।

धात्रीलौह—आंवलेका चूर्ण ८ पल, लौहभस्म ४ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल सबको आंवलेके रस या काढ़ेकी सात बार भावना देना, सूख जानेपर चूर्णकर मात्रा चार आनेभर अनुपान घी और सहत भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें सेवन करना।

औटाया हुवा धात्रीलौह।—कुटा हुआ यव तण्डुल ४ पल, पानी १६ पल, शेष ४ सेर वस्त्रपूत सतावरका रस, आंवलेका रस या काढ़ा, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, बिदारीकन्द का रस घी और इक्षुरस प्रत्येक ४ पल और शोधित मण्डूर चूर्ण ६ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, दालचिनी, तेजपत्ता, इलायची, गजपीपल, मोथा, बड़ीहर्र, लोहाभस्म, अभरख भस्म,

त्रिकटु, रेणुका, त्रिफला, तालीशपत्र, नागेश्वर कुटकी, मुलेठो, रास्ना, असगन्ध और लालचन्दन प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिलाना तथा अच्छी तरह चलाकर नीचे उतार लेना। मात्रा चार आनेभर भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें अन्न या दूधके साथ सेवन करना।

आमलकी खण्ड।—उबाला वस्त्र निष्पीड़ित पक्का भतुवा ५० पल, २ सेर घीमें भुंज लेना। फिर आंवलेका रस ४ सेर भतुवेका पानी ४ सेर और चीनी ५० पल एकत्र मिलाकर छान लेना तथा इसी रसमें भूंजा हुआ भतुवा औटाना। पाकशेष होनेपर उसमें पीपल, जीरा और शोंठ प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल, मिरच का चर्ण १ पल, तालीशपत्र, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर और मोथा प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिला ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध। इससे सब प्रकारकी शूल और अम्लपित्त रोग आराम होता।

नारिकेल खण्ड।— शिलापिष्ट और वस्त्र निष्पीड़ित पक्के नारियलका गूदा ॥ सेर आध पाव घीमें थोड़ा भून लेना। फिर कच्चे नारियलका पानी ४ सेर, चीनी आधासेर एकत्र मिलाकर छान लेना। तथा इसी रसमें भूंजा हुआ नारियलका गूदा औटाना, पाकशेष होनेपर इसमें धनिया, पीपल, मोथा, वंशलोचन, जीरा और कालाजीरा प्रत्येक आधा तोला, तथा दारुचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक एक एक मासे मिलाना। मात्रा एक तोला, अनुपान गरम दूध।

बृहत् नारिकेलखण्ड।—शिलापिष्ट रस निचोड़ा पक्के नारियलका गूदा ८ पल, ५ पल घीमें भूनना। फिर कच्चे नारियलका पानी १६ सेरमें चीनी दो सेर मिलाकर छान लेना।

इसी रसमें भूना हुआ नारियल और शोंठका चूर्ण ४ पल तथा दूध दो सेर मिलाकर धीमी आंचमें औटाना। पाकशेष होनेपर वंशलोचन, त्रिकटु, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, धनिया, पीपल, गजपीपल और जीरा प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाना। मात्रा आधा तोला, इससे शूल, अम्लपित्त, जीमिचलाना और हृद्रोग आदि पीड़ा दूर हो बल, शुक्र आदि बढ़ता है।

नारिकेलामृत।—पिष्ट और वस्त्र निष्पीड़ित सुपक्क नारियलका गूदा २ सेर, ४ सेर घीमें भूनना। फिर कच्चे नारियल का पानी ३२ सेर, गायका दूध ३२ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, चीनी १२॥ सेर और शोंठका चूर्ण २ सेरके साथ नारियलका गूदा एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल; आंवला, जीरा, कालाजीरा, धनिया, वंशलोचन और मोथा; प्रत्येक का चूर्ण ६ तोले इसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर सहत मिलाना। यह परिणाम शूलका श्रेष्ठ औषध है।

हरीतकी खण्ड—त्रिफला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, अजवाईन, त्रिकटु, धनिया, सौंफ, सोवा और लौंग प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, तिवड़ो और सनायका चूर्ण दो दो पल, बड़ीहर्रका चूर्ण ८ पल, चीनी ३२ पल; यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला, अनुपान गरम दूध।

शूलगजकेशरी।—पारा एकभाग और गन्धक २ भाग कज्जली बना, फिर समान वजनकी ताम्रपुटमें वह कज्जली बन्द करना फिर एक हांड़ीमें पहिले थोड़ा सेंधानमक देकर उपर वह ताम्र-पुट रख उसके उपर भी थोड़ा सेंधानमक डालकर हांड़ीका मुह

मिट्टीसे बन्द करना। गजपुटसे हाड़ी फूंककर दूसरे दिन ताम्रपुटका चूर्ण करना। इसको ४ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे कष्टसाध्य शूलभी आराम होता है। यह औषध सेवन कर हींग, शोंठ, जीरा, बच और गोलमिरचका चूर्ण आधा तोला गरम पानीसे लेना उचित है।

शूलवज्रिनी वटिका—पारा, गंधक और लौहभस्म प्रत्येक चार चार तोले ; सोहागा, हींग, शोंठ, त्रिकटु, त्रिफला, शठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन, जीरा और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला। यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें खलकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या ठण्ढा पानी।

शूलगजेन्द्र तैल—तिलका तेल आठ सेर ; एरण्डमूल, दशमूलका प्रत्येक द्रव्य पांच पांच पल, पानी ५५ सेर, शेष १३॥ सेर, जौ ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १३ सेर ; दूध १६ सेर और शोंठ, जीरा, अजवाइन, धनिया, पीपल, बच, सैंधव और बेरका पत्ता प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करना।

उदावर्त्त और आनाह।

—:*:—

नाराच चूर्ण—चीनी ८ तोले, तिवड़ी चूर्ण २ तोले और पीपल चूर्ण ४ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा भोजनके पहिले सहतमें मिलाकर चाटना।

गुड़ाष्टक—त्रिकटु, पीपलामूल, तेवड़ीमूल, दन्तीमूल और चीतामूल, प्रत्येक समभाग ; तथा समष्टीके बराबर गुड़में मिलाकर आधा तोला मात्रा सबेरे पानीके साथ देना।

वैद्यनाथ वटी—हरीतकी, त्रिकटु और पारा प्रत्येक एक एक भाग और जयपाल बीज दो भाग शङ्खपुष्पीके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

वृहत् इच्छाभेदी रस।—पारा, गन्धक, सोहागा, गोलमिरच और तेवड़ी प्रत्येक समभाग, पारेका दूनो अतीस और जयपाल की बीज पारेका ९ गूना एकत्र मदारके पत्तेके रसमें खलकर कण्डे की आंचपर औटा लेना, फिर एक रत्ती बराबर गोली ठण्ढे पानीसे देना। यह दवा सेवन कर जबतक गरम पानी न पीवे तबतक दस्त होगा, तथा गरम पानी पीतेही दस्त बन्द हो जायगा। पथ्य—दही और भात।

शुष्कमूलाद्य घृत—सूखी मूली, अदरख, पुनर्नवा, स्वल्प अथवा वृहत् पञ्चमूल और अमिलतासका फल यह सब द्रव्य मिलाकर ८ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर छान लेना, इस काढ़ेमें ४ सेर घी औटाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध और चीनी। इससे उदावर्त्त आराम होता हैं।

स्थिराद्य घृत—स्वल्प पञ्चमूल, पुनर्नवा, अमिलतासका फल और नाटाकरञ्ज प्रत्येक दो तोला पल समष्टी के चौगूने पानीमें औटाना चतुर्थांश पानी रहते उतार कर छान लेना, इस काढ़ेमें ४ सेर घी औटाना। यह भी पूर्व्ववत् मात्रा प्रयोग करनेसे उदावर्त्त रोग आराम होता हैं।

गुल्मरोग ।

—:०:—

हिङ्गादि—चूर्ण—हींग एक भाग, बच दो भाग, कालानमक ३ भाग, शोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग, पुष्करमूल ७ भाग और कूठ ८ भाग एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गरम पानीसे सेवन करना ।

बचादि चूर्ण—बच, हर्रा, हींग, सेंधानमक, अम्लवेतस, जवाक्षार और अजवाइन ; प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे सेवन करनेसे गुल्मरोग आराम होता है ।

वज्रक्षार ।—सामुद्रलवण, सैंधव लवण, कटैला नमक, जवाक्षार, सौवर्चल नमक, सोहागेका लावा और सज्जीक्षार प्रत्येक समभाग ; सोजका दूध और मदारके दूधकी तीन तीन दिन भावना देकर सुखा लेना । फिर मदारका पत्ता लपेटकर एक हांडीमें रखना तथा हांडोका मुह बन्दकर चुल्हेपर रख सब द्रव्य अन्तर्धुमसे जलाना । फिर त्रिकटु, त्रिफला, अजवाईन, जीरा और चीतामूल प्रत्येक समभाग तथा समष्टीके समान वजन यह क्षार एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रासे वाताधिक्य गुल्ममें गरम पानी, पित्ताधिक्यमें घी, कफाधिक्यमें गोमूत्र, त्रिदोषमें कांजी और उदावर्त्त, प्लीहा, अग्निमान्द्य और शोथादि रोगमें ठण्ढे पानीके अनुपानसे प्रयोग करना ।

दन्ती हरीतकी।—ढीली पोटलीमें बंधा हुआ २५ हर्रा, दन्तीमूल २५ पल, चीतामूल २५ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढ़ेमें २५ पल पुराना गुड़ मिलाकर उक्त २५ हर्रा डालकर औटाना। पाक शेष होनेपर तेवड़ी का चूर्ण ४ पल, तिलका तेल ४ पल, पीपलका चूर्ण ४ तोले और शोंठका चूर्ण ४ तोले मिलाकर उतार लेना ठण्ढा होनेपर सहत ४ पल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाना। मात्रा एक हर्रा और आधातोला गुड़ सबेरे खिलाना। इससे विरेचन हो गुल्म, प्लीहा, शोथ, अर्श, हृद्रोग आदि पीड़ा दूर होती है।

काङ्कायन गुड़िका।—शठी, कूठ, दन्तीमूल, चीतामूल, अड़हर, शोंठ, वच और तेवड़ीकी जड़, प्रत्येक एक एक पल, हींग २ पल, जवाक्षार २ पल, अम्लवेतस २ पल ; अजवाईन, जीरा, मिरच और धनिया प्रत्येक दो दो तोले तथा काला जीरा और अजमोदा प्रत्येक चार तोला एकत्र नीबूके रसमें खलकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी। कफज गुल्ममें गोमूत्रके साथ, पित्तज गुल्ममें दूधके साथ, वातज गुल्ममें कांजीके साथ और रक्तज गुल्ममें ऊंटके दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

पञ्चानन रस—पारा, गन्धक, तुतियाभस्म, जयपाल बीज, पीपल और अमिलतासका गूदा समभाग सीजके दूधकी भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। आंवलेका रस या इमलीके पत्तेके रसके अनुपानमें देनेसे रक्तगुल्म आराम होता है।

गुल्म कालानल रस।—पारा, गन्धक, हरिताल, ताम्रभस्म, सोहागा और जवाक्षार प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मोथा, पीपल, शोंठ, मिरच, गजपीपल, बड़ीहर्र, बच और कूठ,

प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला यह सब द्रव्य ; दवनपापड़ा, मोथा, शोंठ, चिरचिरा और अम्बष्ठाके काढ़ेको भावना दे सुखाकर चूर्ण करना। मात्रा ४ रत्ती बड़ीहर्र भिंगोये पानीमें देनेसे सबप्रकार का गुल्म आराम होता है, यह वातगुल्मका उत्कृष्ट औषध है।

बृहत् गुल्मकालानल रस।—अभरख भस्म, लोहाभस्म, पारा, गन्धक, सोहागा, कुटकी, बच, जवाक्षार, सज्जीखार, सैंधव, कूठ, त्रिकटु, देवदारू, तेजपत्ता, इलायची, दालचीनी, नागेश्वर, और खैर ; प्रत्येकका समभाग चूर्ण ; जयन्ती, चीता और धतूरेके पत्तेके रसकी भावना दे ; ४ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा सबेरे एक गोली पानी या दूधमें देनेसे पांच प्रकारका गुल्म, यकृत्, प्लीहा, उदर, कामला, पाण्डु, शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, अरुचि, ग्रहणी, तथा जीर्ण और विषम ज्वर आदि आराम होता है।

वृषणाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध १६ सेर ; त्रिकटु, त्रिफला, धनिया, विड़ङ्ग, चाभ और चीतामूलका एक सेर कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें देनेसे वातगुल्म आराम होता है।

नाराच घृत—घी एक सेर ; चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवड़ीमूल, कण्टकारी, सीजका दूध और विड़ङ्ग, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क और पानी ४ सेर यथाविधि औटाना। गरम पानी या जांगल मांसके रसमें सेवन करनेसे वातगुल्म और उदावर्त्त रोग आराम होता है।

त्रायमाणाद्य घृत।—घी एक सेर, त्रायमाणा ४ पल, पानी ४० पल शेष ८ पल ; आंवलेका रस एक सेर, दूध एक सेर और कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भुई आंवला, क्षीर-काकोली, जीवन्ती, लालचन्दन और नीलाकमल प्रत्येक दो दो

तोलेका कल्क यथारीति औटाना। इस घीके सेवन करनेसे पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग और कामला आदि पोड़ा दूर होती है।

———

हृद्रोग।

—:०:—

ककुभादि चूर्ण—अर्ज्जुन छाल, बच, रास्ना, बरियारा, गुलशकरी, हर्रा, शठी, कूठ, पीपल और शोंठ, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गायके घीके साथ सेवन करना।

कल्याणसुन्दर रस—रससिन्दूर, अभरख, चांदी, ताम्बा, सोनाभस्म और हिङ्गुल, प्रत्येक समभाग; एक दिन चीतामूलके रसके और ७ दिन हाथीशुंड़ाके रसकी भावना दे, एकरत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम दूधमें देनेसे हृदगत रोग आराम होता है।

चिन्तामणि रस—पारा, गन्धक, अभरख, लोहाभस्म, लौङ्ग और शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला, सोनाभस्म चार आने और चांदी भस्म आठ आनेभर एकत्र चीताका रस, भङ्गरैयाका रस और अर्ज्जुन छालके काढ़ेकी सात सातबार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। गोमूत्रके साथ देनेसे सब प्रकारके हृद्रोग और प्रमेह रोग आराम होता है।

हृदयार्णव रस—पारा, गन्धक और ताम्रभस्म प्रत्येक समभाग; एकत्र त्रिफलाका काढ़ा और काकमाचीके रसकी एक

एक दिन भावना दे चना बराबर गोली बनाना अर्ज्जुनछालका रस या काढ़ेमें यह सेवन करनेसे हृद्रोग शान्त होता है।

विश्वेश्वर रस—सोना, अभरख, लोहा, वङ्गभस्म, पारा, गंधक और वैक्रान्तभस्म प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र कपूरके पानीकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे हृदय और फुसफुसकी विविध पीड़ा शान्त होती है।

श्वदंष्ट्राद्य घृत।—घी ४ सेर, गोखुरू, खसकी जड़, मजीठ, बरियारा, गम्भारी की छाल, गंधतृण, कुशमूल, पिठवन, ऋषभक और सरिवन, प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, दूध १६ सेर कंवाच बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, सतावर, ऋद्धि, मुनक्का, चीनी, मुण्डरी और मृणाल सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाना (मात्रा आधा तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे यावतीय हृद्रोग), उरःक्षत, क्षय, क्षीण, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होता है।

अर्ज्जुन घृत—घी ४ सेर, अर्ज्जुन छाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; यह काढ़ा और अर्ज्जुन छालका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाकर सब प्रकारके हृद्रोगमें प्रयोग करना।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

——०:०:०— —

एलादि काढ़ा—इलायची, पीपल, मुलेठी, पत्थरचूर, रेणुका गोखुरू, अडुसा और एरण्डमूलके काढ़ेमें शिलाजीत और चीनी

मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी रोग आराम होता है।

वृहत् धात्र्यादि काढ़ा—आंवला, मुनक्का, बिदारीकन्द, मुलेठी, गोक्षुर, कुशमूल काली इक्षुमूल और हर्रांके काढ़ेमें आधा तोला चीनी मिलाकर पिलाना।

धात्र्यादि काढ़ा—आंवला, मुनक्का, बिदारीकन्द, मुलेठी और गोक्षुरका काढ़ा ठंढा होनेपर चीनी मिलाकर मूत्रकृच्छ्र आदि रोगमें सेवन कराना।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस—पारा, गन्धक और जवाक्षार एकत्र मिलाकर चीनी और मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र आराम होता है।

तारकेश्वर—पारा, गन्धक, लोहा, वङ्ग: अभरख भस्म, जवासा, जवाक्षार, गोक्षुर बीज और हर्रा समभाग, भतुवेका पानी, तृणपञ्चमूलका काढ़ा और गोक्षुर रसकी एक ऐक दफे भावना दे एकरत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान सहत और गुल्लरके बीज का चूर्ण एक आनाभर।

वरुणाद्य लौह।—वरुणछाल १६ तोले, आंवला १६ तोले, धवईका फूल ८ तोले, हर्रा ४ तोले, पिठवन २ तोले, लोहाभस्म २ तोले और अभरख भस्म २ तोले एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना। यह मूत्रदोष निवारक, बलकारक और पुष्टिकर है।

कुशावलेह।—कुश, काश, खस, काली ऊख और सरकण्ड प्रत्येककी जड़ १० पल, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर; इस काढ़ेमें २ सेर चीनी मिलाकर औटाना। गाढ़ा होजानेपर नीचे उतारकर मुलेठी, कंकड़ीकी बीज, कोहड़ेकी बीज, खीरेकी बीज,

वंशलोचन, आंवला, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, वरूणछाल, गुरिच और प्रियङ्गु; प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाकर हिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान पानीके साथ देनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात अश्मरी और प्रमेह आदि पीड़ा दूर होती है।

सुकुमार कुमारक घृत।—सफेद पुनर्नवा १२॥ सेर और दशमूल, शतावर, बरियारा, असगन्ध, तृणपञ्चमूल, गोक्षुर, सरिवन, गुलशकरी, गुरिच और सफेद बरियारा, प्रत्येक १० पल, एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना ३२ सेर पानी रहते उतार कर छान लेना, फिर इस काढ़ेमें ३ सेर ३ पाव गुड़ और रेंड़ीका तेल ४ सेर मिलाना तथा मुलेठी, अदरख, मुनक्का, सेंधानमक और पीपल प्रत्येक १६ तोलेका कल्क और अजवाईन आधा सेरके साथ ८ सेर घी यथाविधि औटाना। भोजनके पहिले आधा तोला मात्रा सेवन करना। इससे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, कटिस्तम्भ, मलकाठिन्य, लिङ्ग, पट्ठा और योनिशूल, गुल्म, वायु और रक्तदुष्टि जन्य पीड़ा आदि दूर हो बलवृद्धि और शरीर पुष्ट होता है।

त्रिकण्टकाद्य घृत।—घी ४ सेर, गोक्षुर दो सेर, एरण्डमूल दो सेर, तृणपञ्चमूल २ सेर, प्रत्येकको अलग अलग १६ सेर पानीमें औटाकर ४ सेर रखना। फिर सतावरका रस ४ सेर, भतुवेका रस ४ सेर और इक्षुरस ४ सेरके साथ औटाना। पाक शेष होनेपर गरम रहते ही छानकर उसमें दो सेर गुड़ मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध, इससे मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

चित्रकाद्य घृत।—घी १६ सेर, दूध १६ सेर, पानी ६४ सेर, चीतामूल, अनन्तमूल, बरियारा, तगरपादुका मुनक्का,

इन्द्रवारुणी, पीपल, चित्रफला, (गुलशकरी) मुलेठी और आंवला प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। तथा ठण्ढा होनेपर छान लेना। फिर इसके साथ चीनी दो सेर और बंशलोचन दो सेर मिलाना। यह घी आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रदोष, शुक्रदोष, योनिदोष और रक्तदोष दूर हो शुक्र और आयुकी वृद्धि होती है।

धान्यगोक्षुरका घृत—घी ४ सेर, धनिया और गोक्षुर चार चार सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; यह काढ़ा और गोक्षुर धनिया प्रत्येक आधा सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्राघातादि पीड़ामें प्रयोग करना।

विदारी घृत।—घी ४ सेर, बिदारीकन्द, अडूसा, जूही फूल, शर्व्वती नीबू, गन्धतृण, पाथरचूर, लताकस्तूरी, अकवन, अपामार्ग, चीतामूल, श्वेत पुनर्नवा, बच, रास्ना, बरियारा, गुलशकरी, कसेरू, मृणाल, सिङ्घाड़ा, भूईआंवला, सरिवन, गुलशकरी, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर और शर, इक्षु, दर्भ, कुश और काशकी जड़ प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेरमें औटाना शेष १६ सेर। तथा सतावरका रस ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, चीनी ६ पल, मुलेठी, पीपल, मुनक्का, गम्भारी, फालसा, इलायची, जवासा, रेणुका, केशर, नागेश्वर और जीवनीयगण प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना। यह मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, हृद्रोग, शुक्रदोष, योनिदोष, रजोदोष और क्षय आदि रोगोमें प्रयोग करना।

शिलोद्भिदादि तैल—तिलका तैल ४ सेर पुनर्नवा और सतावरका रस १६ सेर, पाथरचूर, एरण्डमूल और सरिवन मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाना, आधा तोला

मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पोनेसे मूत्रकृच्छ्रादि पोड़ा शान्त होती है।

उशीराद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, फल, पत्ता और मूल सह गोक्षुर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, खसकी जड़ १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, मट्ठा ४ सेर; तथा खसकी जड़, तगरपादुका, कूठ, मुलेठी, लालचन्दन, बहेड़ा, हर्रा, कण्टकारी, पद्मकाष्ठ, नीलाकमल, अनन्तमूल, बरियारा, असगन्ध, दशमूल, सतावर, बिदारीकन्द, काकोली, गुरिच, गुलशकरी, गोक्षुर, सोवा, सफेद बरियारा और सौंफ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें मर्द्दन करना।

अश्मरी।

—:*:—

शुण्ठ्यादि काढ़ा—शोंठ, गणियारी, पाथरचूर, सजनछाल, बरूणछाल, गोक्षुर, हर्रा और अमिलतासका फल, इन सबके काढ़ेमें हींग, जवाखार और सेंधानमक मिलाकर पोनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि पोड़ा आराम होता है।

वृहत् बरूणादि-वरूणछाल, शोंठ, गोक्षुर बीज, तालमूली, कुरथी और तृणपञ्चमूल, इन सबके काढ़ेमें चार आनेभर चोनी और चार आनेभर जवाक्षार मिलाकर पोनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, और वस्तिशूल आराम होता हैं।

पाषाणवज्र रस।—पारा एकभाग और गन्धक दो भाग श्वेतपुनर्नवाके रसमें एक दिन खलकर एक हांड़ीमें रखना, तथा दूसरी हांड़ी उपरसे ओंधोरख मिट्टीसे लेप करना, फिर एक गढ़ेमें हांड़ोको रख उपर कण्डेको आंच लगाना। पाक शेष होनेपर गुड़के साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान इन्द्रवारुणीके जड़का काढ़ा अथवा कुरथीका काढ़ा, अश्मरी और वस्तिशूल रोगमें प्रयोग करना।

पाषाणभिन्न।—पारा एक पल और शिलाजीत एक पल, एकत्र श्वेतपुनर्नवा, अडूसा और श्वेत अपराजिताके रसमें एक एक दिन खलकर सूख जानेपर एक भाण्डमें रख मुह बन्द करना। दूसरी हांड़ीमें पानी देकर बीचमें वह भाण्ड लटकाकर आगपर रखना। फिर निकालकर भूंईआवलेका फल, इन्द्रवारुणीको जड़ और दूधके साथ एक एकबार खलकर २ रत्ती बराबर गोली दूध अथवा कुरथीके काढ़ेमें देना।

त्रिविक्रम रस।—शोधित ताम्बा और बकरीका दूध समभाग लेकर एकत्र औटाना, दूध निःशेष होजानेपर ताम्बेके बराबर पारा और गन्धक की कज्जली मिलाना, फिर निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक दिन खलकर गोला बनाना तथा इस गोलेको एक पहर वालुका यन्त्रमें पाक करना। २ रत्ती मात्रा शर्व्वती नीबूकी जड़का रस या पानीके अनुपानमें सेवन करनेसे अश्मरी शर्करा रोग दूर होता है।

कुलत्थाद्य घृत।—घी ४ सेर, वरुणछाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा और कुरथी, सेंधानमक, बिड़ङ्ग, चीनी हरसिंघार का पत्ता, जवाखार, कोहड़ेकी बीज और गोखुर,

प्रत्येक एक पलका कल्क, यथाविधि औटाना, मात्रा एक तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात दूर होता है ।

वरुणाघृत । – घी ४ सेर, कुटाहुआ वरुणछाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, वरुणके जड़की छाल, केलेकी जड़, बेलकी छाल, पञ्चतृणमूल, गुरिच, शिलाजीत, कंकड़ी की बीज, बांसकी जड़, तिलके लकड़ीका खार, पलाशका खार और जूहीकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा दूर होता है ।

वरुणाद्य तैल—वरुणकी छाल, पत्ता, फुल और मूलका काढ़ा तथा गोखुरका काढ़ा ये दो काढ़ेमें यथाविधि तैल पाक कर बस्ति और व्रतस्थानमें मालिश करनेसे अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ।

प्रमेहरोग ।

—:०:—

एलादि चूर्ण—बड़ी ईलायची, शिलाजीत, पीपल और पत्थरचूर, इन सबका समभाग चूर्ण आधा तोला मात्रा चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रमेह जल्दी शान्त होता है ।

मेहकुलान्तक रस ।—वङ्ग, अभरख भस्म, पारा, गन्धक, चिरायता, पीपलामूल त्रिकटु, त्रिफला, तेवड़ी, रसवत, विड़ङ्ग;

मोथा, बेलकी गिरी, गोक्षुर बीज और अनारको बीज प्रत्येक एक एक तोला, शिलाजीत ८ तोले, एकत्र जङ्गली ककड़ीके रसमें मर्द्दनकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। बकरीका दूध, आंवलेका रस और कुरथीका काढ़ा आदि अनुपानमें देनेसे प्रमेह मूत्रकृच्छ्रादि रोग शान्त होता है।

मेहमुद्गर वटिका।—रसाञ्जन, कालानमक, देवदारु, बेलकी गिरी, गोक्षुर बीज, अनार, चिरायता, पीपलामूल, गोक्षुर, त्रिफला और तेवड़ीकी जड़, प्रत्येक एक एक तोला, लौहभस्म ११ तोले और शोधित गुग्गुलु ८ तोले, एकत्र घीके साथ खलकर दो आनेभरकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या पानी। इससे प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और अश्मरी आदि रोग आराम होता है।

वङ्गेश्वर—रससिन्दूर और वङ्गभस्म समभाग पानीमें खलकर दो मासेकी गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके प्रमेह रोगमें प्रयोग करना।

वृहत् वङ्गेश्वर—वङ्ग, पारा, गन्धक, रौप्यभस्म, कपूर और अभरख भस्म प्रत्येक दो दो तोले, सोना और मोती भस्म प्रत्येक आधा तोला, एकत्र कसेरूके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानसे साथ प्रयोग करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और सोमरोग आदि पीड़ा दूर होती है।

सोमनाथ रस।—पालिधा रसमें शोधा हुआ हिङ्गुलोत्थ पारा २ तोले और चुहाकानीके पत्तेके रसमें सोधा हुआ गन्धक दो तोलेकी कज्जली बना, उसके साथ ८ तोले लोहाभस्म मिलाकर घिकुआरके रसमें खल करना। फिर उसमें अभरख, वङ्ग, रौप्य, खर्पर, स्वर्णमाक्षिक और स्वर्णभस्म प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर घिकुआर और खुलकुड़ीके रसको भावना दे २ रत्ती बराबर गोली

बनाकर उपयुक्त अनुपानके साथ प्रमेह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और बहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना।

इन्द्रवटी—रससिन्दूर, वङ्ग और अर्जुनछाल प्रत्येक समभाग; एकत्र सेमरके मुसलीके रसमें एक दिन खलकर मासेभरकी गोली बनाना। सहत और सेमरके मुसलीके चूर्णके साथ सेवन करनेसे प्रमेह और मधुमेह दूर होता है।

स्वर्णवङ्ग।—पारा, नौसादर और गन्धक प्रत्येक समभाग। पहिले बङ्ग आगपर गलाना फिर उसमें पारा देना, दोनो मिल जानेपर नौसादर और गन्धक का चूर्ण मिलाकर खल करना। फिर एक कांचकी शीशीमें भरकर शीशीको कपड़ मिट्टीकर सुखा लेना, तथा मकरध्वजकी तरह वालुका यन्त्रमें पाक करना। स्वर्ण-कणाकी तरह उज्वल पदार्थ तयार होनेसे उसे स्वर्णवङ्ग जानना। उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, शुक्रतारल्य आदि पीड़ा दूर हो बलवर्ण की वृद्धि होता है।

वसन्तकुसुमाकर रस।—सोनाभस्म २ भाग, चांदीभस्म २ भाग, वङ्ग, सीसा और लोहाभस्म प्रत्येक तीन तीनभाग; अभरख, प्रवाल और मोतीभस्म प्रत्येक चार चार भाग, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर यथाक्रम गायका दूध, ऊखका रस, अड़ूसेकी छालका रस, लाहका काढ़ा, बालाका काढ़ा, केलेके जड़का रस, केलेके फूलका रस, कमलका रस, मालतीफूलका रस, केशर का पानी और कस्तूरी, इन सब द्रव्योंकी अलग अलग भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान घी, चीनी और सहत। यह पुराने प्रमेहकी दवा है। चीनी और घिसा चन्दनके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्तादि रोगभी शान्त होता है।

प्रमेहमिहिर तैल।—तिल तैल ४ सेर, लाह ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, सतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर,

दहोका पानो १६ सेर ; सोवा, देवदारु, मोथा, हल्दो, दारुहलदो, मूर्व्वामूल, कूठ, अश्वगन्ध, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, रेणुका, कुटको मुलेठो, रास्ना, दालचीनो, इलायचो, बभनेठो, चाभ, धनिया, इन्द्रयव, करञ्ज बोज, अगरु, तेजपत्ता, त्रिफला, नालुका, बाला बरियार, गुलशकरो, मजीठ, सरलकाष्ठ, लोध, सौंफ, बच, जोरा, खसको जड़, जायफल, अडूसेको छाल और तगरपादुका, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि पाककर प्रमेह, विषम ज्वर और दाह आदि विविध पोड़ामें मर्द्दनार्थ प्रयोग करना।

———

सोमरोग।

—०:०:०—

तारकेश्वर रस—रससिन्दूर, लोहा, बङ्ग और अभरखभस्म, प्रत्येक समभाग सहतके साथ एकदिन खलकर मासेभरको गोली बनाना। सहत और गुल्लरके बीजका चूर्ण एक आनेभर मिलाकर सेवन करनेसे बहुमूत्र रोग आराम होता है।

हेमनाथ रस—पारा, गन्धक, सोना और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक एक एक तोला, लोहाभस्म, कपूर, प्रबाल और बंगभस्म प्रत्येक आधा तोला, एकत्र अफीमके काढ़ेको, केलेके फुलके रसको और गुल्लरके रसको सात सातबार भावना दे ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे बहुमूत्र रोग आराम होता है।

वृहत् धात्री घृत।—घी ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर अभावमें २ सेर आंवला १६ सेर पानीमें औटाना ४ सेर पानी रहते उतार कर वही काढ़ा लेना। बिदारीकन्दका रस ४ सेर,

सतावरका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, तृणपञ्चमूलका काढ़ा ४ सेर, तथा बड़ो इलायचो, लौंग, त्रिफला, कयेथ, बाला, सरलकाष्ठ, जटामांसो, केलेका जड़ और कमलको जड़, सब मिलाकर १ सेरका कल्क यथाविधि औटाना, तथा छानकर मुलेठो, तेवड़ी, जवाखार और बिधारेको जड़, प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल और चोनो ८ पल उसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर ८ पल सहत मिलाना। आधा तोलासे एक तोलातक मात्रा यह घो सेवन करनेसे, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और तृष्णा, दाह आदि शान्त होतो है।

कदल्यादि घृत।—घो ४ सेर, केलेका फूल १२॥ सेर केलेके जड़का रस ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा, तथा लालचन्दन, सरलकाष्ठ, जटामांसो, कदलोमूल, वड़ो इलायचो, लौंग, हर्रा, आंवला, बहेड़ा, नोलोत्पल को जड़, सिंघाड़ेको जड़, बड़, पीपर, गूलर, पाकड़, पियाल, वयसा, आम, जामुन, बैर, मोलसरीका फूल, महुआ, लोध, अर्जुन, कुन्द, कुटको, कदम्ब, शिरीष और पलास प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे बहुमूत्रादि यावतीय मूत्रदोष दूर होता है।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

—०:०:०—

शुक्रमातृका वटी। गोक्षुरबीज, त्रिफला, तेजपत्ता, इलायचो, रसवत, धनिया, चाभ, जोरा, तालोशपत्र, सोहागा और अनार को बीज, प्रत्येक ३ तोले, गग्गुलु २ तोले, पारा, गन्धक, अभरख और लोहाभस्म प्रत्येक ८ तोले, एकत्र अनारके

रसमें खलकर २ रत्ती मात्रा अनारका रस, बकरीका दूध या पानीके अनुपान में सेवन करनेसे शुक्रस्राव, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

चन्द्रोदय मकरध्वज।—जायफल, लौंग, कपूर और गोलमिरच प्रत्येक एक तोला, सोना भस्म दो आनेभर, कस्तुरी दो आनेभर, रससिन्दूर ४।० तोले ; एकत्र खलकर ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। मक्खन मिश्री या पानका रस आदि अनुपानके साथ यह औषध सेवन करनेसे विविध पीड़ा शान्त हो बलवीर्य्य और अग्निकी वृद्धि होती है।

पूर्णचन्द्र रस।—पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, लोहा ८ तोले, अभरख ८ तोले, चांदी २ तोले, वङ्ग ४ तोले, सोना, ताम्बा और कांसा प्रत्येक भस्म एक एक तोला ; जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियंगु और मोथा प्रत्येक दो दो तोले, यह सब द्रव्य एकत्र घिकुआरके रससे खलकर त्रिफलाका काढ़ा और एरण्डमूलके रसकी भावना देना, फिर एरण्डके पत्तेमें लपेटकर धान्यराशि में तीन दिन रखना। तीन दिन बाद चने बराबर गोली बनाना। पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल और आयु बढ़ता है, तथा प्रमेह, वहुमूत्र, ध्वजभंग, अग्निमान्द्य, आमवात, अजीर्ण, ग्रहणी, अम्लपित्त, अरूचि, जीर्णज्वर, हृत्शूल और विविध वायुविकार आराम होता है।

महालक्ष्मीविलास रस।—अबरख भस्म ८ तोले, पारा ४ तोले, गंधक ४ तोले, वंग २ तोले, रौप्य १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, ताम्र आधातोला, कपूर ४ तोले, जावित्री, जायफल, विधारेकी बीज और धतुरेकी बीज, प्रत्येक दो दो तोले तथा सोना भस्म एक तोला, एकत्र पानके रसमें मर्द्दनकर २ रत्ती बराबरकी

गोली बनाना। पानका रस अथवा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, शुक्रक्षय, लिंगशैथिल्य, सन्निपात ज्वर और यावतीय शुक्रज व्याधि निराकृत होती है। मुमूर्षु अवस्थामें जब शरीर शीतल हो जाता है, उस वक्त इस औषध से उपकार होता है।

अष्टावक्र रस।—पारा एक तोला, गंधक २ तोले, सोना भस्म एक तोला, रौप्य आधा तोला, सीसा, ताम्बा, खर्पर और वंग प्रत्येक भस्म चार आनेभर, यह सब द्रव्य एकत्र बटांकुरके रसमें एकपहर, घिकुआरके रसमें एक पहर खलकर मकरध्वजकी तरह पाक करना। पाकशेष होनेपर अनारके फूलकी तरह रंग होता है। २ रत्ती मात्रा पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल, पुष्टि, मेधा और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा बलिपलित आदि रोग दूर होता है।

मन्मथाभ्र रस।—पारा, गन्धक और अबरख भस्म प्रत्येक ४ तोले, कपूर और वङ्ग प्रत्येक एक एक तोला, ताम्बा आधा तोला, लोहा २ तोले और विधारेकी बीज, जीरा, बिदारीकन्द, सतावर, तालमाखाना, वरियारा, कवाच, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांगको बीज, सफेद राल, और अजवाईन प्रत्येक आधा तोला, एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग आराम होता है।

मकरध्वज रस।—शोधित सोनेका पतला पत्तर एक पल, पारा ८ पल और गन्धक २४ पल, ऐकत्र लालरंगके कपास फूलके रससे और घिकुआरके रसमें खलकर मकरध्वजकी तरह फूंकना। फिर वही मकरध्वज एक तोला कपूर, लौंग, मिरच और जायफल प्रत्येक ४ तोले, कस्तूरी ६ मासे एकत्र खलकर २

रत्ती मात्रा पानके रसमें सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग दूर होता है।

अमृतप्राश घृत।—घी ४ सेर, छागमांस १२॥ सेर और अश्वगन्ध १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रहते छान लेना। बकरीका दूध १६ सेर; बरियारेकी जड़, गोधूम, अश्वगन्ध, गुरिच, गोत्तुर, कसेरू, त्रिकटु, धनिया, तालाङ्कुर, त्रिफला, कस्तूरी, कंवाच बीज, मेद महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, मजीठ, तगरपादुका, तालीशपत्र, इलायची, तेजपत्ता, दालचीनी, नागेश्वर, जातीपुष्प, रेणुका, सरलकाष्ठ, जावित्री, छोटी इलायची, नीलाकमल, अनन्तमूल, जीवन्ती ऋद्धि, वृद्धि और गुल्लर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, तथा मूर्च्छाके लिये केशर ४ तोले, यथाविधि औटाकर छान लेना फिर एक सेर चीनी मिलाना। आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्ग, शुक्रहीनता, आर्त्तवहीनता और चीण रोगादि नाश होता है।

वृहत् अश्वगन्धा घृत।—घी ४ सेर, अश्वगन्ध १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६; छागमांस २५ सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, दूध १२ सेर; तथा काकोली, चीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, कंवाच की बीज, इलायची, मुलेठी, मुनक्का, मासोनी, माषोनी, जीवन्ती, पीपल, बरियारा, सतावर और बिदारीकन्द सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथा-बिधि औटाना पाकशेष होनेके थोड़ी देर पहिले कल्कद्रव्य छानकर फिर औटाना। पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर आधा सेर चीनी और आधा सेर मधु मिलाना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे उक्त रोग सब आराम होता है।

कामेश्वर मोदक।—कूठ, गुरिच, मेथी, मोचरस, बिदारीकन्द, तालमूली, गोक्षुर, तालमखाना, सतावर, कसेरू, अजवाईन, धनिया, मुलेठी, गुलशकरी, तिल, सौंफ, जायफल, सैन्धव, बारंगी, कांकड़ाशिंगी, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, पुनर्नवा, गजपीपल, सुनक्का, शठी, कायफल, सेमरकी जड़, त्रिफला और कंवाच की बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण; समष्टीका चौथा हिस्सा अभ्रभस्म तथा समष्टीके दोभागका एकभाग भांगका चूर्ण, समष्टीके आठभाग का एकभाग गन्धक और सब समष्टीकी दूनी चीनी; यह सब द्रव्य उपयुक्त घी और सहतमें मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोलासे २ तोलेतक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्य वृद्धि और वीर्य्यस्तम्भ होता है।

कामाग्निसन्दीपन मोदक।—पारा, गन्धक, अभरख भस्म, जवाक्षार, सज्जीक्षार, चीतामूल, पञ्चलवण, शठी, अजवाइन, अजमोदा, वायविड़ङ्ग और तालीशपत्र प्रत्येक दो दो तोले; दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग और जायफल प्रत्येक ४ तोले; बिधारेकी बीज और त्रिकटु प्रत्येक ६ तोले, धनिया, अकरन, मुलेठी, सौंफ और कसेरू प्रत्येक ८ तोले, सतावर, बिदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण, पलाशकी छाल, गुलशकरी, कंवाचकी बीज और गोक्षुर बीज प्रत्येक १० तोले; समष्टीके बराबर सबीज भांगका चूर्ण, तथा सर्व समष्टीके बराबर चीनी; उपयुक्त घी और सहत तथा २ तोले कपूर मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा चार आनेभरसे १ तोलातक गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अपरिमित शुक्र और मैथुनशक्ति वृद्धि होती है तथा मेह, ग्रहणी, कास, अम्लपित्त, शूल, पार्श्वशूल, अग्निमान्द्य और पीनस आदि रोग नाश होता है।

मदनमोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, कूठ, सैन्धव, धनिया, शठी, तालीशपत्र, कायफल, नागेश्वर, मेथी, थोड़ा भूना हुआ सफेद और कालाजीरा प्रत्येक समभाग है; सबके बराबर घीमें भूनी सबीज भांगका चूर्ण, सर्व्व समष्टीके बराबर चीनी एकत्र उपयुक्त घी और सहतमें मिलाना, फिर उसमें थोड़ी दालचीनी, तेजपत्ता, ईलायची और कपूर मिलाकर सुगन्धित करना। यह मोदक चार आनेभरसे १ तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्तिकी वृद्धि तथा कास, शूल, संग्रहणी और वातश्लेष्मज पीड़ा शान्त होता हैं।

श्रीमदनानन्द मोदक।—पारा, गन्धक, लोहाभस्म, प्रत्येक एक एक तोला, अभरख भस्म ३ तोले, कपूर, सैंधव, जटामांसी, आंवला, इलायची, शोंठ, पीपल, मिरच, जावित्री, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलेठी, बच, कूठ, हल्दी, देवदारू, हिजल बीज, सोहागा, बारंगी, नागेश्वर, कांकड़ाशिंगी, तालीशपत्र, मुनक्का, चीतामूल, दन्तीबीज, बरियारा, गुलशकरी, दालचीनी, धनिया, गजपीपल, शठी, बाला, मोथा, गन्धाली, बिदारीकन्द, सतावर, अकवनकी जड़, कंवाच बीज, गोत्तुर बीज, बिधारेको बीज और भांगकी बीज प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, यह सब चूर्ण सतावरके रसमें खलकर सुखा लेना, फिर सब चूर्णके चार भागका एकभाग सेमरके मुसरीका चूर्ण, सेमरके मुसरीका चूर्ण मिले हुए सब चूर्णका आधा भांगका चूर्ण तथा सब चूर्णकी दूनी चीनी। पहिले उपयुक्त बकरीका दूधमें चीनी मिलाकर औटाना आसन्न पाकमें समस्त चूर्ण मिलाना। पाकशेष होनेपर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, कपूर, सैंधव और त्रिकटु चूर्ण थोड़ा थोड़ा मिलाना। ठण्ढा होनेपर थोड़ा घी और सहत मिला

रखना। मात्रा चार आनेभरसे आधा तोलातक दूधके साथ। इससे शुक्र और रतिशक्ति वृद्धि हो सूतिका, अग्निमान्द्य और कास आदि विविध रोग आराम होते है।

रतिवल्लभ मोदक।—चीनी दो सेर, सतावरका रस ४ सेर, भांगका काढ़ा ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, घी आधा सेर, भांगका चूर्ण ५ पल, आंवला, जीरा, काला जीरा, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कंवाच बीज, गुलशकरी, तालके गुठलीका अङ्कुर, कसेरू, सिङ्गाड़ा, त्रिकटु, धनिया, अबरखभस्म, वङ्गभस्म, हर्रा, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, पिण्ड-खजूर, तालमखाना, कुटकी, मुलेठी, कूठ, लौंग, सैंधव, अजवाइन, अजमोदा, जीवन्ती और गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोले एकत्र औटाना। पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर सहत दो पल, थोड़ी कस्तुरी और कपूर मिलाकर मोदक तयार करना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे पूर्व्वोक्त उपकार होता है।

नागवल्ल्यादि चूर्ण—पानकी जड़, बरियारकी जड़, मूर्व्वामूल, जावित्री, जायफल, मुरामांसी, चिरचिड़ीकी जड़, काकोली, क्षीर-काकोली, कक्कोल, खसकी जड़, मुलेठी और बच, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सोनेके आधा घण्टा पहिले दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ होता है।

अर्ज्जकादि बटिका।—बनतुलसीकी जड़, चोरकञ्जकी जड़, निर्गुण्डीकी जड़, कसेरू की जड़, जायफल, लौंग, विड़ङ्ग, गज-पीपल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, अनन्त-मूल, तालमूली, सतावर, बिदारीकन्द और गोक्षुर बीज, यह सब द्रव्य समभाग बबूलके गोंदमें खलकर एक मासा बराबर गोली

बनाना। दूध अथवा सुरामण्ड अनुपानके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और शुक्रवृद्धि होता हैं।

शुक्रवल्लभ रस—पारा, गन्धक, लोहा, अवरख, चांदी, सोना, और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक आधा तोला, भांगके बीज का चूर्ण ८ तोले; एकत्र भांगके काढ़ेमें खलकर एक मासे बराबर गोली बनाना। अनुपान दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और रति-शक्ति वृद्धि होती है।

कामिनीविद्रावन रस—अकरकरा, शोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोले; हिंगुल और गन्धक प्रत्येक आधा तोला और अफीम ८ तोले; एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। सोनेके पहिले आधपाव दूधके साथ एक गोली सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और रतिशक्ति बढ़ती है।

पल्लवसार तैल।—तिलका तैल, त्रिफलाका काढ़ा, लाहका काढ़ा, भंगरैया का रस, सतावरका रस, भतुवेका पानी, दूध और कांजी प्रत्येक ४ सेर। पीपल, हर्रा, मुनक्का, त्रिफला, नीलाकमल, मुलेठी, चीरकाकोली प्रत्येक एक एक पल का कल्क यथाविधि औटाकर कपूर, नखी, कस्तुरी, गन्धाबिरोजा, जावित्री और लौंग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाना। यह वायु और पित्तजनित विविध रोग और शूल, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा ग्रहणी रोग नाशक है।

श्रीगोपाल तैल।—तिलका तैल १६ सेर, सतावर का रस, भतुवेका पानी और आंवलेका रस या काढ़ा प्रत्येक १६ सेर, असगन्ध, कटसरैया और बरियारा प्रत्येक १०० पलका कल्क, अलग अलग ६४ सेर पानीमे औटाकर १६ सेर रखना। वृहत्

पञ्चमूल, कण्टकारी, मूर्व्वामूल केवड़ेकी जड़, नाटाकरञ्ज की जड़ और पालिधा छाल प्रत्येक १० पल एकत्र ६४ सेर पानी शेष १६ सेर। असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्मकाष्ठ, कण्टकारी, बरियारा, अगरु, मोथा, गन्धतृण, शिलारस, लालचन्दन, सफेद चन्दन, त्रिफला, मूर्व्वामूल, जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली चीरकाकोली, मागोनी, माषोनी, जीवन्ती, मुलेठी, त्रिकटु, केसर, खटासी, कस्तुरी, दालचीनी तेजपत्ता. इलायची, नागेश्वर, शैलज, नखी, नागरमोथा, मृणाल, नीलाकमल, खसकी जड़, जटामांसी, देवदारू, बच, अनारका बीज, धनिया, ऋद्धि, वृद्धि, दौना और छोटी इलायची, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। यह तेल मालिश करनेसे यावतीय वायुरोग. प्रमेह, शूल और ध्वजभङ्ग आराम होता है।

मेदोरोग ।

—:०:—

अमृतादि गुग्गुलु—गुरिच एकभाग, छोटी इलायची दो भाग, विड़ङ्ग ३ भाग, कुरैया ४ भाग, इन्द्रयव ५ भाग, हर्रा ६ भाग, आंवला ७ भाग और शोधित गुग्गुलु ८ भाग, एकत्र सहतके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग और भगन्दरादि पीड़ा शान्त होती है।

नवकगुग्गुलु—त्रिकटु, चीतामूल, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग सम-भाग और सबके बराबर शोधित गुग्गुलु एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग, श्लेष्मादोष और आमवात आराम होता है।

च्यूषणादि लौह—त्रिकटु, भांग, चाभ, चीतामूल, काला नमक, औद्भिद् लवण, सोमराजी, सैन्धव और सौवर्च्चल नमक प्रत्येक समभाग और समष्टीके बराबर लौहभस्म एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा घी और सहतके साथ सेवन करनेसे मेदोरोग और प्रमेह आदि पीड़ा शान्त होती है।

त्रिफलाद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर; सुरसादिगण का काढ़ा १६ सेर; त्रिफला, अतीस, मूर्व्वामूल, त्रिवृत, चीतामूल, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, अमिलतासका गूदा, बच, छातिम छाल, हलदी, दारुहलदी, गुरिच, निर्गुण्डी, पीपल, कूठ, सरसों और शोंठ सब मिलाकर एक सेर का कल्क यथाविधि औटाकर पान अभ्यङ्ग, नस्य और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करनेसे शरीर की स्थूलता और कंडू आदि पीड़ा दूर होता है।

उदररोग।

—:०:—

पुनर्नवादि क्काथ—पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, परवर का पत्ता, हर्रा, नीमकी छाल, मोथा, शोंठ और गुरिच; इस काढ़ेमें गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे उदर रोग, शोथ, कास, श्वास, शूल और पांडुरोग आराम होता है।

सामुद्राद्य चूर्ण—कटैला, सौवर्च्चल, सैन्धवलवण, जवाक्षार, अजवाईन, अजमोदा, पीपल, चीतामूल, शोंठ, हींग और काला नमक प्रत्येक समभाग; घी मिलाकर चार आनेभर मात्रा भोजन

के पहिले ग्रासमें मिलाकर खानेसे वातोदर, गुल्म, अजीर्ण और ग्रहणी आराम होता है।

नारायण चूर्ण।—अजवाईन, हौवेर, धनिया, त्रिफला, कालाजीरा, सौंफ, पीपलामूल, अजमोदा, शठी, बच, सोवा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीतामूल, जवाखार, सज्जीक्षार, पुष्करमूल, कूठ, पांचो-नमक और बायबिड़ङ्ग प्रत्येक एक एक भाग, तेवड़ी २ भाग, दन्ती-मूल ३ भाग, इन्द्रायण दो भाग, चर्म्मकषा ४ भाग एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करनेसे उदररोग, बेरके काढ़ेसे गुल्म रोग, मलभेदमें दहीके पानीके साथ, अर्शरोग में अनारके रसमें, उदर और मलद्वारके दर्दमें थैकल भिंगोये पानीके साथ तथा अजीर्ण अनाह आदि रोगमें गरम पानीके साथ सेवन करना।

इच्छाभेदी रस—शोंठ, गोलमिरच, पारा, गंधक और सोहागा प्रत्येक एक एक तोला, जयपाल ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान चीनीका शर्ब्बत। जय चुल्लू, चीनीका शर्ब्बत पिलाया जायगा उतनही सार दस्त होगा। पथ्य दहीका मट्ठा और भात।

नाराच रस—पारा, सोहागा, और गोलमिरच, प्रत्येक एक एक तोला, गन्धक, पोपल और शोंठ प्रत्येक दो दो तोले, जय-पाल बीज ८ तोले, एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। चावल भिंगोये पानीके साथ देनेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

पिप्पलाद्य लौह—पिपलामूल, चीतामूल, अभ्रक भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद, कपूर और सैन्धव प्रत्येक समभाग; और सबके बराबर लौह भस्म एकत्र पानीमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके उदर रोगमें प्रयोग करना।

शोथोदरारि लौह—पुनर्नवा, गुरिच, चीतामूल, गुलशकरी, माणकन्द, सैजनकी जड़, हुड़हुड़की जड़ और अकवनकी जड़ प्रत्येक एक एक सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; इस काढ़ेमें लौहभस्म एक सेर, अकवनका दूध एक पाव, सेहुंड़का दूध आध सेर, गुग्गुलु एक पाव और पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले की कज्जली मिलाकर औटाना। पाकशेष होनेपर जयपाल बीज, ताम्रभस्म, अभ्रभस्म कंकुष्ठ भस्म, चीतामूल, जंगली सूरण, शरपुंखा, पलाशबीज, खीरुई, तालमूली, त्रिफला, विड़ङ्ग, तेवड़ीमूल, दन्तीमूल, हुड़हुड़ गुलशकरीकी जड़, पुनर्नवा, हड़जोड़, इन सबका चूर्ण एक सेर मिलाना। रोग और रोगीकी अवस्थानुसार मात्रा और अनुपान विचारकर प्रयोग करनेसे शोथ, उदर, पाण्डु, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर और गुल्म आराम रोग नाश होता है।

महाविन्दु घृत—घी दो सेर, सेहुंड़का दूध २ पल, कम्पिल्लक १ पल, सैन्धव ४ तोले, तेवड़ी १ पल, आंवलेका रस आधा सेर और पानी ४ सेर; यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

चित्रक घृत—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, गोमूत्र ८ सेर; चीतामूल ८ तोले और जवाखार ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे उदररोग नाश होता है।

रसोन तैल।—तेल ४ सेर, लहसन १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती, हींग, सेंधानमक, चीतामूल, देवदारु, बच, कूठ, लालसैजन, पुनर्नवा, सौवर्च्चल नमक, विड़ङ्ग, अजवाईन और गजपीपल प्रत्येक एक एक पल, तेवड़ीमूल ६ पलका कल्क, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा

सेवन करनेसे सब प्रकार उदर रोग, पार्श्वशूल, वायुका दर्द, क्रिमि, अन्त्रवृद्धि, उदावर्त्त और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग शान्त होता है।

शोथरोग।

—:०○:०—

पथ्यादि काढ़ा—हरीतकी, हल्दी, बारंगी, गुरिच, चीतामूल, दारुहल्दी, पुनर्नवा देवदारु और शोंठका काढ़ा पीनेसे सर्व्वाङ्गगत शोथ नष्ट होता है।

पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, शोंठ, कुटकी, गुरिच, दारुहल्दी और हरीतकी, इन सबका काढ़ा पीनेसे सर्व्वाङ्गिक शोथ, उदररोग, पार्श्वशूल, श्वास और पाण्डुरोग शान्त होता है।

सिंहास्यादि काढ़ा—अड़ूसेकी छाल, गुरिच और कण्टकारी इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे शोथ, श्वास, कास, ज्वर और वमन दूर होता है।

शोथारि चूर्ण—सूखी मूली, चिरचिरा, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विड़ंग, चीतामूल और मोथा, प्रत्येक समभाग ; चार आनेभर मात्रा बेलके पत्तेके रसमें सेवन करनेसे शोथ और पांडु रोग आराम होता है।

शोथारि मण्डूर।—सातबार गोमूत्रमें शोधा हुआ मण्डूर ७ पलको निर्गुण्डी, माणकन्द, आदरख और जंगली सूरणके रसके तीन तीनवार भावना दे, ७ सेर गोमूत्रमें औटाना, गाढ़ा

होनेपर त्रिफला, त्रिकटु और चाभ प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर उतार लेना। ठगढा होनेपर १६ तोले सहत मिलाना। उपर्युक्त मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे सर्व्वदोषज और सर्व्वांगगत शोथ दूर होता है।

कंस हरीतकी।—मिलित दशमूल ८ सेर। पोटलीसे बंधा हुआ हर्रा १००, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढ़ा छानकर १२॥ सेर गुड़ मिलाकर छान लेना फिर १०० हर्रा इसमें औटाना। गाढ़ा होनेपर त्रिकटु, जवाखार, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठगढा होनेपर २ सेर सहत मिलाना। मात्रा एक हर्रा और एक तोला अवलेह गरम पानीके साथ सेवन करनेसे शोथ, उदर, प्लीहा, गुल्म और श्वास आदि रोग शान्त होता है।

त्रिकट्वादि लौह—त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विड़ंग, कुटकी, चीतामूल, देवदारु, तेवड़ी और गजपीपल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण, समष्टीका दूना लौहभस्म; एकत्र दूधमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दूधके अनुपानमें देनेसे शोथ विनष्ट होता है।

शोथकालानल रस—चीतामूल, इन्द्रयव, गजपीपल, सैंधव, पीपल, लौंग, जायफल, सोहागा, लौहभस्म, अभरख भस्म और पारा गंधक प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान तालमखानेके जड़का रस, इससे ज्वर, कास, श्वास, शोथ, प्लीहा और प्रमेहरोग आराम होता है।

पञ्चामृत रस।—पारा एक तोला, गंधक एक तोला, सोहागेका लावा २ तोले, मीठाविष ३ तोले और मिरच ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर गोमूत्र, कसेरूका रस, सफेद पुनर्नवाका रस, भीमराजका रस, निर्गुण्डीका रसकी यथाक्रम १४ बार भावना

दे ४ मासे मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करनेसे शोथ, जलोदर, शिरःशूल, पीनस, ज्वरातिसार संयुक्त शोथ, गलग्रह और विविध श्लैष्मिक रोग शान्त होता है।

दुग्धवटी।—मीठाविष १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लौहभस्म पांच रत्ती और अभरख भस्म ६० रत्ती एकत्र दूधके साथ खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान दूध। पथ्य—दूधभात। इससे शोथ, ग्रहणी, अग्निमान्द्य और विषम ज्वर आराम होता है। रोग आराम न होनेतक नमक खाना बन्द रखना।

तक्रमण्डुर।—भांगका चूर्ण ४ तोले, लौहचूर्ण ४ तोले, बांसकी जड़, कृष्णागुरु, नीमकी छाल, विजताड़ककी जड़ और समुद्रफेन प्रत्येक दो दो तोले; तेजपत्ता, लौंग, इलायची, सोवा, सौंफ, मिरच, गुरिच, मुलेठी, जायफल, शोंठ और सेंधानमक, प्रत्येक एक एक तोला; सब एकत्र कर श्वेत पुनर्नवाके रसकी भावना दे बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। केशुरियाका रस या मट्ठेके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ आराम होता है। पथ्य—मट्ठा और भात। नमक और पानी बन्द रखना।

सुधानिधि रस।—धनिया, बाला, मोथा, शोंठ और सैंधव प्रत्येक एक एक तोला, मण्डूर १० तोले, एकत्र मर्द्दनकर गोमूत्र, केशुरियाका रस, श्वेतपुनर्नवाका रस, भीमराजका रस, निर्गुण्डीका रस और खुलकुड़ीके रसमें यथाक्रम १४ बार भावना देना। मात्रा ४ मासे, मट्ठा या केशुरियाके रसके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ, ग्रहणी, पांडु, कामला, ज्वर और अग्निमान्द्य दूर होता है। पथ्य—मट्ठा और भात। नमक और पानी मना है। प्यास लगेतो मट्ठा पीना।

चित्रकाद्य घृत।—घी ४ सेर, चीतामूल, धनिया, अजवाईन, अम्बष्ठा, जीरा, त्रिकटु, थैकल बेलकी गिरी, अनारके

फलकी छाल, जवाखार, पीपलामूल और चाभ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी १६ सेर ; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शोथ, गुल्म, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग दूर होता हैं।

पुनर्नवादि तैल।—तिलका तेल ४ सेर पुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर ; त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, पद्मकाष्ठ, रेणुका, कूठ, पुनर्नवा, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, लोध, तेजपत्ता, नागेश्वर, बच, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोवा, बाला, मजीठ, रास्ना और जवासा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क ; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे शोथ, पाण्डु, कामला, हलीमक, प्लीहा और उदर आदि रोग शान्त होता है।

वृहत् शुष्कमूलाद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, सूखी मूलीका काढ़ा ४ सेर, सैजनकी छाल, धतूरेका पत्ता, पालिधाकी छाल, निर्गुण्डी, करञ्ज और वरूणछाल प्रत्येकका रस ४ सेर दशमूलका काढ़ा ४ सेर और शोंठ, मिरच, सैंधव, पुनर्नवा, काकमाची, चालताकी छाल, पीपल, गजपीपल, कटफल, कांकड़ाशिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हल्दी, करञ्ज, नाटाकरञ्ज, श्यामालता, और अनन्तमूल प्रत्येक ४ तोलेका कल्क। यथाविधि पाककर मालिश करनेसे सब प्रकारका शोथ, व्रणशोथ, अक्षिशूल श्वास, कामला और यावतीय श्लैष्मिक रोग आराम होता है।

कोषवृद्धिरोग ।

—:○:—

भक्तोत्तरीय ।—अभरख भस्म, गन्धक, पारा, पीपल, पांचोनमक, जवाक्षार, सज्जीखार, सोहागा, त्रिफला, हरताल, मैनसिल, अजवाईन, अजमोदा, सोवा, जीरा, हींग, मेथी, चीतामूल, चाभ, बच, दन्तीमूल, तेवड़ी, मोथा, शिलाजीत, लौहभस्म, रसांजन, नीम बीज, परवरका पत्ती, और बिधारेकी बीज, प्रत्येक दो दो तोले, शोधित धतूरेकी बीज १००, एकत्र चूर्णकर भोजनके बाद दो रत्ती मात्रा सेवन करनेसे यावतीय वृद्धि रोग श्लीपद और आमवात आदि रोग आराम होता है।

वृद्धिवाधिका वटी ।—पारा, गन्धक, लोहा, वङ्ग, ताम्बा, कांसाभस्म, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटु, चाभ, त्रिफला, विड़ंग, बिधारेकी बीज, शठी, पिपलामूल, अम्बष्ठा, हीवेर, बच, इलायची, देवदारू और पांचो नमक, प्रत्येक समभाग; हर्रेके काढ़ेमें खलकर एक मासे बराबर गोली बनाना पानी या हर्रे भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग आराम होता है।

वातारि—पारा दो भाग, गन्धक दो भाग, त्रिफला प्रत्येक तीन भाग, चीतामूल ४ भाग और गुग्गुलु ५ भाग, एकत्र रेंड़ीके तेलमें मर्दनकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। अदरखका रस या तिलकै तेलके साथ सेवन कर एरण्डमूलके काढ़ेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। रोगीके पीठमें रेंड़ोका तेल मालिश कर सेंक देना। विरेचन होनेसे स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन कराना। वह अन्त्रवृद्धि का श्रेष्ठ औषध है।

शतपुष्पाद्य घृत।—घी ४ सेर, अडूसा, मुण्डरी, रेंड़की जड़, बेलका पत्ता और कण्टकारी प्रत्येक का रस चार चार सेर, दूध ४ सेर, सोवा, गुरिच, देवदारु, लालचन्दन, हलदी, दारुहल्दी, जीरा, कालाजीरा, बच, नागेश्वर, त्रिफला, गुग्गुलु, दालचीनी, जटामांसी, कूठ, तेजपत्ता, इलायची, रास्ना, कांकड़ाशिंगी, चीतामूल, विड़ङ्ग, असगन्ध, शैलज, कुटकी, सैन्धव, तगरपादुका, कुरैयाकी छाल और अतीस प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क। यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकार वृद्धिरोग और श्लीपद आदि रोग शान्त होता है।

गन्धर्व्वहस्त तेल—रेंड़ीका तेल ४ सेर; रेंड़का जड़ १२॥ सेर, शोंठ ८ तोले, जौ ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर; रेंड़का जड़ ३२ तोले, अदरख २४ तोलेका कल्क। यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोले मात्रा गरम दूधके साथ पीनेसे अन्त्र वृद्धि रोग आराम होता ग। पथ्य—दूध और भात।

सैन्धवाद्य घृत—घोंघाके भीतरका मांस वगैरह निकालकर उसके भीतर गायका घी और घीका चौथा हिस्सा नमक भरकर सात दिनतक धूपमें रखना। यह घी मालिश करनेसे कोषवृद्धि रोग शान्त होता है।

गलगण्ड और गण्डमालारोग।

—:०:—

काञ्चनार गुग्गुलु।—कचनारकी छाल ५ पल, शोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक एक एक पल, हर्रा, बहेड़ा और आंवला प्रत्येक आधा पल, बरूणछाल दो तोले. तेजपत्ता, इलायची और दालचीनी प्रत्येक आधा तोला, तथा सबके बराबर गुग्गुलु एकत्र मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गलगण्ड, गण्डमाला, अपची और ग्रन्थि आदि रोग शान्त होता है। अनुपान थोड़ा गरम मुण्डरीका काढ़ा, खैरका काढ़ा अथवा हरीतकीका काढ़ा।

अमृताद्य तैल—तिलका तेल ४ सेर, गुरिच, नीमकी छाल, खुलकुड़ी, कुरैयाकी छाल, पीपल, बरियारा, गुलशकरी और देवदारु सब मिलाकर एक सेर इन सब द्रव्योंका काढ़ा १६ सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

तुम्बीतैल—सरसोंका तेल ४ सेर, पक्के तितलौकी का रस १६ सेर, विड़ङ्ग, जवाखार, सेन्धव, बच, रास्ना, चीतामूल, त्रिकटु और होंग सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

कुकुन्दरी तैल—तिल तेल ४ सेर, कुकुन्दर का मांस एक सेर, पानी १६ सेर और कुकुन्दरके मांसके ४ सेर काढ़ेके साथ यथाविधि पाककर मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होता हैं।

सिन्दूरादि तेल—सरसोंका तेल ४ सेर, केशुरियाका रस १६ सेर, च[illegible]वड़की जड़ आधा सेर, हलकी आंचमें औटाना, पाकशेष

होनेपर मटिया सिन्दूर आधासेर मिलाना। यह तेल मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होता है।

बिम्बादि तेल–तिलाकुचाकी जड़, करवीर और निर्गुण्डीका कल्क चौगूने पानीके साथ यथाविधि तिलका तेल पाककर नास लेनेसे गण्डमाला शान्त होता है।

निर्गुण्डी तेल—तिल तेल ४ सेर, निर्गुण्डीका रस १६ सेर, ईशलाङ्गलाके जड़का कल्क एक सेर; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गण्डमाला दूर होता है।

गुञ्जाद्य तेल–घुंघुची की जड़, कनेल, बिधारेकी बीज, अकवनका दूध और सरसो इन सबका कल्क और तेलके चौगूने गोमूत्रमें क्रमशः १० बार तेल पाककर उसमें पीपल, पांचोनमक और मिरचका चूर्ण मिलाना। यह तेल मालिश करनेसे अपची अर्वुद, व्रण और नाड़ीव्रण आदि आराम होता है।

चन्दनादि तेल—तिलका तेल ४ सेर, लालचन्दन, हरीतकी, लाह, बच और कुटकी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे, अपची रोग आराम होता है।

श्लीपदरोग।

—:०:—

मदनादि लेप—मयनफल, नीलवृक्ष और सामुद्र लवण; यह सब द्रव्य भैंसके मक्खनमें पीसकर लेप करनेसे दाहयुक्त श्लीपद शान्त होता है।

कणादि चूर्ण—पीपल, बच, देवदारु और बेलकी छाल प्रत्येक समभाग और सबके बराबर बिधारेको बीज, एकत्र चूर्णकर ३ रत्ती मात्रा कांजीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद आराम होता है।

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल, त्रिफला, देवदारु, शोंठ और पुनर्नवा, प्रत्येक दो दो पल, बिधारेको बीज १४ पल एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लीपद, वातरोग और अग्निमान्द्य आराम होता है।

कृष्णादि मोदक—पीपलका चूर्ण दो तोले, चीतामूलका चूर्ण ४ तोले, दन्तीमूल चूर्ण ८ तोले, हरीतकी २० और पुराना गुड़ १६ तोले, उचित सहत मिलाकर यथाविधि मोदक तयार करना आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है।

श्लीपद गजकेशरी—त्रिकटु, मीठाविष, अजवाईन पारा, गन्धक, चीतामूल, मैनसिल, सोहागा और जयपाल प्रत्येक समभाग; यथाक्रम भीमराज, गोक्षुर, जामीर नीबू और अदरखके रसमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम पानीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद और प्लीहा रोग आराम होता है।

नित्यानन्द रस—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, बङ्ग भस्म, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौड़ीभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, लौहभस्म, विड़ङ्ग, पांचोनमक, चाभ, पीपलामूल, हौवेर, बच, शठो, अम्बष्ठा, देवदारु, इलायची, बिधारा, तेवड़ो, चीतामूल और दन्तीमूल प्रत्येक समभाग, हरीतकीके काढ़ेमें खलकर १० रत्ती वजन की गोली ठण्ढा पानी अथवा हर्र भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे श्लीपद, गलगण्ड, वातरक्त, क्रिमि, अर्श और यावतीय वृद्धिरोग आराम होता है।

सौरेश्वर घृत—घी ४ सेर; दशमूलका काढ़ा, कांजी और दहीका पानी प्रत्येक चार चार सेर; काली तुलसी, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला, पांचोनमक, विड़ङ्ग, चीतामूल, चाभ, पीपलामूल, गुग्गुलु, हीवेर, बच, जवाखार, अम्बष्ठा, शठी, इलायची और बिधारा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे श्लीपद और गलगण्ड आदि रोग प्रशमित होता है।

विड़ङ्गादि तैल—तिलका तैल ४ सेर; विड़ङ्ग, मिरच, अकवनकी जड़, शोंठ, चीतामूल, देवदारु, एलवा और पांचोनमक सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पान और शोथ स्थानमें मालिश करनेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है।

विद्रधि और व्रणरोग।

—:०:—

वरूणादि घृत—वरूणछाल, झिंटी, सैजन, लालसैजन, जयन्ती, मेषशृङ्गी, डहरकरञ्ज, मूर्व्वा, गणियारी, कटसरैया, तेलाकुचा, अकवन, गजपीपल, चीतामूल, शतावर, बेलकी गिरी, मेढ़ाशृङ्गी, कुशमूल, वृहती और कण्टकारी; इन सब द्रव्योंके कल्कके साथ घी औटाकर सवेरे भोजनके वख्त और शामको आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे अन्तर्विद्रधि गुल्म, अग्निमान्द्य और उत्कट शिर:शूल दूर होता है।

करञ्जाद्य घृत—घी ४ सेर; डहरकरञ्जका कोमल पत्ता और बीज, मालती पत्र, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, हलदी,

दारुहल्दी, मोम, मुलेठी, कुटकी, मजीठ. लालचन्दन, खसकी जड़, नीलाकमल, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक दो तोले यथाविधि पाककर क्षत स्थानमें प्रयोग करना।

जात्याद्य घृत और तैल—जातीपत्र, नीमपत्ता, परवरका पत्ता, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, अनन्तमूल, मजीठ, खसकी जड़, मोम, तूतिया, मुलेठी और डहरकरञ्जकी बीज मिलाकर एक सेरका कल्क और १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी या तैल यथाविधि औटाकर घावमें लगानेसे घावमेंसे पीप वगैरह निकाल-कर सुखा देता है।

विपरीतमल्ल तैल—सरसोंका तैल ४ सेर, सिन्दूर, कूठ, मिठाविष, हींग, लहसन, चीतामूल, बालामूल और ईशलाङ्गला प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर यावतीय क्षत-रोगमें प्रयोग करना।

व्रणराक्षस तैल—सरसोंका तैल आधा सेर, पारा, गन्धक, (कज्जली बना लेना) हरताल, मटिया सिन्दूर, मैनसिल, लहसन, मीठाविष और ताम्र भस्म प्रत्येक दो दो तोले, यह सब तैलके साथ मिलाकर धूपमें पका लेना। इस तैलके लगानेसे नासूर, विस्फोट मांसवृद्धि विचर्चिका और दाह आदि रोग शान्त होता है।

सर्जिकाद्य तैल—तैल ४ सेर, सज्जीक्षार, सेंधानमक, दन्तीमूल, चीतामूल, सफेद अकवनकी जड़, नीलवृक्ष, भिलावा और चिरचिरी की बीज सब मिलाकर एक सेरका कल्कका गोमूत्र १६ सेर, यथाविधि औटाकर नासूर और खराब घावमें लगाना।

निर्गुण्डी तैल—तैल ४ सेर और निर्गुण्डी की जड़, पत्ता और डाल ४ सेर, एकत्र औटाकर पान, मर्द्दन और नास लेनेसे व्रणरोग और पामा, अपची आदि रोग दूर होता है।

सप्ताङ्ग गुग्गुलु—विड़ङ्ग, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येकका चूर्ण समभाग, तथा समष्टीके बराबर गुग्गुलु एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर स्निग्धभांडमें रखना। आहारके अन्तमें आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे दुष्टव्रण नाड़ीव्रण और कुष्ठादि रोग शान्त होता है।

भगन्दररोग।

—:०:—

सप्तविंशति गुग्गुलु।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, गुरिच, चीताभूल, शठी, इलायची, पीपलामूल, हीवेर, देवदारु, धनिया, भिलावा, चाभ, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, कालानमक, सौवर्च्चल नमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जीखार और गजपीपल, प्रत्येक समभाग; समष्टीका दूना गुग्गुलु; एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, श्वास, कास, शोथ और प्रमेह आदि रोग शान्त होता है।

नवकार्षिक गुग्गुलु—हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और पीपल प्रत्येक दो दो तोले, गुग्गुलु १० तोले, एकत्र घीमें मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, शोथ गुल्मादि रोग शान्त होता है।

व्रणगजांकुश।—हिंगुल, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसाञ्जन, मैनसिल, गुग्गुलु, पारा, गन्धक, ताम्र भस्म, लौहभस्म, सेंधानमक, अतीस, चाभ, शरपींखा, विड़ङ्ग, अजवाईन, गजपीपल, मिरच, अकवनकी जड़, बरुणकी जड़, सफेद राल और हर्रा प्रत्येक समभाग उपयुक्त सरसोंके तेलमें मर्द्दनकर मासे बराबर गोली

बनाना। अनुपान सहत, इससे भगन्दर और विविध दुःसाध्य व्रणरोग दूर होता है।

उपदंशरोग।

—:०:—

वरादि गुग्गुलु—त्रिफला, नीम, अर्ज्जुन, पीपर, खैर, शाल और अडूसा ; प्रत्येकके छाल का समभाग चूर्ण तथा समष्टीके बराबर गुग्गुलु, एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे उपदंश रक्तदुष्टि और दुष्ट व्रण आराम होता है।

रसशेखर।—पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती एकत्र लोहेके पात्रमें तुलसीके पत्तेके रसमें नीमके डण्डसे खल करना, फिर उसमें दो रत्ती हिंगुल मिलाकर तुलसीके पत्तेका रस मिला उसी डंडेसे मर्द्दन करना। फिर जावित्री, जाइफल, खुरासानी अजवाईन और अकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती और समष्टीका दूना खैर मिलाकर तुलसी पत्तेके रसमें मर्द्दन करना। मटर बराबर गोली बनाना। रोज शामको एक गोली सेवन करनेसे उपदंश, गलित कुष्ठ, दुष्टव्रण और सब प्रकारका स्फोटक आराम होता है।

करंजाद्य घृत—घी ४ सेर, डहरकरञ्ज बीज, नीमका पत्ता अर्ज्जुनछाल, शालकी छाल, जामुन छाल, बड़, गुल्लर, पीपर, पाकर और वेतसकी छाल सब मिलाकर आठ ८ सेर ; पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर ; यह काढ़ा यथाविधि औटाकर क्षतस्थानमें लगानेसे उपदंश दाह, घाव, पीप आदिका स्राव और लाली दूर होती है।

भूनिम्बादि घृत—घी ४ सेर, चिरायता, नीमकी छाल, त्रिफला, परवरका पत्ता, डहरकरञ्ज को बीज, जातीपत्र, खेरकी लड़की और आसन छाल प्रत्येक एक एक सेर ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर यह काढ़ा ; तथा उक्त सब द्रव्य एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर उपदंशमें प्रयोग करना।

गोजी तैल—तिलका तेल ४ सेर, गोजिया, विड़ङ्ग, मुलेठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कपूर, कक्कोल फल, अगरू, कुङ्कुम और लौंग सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर, यथाविधि पाककर प्रयोग करनेसे उपदंश आराम होता है।

कुष्ठ और श्वित्ररोग।

—:०:—

मंजिष्ठादि काढ़ा—मजीठ, सोमराजी, चकवड़ बीज, नीम छाल, हरीतकी, हल्दी, आंवला, अडूसेका पत्ता, शतावर, बरियारा, गुलशकरी, मुलेठी, चुरक बीज, परवरका पत्ता, खसकी जड़, गुरिच और लालचन्दन ; इन सबका काढ़ा कुष्ठरोग नाशक है।

अमृतादि—गुरिच, एरण्डमूल, अडूसेकी छाल, सोमराजी और हरीतकी का काढ़ा कुष्ठ और वातरक्त नाशक है।

पंच निम्ब—नीमका पत्ता, फूल, छाल, जड़ और फल इन सबका समभाग चूर्ण सहत और घीके साथ चाटनेसे अथवा गोमूत्र या दूधके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, विसर्प और अर्श आराम होता है।

पंचतिक्तघृत गुग्गुलु ।—घी ४ सेर, नीमकी छाल, गुरिच, अडूसेकी छाल, परवरका पत्ता और कण्टकारी प्रत्येक १० पल, पोटलीमें बंधा हुआ गुग्गुलु ५ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर इस काढ़ेमें पोटलीका गुग्गुलु मिलाकर घीके साथ औटाना। तथा अम्बष्ठा, विड़ंग, देवदारू, गजपीपल, जवाक्षार, सज्जीक्षार, शोंठ, हल्दी, सोवा, चाभ, कूठ, लताफटकी, मिरच, इन्द्रयव, जीरा, चीतामूल, कूटकी, भेलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला और अजमोदा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे कुष्ठ, भगन्दर, नाड़ीव्रण और विषदोष आदि दूर होता है।

अमृतभल्लातक ।—सोधा हुआ भेलावा ८ सेर, दो दो टुकड़ेकर ३२ सेर पानीमें औटाना ८ सेर पानी रहते छान लेना तथा ८ सेर दुधमें यह काढ़ा औटाकर ४ सेर घीके साथ पाक करना। पाकशेष होनेपर २ सेर चीनी मिला ७ दिन रख छोड़ना। चार आनेभर से आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे कुष्ठादि रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्य आदि की वृद्धि होती है।

अमृतांकुर लौह ।—पारा एक पल और गन्धक एक पलकी कज्जली बना पत्थरके पात्रमें रखना तथा उसके उपर गरम ताम्बेका पत्तर दबाकर पर्प्पटी तयार करना। यह पर्प्पटी और एक तोला सोहागा एकत्र मूषावद्धकर जलाना, गंधक जल जानेपर औषध निकाल लेना फिर वह कज्जली, लौहभस्म, ताम्र भस्म, भेलावेका रस अभरख भस्म और गुग्गुलु प्रत्येक १ पल और घी १६ पल, एकत्र ४ सेर त्रिफलाके काढ़ेमें औटाना। पाकशेष होनेपर हर्रका चूर्ण ४ तोले, बहेड़ेका चूर्ण ४ तोले और आंवलेका चूर्ण १२ तोले मिलाना। पहिले एक रत्ती मात्रा फिर सहने पर

मात्रा बढ़ाना, यह औषध सेवन करनेसे कुष्ठ आदि रोग दूर होता है, तथा बल, वीर्य्य और आयु बढ़ती है। अनुपान,—घी और सहतमें मिलाकर नारियलका पानी अथवा दूध मिलाकर पीना चाहिये। यह दवा लोहपात्रमें लौहदण्डसे बनाना चाहिये।

तालकेश्वर रस।—दो मासे हरिताल को भतुवेका रस, त्रिफला भिंगोया पानी, तिलका तेल, घिकुआरका रस और कांजीकी भावना देना। फिर गन्धक २ मासे और पारा दो मासेकी कज्जली उस हरितालमें मिलाना, तथा छाग दूध, नीबूका रस और घिकुआरके रसकी तीन तीन दिन भावना देकर छोटी टिकरी बनाना। सूखजानेपर एक हांड़ीमें पलाशका छार रख उसके भीतर टिकरी रखकर १२ पहर आगमें रख ठण्ढा होनेपर निकाल लेना। दो रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ कुष्ठादि रोगोंसे प्रयोग करना।

रसमाणिक्य।—वंशपत्र हरिताल को भतुवेका रस और खट्टी दहीकी ३ बार या ७ बार भावना दे छोटा छोटा टुकरा करना, फिर एक किसोरेमें नीचे उपर अभरखका पत्तर रख सजा देना तथा दूसरा किसोरा औंधाढ़ाक बेरका पत्ता और मिट्टीका सन्धिस्थलमें लेप करना। फिर एक खाली हांड़ीके उपर वह सिकोरा रख हांड़ी चूल्हेपर रखना। हांड़ी लाल होजानेपर औषध बाहर निकाल लेना। इस रीतिसे हरताल माणिक की तरह चमकीला होगा। मात्रा २ रत्ती घी और सहतके साथ सेवन करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, उपदंश और भगन्दर आदि रोग शान्त होता है। श्रीमहादेवजी की पूजाकर यह औषध सेवन करना उचित है।

पञ्चतिक्त घृत—घी ४ सेर, नीमकी छाल, परवरका पत्ता,

कटेली, गुरिच और अड़ूसेकी छाल प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढ़ा और त्रिफलाका कल्क एक सेर; यथा विधि औटाकर आधा तोला मात्रा कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, दुष्टव्रण और क्रिमि आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

महासिन्दूराद्य तैल।—सरसोका तेल ४ सेर; मटिया सिन्दूर, लालचन्दन, जटामांसी, वायविड़ङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, पद्मकाष्ठ, कूठ, मजीठ, खदिरकाष्ठ, बच, जातीपत्र, अकवनका पत्ता, तेवड़ी, नीमकी छाल, डहरकरञ्जकी, बीज, मिठाविष, चुरक, लोध और चकवड़की बीज, सब मिलाकर दो सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठरोग आराम होता है।

सोमराजी तेल—सरसोका तेल १ सेर, पानी १६ सेर, सोमराजीकी बीज, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद, सरसो, कूठ, डहरकरञ्ज की बीज, चकवड़की जड़ और अमिलतासका पत्ता सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा और नासूर आराम होता हैं।

वृहत् सोमराजी तैल।—सरसोका तेल १६ सेर, सोमराजी और चकवड़ की बीज प्रत्येक १२॥ सेर अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना, फिर गोमूत्र १६ सेर, तथा चीतामूल, ईशलाङ्गला, शोंठ, कूठ, हल्दी, डहरकरञ्ज की बीज, हरताल, मैनसिल, छापरमाली, अकवन की जड़, करवीर की जड़, छतिवनकी जड़, गोबरका रस, खदिरकाष्ठ, नीमका पत्ता, गोलमिरच और कालकासुन्दा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औटाकर कुष्ठादि रोगमें मालिश करना।

मरिचादि तैल—सरसोका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, मिरच, हरताल, मैनसिल, मोथा, अकवनका दूध, करवीरकी जड़, तेवड़ीकी जड़, गोबरका रस, इन्द्रायणकी जड़, कूठ, हल्दी दारुहल्दी, देवदारु और लालचन्दन प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क और मीठाविष ८ तोले यथाविधि औटाकर कुष्ठ और श्वित्र आदिमें मालिश करना।

कन्दर्पसार तैल।—सरसोका तेल ४ सेर, छतिवनकी छाल, चुरक, गुरिच, नीमकी छाल, शिशोंकी छाल, घोड़नीम, जयन्ती पत्र, तितलौकी, इन्द्रायण और हलदी प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; गोमूत्र १६ सेर, अमिलतासका पत्ता, भङ्गरैया, जयन्तीपत्र, धतूरेका पत्ता, हल्दी, भांगका पत्ता, चीताका पत्ता, खजूरका पत्ता, अकवनका पत्ता, सेहुंड़का पत्ता प्रत्येकका रस चार चार सेर; गोबरका रस ४ सेर, माकाल, बच, ब्रह्मोशाक, तितलौकी, चीतामूल, घिकुआर, कुचिला, परवरका पत्ता, हलदी, मोथा, पीपलामूल, अमिलतास का गूदा, अकवनका दूध, कालकासुन्दाकी जड़, ईशमूल, आचमूल, मजीठ, कड़वा परवर, इन्द्रायणकी जड़, बिछौटीका पत्ता, करञ्ज-मूल, हापरमाली, मूर्व्वामूल, छतिवनकी छाल, शिशोंकी छाल, कुरैयाकी छाल, नीमकी छाल, घोड़नीमकी छाल, गुरिच, हाकुच बीज, सोमराजी, चकवड़की बीज, धनिया, भीमराज, मुलेठी, जङ्गली सूरण, कुटकी, शठी, दारुहलदी, तेवड़ी की जड़, पद्मकाष्ठ, गेठेला, अगरू, कूठ, कपूर, कायफल, जटामांसी, मूरामांसी, इलायची, अडूसेकी छाल और खसकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठ, श्वित्र और गलगण्डादि रोग दूर होता है।

———

शीतपित्तरोग।

—०:०:०—

हरिद्राखण्ड।—हलदी ८ पल, घी ६ पल, गायका दूध १६ सेर, चीनी ६। सवा छ सेर, एकत्र पाक करना, पाकशेषमें त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, वायविड़ङ्ग, तेवड़ीमूल, त्रिफला, नागेश्वर, मोथा और लौहभस्म प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाना। आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्त, उदर्द्द, कोठ और पाण्डु आदि रोग दूर होता है।

बृहत् हरिद्राखण्ड।—हलदीका चूर्ण आधा सेर, तेवड़ीका चूर्ण ४ पल, हर्रका चूर्ण ४ पल, चीनी ५ सेर; दारुहलदी, मोथा, अजवाइन, अजमोदा, चीतामूल, कुटकी, कालाजीरा, पीपल, शोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, वायविड़ंग, गुरिच, अड़ूसेकी जड़की छाल, कूठ, हर्र, बहेड़ा, आंवला, चाभ, धनिया, लौह और अभरख भस्म प्रत्येक एक एक तोला; एकत्र हलकी आंचमें औटाना; आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्तादि पीड़ा और दाह आराम होता है।

आर्द्रकखण्ड—अदरखका रस ४ सेर, गायका घी दो सेर, गायका दूध ८ सेर चीनी ४ सेर, यथाविधि औटाना। आसन्न पाकमें पिपलामूल, पीपल, मिरच, चीतामूल, वायविड़ंग, मोथा, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, शोंठ और शठी प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाना। आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे शीतपित्तादि रोग दूर होता है। यह यक्ष्मा और रक्तपित्त रोगमें भी उपकारी है।

अम्लपित्तरोग।

—०:०:०—

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, कालानमक, वायविड़ङ्ग, इलायची और तेजपत्ता प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, लौंग चूर्ण ११ भाग, तेवड़ीमूल चूर्ण ४४ भाग और चीनी ६६ भाग; एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, मलमूत्र रोध और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होता है।

वृहत् पिप्पलीखण्ड।—पीपलचूर्ण आधा सेर, घी एक सेर, चीनी दो सेर, सतावरका रस एक सेर, आंवलेका रस दो सेर, दूध ८ सेर; एकत्र यथाविधि औटाकर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, हर्रा, कालाजीरा, धनिया, मोथा, वंशलोचन और आंवला प्रत्येक दो दो तोले, तथा जीरा, कूठ, शोंठ और नागेश्वर प्रत्येक एक एक तोला मिलाना, ठण्ढा होनेपर जायफलका चूर्ण मरिचका चूर्ण और सहत प्रत्येक तीन तीन पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, वमनवेग, वमि, अरुचि, अग्निमान्द्य और क्षयरोग आराम होता है।

शूण्ठीखण्ड।—शोंठका चूर्ण आधा सेर, चीनी दो सेर, घी एक सेर, दूध ८ सेर, एकत्र यथाविधि औटाकर फिर आंवला, धनिया, मोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, कालाजीरा और हर्रा प्रत्येक १॥ तोला, मिरच और नागेश्वर प्रत्येक ॥।) आनेभर मिलाना। ठण्ढा होनेपर सहत ३ तीन पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल और वमन आराम होता है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजवाईन, लौहभस्म, अबरख भस्म, कांकड़ाशिंगी, कायफल, मोथा, बड़ी ईलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, गन्धमात्रा, शठी, मुलेठी, लौंग और लालचन्दन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर शोंठका चूर्ण, शोंठके चूर्णके साथ सब चूर्ण की दूनी चीनी और सब समष्टीका चौगूना गायका घी यथाविधि औटाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा दूध या पानीके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य, अरुचि और दौर्बल्य दूर होता है।

सितामण्डूर।—पहिले मण्डूर सातबार आगमें गरम कर गोमूत्रमें बुझाकर शोध लेना। शोधा हुआ मण्डूरका चूर्ण १ पल, चीनी ५ पल, पुराना घी ८ पल, गायका दूध १६ पल, एकत्र यथाविधि औटाकर त्रिकटु, मुलेठी, बड़ीइलायची, जवासा, बायविड़ङ्ग, त्रिफला, कूठ और लौंगका चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २ पल सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा भोजनके पहिले दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, वमि आनाह और प्रमेह आराम होता है।

पानीयभक्त वटी।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तेवड़ी और चितामूल प्रत्येक दो दो तोले, लौहभस्म, अभ्रभस्म और विड़ङ्ग चार चार तोले एकत्र त्रिफलाके काढ़ेमे खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। कांजीके अनुपानमें सबेरे सेवन करनेसे शूल, श्वास, कास और ग्रहणी दूर होती है।

क्षुधावती गुड़िका।—पारा, गन्धक, लौहभस्म, अभ्र भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, बच, अजवाईन, सोवा, चाभ, जीरा और कालाजीरा, प्रत्येक एक एक पल, पुनर्नवा, मानकन्द, पीपलामूल,

इन्द्रयव, केशुरिया पद्मगुरिच, दानकुनोमूल, तेवड़ो मूल, दन्तोमूल, हुड़हुड़मूल, रक्तचन्दन, भोमराज, चिरचिड़ो को जड़, परवरका पत्ता और खुलकुड़ो, प्रत्येक चार चार तोले; एकत्र अदरखके रसमें खलकर बेरके गुठलो बराबर गोलो बनाना। अनुपान कांजोके साथ सबेरे सेवन करनेसे, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि रोग आराम होता है।

लोलाविलास रस—पारा, गन्धक, अबरख, ताम्र और लौह भस्म प्रत्येक समभाग, एकत्र आंवलेका रस और बहेड़ाके काढ़ेको तीन दिन भावना दे २ रत्ती बराबर गोलो बनाना। पुराने भतुवेका पानी, आंवलेका रस या दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, वमन और छातीकी जलन दूर होता है।

अम्लपित्तान्तक लौह—रससिन्दूर, ताम्र और लौहभस्म प्रत्येक एक एक भाग, हर्रका चूर्ण ३ भाग; एकत्र मिलाकर एक मासा अर्थात् दो आनेभर सहतके साथ चाटनेसे अम्लपित्तरोग आराम होता है।

सर्व्वतोभद्र रस।—लोहा, ताम्बा और अबरख भस्म प्रत्येक आठ आठ तोले, पारा दो तोले, गन्धक २ तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोले, मैनसिल २ तोले, शिलाजोत २ तोले, गुग्गुलु दो तोले, विड़ङ्ग, भेलावा, चोतामूल, सफेद अकवन को जड़, हस्तिकर्ण-पलाश को जड़, तालमूलो, पुनर्नवा, मोथा, गुरिच, गुलशकरो, चकवड़की बीज, मुंडरो, भोमराज, केशुरिया, शतावर, बिधारेको बीज, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक आधा तोला। यह सब द्रव्य एकत्र घो और सहतके साथ खलकर एक आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करनेसे उपद्रवयुक्त अम्लपित्त, शूल, रक्तपित्त, अर्श, वातरक्त, अग्निमान्द्य, पांडु, कामला, श्वास, कास प्रभृति रोग शान्त होता है।

पिप्पली घृत—घी ४ सेर, पीपलका काढ़ा १६ सेर और पीपल का कल्क एक सेर ; यथाविधि पाककर ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त आराम होता है।

द्राक्षाद्य घृत—मुनक्का, गुरिच, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, खसकी जड़, आंवला, मोथा, लालचन्दन, त्रायामाणा, पद्मकाष्ठ, चिरायता और धनिया सब मिलाकर एक सेरका कल्क, तथा १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी यथाविधि औटाकर, आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, ग्रहणी और कास आदि रोग दूर होता है।

श्रीविल्व तैल।—तिलका तेल ४ सेर, बेलकी गिरी १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, दूध ८ सेर, आंवला लाह, हर्रा, मोथा, लाल चन्दन, वाला, सरल-काष्ठ, देवदारू, मजीठ, तेजपत्ता, प्रियंगु, अनन्तमूल, बच, शतावर, असगन्ध, सोवा और पुनर्नवा, सब मिलाकर एक सेरका कल्क ; यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे अम्लपित्त, शूल, हाथ पैरकी जलन और सूतिका रोग आराम होता है।

विसर्प और विस्फोटरोग।

—:०:—

अमृतादि कषाय।—गुरिच, अडूसेके जड़की छाल, परवरका पत्ता, मोथा, छतिवन की छाल, खदिरकाष्ठ, कृष्णवेतस की जड़, नीमका पत्ता, हल्दी और दारुहल्दी, इन सबका काढ़ा पीनेसे

विविध विषदोष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कंडू और मसूरिका दूर होती है।

नवकषाय गुग्गुलु—गुरिच, अड़ूसेके जड़की छाल, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, त्रिफला, खदिरसार और अमिलतास सब मिलाकर २ तोला; इस काढ़ेमें आधातोला गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे विसर्प और कुष्ठ रोग आराम होता है।

कालाग्निरुद्र रस।—पारा, अभरख भस्म, कान्तलौह भस्म, गन्धक और स्वर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक समभाग; एकत्र जङ्गली कांकरोलके रसमें एक दिन खलकर जंगली कांकरोलमें भरना, तथा चारो तरफ मिट्टी लपेट सुखाकर एकदिन गजपुटमें फूंकना; ठण्ढा होने पर औषध बाहर निकाल लेना, तथा उसका दशवां हिस्सा मिठाविषका चूर्ण मिलाना २ रत्ती मात्रा पीपलका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे विसर्प रोग आराम होता हैं। अवस्थानुसार मात्रा बढ़ा भी सकते हैं।

वृषाद्य घृत—अड़ूसेकी छाल, खैरकी लकड़ी, परवरका पत्ता, नीमकीछाल, गुरिच और आंवला इन सबका काढ़ा १६ सेर, और कल्क १ सेरके साथ यथाविधि ४ सेर घी औटाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे विसर्प कुष्ठ और गुल्मरोग आराम होता है।

पञ्चतिक्त घृत—परवरका पत्ता, छतिवनकी छाल, नीमकी छाल, अड़ूसेकी छाल और गुरिच, इन सबका काढ़ा १६ सेर और त्रिफलेका कल्क एक सेरके साथ ४ सेर घी औटाकर पूर्व्ववत् मात्रा सेवन करनेसे विस्फोट विसर्प और कण्डू रोग आराम होता है।

करञ्ज तैल—सरसोका तेल ४ सेर, डहरकरञ्ज, छतिवनकी छाल, ईशलांगला, सेहुंड़ और अकवनका दूध, चीतामूल, भीमराज, हल्दी और मिठाविष मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर,

यथाविधि औटाकर प्रयोग करनेसे विसर्प, विस्फोट और बिचर्च्चिका रोग दूर होता है ।

मसूरिकारोग ।

—:०:—

निम्बादि—नीमकी छाल, दवनपापड़ा, अम्बष्ठा, परवरका पत्ता, कुटकी, अडूसेकी छाल, जवासा, आंवला, खसकी जड़, श्वेत चन्दन और लालचन्दन, इन सबके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीनेसे ज्वर और मसूरिका शान्त होती है तथा जितनी गोटी निकलकर बैठ जाती है वह फिर निकलने लगती है ।

ऊषणादि चूर्ण—मिरच, पीपलामूल, कूठ, गजपीपल, मोथा, मुलेठी, मूर्व्वामूल, बारंगी, मोचरस, वंशलोचन, जवाक्षार, अतीस, अडूसेकी छाल, गोक्षुर, बृहती और कण्टकारी, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण । दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका रोमान्ती, विस्फोट और ज्वर आराम होता है ।

सर्व्वतोभद्र रस—सिन्दूर, अभरख भस्म, रौप्यभस्म, सोनाभस्म और मैनसिल प्रत्येक समभाग, वंशलोचन २ भाग और सबके बराबर गुग्गुलु एकत्र पानीमें खलकरना । दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका आराम होती है ।

इन्दुकला वटिका—शिलाजीत, लौहभस्म और स्वर्ण भस्म प्रत्येक समभाग बनतुलसीके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना । यह भी मसूरिका नाशक है ।

एलाद्यरिष्ट ।—इलायची ५० पल, अडूसेकी छाल २० पल, मजीठ, कुरैयाकी छाल, दन्तीमूल, गुरिच, हल्दी, दारुहल्दी,

रास्ना, खसकी जड़, मुलेठी, शिरीष छाल, खैरकी लकड़ी, अर्ज्जुन-छाल, चिरायता, नीमकी छाल, चीतामूल, कूठ और सौंफ, प्रत्येक दश पल, पानी ५१२ सेर शेष ६४ सेर, यह काढ़ा ठण्ढा होनेपर धवईका फूल १६ पल, सहत ३७॥ सेर, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, शौंठ, पीपल, मिरच, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, जटामांसी, मूरामांसी, शैलज, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक आठ आठ तोले मिला मिट्टीके घड़ेमें मुह बन्दकर एक महीना रख देना। फिर छानकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे, रोमान्ति, मसूरिका, शीतपित्त, विस्फोट, भगन्दर, उपदंश और प्रमेह पिड़का आदि विविध रोग शान्त होता है।

क्षुद्ररोग।

—:०:—

चांगेरी घृत—घी एक सेर, चांगेरीका रस, सूखी मूलीका काढ़ा और खट्टी दही सब मिलाकर १६ सेर; तथा शौंठ और जवाक्षार प्रत्येक १० तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे गुदभ्रंशका दर्द दूर होता है।

हरिद्राद्य तैल।—हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, लाल-चन्दन, पुण्डरिया काष्ठ, मजीठ, पद्मपुष्प, पद्मकाष्ठ, केशर और कयेथ, गाब, पाकुर और बड़ इन सबके पत्तेका कल्क और चौगूने दूधके साथ यथाविधि तैल पाककर मर्द्दन करनेसे युवानपिड़िका व्यङ्ग, नीलिका और तिलकालक आदि रोग दूर होता है।

कुङ्कुमाद्य तैल ।—तिलका तैल आधा सेर, क्वाथार्थ—लालचन्दन, लाह, मजीठ, मुलेठी, खसकी जड़, पद्मकाष्ठ, नीलोत्पल, बड़कीसोर, पाकुरका टूसा, पद्मकेशर और दशमूल प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर ; मजीठ, महुआ, लाह, लालचन्दन और मुलेठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क ; बकरीका दूध एक सेर, यथाविधि औटाना पाकशेष होनेपर केशर ४ तोले मिलाना । यह तैल मालिश करनेसे पिड़िका, नीलिका और व्यङ्ग आदि पीड़ा दूर हो मुखज्योति बढ़ती है ।

द्विहरिद्राद्य तैल ।—सरसोका तैल ४ सेर ; हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, त्रिफला, नीमकी छाल और लालचन्दन प्रत्येक एक एक पलका कल्क ; पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मस्तकमें लेप करनेसे अरूंषिका रोग दूर होता है ।

त्रिफलाद्य तैल ।—तिलका तैल ४ सेर, त्रिफलाचूर्ण, जटामांसी, भगरैया, अनन्तमूल और सैन्धवलवण सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे रूचि शिरका रुसी दूर होता है ।

वन्हितैल—चीतामूल, दन्तीमूल और घोषालता यह तीन द्रव्यके कल्कमें तैल पाककर केशदद्रु में प्रयोग करना ।

मालत्याद्य तैल ।—तिलका तैल एक सेर, मालतीपत्र, करवीरकी जड़, चीतामूल और डहरकरञ्ज की बीज, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क, पानी ४ सेर ; यथाविधि औटाकर टाक और दारुणक रोगमें मालिश करना ।

स्नुहाद्य तैल ।—सरसोका तैल ४ सेर, छागमूत्र ८ सेर, गोमूत्र ८ सेर, सेहुंड़का दूध, अकवनका दूध, भंगरैया, ईशलांगला, मृणाल, घुंघुची, दन्तरायणकी जड़ और सफेद सरसो प्रत्येक

एक एक पल ; यथाविधि औटाकर टाकमें मालिश करनेसे अति दुःसाध्य टाक भी आराम होता है।

यष्टिमध्वाद्य तेल।—तिलका तेल एक सेर, दूध ४ सेर, मुलेठी ८ तोले और आंवला ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर नस्य लेने और मर्द्दन करनेसे केश और श्मश्रु पैदा होता है।

महानील तैल।—बहेड़ा के वीजका तेल १६ सेर, आंवलेका रस ६४ सेर, हुड़हुड़ की जड़, कालीझिंटी तुलसीका पत्ता, कृष्णशणकी जड़, भीमराज, काकमाची, मुलेठी और देवदारु, प्रत्येक १० पल ; पीपल, त्रिफला, रसाञ्जन, पौण्डरीक, मजीठ, लोध, कृष्णागुरु, नीलोत्पल, आम्रकेशी, कृष्णकर्द्दम, मृणाल, लालचन्दन, नीलकाष्ठ, भेलावा, हीराकस, मल्लिकाफूल, सोमराजी, अशनछाल, लौहचूर्ण, कृष्णपुष्प, मदनछाल, चीतामूल, अर्ज्जुनपुष्प, आमवीज, जामून वीज प्रत्येक पांच पांच पल ; यथाविधि लौह पात्रमें औटाकर थोड़े दिन धूपमें रखना फिर छानकर लोहेके पात्रमें रखना। यह तेल नस्य, पान और मर्द्दनार्थ प्रयोग करनेसे शिरोरोग और केशकी अकालपक्कता दूर होती है।

सप्तच्छदादि तैल।—तिल तैल ४ सेर, छतिवनकी छाल, अडूसेकी छाल और नीमकी छाल प्रत्येकका काढ़ा १६ सेर, हल्दी, दारुहल्दी, हर्रा, आंवला, बहेड़ा, शोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, मजीठ, खदिरकाष्ठ, जवाक्षार और सैंधव मिलाकर एक सेरका कल्क गोमूत्र १६ सेर, यथाविधि हलकी आंचमें औटाकर मालिश करनेसे पद्मिनीकण्टक, चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका और जालगर्द्दभ आदि पीड़ा दूर होती है।

कुङ्कुमादि घृत।—घी एक सेर, चीतामूलका काढ़ा ४ सेर ; केशर, हल्दी, दारुहल्दी और पीपल प्रत्येक ४ तोलेका कल्क

यथाविधि औटाकर पान, नस्य और मालिश करनेसे नीलिका युवानपिड़िका सिध्म और शिरोरोग आराम होता है।

सहचर घृत।—घी ४ सेर, पीतझिंटी १२॥ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर; दशमूल सब मिलाकर १२॥ सेर पानी ६४ सेर शेष १६ सेर। शिरीष छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, वायविड़ंग, पांचोनमक, जवाक्षार, सज्जीक्षार, सोहागा, बिछौटी की जड़, मटियासिन्दुर और गेरूमिट्टी मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे न्यच्छ, नीलिका, तिलकालक, अङ्गुलिवेष्टक, पाददारी और युवानपिड़का दूर होती है।

मुखरोग।

—:*:—

दन्तरोगाशनि चूर्ण।—जातीपत्र, पुनर्नवा, तिल, पीपल, झांटीपत्र, मोथा, बच, अजवाईन और हर्रे इन सबके समभाग चूर्णमें घी मिलाकर मुहमें रखनेसे दांतकी क्रिमि, कण्डू, शूल और दुर्गन्ध नष्ट होता है।

दशनसंस्कार चूर्ण।—शोंठ, हर्रा, मोथा, खैर, कपूर, सुपारी भस्म, मिरच, लौंग, दालचीनी प्रत्येक समभाग चूर्ण, तथा सबके बराबर सफेद मिट्टीका चूर्ण एकत्र मिलाकर दांत मलनेसे दन्त और मुखरोग दूर होता है।

कालक चूर्ण।—जाला, जवाक्षार, अम्बष्ठा, त्रिकटु, रसाञ्जन, चाभ, त्रिफला, लौहचूर्ण या अगरू और चीतामूल एकत्र सहतमें

मिलाकर गोली बना लेना। यह गोली मुहमें रखनेसे गलरोग तथा दन्त, जिह्वा और मुखरोग दूर होता है।

पीतक चूर्ण।—मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानमक और दारुहल्दी, इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर मुहमें धारण करनेसे कण्ठरोग दूर होता है।

चारगुड़िका।—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, तालीशपत्र, इलायची, मिरच, दालचीनी, पलाशका चार, घण्टापाटलाका चार और जवाखार, यह सब द्रव्य दूने पुराने गुड़में औटाकर बेर बराबर गोली बनाना, तथा गोली सात दिन घण्टा-पारूलके चारमें रखकर मुहमें धारण करनेसे कंठरोग आराम होता है।

यवचारादि गुटी—जवाखार, चाभ, अम्बष्ठा, रसाञ्जन, दारुहल्दी और पीपल, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर गुड़िका बना मुहमें रखनेसे गलरोग दूर होता है।

सप्तच्छदादि काढ़ा—छतिवनकी छाल, खसकी जड़, परवर का पत्ता, मोथा, हर्रा, कुटकी, मुलेठी, अमिलतास और लाल-चन्दन, इन सबका काढ़ा पीनेसे मुखके भीतरका घाव आराम होता है।

पटोलादि काढ़ा—परवरका पत्ता, शोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण की जड़, त्रायमाणा, कुटकी, हल्दी, दारहल्दी और गुरिचके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे या मुहमें धारण करनेसे मुखरोग दूर होता है।

खदिर वटिका—खैर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढ़ेमें जाविश्री, कपूर, सुपारी, बबूलका पत्ता और जायफल, प्रत्येक आठ आठ तोले मिलाकर गुड़िका बनाना। यह

गुड़िका मुहमें धारण करनेसे दन्त, ओष्ठ, जिह्वा, तालु और मुखरोग दूर होता है।

वृहत् खदिर वटिका।—खैर १२॥ सेर, बबूलकी छाल २५ सेर, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना गाढ़ा होनेपर बड़ी इलायची, खसकी जड़, श्वेत चन्दन, लालचन्दन, बाला, प्रियङ्गु, तमालपत्र, मजीठ, मोथा, अगरू, मुलेठी, बराहक्रान्ता, त्रिफला, रसांजन, धवईका फूल, नागेश्वर, पुण्डरिया, गेरूमिट्टी, दारुहल्दी, कटफल, पद्मकाष्ठ, लोध, बड़कीसोर, जवासा, जटामांसी, हल्दी, रास्ना, दालचीनी प्रत्येक दो दो तोले; कक्कोलफल, जायफल, जावित्री, और लौंग प्रत्येक का चूर्ण आठ आठ तोले उसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर कपूर मिलाकर मटर बराबर गोली बनाना। यह गोली मुहमें धारण करनेसे ओष्ठ, जिह्वा, दन्त और तालूगत रोग दूर होता है तथा मुख स्वादिष्ट और सुगन्ध, तथा दांत दृढ़ और जीभ साफ होती है।

बकुलाद्य तैल।—तिलतैल ४ सेर, मौलसरीका फुल, लोध, हड़जोड़, नीलझांटी, अमिलतासका पत्ता, बनतुलसी, शालवृक्षकी छाल और बबूल तथा असनकी छाल सब १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर; यह काढ़ा तथा उक्त सब द्रव्य मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मुहमें धारण करनेसे तथा नास लेनेसे हिलता हुआ दांत मजबूत होता है।

कर्णरोग।

—:०:—

भैरव रस।—पारा, गन्धक, मीठाविष, सोहागेका लावा, कौड़ी भस्म और गोलमिरच का चूर्ण प्रत्येक समभाग अदरखके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान अदरखके रसमें सेवन करनेसे कर्णरोग और अग्निमान्द्य आराम होता है।

इन्दुवटी—शिलाजीत, अभरख भस्म और लोहभस्म प्रत्येक एक एक भाग, और सोनेका भस्म चौथाई भाग एकत्र काकमाची, शतावर, आंवला और पद्मके रसकी भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। आंवलेका रस या काढ़ेके साथ सेवन करनेसे कर्णनादादि वातज पीड़ा और प्रमेह आराम होता है।

सारिवादि वटी।—अनन्तमूल, मुलेठी, कूठ, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, नागेश्वर, प्रियंगु, नीलोत्पल, गुरिच, लौंग, हर्रा, आंवला और बहेड़ा प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर अभरख भस्म और अभरख भस्मके बराबर लौहभस्म एकत्र केशुरियाका रस, अर्जुन छालका काढ़ा जौका काढ़ा, काकमाचीका रस और घुंघुचीके जड़के काढ़े को भावना दे ६ रत्ती बराबर गोली बनाना। धारोष्ण दूध शतावरका रस अथवा सफेद चन्दनके साथ सेवन करनेसे वातक कर्णरोग, प्रमेह और रक्तपित्त आराम होता है।

दीपिका तैल—महत् पञ्चमूलकी आठ अङ्गुल लकड़ीमें अथवा देवदारू कूठ और सरलकाष्ठमें तेलसे भिंगोया रेशमी वस्त्र लपेटकर जलाना। उसमे से जो तेलका बुंद गिरेका उसीको दीपिका तैल कहते हैं। यह तैल गरमकर कानमें डालनेसे तुरंत कानका दर्द शान्त होता है।

दशमूली तैल—तिल तेल ४ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा तथा एक सेर दशमूलका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें डालनेसे बहिरापन दूर होता है।

जम्बाद्य तैल—नीम, करञ्ज अथवा सरसोका तेल एक सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा लहसन, आंवला और हरताल सब मिलाकर दो पलका कल्क, यथाविधि औटाकर कानमें डालनेसे कर्णस्राव बन्द होता है।

शम्बूक तैल—सरसोंके तेल १ सेर घोंघेका मांस २ पल, पानी ४ सेर यथाविधि औटाकर कानमें डालनेसे कर्णनाली दूर होती है।

निश तैल—सरसोका तेल ४ चार सेर, धतूरेके पत्तेका रस १ एक सेर तथा हल्दी ४ तोले और गन्धक ४ तोलेका कल्क औटाकर कानमें देनेसे कर्णनाली दूर होता है।

कुष्ठाद्य तैल—तिलका तेल एक सेर, छागमूत्र ४ सेर; और कूठ, हींग बच, देवदारू, सोवा, शोंठ और सैन्धव सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें देनेसे पूतिकर्ण दूर होता है।

नासारोग।

—०:*:०—

व्योषाद्य चूर्ण—त्रिकटु, चीतामूल, तालीशपत्र, इमली, अम्लवेतस, चाभ और कालाजीरा सब मिलाकर दो पल। इलायची, तेजपत्ता और दालचीनी मिलाकर ४ तोले, पुराना गुड़ ५० पल; एकत्र औटाकर ४ आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, श्वास, कास, अरुचि और स्वरभङ्ग आराम होता है।

शिग्रतैल—सैजनकी बीज, वृहती बीज, दन्तीबीज, त्रिकट् और सैन्धवका कल्क और बेलके पत्तेके रसके साथ यथाविधि तैल औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य रोग दूर होता है।

व्याघ्रीतैल—सरसोका तेल १ सेर, पानी ४ सेर; तथा कण्ट-कारी, दन्तीमूल, बच, सैजनकी छाल, निर्गुण्डी, त्रिकटु और सेन्धव मिलाकर १६ तोलेकी कल्क; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य दूर होता है।

चित्रक हरीतकी।—चीतामूल ५० पचास पल, पानी ५० सेर, शेष १२॥ सेर; गुरिच ५० पचास पल, पानी ५० सेर शेष १२॥ सेर; दशमूल प्रत्येक पांच पांच पल, पानी ५० सेर शेष १२॥ सेर; यह तीनो काढ़ा एकत्र मिलाकर उसमें १२॥ सेर पुराना गुड़ मिलाना तथा हर्रका चूर्ण ८ सेर मिलाकर औटाना। पाकशेष में शोंठ, पीपल, मिरच, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल और जवाक्षार ४ तोले मिलाना। तथा दूसरे दिन २ सेर सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, नासारोग, कास, क्षय और अग्निमान्द्य शान्त होता है।

लक्ष्मीविलास।—अभरख भस्म ८ तोले, पारा, गन्धक, कपूर, जाविन्नी और जायफल प्रत्येक चार चार तोले, बिधारेकी बीज, धतूरेकी बीज, भांगकी बीज, बिदारीकन्दकी जड़, सतावर, गुलशकरा की जड़, बरियारेकी जड़ गोक्षुर बीज, और (निचुल) ईज्जलकी बीज प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र पानके रसमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत और पानका रसमें यावतीय श्लेष्म विकारमें प्रयोग करना।

करवीराद्य तैल—तिलका तैल एक सेर, लाल कनैलका फूल, जातीपुष्प, अशनपुष्प और मल्लिका पुष्प, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क, पानी ४ सेर, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श रोग आराम होता है।

दूर्व्वाद्य तैल—१ एक सेर दूर्व्वाघासके रससें एक पाव तैल औटाकर नास लेनेसे नासारोग और रक्तस्राव बन्द होता है।

चित्रक तैल—तिलका तैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, चीतामूल, चाभ, अजवाईन, कण्टकारी, करञ्जवीज, सेन्धानमक और अकवनका दूध सब मिलाकर एकसेर का कल्क, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श दूर होता है।

नेत्ररोग।

—:०:—

चन्द्रोदयवर्त्ती।— हरीतकी, बच, कूठ, पीपल, मिरच, बहेड़ेके गुठलीका गूदा, शङ्खनाभि और मनछाल यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाना। यह बत्ती सहतमें घिसकर आंखमें लगानेसे आंखकी खुजली, तिमिर, फूली, अर्व्वुद, अधिमांस, कुसुम (छानी) और रात्रान्धता आदि रोग दूर हो दृष्टि प्रसन्न होती है।

वृहत् चन्द्रोदय वर्त्ती—रसवत, इलायची, केशर, मनछाल, शंखनाभि, सैजनकी बीज और चीनी ; एकत्र पानीके साथ खलकर बत्ती बनाना। पूर्व्ववत अञ्जन करनेसे पूर्व्वोक्त रोग दूर होता है।

चन्द्रप्रभावर्त्ती—रसांजन, सैजनको बीज, पीपल, मुलेठी, बहेड़ेके बीजका गूदा, शंखनाभि और मनछाल यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर बर्त्ती बनाना, छायामें सूखाकर इस बर्त्तीका अञ्जन करनेसे यावतीय चक्षुरोग आराम होता है।

नागार्ज्जुनाञ्जन।—त्रिफला, त्रिकटु, मुलेठी, तूतिया, रसांजन, पुण्डरिया, वायबिड़ंग, लोध और ताम्रभस्म एकत्र ओसके पानीमें खलकर बर्त्ती बनाना। यह बर्त्ती स्त्री दूधमें घिसकर अञ्जन करनेसे तिमिर रोग, किंशुक फूलके रसमें घिसकर अञ्जन करनेसे आंखकी फूली और छाग दूधमें घिसकर अञ्जन करनेसे माड़ा दूर होता है।

विभीतकादि क्वाथ—बहेड़ा, हर्रा, आंवला, परवरका पत्ता, नीमका छाल और अडूसेकी छाल, इन सबके काढ़ेमें गूगूल मिलाकर पीनेसे चक्षुशूल, शोथ और आंखकी लाली दूर होती है।

वृहत् वासादि।—अडूसेकी छाल, मोथा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कुटकी, गुरिच, लालचन्दन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दारुहल्दी, चीतामूल, शोंठ, चिरायता, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, श्यामालता और जौ सब मिलाकर ४ तोले, पानी एक सेर, शेष आधा पाव, सवेरे यह काढ़ा पीनेसे तिमिर, कण्डू, फूली और अर्व्वुद आदि नेत्ररोग दूर होता है।

नयनचन्द्र लौह।—त्रिकटु, त्रिफला, कांकड़ाशिंगी, शठी, रास्ना, शोंठ, मुनक्का, नीलाकमल, काकोली, मुलेठी, बरियारा, नागेश्वर, कण्टकारी और वृहती सब मिलाकर दो पल, लौहभस्म, अभ्रभस्म एक एक पल एकत्र त्रिफलेका काढ़ा, तिल तेल और भीमराजके रसकी भावना दे बैरकी गुठली बराबर गोली बनाना।

त्रिफला भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे यावतीय नेत्ररोग शान्त होता है ।

महात्रिफलाद्य घृत ।— घी ४ सेर, त्रिफला, दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, यह काढ़ा, तथा भंगरैयाका रस ४ सेर, अडूसेके पत्तेका रस ४ सेर अथवा अडूसेके जड़का काढ़ा ४ सेर, सतावरका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, गुरिचका रस या काढ़ा ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, तथा पीपल, चीनी, सुनक्का, त्रिफला नीलाकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, गुरिच और कण्टकारी सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि औटाकर भोजनके पहिले मध्यमें और पीछे आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका नेत्ररोग आराम हो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है ।

शिरोरोग ।

—:※:—

शिरःशूलाद्रिवज्र रस ।— पारा, गंधक, लौहभस्म और तेवड़ी प्रत्येक एक एक पल, गूगूल ४ पल, त्रिफलाका चूर्ण दो पल, कूठ, मुलेठी, पीपल, शोंठ, गोक्षुर, बायविड़ङ्ग और दशमूल प्रत्येक एक एक तोला ; एकत्र दशमूलके काढ़ेकी भावना देना फिर घीमें खलकर १ मासे बराबर गोली बनाना । बकरीका दूध, पानी या सहतके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका शिररोग दूर होता है ।

अर्द्धनाड़ी नाटकेश्वर—कौड़ीभस्म ५ भाग, सोहागाका लावा ५ भाग, मिरच ८ भाग, मिठाविष ३ भाग, एकत्र स्तनदूधमें खलकर नास लेनेसे शिरोरोग शान्त होता है ।

चन्द्रकान्त रस—रससिन्दुर, अभरख भस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म और गंधक ; प्रत्येक समभाग एकत्र सेहुंड़के दूधमें लौह पात्रमें एकदिन खलकर मासे बराबर गोली बनाना। सहतके साथ सेवन करनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि शिरोरोग दूर होता है।

मयूराद्य घृत।—घी १६ सेर, काढ़ेके लिये एक मोरका मांस ३८ पल दशमूल (प्रत्येक तीन तीन पल) वरियारा, रास्ना और मुलेठी प्रत्येक तीन तीन पल एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतार लेना। फिर दूध ४ सेर ; तथा पुण्डरिया काष्ठ, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, मुगानी और माषोणी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शिरोरोग आदि ऊर्द्धज रोग समूह और अर्द्दित रोग आराम होता है।

षड़विन्दु तैल।—तिल तैल ४ सेर, छाग दूध ४ सेर, भंगरैयाका रस १६ सेर ; तथा रेंड़की जड़, तगरपादुका, सोवा, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दालचीनी, वायविड़ङ्ग, मुलेठी और शोंठ सब मिलाकर एक सेर का कल्क ; यथाविधि औटाकर नास लेनेसे शिरोरोगकी शान्ति, तथा शिथिलकेश, दन्तादिकी दृढ़ता और दृष्टिशक्ति की वृद्धि होती है।

महादशमूल तैल।—सरसोका तैल १६ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, नीबूका रस १६ सेर, आदीका रस १६ सेर, धतूरेका रस १६ सेर ; तथा पीपल ३ पल गुरिच, दारुहल्दी, सोवा, पुनर्नवा, सैजनकी छाल, कुटकी, करञ्ज बीज, कालाजीरा, सफेद सरसो, बच, शोंठ, चीतामूल, शठी, देवदारू, बरियारा, रास्ना, हुड़हुड़, कटफल, निर्गुण्डीका पत्ता,

चाभ, गेरूमिट्टी, पीपलामूल, सुखीमूली, अजवाईन, जीरा, कूठ, अजमोदा और बिधारेकी जड़ प्रत्येक एक एक पल; यथाविधि औटाकर शिरमें मालिश करनेसे कफजन्य शिरोरोग और बदनमें मालिश करनेसे कफजन्य दर्द और शोथ दूर होता है।

वृहत् दशमूल तैल।—सरसोंका तेल १६ सेर, दशमूल, धतूरेका पत्ता, पुनर्नवा और निर्गुण्डीपत्र प्रत्येक १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना तथा अड़सेके जड़की छाल, बच, देवदारु, शठी, रास्ना, मुलेठी; मिरच, पीपल, शोंठ, कालाजीरा, सैजनकी छाल, करञ्ज बीज, कूठ, इमलीकी छाल, जंगली सेम और चीतामूल प्रत्येक आठ आठ तोले, यथाविधि औटाकर व्यवहार करनेसे शिरःशूल, कर्णशूल और नेत्रशूल दूर होता है।

अपामार्ग तैल—अपामार्ग बीज, त्रिकटु, हल्दी, नकछिकनी का पत्ता, हींग और वायविड़ंग सब मिलाकर एक सेर और १६ सेर गोमूत्रके साथ यथाविधि ४ सेर तिल तेल औटाकर नास लेनेसे शिरकी क्रिमिका नाश होता है।

स्त्रीरोग।

—०:○:०—

दार्व्वादि काढ़ा—दारुहल्दी, रसवत, अड़ूसेके जड़की छाल, मोथा, चिरायता, बेलकीगिरी और भिलावा, इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे प्रदर रोग आराम होता है।

उत्पलादि कल्क—लालकमल की जड़, लालकपास की जड़, कनैल की जड़, लाल ओढ़उलकी जड़, मौलसरी की जड़, गन्धमात्रा, जीरा और लालचन्दन, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा चावल भिंगोया पानीसे लेनेसे रक्तमूत्र, योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल दूर होता है।

चन्दनादि चूर्ण।—लालचन्दन, जटामांसी लोध, खसकी जड़, पद्मकेशर, नागेश्वर बेलकीगिरी, नागरमोथा, चीनी, बाला, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, शोंठ, अतीस, धवईका फूल रसांजन, आम्रकेशी, जामुन की गुठली, मोचरस, नीलोत्पल, बराहक्रान्ता, छोटी इलायची, अनार की छाल; प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सहत और चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त आराम होता है।

पुष्यानुग चूर्ण।—पाठा, जामुनके गुठलीकी गिरी, आमके गुठली की गिरी, पत्थरचूर, रसांजन, अम्बष्ठा, मोचरस, बराहक्रान्ता, पद्मकेशर, केशर, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी, लोध, गेरूमिट्टी, त्रिफला, मिरच, शोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, श्योनाक छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धवईफूल, मुलेठी और अर्ज्जुन छाल सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो आनेभरसे चार आनेभर मात्रा सहत और चावल भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे, प्रदर, योनिदोष, अतिसार और अर्शरोग आराम होता है। पुष्यानक्षत्र में यह औषध प्रस्तुत और प्रयोग करना चाहिये।

प्रदरारि लौह—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर बराह-

क्रान्ता, मोचरस, बारंगी, बेलको गिरो, मोथा, धवईकाफूल, अतीस, अभ्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक का चूर्ण एक पल उसमें मिलाकर चार आनभर मात्रा कुशमूल पीसकर पानीमें मिला सेवन करनेसे प्रदर और कुक्षिशूल दूर होतो है ।

प्रदरान्तक लौह—पारा, गन्धक, वंग, रौप्य, खपरिया और कौड़ीभस्म प्रत्येक आधा तोला, लौहभस्म तीन तोले, एकत्र घीकुआर के रसमें एकदिन खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना । उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रदर रोग आराम होता है।

अशोक घृत ।—गायका घी ४ सेर, अशोकमूल की छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, जीरा २ सेर पानी १६ सेर शेष ४ सेर, अरवाचावल भिंगोया पानी ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, केशुरिया का रस ४ भर ; तथा जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, चीरकाकोली मागोनी, माषोणी, जीवन्ती, मुलेठी, पियाल सार अथवा पियाल बीज, फालसा, रसांजन (रसवत) अशोकमूल, मुनक्का और सतावर प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर ठंढा होनेपर एक सेर चीनी मिलाना, इससे प्रदर और तज्जनित विविध उपद्रव दूर होता है ।

सितकल्याण घृत ।—घी ४ सेर, गायका दूध १६ सेर ; कुमुदपुष्प, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, गोधूम, रक्तशालि धानका जड़, मागोनी, चीरकाकोली, गांभारी फल, मुलेठी, बरियारकी जड़, गुलशकरी की जड़, नीलाकमल, तालका पानी, विदारीकन्द, सतावर, सरिवन, जीरा, त्रिफला, खीरेकी बीज और केलेकाफूल प्रत्येक चार चार तोले पानी ८ सेर यथाविधि औटाकर श्वेत प्रदर रक्तप्रदर, रजोहीनता, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, वातरक्त, कामला, पांडु, जीर्णज्वर, अरुचि आदिमें प्रयोग करना ।

फलकल्याण घृत।—गायका घी ४ सेर, सतावरका रस १६ सेर, दूध १६ सेर ; मजोठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, वरियारीकी जड़, मेदा, बिदारीकन्द, चोरकाकोली, असगन्धकी जड़, अजमोदा, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, नीलाकमल, कुमुदफूल, मुनक्का, काकोली, चीरकाकोली, श्वेतचन्दन और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि पाककर सेवन करनेसे योनिदोष, गर्भदोष और प्रदरादि रोग शान्त होता है। कल्क द्रव्यमें एक भाग लक्ष्मणामूल देनेका उपदेश चिकित्सक लोग देते हैं।

फलघृत।—घी ४ सेर, दूध १६ सेर, श्वेतझिंटीमूल, पीतझिंटीमूल, त्रिफला, मुलेठी, पुनर्नवा, शुकनास, हल्दी, दारुहल्दी, रासन, मेदा और सतावर, सब मिलाकर १ सेरका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे बन्ध्यादोष, मृतवत्सा, योनिदोष और योनिस्राव आदि दूर होता है।

कुमारकल्पद्रुम घृत।—घी ८ सेर, छागमांस ५० पल और दशमूल ५० पल पानी १०० सेर शेष २५ सेर ; दूध ८ सेर, सतावरका रस ८ सेर, तथा कूठ, शठी, मेद महामेद, जीवक, ऋषभक, प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, सतावर गंभारीफल, मुलेठी, चीरकाकोली, मोथा, नीलाकमल, जीवन्ती, लालचन्दन काकोली, अनन्तमूल, श्यामालता, सफेद वरियारीकी जड़, शरफोंका की जड़, कोहड़ा, बिदारीकन्द, मजीठ, सरिवन, पिठवन, नागेश्वर, दारुहल्दी, रेणुका, लताफटकी की जड़, शंखपुष्पी, नालवृक्ष, बच, अगरु, दालचीनी, लौंग और केसर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि ताम्बा या मिट्टीके पात्रमें औटाना, ठंढा होनेपर पारा, गंधक, अभरख भस्म दो दो तोले और

सहत दो सेर मिलाना। आधा तोला मात्रा यह घी पीनेसे विविध स्त्रीरोग और गर्भदोष दूर होता है।

प्रियङ्ग्वादि तैल।—तिलतैल ४ सेर, बकरीका दूध दहीका पानी और दारुहल्दी का काढ़ा प्रत्येक चार चार सेर; प्रियंगु, पद्ममूल, मुलेठी, हर्रा, बहेड़ा, आंवला, रसवत, सफेद चन्दन, लालचन्दन, मजीठ, सोवा, राल, सैन्धव, मोथा, मोचरस, काकमाची, वेलकीगिरी, वाला, गजपीपल, पीपल, काकोली और क्षीरकाकोली सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर गन्धपाक करना यह तैल मालिश करनेसे प्रदर योनिव्यापद, ग्रहणी और अतिसार रोग आराम होता है। यह गर्भस्थापक का उत्तम औषध है।

गर्भिणीरोग।

—:०:—

एरण्डादि काढ़ा—रेंड़की जड़, गुरिच, मजीठ, लालचन्दन, देवदारू और पद्मकाष्ठ, इन सबके काढ़ेसे गर्भिणीका ज्वर दूर होता हैं।

वृहत् ह्रीवेरादि—बाला, श्योनाक छाल, लालचन्दन, वरियारा, धनिया, गुरिच, मोथा खसकी जड़, जवासा, दवनपापड़ा और अतीस इन सबका काढ़ा पीनेसे अतिसार, रक्तस्राव और सूतिका रोग दूर होता है।

लवङ्गादि चूर्ण।—लौंग, सोहागेका लावा, मोथा, धवईका फूल, वेलकीगिरी, धनिया, जायफल, सफेद राल, सोवा. अनारका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, नीलाकमल, रसवत, अभरख, बंगभस्म, बराहक्रान्ता, लालचन्दन, शोंठ, अतीस, कांकड़ा-

शिंगो खैर वाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे संग्रह ग्रहणी, अतिसार और आमरक्त आराम होता है।

गर्भचिन्तामणि रस—पारा, गन्धक, लौहभस्म प्रत्येक दो दो तोले अभरख भस्म ४ तोले, कपूर, वंग, ताम्बाभस्म जायफल, जावित्री, गोक्षुर बोज, सतावर, बरियारा और गुलशकरी प्रत्येक एक एक तोला एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, दाह और प्रदर आदि आराम होता है।

गर्भविलासरस—पारा, गन्धक और तूतिया प्रत्येक समभाग एकत्र नीबूके रसमें खलकर त्रिकटुके काढ़ेकी ३ वार भावना दे ४ रत्ती बराबर गोली बनाना, इसे गर्भिणीके ज्वरादि रोगमें प्रयोग करना।

गर्भपीयूषवल्ली रस—पारा, गन्धक, सोना, लोहा, रौप्यमाक्षिक भस्म, हरताल, बंग और अभरख भस्म प्रत्येक समभाग एकत्र ब्रह्मी, अडूसा, भंगरैया, दवनापपड़ा और दशमूल, इन सबका रस या काढ़ेकी सातवार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गर्भिणीके ज्वरादिमें देना।

इन्दुशेखर रस।—शिलाजीत, अभरख भस्म, रससिन्दूर, प्रवाल, लोहा, स्वर्णमाक्षिक भस्म और हरिताल प्रत्येक समभाग एकत्र भंगरैया, अर्ज्जुनछाल, निर्गुण्डी, अडूसा, स्थलपद्म और कुरैयाके छालके रसकी भावना दे मटर बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, कास, श्वास, शिरःपीड़ा, रक्तातिसार, ग्रहणी, वमन अग्निमान्द्य, आलस्य और दौर्बल्य दूर होता है।

गर्भविलास तैल—तिलका तेल एक सेर; बिदारीकन्द, अनारका पत्ता, कच्ची हल्दी, त्रिफला, सिंघाड़ेका पत्ता, जातीपुष्प,

सतावर, नीलाकमल और पद्म सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क; पानी ४ सेर यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे गर्भशूल और रक्तस्रावादि दूर हो पतनोन्मुख गर्भभी स्थिर होता है।

———

सूतिकारोग।

—:०:—

सूतिका दशमूल काढ़ा—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी गोक्षुर, नीलाकमल की जड़, गंधालीकी जड़, शोंठ, गुरिच और मोथाका काढ़ा पीनेसे सूतिका ज्वर और दाह दूर होता है।

सहचरादि—पद्ममूल, मोथा, गुरिच, गंधाली, शोंठ और बाला; इन सबके काढ़ेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे सूतिका ज्वर और वेदना आराम होती है।

सौभाग्यशुण्ठी।—कसेरू, सिंघाड़ा, पद्मबीज, मोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, शैलज, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, शठी, धवईफूल, इलायची, सोवा, धनिया, गजपीपल, पीपल, मिरच और सतावर प्रत्येक चार चार तोले, शोंठका चूर्ण एक सेर, मिश्री ३० पल, घी एक सेर और दूध ८ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सूतिका जन्य अतिसार ग्रहणी आदि पीड़ा शान्त हो अग्निकी वृद्धि होती है।

जीरकाद्य मोदक।—जीरा ८ पल, शोंठ ३ पल, धनिया ३ पल, सोवा, अजवाईन और कालाजीरा प्रत्येक १ पल, दूध ८ सेर, चीनी ४० पल, घी ८ पल; यथाविधि औटाकर त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, बायविड़ंग चाभ, चीतामूल, मोथा

और लौंग प्रत्येक एक एक पलका चूर्ण उसमे मिलाना। इससे सूतिका और ग्रहणी रोग दूर हो अग्निकी दीप्ति होती है।

सूतिकारि रस—पारा, गन्धक, अभरख, ताम्रभस्म प्रत्येक सम-भाग एकत्र खुलकुड़ीके रसमें मर्द्दनकर छायासे सुखा उरद बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें यह सेवन करनेसे सूतिकावस्थाका ज्वर, तृषा, अरुचि, अग्निमान्द्य और शोथ दूर होता हैं।

वृहत् सूतिकाविनोद—शोंठ एक भाग, मिरच दो भाग, पीपल ३ भाग, पांगा लवण, आधाभाग, जावित्री २ भाग और तूतिया २ भाग, एकत्र निर्गुण्डीके रसमें एक प्रहर खलकर, सहतके साथ सेवन करनेसे विविध सूतिका रोग दूर होता है।

सूतिकान्तक रस—पारा, गन्धक, अभरख भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, त्रिकटु और मीठाविष, प्रत्येक समभाग, एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सूतिकाजन्य ग्रहणी, अग्निमान्द्य, अतिसार, कास और श्वासरोग आराम होता हैं।

वालरोग।

—:०:—

भद्रमुस्तादि काढ़ा—नागरमोथा, हर्रा, नीम, परवरका पत्ता और मुलेठी, इन सबके काढ़ेमें थोड़ा सहत मिलाकर पिलानेसे बच्चोंका बुखार आराम होता है।

रामेश्वर—पारा, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक भस्म (पारा गन्धककी कज्जली तयारकर स्वर्णमाक्षिक भस्म मिलाना) प्रत्येक आधा तोला यथाक्रम केशुरिया, भंगरैया, निर्गुण्डी, पान, काकमाची, गिमा, हुड़हुड़, शालिंच और खुलकुड़ीके रसमें एक एक दिन भावना दे,

उसमें ४ आनेभर गोलमिरच का चूर्ण और ४ आनेभर सफेद अपराजिताका चूर्ण मिलाना। सरसो बराबर गोली बना बालकोंके ज्वरादि रोगोंमें प्रयोग करना।

बालरोगान्तक रस—पारा, गन्धक प्रत्येक आधा तोला, स्वर्ण-माक्षिक २ मासे एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर केशुरिया, भंगरैया, निर्गुण्डी, काकमाची, गिमा, हुड़हुड़ शालिंच और खुलकुड़ीके रसकी एक एक दिन भावना देना, फिर सफेद अपराजिता की जड़ दो मासे और मिरच दो मासे मिलाकर सरसो बराबर गोली बनाना। यह बालकके ज्वर और कास आदि रोगोंमें उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना।

कुमारकल्याण रस—रससिन्दूर, मुक्ता, सोना, अभरख, लोहा और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समभाग; घिकूआरके रसमें खलकर मूंग बराबर गोली बनाना। बालकके उमरका विचार कर एक आधी गोली दूध और चोनीमें मिलाकर सेवन करानेसे ज्वर, श्वास, वमन, सुखडी, ग्रहदोष, स्तन नही पीना, कामला, अतिसार और अग्निविकृति आराम होती है।

दन्तोद्भेदगदान्तक।—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, अजमोदा, हल्दी, मुलेठी, देवदारू, दारुहल्दी, बायविड़ंग, बड़ी इलायची, नागेश्वर, मोथा, शठी, कांकड़ाशिंगी, कालानमक, अभरख भस्म, शंखभस्म लौहभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह पानीमें घिसकर दांतमें लगानेसे तथा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे दन्तोद्गमका ज्वर, अतिसार और आक्षेप आदि रोग आराम हो दांत जल्दी निकलता है।

लवङ्ग चतु:सम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागेका लावा प्रत्येक समभाग; एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा चीनी और सहतके साथ चटानेसे आमातिसार और तज्जनित शूल शान्त होता है।

दाड़िम्बचतु:सम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागेका लावाप्रत्येक समभाग; एकत्र अनार फलके भीतर भर मिट्टीका लेपकर पुटपक्क करना। आधी रत्तीसे २ रत्तीतक मात्रा बकरीका दूध या पानीके साथ सेवन करानेसे बालकोंका उदरामय दूर होता है।

धातक्यादि चूर्ण—धवईफूल, बेलकोगिरी, धनिया, लोध, इन्द्रयव और बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा सहतके साथ सेवन करानेसे बालकोंका ज्वरातिसार और वमन दूर होता है।

बालचतुर्भद्रिका चूर्ण—मोथा, पोपल, इलायची और कांकड़ाशिंगी प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर पूर्व्ववत् मात्रा सहतके साथ सेवन करानेसे ज्वरातिसार, श्वास, कास और वमन दूर होता है।

बालकुटजावलेह—कुरैयाके जड़की छाल ८ तोले, पानी एक सेर, शेष एक पाव, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर अतीस, अम्बष्ठा, जीरा, बेलकोगिरी, आमके गुठलीका गूदा, सोवा, मोथा और जायफल प्रत्येक का चूर्ण चार चार आनेभर उसमें मिलाना। यह उपयुक्त मात्रा चटानेसे बालक का आमशूल और रक्तभेद दूर होता है।

वालचाङ्गेरी घृत।—घी ४ सेर, चौपतियाका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा कयेथ, त्रिकटु, सैन्धव, बराहक्रान्त, नीलोत्पल, बाला, बेलकोगिरी, धवईफूल और मोचरस सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर उपयुक्त

माता दूधमें मिलाकर पिलानेसे बालक का अतिसार और ग्रहणी रोग दूर होता है।

कण्टकारी घृत।—घी ४ सेर, कटेली, वृहती, बारंगी और अडूसेकी छाल प्रत्येक का रस या काढ़ा चार चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा गजपीपर, पीपल, मिरच, मुलेठी, वच, पीपल, जटामांसी, चाभ, चीतामूल, लालचन्दन, मोथा, गुरिच, सफेद चन्दन, अजवाईन, जीरा, बरियारा, शोंठ, मुनक्का, अनारकी छाल और देवदारू सब मिलाकर एक सेरका कल्क; यथाविधि औंटाकर उपयुक्त मात्रा दूधके साथ सेवन करानेसे बच्चोंका श्वास, कास, ज्वर, अरूचि, शूल और कफको शान्ति तथा अग्निकी वृद्धि होती हैं।

अश्वगन्धा घृत—घी ४ सेर, दूध ४० सेर असगन्धका कल्क एक सेर यथाविधि औंटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे बालक पुष्ट और मोटा होता है।

कुमारकल्याण घृत।—घी ४ सेर, कटेली ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, दूध १६ सेर; शंखपुष्पी, चाभ, ब्रह्मी, कूठ, त्रिफला, मुनक्का, चीनी, शोंठ, जीवन्ती, जीवक, बरियारा, शठी, जवासा, बेलकी गिरि, अनारका छिलका, तुलसी, सरिवन, पुष्करमूल, मोथा अभावमें कूठ, छोटी इलायची, गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; यथाविधि औंटाकर पूर्व्ववत् मात्रा सेवन करानेसे बालक का देह पुष्ट, अग्निवृद्धि और बल बढ़ती हैं।

अष्टमङ्गल घृत—घी ४ सेर, तथा वच, कूठ, ब्रह्मीशाक, सफेद सरसो, अनन्तमूल, सैन्धव और पीपल सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर; यथाविधि औंटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे ग्रहावेशजनित पीड़ा दूर होती है।

वैद्यक-शिक्षा।

चतुर्थ खण्ड।

विष-चिकित्सा।

विषके प्रकार और भेद—साधारणतः स्थावर और जङ्गम भेदसे विष दो प्रकार का है। उद्भिज विष का मूल, कन्द, पत्र, फूल, फल, छाल, दूध, रस और सार आदि पदार्थको तथा दारमुज और संखिया आदि धातुविष का स्थावर विष और प्राणीविषको जङ्गम विष कहते हैं।

स्थावर विषके भिन्न भिन्न लक्षण।—स्थावर विषमें विषका मूल, अयथा रीतिसे शरीरमें जानेसे शरीरमें लाठीसे मारने को भांति दर्द प्रलाप और मोह उत्पन्न होता है। विषके पत्रसे शरीरमें कम्प और श्वास होता है। फलसे अण्डकोष में शोथ, सर्व्वाङ्गमें जलन और आहार में अरुचि होती है। छाल, रस और सार विष खानेसे मुखमें दुर्गन्ध, शरीरका रूखापन, शिरमें दर्द और कफस्राव होता है। दूधसे मुहसे फेन निकलना, शरीरमें भारीपन और दस्त होता है। धातुविषसे छातीमें दर्द, मूर्च्छा और तालुसे जलन होता है। ये सब प्रायः जल्दी प्राणनाशक नहो है पर क्रमशः अस्वस्थता पैदाकर कालान्तरमे प्राण लेता है।

जंगम विषके लक्षण ।—जंगम विषमें फनवाले सांप का काटा हुआ स्थान कृष्णवर्ण और वह मनुष्य वातजनित विविध पीड़ासे पीड़ित होता है। मंडली सर्प अर्थात् गोहुअन सांपका काटा हुआ स्थान पीतवर्ण और कोमल शोथयुक्त तथा पित्तजनित विविध उपद्रव उपस्थित होता है। राजिल अर्थात् रंगीन और लम्बी रेखावाला सर्प काटनेसे काटे हुए स्थानमें कठिन, चटाचटा और पांडुवर्ण शोथ पैदा होता है तथा क्षत स्थानसे स्निग्ध और गाढ़ा रक्तस्राव और नानाप्रकारके कफजनित उपद्रव उपस्थित होते हैं।

अजीर्ण रोगी, पित्तविकारी, आतपार्त्त, बालक, वृद्ध, क्षुधार्त्त, क्षीण, क्षतरोगी, प्रमेह और कुष्ठरोगी, गर्भिणी, रूक्ष और दुर्बल व्यक्तिको सर्प काटनेसे थोड़ेही देरमें विपन्न हो जाता हैं।

सर्पदंशनकी सांघातिक अवस्था ।—पीपल वृक्षके नीचे, श्मशानभूमि में, देवके टीलेपर, या चौराहेपर सांप काटेतो उस रोगीका जीना कठिन है। इसीतरह सबेरे, शामको और भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिकानक्षत्र में सर्प काटनेसे भी रोगीकी मृत्यु निश्चय जानना। मर्म्मस्थानमें काटनेसे अथवा जिस रोगीके शरीर में अस्त्रसे काटनेपर भी खून नही निकलता अथवा लता आदिसे जोरसे मारनेपर भी दाग नही पड़ता, किम्बा ठंढे पानीका छींटा देनेसे रोमांच नही होता, जिसका मुह टेढ़ा हो गयाहै, केश धरके खींचनेसे केश उठ आता है, गरदन झुक गयी हैं, हनु अर्थात् चहुआ बैठ गया है, काटे हुए स्थानमें लाल या काले रंगका शोथ हो, मुहसे लारकी धार निकलने लगे, अथवा मलद्वार या मुह दोनो रास्तेसे लार या खून निकले,

ऐसे रोगीको चिकित्सा विफल होती है। काटे हुए स्थानमें चार दांत गड़े हुए चिन्ह दिखाइ देती वहभी असाध्य जानना।

भिन्न विषप्रकोपके लक्षण।—बिच्छू काटनेसे अत्यन्त जलन और सूई गड़ानेकी तरह दर्द होती है। तथा विष अति शीघ्र उर्द्ध शरीर में चढ़कर अन्तमें काटे हुए स्थानमें आकर रहता है। हृदय, नासिका, चक्षु और जिह्वा आदि स्थानोमें काटनेसे काटे हुए स्थानमें घाव हो क्रमशः मांस गलकर गिरता है तथा रोगी दर्दकी तकलीफसे व्याकुल हो मृत्यु मुखमें जा गिरता है। मेढ़क सिर्फ एक दांतसे काटता है, उसके काटनेसे रोगीका प्यास, निद्रा, वमन, वेदनायुक्त शोथ और फुसरो पैदा होती है। मूषिकके शुक्रमें विष रहता है इससे उसका शुक्र शरीर में लगनेसे विषकी क्रिया प्रकाश होती है। सिवाय इसके अन्य जातिके मुषिकके भी काटनेसे विष फैलता है। मूषिक काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव होता है, शरीर में गोल शोथ पदा होता है तथा ज्वर, चित्तचाञ्चल्य, लोमहर्ष और सर्व्वाङ्ग में जलन होती है। किसी किसी मुषिकके काटनेसे मूर्च्छा शरीरमें मुषिक की तरह काला-शोथ, बधिरता, ज्वर, मस्तक भारी होना, शरीरकी विवर्णता, मुखसे लार और रक्तस्राव होते देखा गया है। ऐसे मुषिक के काटनेसे रोगीका जीना कठिन है। लुता अर्थात् मकड़ीके काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव और क्लेदयुक्त होता है। तथा त्रिदोषजनित ज्वर, अतिसार, दाह, फुड़िया, शरीरमें नील और पीतवर्ण गोल चकता, कोमल स्पर्श और गतिशील शोथ पैदा होता है। अन्यान्य जीवोंके काटनेसे जलन शोथ और दर्द आदि विषके लक्षण प्रकाशित होता है।

उन्मत्त शृगालादिके काटने का विष।—पागल सियार या कुत्ता आदि जीवके काटनेसे घावसे काले रङ्गका रक्त-स्राव और स्पर्शशक्तिकी अल्पता होती है। ये विष शरीरमें अधिक दिनतक रहनेसे क्रमश: ज्वर होता है तथा अन्तमें रोगी पागलका तरह होकर काटे हुए जीवकी तरह स्वर तथा उसके कार्य्यादिका अनुकरण कर मृत्युको प्राप्त होता है। तथा रोगी पानी या दर्पण में काटे हुए जीवको देखनेसे किम्बा पानी देखनेसे अथवा पानीका नाम सुननेसे भयप्राप्त होता, उसकी मृत्यु निश्चय जानना। पागल सियार आदिका विष बहुत दिनतक शरीर मे गुप्त रहकर एकाएका प्रकुपित हो सांघातिक हो जाता है; काटनेके एक या दो वर्ष बादभी बहुतोंको उन्माद और जल-त्रासादि लक्षण उपस्थित हो मृत्यु होते देखा गया है।

हीनवीर्य्य विष।—हीनवीर्य्य विष शरीरमें जानेसे, एकाएकी प्राणनाश नहीं होता, किन्तु कफके साथ मिलकर शरीर में रहता है तथा क्रमश: मलकी तरलता, शरीर विवर्णता, मुखकी दुर्गन्ध, विरसता, पिपासा, भ्रम, वमन और स्वरकी विकृति ये सब लक्षण प्रकाश होते है। यह विष आमाशय में रहनेसे कफ और वातजनित नानाप्रकार के रोग उत्पन्न होता है तथा केश और शरीरके लोम झड़ जाते है। रस धातुगत होनेसे आहार में अरुचि, अग्निमान्द्य, शरीरमें वेदना दुर्व्वलता, ज्वर, वमनवेग, शारीरिक भारबोध, रोमकूप रोग, मुखकी विरसता तथा अकालमें, चर्म्मकी शिथिलता और केश सफेद होता हैं। रक्तगत होनेसे कुष्ठ, विसर्प, फुड़िया, प्लीहा, रक्तपित्त, न्यच्छ, व्यङ्ग आदि रोग पैदा होता है। मांसगत विषसे अधिमांस, मांसार्व्वुद, अर्श, अधि-

जिह्व और उपजिह्व आदि पीड़ा होती है। मेदोगत विषसे ग्रन्थि, कोषवृद्धि, मधुमेह, स्थौल्य और अतिशय पसीना होता है। अस्थिगत होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, हड्डीमें दर्द और कुनख आदि रोग पैदा होते है। मज्जागत विषमें अन्धकार दर्शण, मूर्च्छा, भ्रम, सन्धिस्थान में भारबोध और नेत्राभिष्यन्द पैदा होता है। शुक्रगत में क्लीवता, शुक्राश्मरी और शुक्रमेह आदि रोग प्रकाश होता है। सिवाय इसके किसी किसीको ऐसे विषसे उन्माद भी होता है।

शरीरस्थित दूषित विष ठण्ढो हवा चलनेसे और बदरीले दिनोंमें प्रायः कुपित होता है, उसवक्त पहिले निद्राधिक्य, शारीरिक गरुता, शिथिलता, जृम्हा रोमाञ्च और अङ्गमर्द आदि पूर्व्वरूप प्रकाश हो फिर सुपारी खानेकी तरह मत्तता, अपरिपाक, अरुचि, बदनमें गोल फुडियोंका निकलना, मांसक्षय, हाथ, पैरमें शोथ, मूर्च्छा, बमन, अतिसार, श्वास, पिपासा, ज्वर और उदर वृद्धि आदि रोग प्रकाश होता हैं।

अहिफेन विष—अधिक अफीम खानेसे सर्व्वाङ्गमें अत्यन्त जलन, ब्रह्मरन्ध्र फटजानेकी तरह दर्द सर्व्वाङ्गका टूटना उदराध्मान, मोह और भ्रम आदि लक्षण प्रकाशित हो रोगीकी मृत्यु होती है।

सर्पदंशन चिकित्सा।— हाथ या पैरमें सांप काटेतो तुरन्त काट हुए स्थानके चार अङ्गुल उपर मजबूत रस्सीसे कसकर बांधना। इससे रक्त सञ्चालन बन्द हो विष सब शरीरमें नहो फैलता। फिर काटे हुए स्थानको चीरकर खून निकालना। मुखके किसी स्थानमें कोई प्रकारका घाव न होतो, चुसकर खून निकालना। यह न हो सकेतो शृङ्ग लगाना या एक छोटी कटोरी या गिलास में स्पिरिट जलाकर वह गिलास घावके मुहपर रखकर

दवाना, इससे खून निकल जायगा, फिर आगमें लोहा गरम कर घावको जलाना, हाथ पैरके सिवाय और स्थानोमें बांधनेका सूबीता नहो है, ऐसे स्थानमें सर्प काटतेहो उस स्थानसे खून निकाल कर जलाना चाहिये इससे भी उपकार होनेको आशा है। विष सब देहमें फैल जाय तो वमन कराना चाहिये, कालिया कंड़ाकी जड़का नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। ईशलांगला की जड़ पानीमें पीसकर नास देना। नाक, आंख, जीभ और कंठरोध होने वालोंकू, शर्ब्बती नीबू और लताफटकी आदि पीस कर नास देना। दृष्टिरोध होनेसे दारुहल्दी, गोलमिरच, पीपल, शोंठ, हल्दी कनेल, करंज और तुलसी बकरीके दूधमें पीसकर आंखमें अञ्जन करना। जयपाल बीजकी गूदाको नीबूके रसकी २१ बार भावना दे बत्ती रखना, यह बत्ती मनुष्यके लारमें घिसकर अञ्जन करनेसे सांपका काटा मनुष्य बेहोश हो जानेपर भी होशमें आता है। सैजनको बीज को शिरीष फूलके रसको सात दिन भावना दे नस्य अञ्जन और पानमें प्रयोग करनेसे सर्पविष शान्त होता है। तेवड़ीकी जड़, दन्तीमूल, मुलेठी, हल्दी दारु-हल्दी, मजीठ, अमिलतासका गूदा, पांचोनमक और त्रिकटु यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण सहत में मिलाकर १५ दिनतक गौके सिंगमें ना, फिर बाहर निकाल चार आनेभर अथवा अधिक मात्रा दूध, घी और सहतके साथ सेवन कराना। इसका लेप और नासभी विशेष उपकारी है।

फनवाला सांप काटेंतो निर्गुण्डी की जड़, अपराजिता और हाफारीड़ी का काढ़ा पिलाना। मंडली सर्प काटे तो सहत मुलेठी, जीवक ऋषभक, चीनी गाम्भारी और बड़के टूसेका काढा पिलाना। राजिल सर्प काटे तो मिरच, पीपल, शोंठ

अतीस, कूठ, झोल. रेणुक, कुंभो और कुटकीके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलाना। गृहधूम, हल्दी, दारूहल्दी और कटसरैया को जड़के काढ़ेमें घी मिलाकर पीनेसे सब प्रकारका सर्पविष दूर होता है। हुड़हुड़की जड़, ८।१० गोलमिरच के साथ पानीमें पीसकर पीनेसे सर्पविष दूर होता है, यह दवा पीनेके थोड़ी देर बाद थोड़ी फिटकिरी मिलाया पानी पिलाना चाहिये, यदि वमन हो जायतो विषका ह्रास नहीं हुआ समझना तब फिर वही औषध पिलाना चाहिये। हाथोसुंड़ को जड़ और भुईचम्पेकी जड़ सेवन करनेसे भी सर्पविष दूर होता है।

वृश्चिक दंशन में।—बिच्छू काटनेसे काटे हुए स्थानमें बार बार तार्पिनका तेल मालिश करना। किम्बा पत्थरका कोयला घिसकर लेप करना। गायका घी और सैन्धव लवण एकत्र गरम कर लेप करनेसे किम्बा गोमय गरम कर लेप करनेसे भी वृश्चिक विष दूर होता है। काली अरूई का लवाब मालिश करनेसे वृश्चिक विष दूर होता है। गुड़का पसीजा हुआ रस लगानेसे भी वृश्चिक काटनेको जलन दूर होती है। मेढ़कके विषमें पहिले खून निकालकर शिरीष बीज सेहुंड़के दूधमें पीसकर लेप करना। मूषिकके विषमें भी पहिले खून निकालकर फिर गृहधूम, मजीठ, हल्दी और सेंधानमक एकत्र पीस गरमकर लेप करना। अथवा अकवन को जड़ पीसकर लेप करना, या दालचीनी और शोंठ का समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करना। मकड़ेके विषमें लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, पाटला, निर्गुण्डी, स्वर्णचीरी, कुंभी, शिरीष, बाला और अनन्तमूल, प्रत्येक समभाग, कूठ २ भाग एकत्र लिसोड़ा वृक्षके रसमें पीसकर लेप करना। अपराजिता, अर्जुनछाल, कूठ, लिसोड़ा, अश्वत्थ, बड़, पाकुर, गुल्लर

और वेतसकी छाल, इन सबका काढ़ा पीनेसे मकड़ा और कीट विष दूर होता है। कच्चे केलेका दूध रोज ३।४ बार लगानेसे मकड़ेका विष दूर होता है। कच्ची हल्दी दूधमें पीसकर मर्द्दन करनेसे भी गरल दूर होता है। बच, हींग, वायविड़ंग, सेंधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, शोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे यावतीय कीटविष दूर होता है।

पागल कुत्ता और शियार काटेकी दवा।—

पागल कुत्ता या शियारका काटा हुआ स्थान चीरकर खून निकालना फिर वह स्थान आग, चार या गरम घीसे जलाना। तथा रोगीको पुराना घी पिलाना अथवा धतुरेकी जड़ किम्बा कुचिला एक या दो रत्ती वजन खिलाना। श्वेतपुनर्नवा और धतुरेकी जड़ समभाग एकत्र सेवन कराना उपकारी है। नियमित रूपसे भांग नित्य पीनेसे भी लाभ होता है। पारा, गन्धक, कान्तलोह प्रत्येक एक एक तोला, अबरख दो तोले यथाक्रम इन्द्रायण, वृहती ब्राह्मी, नीलाकमल, सतावर गोली बनाकर ठण्ढे पानीमें इसे सेवन कराना। कंड़ेकी राख अकवनके दूधमें भिंगोकर धूप सुखा नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। कुत्ता काटे हुए स्थानमें सेहुंड़के दूधमें शिरीषकी बीज घिसकर लेप करना। या चावल पीसकर उसके भीतर मिषलोम भरकर सेवन कराना।

विषाक्तद्रव्य भक्षण चिकित्सा।— विष, विषाक्त

द्रव्य या अफीम खानेपर तुरन्त कैकराना चाहिये तुतिया भिंगोया पानी श्रेष्ठ वमनकारक है। विष कण्ठगत हो तो कच्चा कयेथ, चीनी और सहतके साथ चटाना। आमाशयगत हो तो

कुम्भीका चूर्ण चीनी और सहत मिलाकर चटाना। पक्वाशयगत विषमें पीपल, हल्दी, दारुहल्दी और मजीठ, गोलोचनके साथ पीसकर पिलाना। रक्तगत विषमें लिसीडेकी जड़, छाल और फुनगी बैरकी जड़, छाल और फुनगी किम्बा गुल्लर की जड़, छाल और फुनगी अथवा अपराजिताकी जड़, छाल फुनगी का काढ़ा पिलाना। मांसगत विषमें खादिरारिष्ट सहतके साथ और कुरैया की जड़ पानीके साथ सेवन कराना। विष सर्व्वदेहगत होनेसे और कफका वेग अधिक हो तो बरियारा, गुलशकरी, मुलेठी, महुयेका फल, कुम्भी, पीपल, सोंठ और जवाक्षार यह सब द्रव्य मखनमें मिलाकर बदनमे मालिश करना।

दूषित विषार्त्त रोगीको पहिले स्नेहपान करा वमन, विरेचन और शोधन कराना चाहिये। पीपल, खसकी जड़, जटामांसी, लोध, छोटी इलायची, सौवर्च्चल नमक, मिरच, बाला, बड़ी इलाईची और स्वर्णगेरिक; इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलानेसे दूषित विष शान्त होता है।

शास्त्रीय औषध।—मेनसिल, हरताल, मिरच, दारमुज, हिंगुल, अपामार्गकी जड़, धतुरेकी जड़, कनैलकी जड़ और शिरीषकी जड़ प्रत्येकका समभाग चूर्ण को रुद्राक्ष और अपराजिताके रसमें १०० बार भावना दे मूंग बराबर गोली बनाना। यह गोली सेवन करनेसे सांपके काटेसे या विषपानजनित बेहोशी दूर होती है। इस औषधिका नाम भीमरुद्र रस है। तालमखाने की जड़ छतिवनके जड़की छाल और कूठ प्रत्येक एक एक तोला, दारमुज दो आनेभर; यह सब द्रव्य अकवनकी जड़के काढ़ेमें पीसकर सरसो बराबर गोली बनाना। कुलिकादि नामक इस गोलीको सेवन करनेसे विषसे अधमरा हुआ मनुष्यभी

पुनर्जीवन पाता है। इस औषध से दुरारोग्य विषम ज्वरमें भी विशेष उपकार होता है। घी १ सेर, अपामार्गका या चिरचिरी रस ४ सेर तथा अनारका छिलका, कूठ, छोटी इलायची, तथा बड़ी ईलायची, कांकड़ाशिंगी, शिरीषमूलकी छाल, मिठाविष, बच, कोदारिया, कडूलिया, पालिधा छाल, लालचन्दन, कुम्भी और मुरामांसी सब मिलाकर एक पावका कल्क, पानी न दे खाली कल्क मिला घी औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यावतीय विषदोष दूर होता है। यह भी विषम ज्वर नाशक है। इसको शिखरा घृत कहते है। घी ४ सेर, तथा हरीतकी गोलोचन, कूठ, अकवन का पत्ता, कमलकी जड़, बेतसमूल, मिठाविष, तुलसी का पत्ता इन्द्रयव, मंजीठ, अनन्तमूल, शतमूली, सिंहाड़ा, बराहक्रान्ता और पद्मकेशर सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटा तथा छानकर ४ सेर सहत मिलाना। मृत्यु-पाशच्छेदी नामक यह घृतभी सब प्रकारका विषदोष निवारक है।

शिरीषछाल ६। सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, इस काढ़ेमें २५ सेर गुड़ मिलाकर उसमें पीपल, प्रियंगु, कूठ, इलायची नील की जड़, नागेश्वर, हल्दी, दारुहल्दी और शोंठ प्रत्येक का आठ आठ तोले चूर्ण मिलाना। एक महीना मुह बन्दकर रखने बाद उपयुक्त मात्रा सेबन करनेसे विषदोष दूर होता है। इसको शिराषारिष्ट कहते है।

विषकी चिकित्सामें जब रोगी के वातादि दोष और रस, रक्तादि धातु प्रकृतिस्थ हो, अन्नमें रुचि हो, स्वाभाविक रीतीसे मलमूत्र निकले, वर्ण, इन्द्रिय, चित्त और चेष्टा आदिमें प्रसन्नता दिखाई दे तब रोगी निर्विष हुआ है जानना।

पथ्यापथ्य—विष नष्ट हो जानेपर रोगीको थोड़े दिन पथ्यसे रखना अत्यन्त आवश्यक है। विषकी चिकित्सा के समय अति लघु

पथ्य खानेको देना। कभी सोने न पावे; निद्रा दूर करनेके लिये चाह काफी आदि पिलाना अच्छा है। पर विष दूर हो जानेपर पुराने चावलका भात, घीकी तरकारी आदि और दूध खानेको देना। सहनेपर बहती नदीमें स्नान करना अच्छा है। तेल, मछली, कुरथी, खट्टा और विरुद्ध द्रव्य भोजन तथा क्रोध, भय, परिश्रम और मैथुन अनिष्टकारक है।

दुर्गम अन्धकारादि स्थानमें कोई वस्तु गड़ जानेसे किसी जन्तुके काटनेकी आशंका होती है तथा इस आशंकासे ज्वर, सर्दी, मूर्च्छा दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार आदि उपस्थित होते हैं।

इस शंका विषमें रोगीको सान्त्वनाजनक और आनन्दजनक बाक्यादिसे सन्तुष्ट रखना। पूर्व्वोक्त सुपथ्य भोजन कराना और किस्मिस् क्षीरकाकोली और मुलेठी का चूर्ण चीनी और सहत के साथ सेवन कराना। जीवन्ती, वार्ताकु, सुषनी, चुहाकानी, पथरी और परवर इन सबको शाक खानेसे शंकाविषमें विशेष उपकार होता है।

जलमज्जन और उद्बन्धनसे हुए मुमूर्षु को चिकित्सा।

—:०:—

जलमज्जनमें कर्त्तव्य।—पानीमें डुबे हुए व्यक्तिको पानीसे तुरंत उठाना तथा उसका शरीर गरम और अंग शिथिल हो तो चिकित्सा करना, नहीं तो चिकित्सा वृथा होती है। पहिले रोगीको उलटा टांगकर मुखसे पानी और लार निकालना। फिर श्वास ठीक करनेके लिये रोगीको एकबगल सोलाकर तेज

सुंघना सुंघाना, किम्बा नौसादर और चूना एकत्र मिलाकर नाकके पास रखना इससे यदि श्वास प्रवर्त्तित न हो तो अंगुली, पक्षीका पंख या और कोई वस्तुसे नाकमें सुरसुरी देना, इससे छींक या के हो श्वास ठिकाने आवेगी। ये सब क्रिया विफल होनेसे रोगी को औंधा सुलाकर छातीके नीचे एक तकिया रख उंचा करना तथा फिर एक बगला सुलाना और दोनो पांजर हाथसे दवाकर धरना। इसी तरह एक पल समयमें ७८ बार करना। अथवा रोगीको चित्त सुलाकर पीठके नीचे तकिया रख थोड़ा ऊंचा करना तथा दूसरा आदमी रोगीकी जीभ धरकर खींचे और आप रोगीके शिरहाने बैठकर उसके दोनो हाथ बार बार उठाकर छातीपर रख। रोगीको जीभ न खीचकर उसके मुहमें फूंक दिलाना तथा आप वैसही दोनो हाथ बार बार उठाने और छातीपर रखनेसे भी चलेगा। शीघ्र शीघ्र बार बार यह प्रक्रिया करनेसे यदि श्वास चले तो रोगीका हाथ और पैर नीचेसे उपरको रखना तथा गरम बालकी पोटलीसे हाथ पैर सेंकना।

उक्त क्रियासे रोगी होशमें आनेपर बहुत कम मात्रा सञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डि शराब पानीमें मिलाकर पिलाना तथा जिसमे सुखकी निद्रा हो ऐसा उपाय करना चाहिये। चिकित्साके वख्त रोगीके पास आदमी को भीड़ कदापि न रहे। रोगीके शरीरमें अच्छी तरह हवा लगे ऐसा उपाय करना आवश्यक है। कुछ ताकत और आराम होनेपर थोड़ा गरम दूध पिलाना। फिर ८।१० दिनतक परहेज और सुपथ्यसे रखना।

उद्बन्धनमें कर्त्तव्य।—उद्बन्धनसे हुआ मुमूर्षु व्यक्तिके गलेकी रस्सी जल्दी काटकर पूर्व्वोक्त क्रियाओंसे श्वास प्रवर्त्तित करना, तथा गलेमें गरम घी आहिस्ते आहिस्ते मालिश करना।

मुख और छातीमें बराबर ताड़के पंखेसे हवा करना। होशमें आने पर पूर्व्ववत् सुरापान और आहारादि व्यवस्थाकर थोड़े दिनतक पथ्यसे रखना।

सर्द्दीगरमीकी चिकित्सा।

—:०:—

कारण और लक्षण।—बहुत देरतक धूपमें या आगके पास बैठना, किम्बा बहुत भीड़ में रहना अथवा अधिक चलना या मिहनतसे थक जानेके बादही स्नान, जलपान किम्बा और कोई ठंढी क्रिया करनेसे पहिले बहुत प्यास और बार बार पिसाब की इच्छा होती है। फिर क्रमशः शरीर उष्ण आंखें लाल और आंखको पुतली छोटी हो बड़े जोरसे बार बार छाती धड़कती है। नाड़ीका वेग पहिले तेज हो पीछे विषम और दुर्व्वल होता है श्वास जोरसे बार बार चलती है। तथा अन्तमें रोगी बेहोश होजाता है। इसको चलित भाषामें सर्द्दीगरमी कहते है, यह आशु प्राणनाशक है। इससे यह पीड़ा होतेही चिकित्सा करना चाहिये।

चिकित्सा।—रोगी बेहोश होतेही हवादार घरमें चित्त सुलाना। रोगीके पास बहुत आदमी की भीड़ होना अच्छा नहो। शिर रुख और छाती में ठंढे पानीका छीटा देना। श्वास रोध होनेसे पूर्व्वोक्त उपायसे श्वास प्रवर्त्तित करना। जयपाल घटित औषध या कोई दूसरी तेज विरेचक दवासे विरेचन कराना अच्छा है पर वमनकारक औषध देनेसे अनिष्ट होगा। जलदी होशमें न आनेसे सरसोका तेल, शोंठ और लाल मिरचा पानीमें पीसकर उसकी पट्टी गरदन पर लगाना। ये सब क्रियाओंसे रोगी होशमें

आनेपर और श्वास प्रवर्त्तित होनेपर ठंढा शर्ब्बत और दूध पिलाना उचित है। रोगी दुर्ब्बल होतो पानी मिलाकर थोड़ी शराब पिलाकर सुलाना। अच्छीतरह आराम होनेपर हलका आहार खानेको देना। तथा ४।५ दिनतक विशेष सावधानीसे रखना चाहिये।

वृक्ष आदि ऊंचे स्थानसे गिरजानेपर अथवा पासही कहीं वज्रपातसे उसको जो या डरसे अभिभूत हो बेहोश होनेपर भी सर्द्दीगरमी की तरह चिकित्सा करना।

आतप व्यापद (धूप की लू) की चिकित्सा।

——:०:——

लक्षण।—बहुत देरतक सूर्य्यकी प्रखर किरण शरीर में लगनेसे, तृष्णा, बदनका रूखापन, भ्रम, आंखे लाल होना, मूर्च्छा, नाड़ीके गतिकी विषमता, निश्वास प्रश्वास में कष्टवोध, हाथ पैरका खिंच जाना, वमन और मूत्रवेग आदि लक्षण तथा किसी किसीको वुखार भी होते देखा गया है। चलित भाषामें इसको "लू" लगना कहते है। इस रोगमें यदि रोगी हाथ पैर पटके, तथा हाथ पैर नीला हो जाय और नाड़ीको गति रह रहकर लोप हो जाया करें तो उसकी जान बचना कठिन है।

कर्त्तव्य।—यह रोग उपस्थित होतेही बदनका कपड़ा तुरंत निकाल कर छायायुक्त, जनताशून्य और हवेदार घरमें रोगी को सुलाकर ताड़के पंखेको पानीमें भिंगो लेना, इससे हवेके साथ छोटे छोटे पानीके बूंद शरीरमें पड़नेसे अधिक उपकार होता है। चन्दन मिलाया पानी बार बार थोड़ा थोड़ा पिलाना, एक

माससे अधिक पानी पिलानेसे भी अनिष्ट होता है। एकखण्ड वस्त्र ठण्ढे पानीमें भिंगो निचोड़कर रोगी को ओढ़ाना। आराम होनेपर सहस्र धार या झरनेके नीचे स्नान कराना। मूर्च्छा होतो एकखण्ड कम्बल या फलालेन गरम पानीमे भिंगो निचोडकर उसके उपर तार्पिनके तेलका अच्छी तरह छोटा देना फिर गर्दनमें लपेट कर उसके उपर केलेका पत्ता या सूखा कपड़ा बांध देना। थोड़ी देर बाद रोगी होशमें आकर तकलीफ से व्याकुल होगा तब गर्द्दनकी पट्टी खोल डालना चाहिये। देह शीतल और नाड़ी व्यतिक्रम होनेसे स्वेद प्रदान और मृतसञ्जीवनी सुरा पिलाना चाहिये।

शास्त्रीय औषध।— चीनी १६ तोले, घिसा श्वेत चन्दन १ तोले, बड़े नीबूका रस ८ तोले और सौंफका तेल आधा तोला और शतमूलीका रस ८ तोला यह सब द्रव्य दो सेर पानीमें मिलाकर थोड़ा थोड़ाकर पिलानेसे तकलीफ दूर होती है। त्रिफलाका पानी, मूर्च्छा रोगोक्त तैलसमूह इस रोगमें व्यवहार करना उचित है।

शरीर अच्छी तरह आराम न होनेतक सावधानीसे रहना चाहिये। बल और पुष्टिकारक स्निग्ध और सारक अन्न पान भोजन करना उचित है।

तत्त्वोन्माद चिकित्सा।

—:०:—

लक्षण।—धर्म्म विषयों में रातदिन निविष्ट मनसे चिन्ता करनेसे वायु प्रकुपित हो एक प्रकार का रोग पैदा होता है उसे

तत्त्वोन्माद कहते है। इस रोगमें मूर्च्छा, मुर्देकी तरह अचल आखें, चक्षु उन्मीलित, स्पर्शज्ञानकी हानि आदि लक्षण उपस्थित हो रोगी मृतवत् गिर पड़ता है। किसीको वक्तृताशक्ति का प्रकाश, दाम्भिकता, उग्रता, आक्षेप, (हाथ पैर पटकना), हंसी, नाच, मत्तता और रोना आदि लक्षण प्रकाशित होता है। नाच गाना आदि चित्तोन्मादकारी घटनाओंसे यह रोग अधिक बढ़ता है।

कर्त्तव्य।—इस रोगमें बेहोश होनेपर मूर्च्छा, अपस्मार रोगोक्त उपायों से होशमें लाना। शतधौत घृत मर्द्दन और मूर्च्छा, वातव्याधि और उन्माद रोगोक्त औषध विचार कर प्रयोग करनेसे रोग शान्त हो जाता है। सफेद चन्दन, अनन्तमूल श्यामालता तालमूली, मुलेठी, कालानमक, बड़ी हर्र, आंवला, बहेड़ा, हल्दी दारुहल्दी, नीलेकमल की जड़, नागेश्वर, जटामांसी, तालमखाना बला, खसकी जड़, गेरूमिट्टी, बरियारा और कुंभी प्रत्येक सम-भाग का चूर्ण एकत्र कर आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूधके साथ सेवन करनेसे तत्त्वोन्माद रोग शान्त होता है। सोना, मोती, पारा, गन्धक, शिलाजीत, लोहा, वंशलोचन और कपूर प्रत्येक समभाग; एकत्र त्रिफलेके काढ़ेकी भावना दे, एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखाना। इसे पानीमें घिसकर नास लेनेसे बेहोशी दूर होती है। रोज सतावरके रसमें एक गोली सेवन करनेसे क्रमश: रोग शान्त हो जाता है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, मूंग और चनेकी दाल, जौ और गेहूंकी रोटी, तिल, धारोष्ण गायका दूध, घी, मखन, मिस्रीका शर्बत, पक्का पपीता, ईख आदि द्रव्य भोजन तथा बहते नदीमें स्नान, तेलमर्द्दन विलासिता, सदवृत्त प्रियजन और विश्वस्ता प्रियतमा युवती कामिनी के साथ सर्व्वदा बातचीत

आदि चित्तविनोदक क्रिया इस रोग में उपकारी है। इसके विपरीत आहार विहार अनुपकारक है।

ताण्डव वातव्याधि चिकित्सा।

—०:०:०—

निदान।—अतिरिक्त भय, क्रोध या हर्ष, आशाभङ्ग, शारीरिक कृशता कारक क्रिया समूह, निद्रा, विघात, बलक्षय, चोट लगना, क्रिमिदोष, मलबद्धता और स्त्रीयोंके ऋतु विपर्य्यय आदि कारणोंसे वायु कुपित हो ताण्डव रोग उत्पन्न होता है। इसमे पहिले अकसर बांय हाथ फिर दहिने हाथ तिसके बाद दोनो पैर और फिर क्रमशः सब शरीर कांपता है। यह रोगाक्रान्ता व्यक्ति मुट्ठिमें कोई बस्तु अच्छीतरह धर नही सकता, तथा हाथसे कोई बस्तु उठाकर खा नही सकता, सर्व्वदा बेचैन रहता है, बार बार अति विकृत मुखभङ्गी करता है और चलती वखत पैर नचाता है। निद्रावस्था में इस रोगका कोई भी लक्षण अनुभव नही होता है।

कर्त्तव्य।—साधारणतः इस रोगमें मल परिष्कारक तथा अग्नि और बल वर्द्धक औषध प्रयोग करना चाहिये। क्रिमिदोष से यह रोग पैदा होनेसे आगे क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना चाहिये। रजोरोध से पीड़ा होनेपर पहिले रजःप्रवर्त्तक औषध देकर फिर रजोदोष निराकृत करना। श्यामालता, अनन्तमूल, मुलेठी, तेवड़ीमूल, श्वेतचन्दन, छोटी इलायची और आंवला इन सबका काढ़ा पीनेसे ताण्डव रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय वातव्याधि का वृहत् छागलाद्य घृत आदि औषध

और कुब्जप्रसारणी और महामाष तेल आदि व्यवहार करना चाहिये ।

स्निग्ध, पुष्टिकर और बलबर्द्धक आहार रोगमें देना उपकारी है। वातव्याधि कथित पथ्य इस रोगमें देना चाहिये। परिश्रम त्याग, बहुत देरतक सोना और बहती नदीमें स्नान इस रोगमें हितकारी है ।

स्नायुशूल चिकित्सा ।

—:०:—

भिन्न भिन्न लक्षण ।—छोटी छोटी शिरा समूहों को स्नायु कहते है, उसी स्नायु समूहमें शूलवत् तीव्र वेदना होनेसे उसे स्नायुशूल कहते है। यह रोग वायुजनित एकप्रकार शूल है, इसमें सिवाय दर्दके और कोई लक्षण नहो दिखाई देता। मस्तक, बाहु, पैर आदि स्थानीमें त्वकके (चमड़ा) नीचे यह दर्द होता है, गरज यह दर्द सर्व्वाङ्ग में होता है। स्थानभेद के अनुसार स्नायुशूल २ प्रकार का है। मुखमण्डल के स्नायुशूल को अर्द्धभेद, मुखमण्डलके अर्द्धांशको शूलको अर्द्धभेद और स्फिच् अर्थात् चूतड़में होनेसे उसे अधोभेद कहते है। बलक्षय, वृक्कदोष, मस्तिष्क दोष, अजीर्ण और विविध दन्तरोगोंसे अर्द्धभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता है; इससे ललाटके नोचेवाला अक्षिपुट, गाल, नासिका, ओष्ठ, जीभ, पार्श्व, अधर और दांतमें शूल और दाहलिये दर्द होता है। पहिले मुखके एक तरफ से उठकर मुहभर फैल जाता

है। गीले स्थानमें वास, शैत्यसेवन, वलक्षय, तथा विकृत वायु और पानी सेवन आदि कारणोंसे अर्द्धभेद पैदा होता है। इसमें मुखमण्डलके अर्द्धांश में तीव्र दर्द होता है। यह रोग अकसर बायें तरफ होता है। तथा मस्तकमें तीरसे छेदनेकी तरह मालूम होता है। बीच बीचमें आराम हो जानेसे यह रोग देरसे आराम होता है। युवावस्थामें इसका प्रादुर्भाव अधिक होता है, तथा पुरुषकी अपेक्षा स्त्री रोगी अधिक दिखाई देती है। मलरोध, परिश्रम, शीतसेवा, दुर्ब्बलता, आमवात रोग, आर्द्र स्थान में वास और गर्म विकृति आदि कारणोंसे अधोभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता है। चूतड़, जांवसंधिके पीछे तथा कभी पैर और जंघेमें अधोभेद उपस्थित होता है। यह अकसर एक पैरमें दिखाई देता है। रातको और प्रौढ़ावस्था में इस रोगका प्रकोप अधिक होता है।

चिकित्सा।—वायु अनुलोमक, वलवर्द्धक, और अग्नि-जनक औषधादि इस रोग में उपकारी है। वातव्याधि अधिकार का कुब्जप्रसारणी, महामास तेल मालिश, उरद उबालकर उसका सेंक, वातज वेदना निवारक प्रलेप और रेंड़ीके तेलका जुलाब इस रोगमें विशेष उपकारी है। वृहत् छागलाद्य घृत भी विशेष उपकारी है। छोटी इलायची, बड़ी इलायची, खसकी जड़, सफेद चन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, हल्दी दारुहल्दी, गुरिच, शोंठ, हर्रा आंवला, बहेड़ा और अजवाईन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर चांदी; सब एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा गायके घीके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका स्नायु-शूल और वातरोग दूर होता है। स्वर्णमाक्षिक, चांदी, लौह और रससिन्दूर प्रत्येक समभाग; एकत्र चिरायता रसकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना; रोज सबेरे त्रिफला भिंगोया

पानीके साथ सेवन करनेसे भी आराम होता है। वातव्याधि का पथ्यापथ्य इस रोगमें पालन करना चाहिये।

भग्न चिकित्सा।

—:०:—

रोग परीक्षा।—ऊंचे स्थानसे गिर पड़ना, पीड़न और अभिघात आदि नाना कारणोंसे अस्थि और अस्थिसन्धि भग्न होती है। एक सन्धिस्थल से दूसरे सन्धिस्थलके बीचवाले एकखण्ड अस्थिको कांड और दो अस्थिके संयोग स्थलको अस्थिसन्धि कहते हैं। ऐसही स्थानभेदके अनुसार कांडभग्न और अस्थिभग्न नामसे भग्नरोग दो भागमें विभक्त है।

भिन्न भिन्न अवस्था और प्रकारभेद।—सन्धिभग्न छ प्रकार, उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तिक, तिर्य्यग्गत, क्षिप्त और अधोभग्न। साधारणत: यह छ प्रकारके भग्नसे अङ्गका पसारना, आकुञ्चन और परिवर्त्तन के वख्त अत्यन्त दर्द होती है तथा भग्नस्थान छूनेसे भी अत्यन्त दर्द होती है। उत्पिष्ट नामक सन्धिभग्न में दोनो हड्डी उत्पेषित हो जाती है इससे भग्नस्थान के दोनो तरफ शोथ हो जाता है और रातको दर्द अधिक बढ़ता है। विश्लिष्ट सन्धिभग्न में सन्धिस्थल शिथिल हो जाता है तथा सर्व्वदा अत्यन्त दर्द होता है और उत्पिष्ट भग्नकी तरह अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देते है। सन्धि-विवर्त्तित अर्थात् विपरीत भावसे परिवर्त्तित होनेसे दोनो तरफ तीव्र दर्द होती है। तिर्य्यग्गत अर्थात् सन्धिस्थल टेढ़ी होनेसे भी दर्द होती है। सन्धिस्थलसे

अस्थि विक्षिप्त होनेसे शूलवत् दर्द और अधःक्षिप्त होनेसे दर्द और सन्धिका विघटन अर्थात् अमिलन होता है। कांडभग्न साधारणतः १२ प्रकारका देखनेमें आता है। जैसे कर्कटक, अश्वकर्ण विचूर्णित, पिच्चित, छल्लित, विश्लिष्ट, अतिपालित, मज्जागत, विस्फूटित, वक्र और द्विविध छिन्न। अस्थि विश्लिष्ट हो मध्यभाग ऊंचा और पार्श्वद्वय नीचा हो कंकड़ेके आकार का होता है इससे उसको कर्कटक भग्न कहते हैं। किसी स्थानकी विपुल अस्थि बहिर्गत हो अश्वकर्ण की तरह ऊंची हो जाती है, इसको, अश्वकर्ण भग्न कहते हैं। हड्डी चूर हो जानेसे उसे विचूर्णित भग्न कहते हैं। शब्द और स्पर्शसे हड्डीका चूर्ण होता मालूम होता है। अस्थि पेषित होनेसे उसको पिच्चित कहते है इसमें अत्यन्त शोथ होता है; हड्डीका थोड़ा अंश विश्लिष्ट अर्थात् छिल जानेसे उसको छल्लित भग्न कहते है। अस्थिमांसादि पदार्थसे सर्व्वदा अलग हो त्वकमें रहनेसे उसे विश्लिष्ट कांडभग्न कहते हैं। अतिपातित भग्नमें अस्थि छिन्न हो जाती है। अस्थिका अवयव अस्थिमें प्रविष्ट हो मज्जा निकलनेसे मज्जागत भग्न जानना। विस्फूटित भग्नमें अस्थि अल्प विदीर्ण हो जाती है। अस्थि वक्र होनेसे उसे वक्रभग्न कहते हैं। छिन्न दो प्रकार; एक प्रकार छिन्नसे अस्थि विदीर्ण हो भग्न हो जाती है, दूसरे प्रकारसे विदीर्ण हो दो भागमें विभक्त हो जाती है। ये १२ प्रकारके कांडभग्न से अंगको शिथिलता, प्रवल शोथ, प्रवल दर्द भग्नस्थान दवानेसे शब्दोत्पत्ति, छूनेसे अत्यन्त दर्द, स्पन्दन, सूचीवेधवत् पीड़ा, शूलवत् वेदना और बैठने उठने आदि सब अवस्थामें तकलीफ होती है।

अस्थिपरिचय।—इसमें अस्थिभग्न और विभिन्न रहती है। तरुणास्थि मूड़ जाती है। नलकास्थि विदीर्ण होता है।

कपालास्थि दो भागमें विभक्त होती है और रुचक तथा बलया नामक अस्थिभी कटजाती है। इसको प्रत्येक अवस्थाको भग्न कहते हैं। नाक, कान, आंख और गुह्य देशको अस्थिका नाम तरुणास्थि; जिस अस्थिमें छेद रहता है उसका नाम नलकास्थि; जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गंड, तालू, शंख, वङ्क्षण और मस्तक के अस्थिको कपलास्थि दन्तसमूहको रुचकास्थि तथा दोनो हाथ, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, वक्ष, उदर, गुह्य और दोनो पैरके ठेढ़ो हड्डोयों कोवलयास्थि कहते हैं।

साध्यासाध्य।—कपालास्थि टूटनेसे असाध्य जानना, सन्धिभग्नमें क्षिप्त और उत्पिष्टभग्नभी असाध्य है। असंयुक्त कपालास्थि का चूर्ण तथा छाती, पीठ, शंख और मस्तक के चूड़ा स्थानका टूटना भी असाध्य है; भग्नाङ्ग व्यक्ति यदि वायु प्रकृतिका हो, रोग प्रतिकारमें यत्नशील न हो, आहार बंद हो गया हो, तथा ज्वर, आध्मान, मूर्च्छा, मूत्राघात और मलबद्धता आदि उपद्रवयुक्त होतो वह भग्न कष्ट साध्य जानना अस्थि एकबार सम्यक योजित होनेपर भी यदि वह अयथारीतिसे स्थापित न हो, सुन्यस्त होनेपर भी यदि यथानियम बांधी न जाय और अच्छी तरह बांधनेपर भी यदि वह अभिघातादि से फिर हिलकर टेढ़ी हो जाय तो फिर यह अवस्था दूर नही हो सकती अर्थात् वैसही रहजाती है।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।—भग्नस्थानमें पहिले ठंढे पानीसे सिञ्चनकर अवनत अस्थि उठाना और उन्नत अस्थि दबाकर स्वस्थान में ले जाना। फिर समान दो काठकी तखती दोनो तरफ रख कपड़ेसे न बहुत ढीला न बहुत कसकर बांधना। कारण बंधन ढीला होनेसे संयोग स्थिर नही रहता तथा कसकर बांधनेसे त्वक आदि स्थानोमें शोथ, दर्द और घाव होता है। बंधन

के उपर बड़, गुल्लर, पीपर, पाकड़, मुलेठी, अमड़ा, अर्ज्जुन, आम, कोशाम्र, पिड़िंशाक, तेजपत्ता, बड़ा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, लोध, याबरलोध, शल्लको, भिलावा, पलाश और मेड़ाशृङ्गोके काढ़ेका पानी पीना। अभावमें नौसादर भिंगोया पानी किम्बा ठण्ढे पानीसे बन्धनका कपड़ा तर रखना। अतिरिक्त दर्द होतो स्वल्प पञ्चमूलके साथ दूध औटाकर वही दूध पीना; रोगकी अवस्थाके अनुसार अकसर बन्धन खोलकर फिर बांधना। साधारणतः शीत ऋतुमें सातदिनके अन्तर, शीत ग्रीष्म दोनो जब समान अवस्थामें रहता है, तब ५ दिनके अन्तर और ग्रीष्म ऋतुमें तीन दिनके अन्तरपर बन्धन बदलना चाहिये। लहसन, सहत, लाह, घी और चीनी प्रत्येक समभाग एकत्र पीसकर आधातोला मात्रा रोज सेवन करना। अथवा बबूलके छालका चूर्ण चार आनेभर मात्रा सहतके साथ चाटना। किम्बा पीतवर्ण कौड़ीभस्म २।३ रत्ती कच्चे दूधके साथ सेवन कराना हाड़जोड़, लाह, गोधूम और अर्ज्जुन छाल प्रत्येक समभाग एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा दूध और घीके साथ सेवन करनेसे अस्थिसंयोगमें विशेष मदद पहुंचती है। अस्थि मिलजाने पर बन्धन खोलकर मजीठ और मधु कांजीमें पीसकर उसका लेप करना। किम्बा शालि तण्डुल, पीसकर उसमें घी मिलाकर प्रलेप देना। लाह, हाड़जोड़, अर्ज्जुनछाल, असगन्ध और गुलशकरी प्रत्येक एक एक तोला, गूगल ५ तोले एकत्र पीसकर लेप करना। अथवा बबूलके जड़की छालका चूर्ण तथा त्रिकटु और त्रिफलाचूर्ण प्रत्येक समभाग सबके बराबर गूगल एकत्र खलकर भग्नस्थानमें लेप करना। पुरानी बिमारी होनेपर माषतैल, कुब्जप्रसारिणी तैल और सूअरकी चर्व्वी मालिश करनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य—इस रोगमें मांस, मांसरस, दूध, घी, मटर और उरदका जूस तथा अन्यान्य पुष्टिकर द्रव्य भोजन उपकारी है। अधिक लवण, कटु, क्षार, खट्टा और रूक्षद्रव्य भोजन, तथा कसरत, धूपमें बैठना और मैथुन भग्नरोगीको अनिष्टकारक है।

शीर्षाम्बु रोग-चिकित्सा।

—०:*:०—

अधिक शैत्य, संयोगविरुद्ध भोजन, अतिरिक्त मद्यपान, दूषित वायु सेवन, दूषित जलपान, मस्तकमें आघात प्राप्ति और अन्त्रमें क्रिमिसञ्चय आदि कारणोंसे मस्तिष्कके आवरणमें क्रमशः पानी जाकर शिरोवेदना, आलोक दर्शन और शब्द सुननेसे चमक उठना अल्पमूत्र, आना, कालेरंगका कठिन मल आना, नाड़ी द्रुतगति, त्वक रूखा और गरम, चक्षुके तारेकी विकृति, क्रोधशीलता, मुखकी विवर्णता, निद्रावस्थामें दांत घिसना, ओष्ठ और नासिकामें कण्डू, हाथ पैर पटकना, पक्षाघात, प्रलाप तथा चक्षु रक्तपूर्ण और रक्तवर्ण आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होता है। इसीको शीर्षाम्बु रोग कहते है। यह रोग अधिक उमरवालोंकी अपेक्षा बालकको को अधिक होता हैं। खासकर बच्चोंके दांत निकलती वख्त यह रोग होनेकी सम्भावना रहती है। यह रोग अति कष्टसाध्य है। रोग प्रकाश होनेसे पहिले जिह्वा कफलिप्त; अधिक निद्रा, दुर्ब्बलता, दुर्गन्धयुक्त निश्वास निकलना और मलकी कठिनता आदि लक्षण दिखाई देते है।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।—इस रोगमें विरेचक, मूत्रकारक और रक्तपरिष्कारक औषध प्रयोग करना चाहिये। रोगीका शिर मुड़ाकर सर्व्वदा गरम कपड़ेसे ढांके रखना उचित है। सेहुड़के पत्तेका रस अथवा जयन्ती पत्तेके रसके साथ कालाजीरा, कूठ, गेरूमिट्टी, सफेद मिट्टी, लालचन्दन, समुद्रफेन प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर भूजा हुआ चावल एकत्र पोस तथा थोड़ा गरमकर, दोपहर को मस्तकमें लेप करना, तथा सूखजानेपर निकाल डालना। दूधके साथ नारियलका तेल थोड़ा मिलाकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। रेवतचीनी, तेवड़ी की जड़, श्यामालता, हरीतकी, आंवला, शठी, अनन्तमूल, मुलेठी, मोथा, धनिया, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी, दालचिनी इलायची और तेजपत्ता, इन सबके काढ़ेमें जवाखार मिलाकर पीनेसे रोग शान्त होता है। गायका घी १ सेर, तथा केशर, अनन्तमूल, मुनक्का, जीवन्ती, हरितकी, कालानमक, तेजपत्ता और परवरकी जड़ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क; पानी ४ सेर यथाविधि औटा-कर उपयुक्त मात्रा दूधके साथ सेवन करनेसे यह रोग तथा अन्यान्य शिरोरोग भी आराम होता है। महादशमूल तेल, वृहत् शुष्क मूलकादि तेल और नीचे लिखा तेल शिरमें मालिश करना। सरसो का तेल एक सेर, धतूरेकी बीज, धवईका फुल, मूर्व्वामूल, महुये की छाल, मुलेठी, कालानमक, शोंठ, नीलकी जड़, पीपल, कटफल कुटकी और बाला; प्रत्येकका चूर्ण आधा आधा मात्रा मिलाकर एक पात्रमें रख मुह बन्दकर सात दिन रख देना। यह तेल शिरमें मालिश करनेसे शिर्षाम्बु रोग दूर होता है।

ये सब क्रियाओंसे पीड़ा दूर न होनेपर उपयुक्त चिकित्सक से कपालमें फस्त लेना चाहिये। कृतकर्म्मा चिकित्सक के सिवाय किसी अनाड़ीसे फस्त लेनेसे अनिष्ट होनेकी सम्भावना है।

लघुपाक तथा पुष्टिकारक और सारक अन्नपान भोजन को देना; शीतल द्रव्य या कफवर्द्धक द्रव्य आहार और विहार अनिष्टकारक है।

रसायन विधि।

—:०:—

"यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।"

रसायन संज्ञा—जिस औषधिके व्यवहार करनेसे स्वस्थव्यक्ति को बुढ़ापा और कोई रोगके आक्रमणका डर नही रहता, उसे रसायन कहते है। रसायन सेवन करनेसे आयु, स्मृतिशक्ति, मेधा, कान्ति, बल, स्वर आदि बढ़ता है और एकाएकी कोई रोग आक्रमण नही कर सकता है।

प्रकारभेद।—सबेरे पानीका नास लेनेसे रसायन होता है। इससे पीनस, स्वरविकृति और कासरोग दूर होता है। तथा दृष्टि बढ़ती है। सूर्य्योदय से पहिले यथाशक्ति जलपान करनेसे वातज, रोग दूर हो मनुष्य दीर्घायु होता है। नाकसे जलपान करनेसे और भी अधिक उपकार होता है। इसको ऊषापान कहते है। अजीर्ण रोगमें ऊषापान विशेष उपकारी है। असगन्धका चूर्ण चार आनेभर मात्रा पित्तप्रधान प्रकृतिमें दूधके साथ, वायुप्रकृतिमें तेलके साथ, वात पैत्तिक प्रकृतिमें घीके साथ और वातकफ प्रकृतिमें गरम पानीके साथ १५ दिनतक सेवन करनेसे रसायन होता है तथा शारीरिक कृशता दूर होती है। विधारेकी जड़के चूर्णको सातबार सतावरके रसको भावना दे आधा तोला मात्रा घीके साथ एक मास सेवन करनेसे,

वुद्धि ; मेधा और स्मृतिशक्ति बढ़ती है तथा वलिपलितादि रोग दूर होते है। हरीतकी वर्षातमें सेन्धवके साथ, शरत्काल में चीनीके साथ और हेमन्तमें शोंठके साथ, शीतकालमें पीपलके साथ तथा वसन्त ऋतुमें सहतके साथ और ग्रोष्ममें गुड़के साथ सेवन करनेसे विविध रोगकी शान्ति हो रसायन होता है। इसका नाम हरीतकी रसायन या ऋतु हरीतकी है। पहिले हरीतकी का चूर्ण चार आनेभर मात्रा सेवन आरम्भ करना फिर सहनेपर २ तोलेतक बढ़ाना चाहिये। सैन्धव, शोंठ और पीपलसे कम मात्रा हरीतकी लेना चाहिये तथा दूसरा अनुपान हरीतकीके बराबर लेना उचित है।

क्रमागत एकवर्षतक रोज ५, ६ या १० पीपल, सहत या घीके साथ सेवन करनेसे रसायन होता है। पीपल को पलाशके खारके पानकी भावना दे घीमें भूनकर रोज भोजनके पहिले वही पीपल रोज तीन, घी और सहतके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास, क्षय, शोष, हिक्का, अर्श, ग्रहणी, पांडू, शोथ, विषम ज्वर स्वरभग, पीनस और गुल्म आदि पीड़ा दूर हो आयु बढ़ती है। पहिले दिनका आहार पच जानेपर सबेरे एक हरीतकी, भोजनके पहिले २ बहेड़ा और भोजनके बाद ४ आंवला सहत और घीके साथ एकबर्षतक सेवन करनेसे मनुष्य निरोग शरीरसे बहुत दिन तक जीवित रहता है। लोहेके नये बरतनमें त्रिफलाका कल्क लेपकर एकदिन रात रखकर फिर वह कल्क निकालकर मधु व जलके साथ सेवन करना उत्तम रसायन है। आमला काली तिल भृंगराज—इन सभींको समभाग लेकर :पीसकर उपयुक्त मात्रा बहुत दिनोतक नियमसे सेवन करनेपर केश, वर्ण, इन्द्रियविमल, शरीर निरोग और आयू बढ़ती है। हस्तिकर्ण, पलाशके छालका

चूर्ण घी और सहतके साथ रोज सवेरे खानेसे बल, वीर्य्य, इन्द्रियशक्ति और आयु बढ़ती है।

उक्त रोगोके सिवाय राजयक्ष्मा रोगोक्त "च्यवनप्राश" वसन्त-कुसुमाकर, पूर्णचन्द्र, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मकर-ध्वज और चन्द्रोदय मकरध्वज आदि औषध यथाविधि सेवन करनेसे विविध रोगोकी शान्ति हो उत्तम रसायन होता है।

सुपथ्य भोजन, परिमित निद्रा, उपयुक्त परिश्रम, नियमित स्त्रीसहवास, सद्वृत्त अनुष्ठान, तथा इस पुस्तकके स्वास्थ्यविधि अधिकारोक्त उपदेश पालन करनेसे आजीवन निरोग शरीरसे तथा सुखसे जीवनयात्रा निर्व्वाह हो सकती है। निरोग शरीरके सिवाय धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्गमें कोई भी अभीष्ट सिद्ध नही होता; इससे स्वास्थ्यरक्षा विषयसे, मनुष्य मात्रको मनोयोगी होना नितान्त आवश्यक है।

वाजीकरण विधि।

—०ः※ः०—

वाजीकरण संज्ञा।—आयुर्वेदका आंठवा अंग वाजी-करण है। जिस क्रियासे अश्वकी तरह अत्याधिक रतिशक्ति कम है अथवा अतिरिक्त स्त्री सहवास किम्बा अयथा शुक्र क्षयादिसे जिनकी रतिशक्ति कम हो गई है, वाजीकरण औषध ऐसे मनुष्यको अवश्य खाना चाहिये। स्त्री सहवासका मुख्य उद्देश्य—सन्तानोत्पादन, रतिशक्तिकी हीनतासे यह उद्देश्य सफल नही हो सकता, सुतरां पुत्रहीन अवस्थामें विविध असुख भोगना पड़ता है। तथा शुक्रधातुही शरीरका सार पदार्थ है उससे शुक्र-क्षय होनेसे फिर धातुक्षय हो अकालमें शरीर नष्ट होनेकी सम्भा-

बना है। इसलिये बाजीकरण औषध सेवनसे चीण शुक्रका भरना नितान्त प्रयोजनीय है। साधारणतः घी, दूध, मांस आदि पुष्टिकर भोज्य पदार्थ उपयुक्त परिमाण आहार करनेसे ही बाजीकरण औषधका प्रयोजन कुछ पूरा होता है।

मधुर रस, पुष्टिकारक, बलबर्द्धक और तृप्तिजनक पदार्थको साधारणतः वृष्य या बाजीकरण आयुर्वेदमे कहा हैं। तथा प्रियतमा और अनुरक्ता सुन्दरी युवती ही बाजीकरण का प्रधान उपादान कहकर अभिहित है।

शुक्रवृद्धिका उपाय।—उरदको घीमे भूनकर उसकी चीर खानेसे शुक्रवृद्धि होती है। गोक्षुर, ईक्षुरस, उदर कवाचकी बीज और सतावर दूधके साथ सेबन करनेसे शुक्र और रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ती है। कवांचको बीज या तालमखानाका चूर्ण किम्बा कांकड़ाशिंगीका चूर्ण धारोष्ण दूध और चीनीके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्ति बढ़ती है। बिदारी कन्दका चूर्ण विदारी-कंदके रसमें अथवा आंवलेका चूर्ण आंवलेके रसमे बार बार भावित कर घी और सहतके साथ सेवन करनेसे शुक्र बढ़ती है। २ तोले मुलेठीका चूर्ण घी और सहतके साथ सेवन करनेसे भी यथेष्ट शुक्रवृद्धि होती है। टटका मांस या मछली घीमें भूनकर खानेसे शुक्र और रतिशक्ति बढ़ती है। गौरइया पत्नीका मांस भरपूर भोजनकर दूध पीनेसे रतिशक्ति अत्यन्त बढ़ता है। बकरेका अंडकोष दूधमें औटाना, तथा इस दूधमें तिल औटा चीनी मिलाकर सेवन करनेसे मनुष्य बहु स्त्री सहवास कर सकता है। दूध, घी, पीपल और सेन्धानमकके साथ बकरेका अण्डकोष पकाकर खानेसे शुक्र और रतिशक्ति बढ़ती है। मछली, हंस, मोर या मूरगे का अण्डा पानी मे उबाल घीमें भूनकर खानेसे

रतिशक्ति और शुक्र बढ़ता है। घीमें भूनो रोहू मछलो और अनारके रसमें भिंगोया हुआ बकरेका मांस औटाकर भोजन करना फिर मांस रस पीना, इससे भी शुक्र और रतिशक्ति बढ़ती है। गौरइयाका मांस तितरपक्षीके मांसके काढ़ेमें, तितिरका मांस कुकुट मांस काढ़ेमें, कुकुटका मांस मयुर मांसके काढ़ेमें और मयुर मांस 'स मांसके काढ़ेमें औटा तथा घीसे तलकर खट्टा रस विशिष्ट अथवा मधुर द्रव्य द्वारा मधुर रसविशिष्ट तथा एलादि सुगन्धित द्रव्य द्वारा सुगन्धित कर सेवन करनेसे शुक्रका अत्यन्त बल बढ़ता है। इसके सिवाय शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगाधिकारके औषधादि सेवन करनेसे बाजीकरण क्रिया सम्पन्न होती है।

विविध 'टोटका" चिकित्सा।

—:०:—

बरेंआदि। भौंरा, बरैंया, मधुमक्खी, काटेतो पोईशाकका पत्ता, किचुनी गास या हाथीशुंड़ाके पत्तका रस मर्द्दन करनेसे और पत्थरके कोयलेको पानीमे घिसकर लेप करनेसे भी जलन शान्त होती है। तथा छोटि बैरको जड़ या डंटेका रस भौंरेके काटे हुए स्थान पर मर्द्दन करनेसे विशेष उपकार होता है।

शुआकोट लगनेसे पहिले गुल्लरका पत्ता घिसकर उसका कांटा निकाल लेना फिर उस स्थानमें चुना लगाना। अपरिपुष्ट चावल पोसकर उसका लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। हाथ पैरमें चुशोकोड़ा लगनेसे तेलाकुचाके पत्तेका रस मर्द्दन करनेसे आराम होता है।

आगसे जलना आदि—कोई स्थान आगसे जलनेपर तुरन्त गुड़के चोटेका लेप अथवा घिकुआ का रस, चूनेका पानी और

नारियलका तेल एकत्र मिलाकर लेप करनेसे जलन शान्त होती है तथा फफोला नही आता। आलु पीसकर उसका पतला लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। कोई स्थान कट जानेसे या कुचलकर खून जानेसे दन्तीके नरम पत्तेका रस लगाकर बाधनेसे चतस्थान जुट जाता हैं और खून बन्द होता है तथा पकनेका डर नही रहता। टटका गोबर बाधनेसे भी खून बन्द होघाव जुट जाता है। विषफोड़ेमें नीमकी सूखी छाल पानीमें चन्दनकी तरह घिसकर धतुरे पत्तेमें लगाकर फोड़ेपर रख बांध देना, लगातार तीन दिन ऐसही बाधनेसे विषफोड़ा आराम होता है। फोड़ा होनेसे कदमके पत्तेको शिरा निकालकर फोड़ेके बराबर तह रख आहिस्तेसे बाध देनेसे फोड़ा आराम होता है। अच्छी तरह पक जानेपर कदमका पत्ता और सेमलका काटा एकत्र पीसकर लेप करनेसे आराम होता है। घुरघुरामें कीड़ा पड़ जानेसे सड़े मानका डण्डा और मखन एकत्र पीसकर लगा धूपमें बैठनेसे कीड़ा बाहर निकल घाव सूख जाता है। जातीफूलका पत्ता गायसे घीमें भूनकर गरम रहते रहते गलेके घावमें, मुखके घावमें और दांतके जड़में लगानेसे तकलीफ दूर होती है। द्रोण-फूलके रसमें सहत और तिल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतका कीड़ा दूर होता है। टटके गोमूत्रमें नारियलका फूल पीसकर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंख आना दूर होता है। रोज सवेरे तुलसीके पत्तेका रस एक तोला पीनेसे जीर्णज्वर, रक्तस्राव, रक्तातिसार और अजीर्ण दोष शान्त होता है। विछौटीका नरम पत्ता रोज सवेरे और तीसरे पहरको टाकमें रगड़नेसे टाक दूर होता है। एक छटांक चन्द्रसूर या हालिम दाना आधा सेर पानीमें मिलाकर या औटाकर वह पानी एक

तोला मात्रा आधा घण्टाके अन्तरपर पिलानेसे हुचकी दूर होती है, ओकड़ाका पत्ता नमकके साथ रगड़कर उसका रस मालिश करनेसे ज्वरके समयकी शिरःपीड़ा और शिरका भारीपन दूर होता है। कालाजीरा सेहुंड़के पत्तेके रसमें पीसकर लेप करनेसे अथवा कालाजीरा और दालचीनी समभाग पानीमें पीसकर लेप करनेसे ज्वरके शिरःपीड़ामें विशेष उपकार होता है। शुलटा का पत्ता नमकके साथ रगड़ उसका रस मालिश करनेसे भयानक शिरःपीड़ा दूर होती है। दालचीनी, तेजपत्ता, मूचकुन्द फूल, शुलटा सफेद सरसो, गोलमिरच, मसव्वर और कालाजीरा प्रत्येक समभाग शुलटाके पत्तेके रसमें पीसकर थोड़ा गरम लेप करनेसे कृच्छ्र-साध्य शिरोग दूर होता है। धतूरेके पत्तेके रसमें लालचन्दन घिसकर गाढ़ा होनेपर थोड़ा अफीम मिला २।३ बार लेप करनेसे अधकपारी दूर होती हैं। मलमूत्र बन्द होनेसे पथरीका पत्ता और सोरा पानीमें पीस पेड़ूमें लेप करनेसे मलमूत्र निकलता है। किसी स्थानसे गिर जानेसे अथवा पीड़नादि कारणोंसे हड्डीमें दर्द होनेसे टटका गोबर गरमकर लेप करना, चूना हल्दी एकत्र गरम कर लेप करनेसे भी उपकार होता है। हाड़जोड़का पत्ता पीसकर लेप करनेसे विशेष उपकार होता है।

———

वैद्यक-शिक्षा।

पञ्चम खण्ड।

शारीरविज्ञान की सारबातें।

शरीरही चिकित्सा-कार्य्यका प्रधान अङ्ग है; शारीरतत्त्व नहीं जाननेसे प्रकृत चिकित्सा नहीं हो सकती। इसलिये इस ग्रन्थसे शारीरतत्त्वकी आलोचना भी करना उचित है। आयुर्वेद में शरीर विज्ञानके बारेमें जितने उपदेश पाये गये है, पहिले उन्हीके सार बातोंकी आलोचना की जाती है। इसके बाद प्रत्येक अवयवके अवलम्बनसे प्राच्य और प्रतीच्य दोनो मतीका समन्वय कर विस्तारसे शारीरतत्त्वकी आलोचनाकी जावेगी।

पञ्चभूत या पञ्चेन्द्रिय।—आकाश, वायु, तेज, पानी और पृथिवी,—यह पञ्चमहाभूत; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पांच इन्द्रियार्थ; चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक,—यह पांच ज्ञानेन्द्रिय; हाथ पैर, गुह्य, उपस्थ और वागेन्द्रिय,—यह पांच कर्म्मेन्द्रिय; तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार और जीवात्मा—यह चौबीस तत्त्वोंके समष्टिभूत स्थूलपुरुष चिकित्सा कार्य्यका अधिष्ठान है; तथा इसी स्थूलपुरुषके उत्पत्तिके नियम और प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गका विवरण शारीरतत्त्वका आलोच्य विषय है।

शुक्रशोणित।— जिस स्त्रीका शोणित* और गर्भाशय अव्यापन्न है, उसके साथ ऋतुकाल में अव्यापन्न शुक्र पुरुषके सह-

* शुक्र स्फटिक की तरह स्वच्छ, श्वेतवर्ण, द्रव, स्निग्ध मधुररस, मधुगन्धयुक्त और मधुवत् हो उसीको अव्यापन्न शुक्र जानना और जो आर्त्तव शोणित शशकके रक्तकी तरह किम्वा लाहके रसकी तरह लालरंग तथ वस्त्रमें लगनेपर धोनेसे बेदाग छुट जायतो उसीको अव्यापन्न शुद्धशोणित कहते हैं।

वास मे पुरुषका शुक्र स्खलित हो स्त्रीके गर्भाशयमे प्रविष्ट और दोनोका शोणित एकत्र मिलकर गर्भरूप धारण करता है। बारह बर्षसे पचास वर्षतक स्त्रीके योनिद्वारसे प्रत्येक मासमें रज निकलता है। इसो रजःस्रुतिकाल और ऋतुके पहिले दिनसे सोलह दिनतक को ऋतुकाल कहते है। इसमें प्रथम तीनदिन सहवास करना उचित नहो ह; इससे स्त्रीपुरुष दोनोके अनिष्ट को सम्भावना है, यदि दैवात् उक्त तीनो दिनमें गर्भ धारण हो तो वह नष्ट या विकृत होता है। तीनरातके बाद चतुर्थ आदि युग्मरातको सहवास करनेसे पुत्र और पञ्चमादि अयुग्म रातके सहवाससे कन्या उत्पन्न होती है। वस्तुतः शुक्रभागके आधिक्य से पुत्र और शोणितभागके आधिक्यसे कन्या पैदा होती हैं, यहो पुत्रकन्याके उत्पत्तिका प्रशस्त कारण है। शुक्रशोणित दोनोके समान अंशमें नपुंसक पैदा होता है। स्त्रीपुरुषके विपरीत सह-वाससे गर्भमें यदि पुत्र होय तो वह स्त्रीप्रकृति और कन्या हो वह पुरुष-प्रकृति को प्राप्त होती है। शुक्र, शोणित और गर्भाशय की व्यापत्ति रहनेसे अथवा गर्भिणी का मन वांछा पूर्ण न होनेसे किम्बा गर्भ किसी कारणसे आहत होनेसे पुत्रकन्या विकृताङ्ग होती हैं।

मासभेद से गर्भलक्षण और परिपुष्टि।—

सहवासके बाद यदि स्त्रीके योनिसे शुक्रादि न निकले तथा श्रान्तिबोध, उरुद्वय को अवसन्नता, पिपासा, ग्लानि और योनि स्पन्दन आदि लक्षण प्रकाशित हो तो स्त्रीको गर्भ रहा जानना चाहिये। गर्भोत्पत्ति होनेसे क्रमशः ऋतुरोध, मुखस्राव, अरुचि सर्व्वदा अकारण वमनवेग, खट्टा खानेकी इच्छा, नाना उप-भोग की इच्छा, लोमराजिका ईषत् उद्गम अक्षि पक्ष्मका सम्मि-लन, शरीर की अवसन्नता, मुखको पाण्डुवर्णता, स्तनाग्र और ओष्ठ

अधरकी कृष्णवर्णता, पदद्वयमें शोथ और योनिद्वार की विस्तृति आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। द्वितीय मासमें मिश्रित शुक्र-शोणित किञ्चित गाढ़ा हो, पिण्डाकार, पेशीकी तरह अथवा अर्व्बुदाकृति होता है। पिण्डाकार होनेसे पुरुष, पेशी होनेसे स्त्री और अर्व्बुदाकार होनेसे नपुंसक पैदा होता है। तृतीय मासमें अति सूक्ष्म सब इन्द्रिय और समस्त यहीपांच अवयवोंके पांच पिण्ड उत्पन्न दोनो पैर और मस्तक यदि पांच अवयवोंके पांच पिण्ड उत्पन्न होते हैं। चतुर्थ मासमें वही सब पिण्ड परिस्फुट होते हैं तथा गर्भ भी कुछ कठिन होता है, इससे गर्भिणीका शरीर अधिक भारी हो जाता है। पञ्चम मासमें गर्भका मन, मांस और रक्त पैदा होता है इससे गर्भिणी दुर्व्बल हो जाती है। छठे मासमें गर्भकी वुद्धि, बल और वर्ण उत्पन्न होता है इसलिये गर्भिणी का बलवर्ण क्षय होता है, तथा गर्भिणी भी इसवक्त क्लान्त हो जाती है। सप्तम मासमें गर्भका अङ्गप्रत्यङ्ग स्पष्टरूपसे प्रकाशित होता है। गर्भिणी भी इस वख्त अत्यन्त क्लान्त हो जाती है। अष्टम मासमें गर्भ शरीरसे गर्भिणीके शरीरमें और गर्भिणीके शरीरसे गर्भ शरीरमें ओज पदार्थ सर्व्वदा आता जाता करता है; इससे गर्भिणी कभी हृष्ट और कभी ग्लानियुक्त होती है। अष्टम मासमें प्रसव होनेसे गर्भ या गर्भिणीमें से एककी मृत्यु होनेकी सम्भावना है। गर्भिणीका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भिणीका और गर्भका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भकी मृत्यु होती है। नवम माससे द्वादश मासतक प्रसवका काल है। गर्भाशय जरायु अर्थात् एकप्रकार पतले चमड़ेका आवृत हो गर्भ गर्भिणीके पीठकी तरफ सन्मुख ऊर्द्धशिर और संकुचित हो गर्भ रहता है। अमरा नामक गर्भका नाभीनाड़ी

गर्भिणी के हृदयस्थ रसवाहिनी नाड़ीके साथ संयुक्त रहनेसे गर्भिणी के आहार का रस उसी नाड़ीसे गर्भ शरीरमें जाता है। इसीसे गर्भके जीवनकी रक्षा और क्रमशः बढ़ती है। एकप्रकारके आच्छादनसे जरायुका मुख ढका रहने से तथा कफसे उसका कण्ठ भरी रहनेके कारण गर्भस्थ शिशु हास्य रोदनादि नही कर सकता। तथा पक्काशय में वायु कम रहती है इससे मलमूत्र और अधोवायु निकल नही सकती। गर्भिणीके निश्वास प्रश्वास और निद्रा जागरण आदिके साथही उसकी भी क्रिया सम्पन्न होती है। प्रसवके पहिले जब प्रसव वेदना होती है उसवक्त गर्भस्थ बालक उलटकर उसका शिर योनिद्वार में उपनीत होता है। ऐसा न होनेसे प्रसवमें देर लगता हैं।

धातु।—सम्पूर्ण चेतनायुक्त देहको शरीर कहते है, शरीर रक्षाके लिये जो द्रव्य खाया जाता है वह क्रमशः परिपाक हो रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रधातु होता है। सुतरां इसीसे शरीरकी रक्षा, वृद्धि, पुष्टि और स्थापित्व होता है। सुतरां भुक्त पदार्थका पहिली पदार्थ रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है। रससे शुक्रतक एक एक धातुके बादवाला धातु परिणत होनेमें सात दिन लगते है। स्त्रीयोंका आर्त्तव रक्तधातु रक्तसे पृथक है, वह रसका भेदमात्र है यह महीनेभर एकत्र हो मासके अन्तमें योनिद्वारसे निकल जाता है। गर्भावस्था में यह बन्द हो स्तनमें आजाता है और यहां दूध बनता है। इसीसे गर्भावस्थामें स्तनद्वय पीन और दुग्धयुक्त होते है।

त्वक।—गर्भाशयका शुक्रशोणित जब क्रमशः परिपक्क होता है, उसी वक्त दूधमें मलाई की तरह शरीरके त्वक की

उत्पत्ति होती है। त्वकसे शरीर जल वायु आदि शोषण, पीसना निकलना और देहके उष्माकी रक्षा होती है। बाहरसे मांसके उपर तक क्रमशः सात त्वक है। बाहरका पहिला त्वक एक धानके १८ भागके एक भागकी तरह पतला है; यही शरीरके रङ्गका आश्रय और इसीमें सिध्म और पद्मिनीकण्टक आदि रोग पैदा होते है। द्वितीय त्वक धानके सोलह भागका एक भाग पतला है; इसीमें तिलकालक न्यच्छ और व्यङ्ग आदि पीड़ाका अधिष्ठान है। तृतीय त्वक धान्यके द्वादशांशका एकांश है; चर्म्म-दल अजगल्लिका और मशक आदि रोग इसीके आश्रयसे पैदा होते है। चतुर्थ त्वक धान्यके अष्टमांशका एकांश है; किलास और कुष्ठ आदि पीड़ाका यही अधिष्ठान है। पञ्चम त्वक धान्यके पांच भागका एक भाग; इसमें भी कुष्ठ और विसर्प रोग पैदा होते है। छठा त्वक धानकी तरह मोटा है; ग्रन्थि, अपची, अर्व्वुद, श्लीपद और गलगण्ड आदि इसीका आश्रय लेते है। सप्तम त्वक दो धानकी तरह मोटा होता है, भगन्दर विद्रधि और अर्श आदि रोग इसीके आश्रय से उत्पन्न होते हैं। साधारणतः त्वकका परिमाण इसी तरह है, पर ललाट और अङ्गुलि आदि स्थानोका त्वक इसीसे भी कम पतला होता है।

एक धातुके बाद दूसरा धातु जहां आरम्भ होता है वहा दोनोके सन्धिमें तन्तुकी तरह कफजड़ित बहुत पतला एक प्रकारका आवरण रहता है; आयुर्वेदमें उसे कला और भाषामें उसको झिल्लि कहते हैं।

धातुका स्थान।—त्वक, रक्त और मांस शरीरमें सर्व्वत्र रहता है; तथापि यकृत् और प्लीहा रक्तके यही दो प्रधान स्थान है। मेदधातु अन्य स्थानके सिवाय उदर और पतली हड्डीमें

अधिक रहता है। मज्जा मोटी हड्डोमें रहती । शुक्र सर्व्व-शरीरव्यापी है उसका कोई निर्दिष्ट स्थान नही है। कामवेग से सब शरीरसे निकलकर लिङ्गद्वार से जब क्षरित होता है तभी दिखाई देता है। शुक्र पहिले सब शरीरसे निकलकर बस्ति-द्वारके नीचे दो अङ्गुलके अन्तर पर दक्षिण भागमें एकत्र होकर फिर निकलता है।

शरीरकी अस्थिसंख्या।—शरीरकी अस्थिसंख्या चरक ऋषिके मतसे ३६०, सुश्रुतके मतसे ३०० और आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकोंके मतसे २४०। सुश्रुताचार्य्यके मतसे प्रत्येक हाथ पैरकी अङ्गलियोंमें तीन तीन; पैर या हाथके तलवों, कूर्च, गुल्फ या मणिबन्ध, प्रत्येक हाथ और पैरके उक्त स्थानोंमें दश दश; पाद, पार्ष्णी और हस्तपृष्ठमें एक एक; जङ्घेमें दो; जानुमें दो; ऊरूमें एक एक; केहुनीके नीचेसे मणिबन्धतक दो दो; केहुनीमें एक; बाहुमें एक; गुह्यदेशमें एक; योनि तथा लिङ्गमें एक; नितम्बमें दो; त्रकमें एक; प्रत्येक पार्श्वमें ३६ कर ७२ है। पीठमें २०; छातीमें आठ ८; दोनो चक्षुगोलक में एक एक कर दो २; ग्रीवामें ९ नव; कण्ठमें ४ चार; हनुद्वयमें दो २; दांतमें ३२ बत्तीस; नासिकामें ३; तालुमें एक; ललाट, कान और शङ्ख—प्रत्येक स्थानमें एक एक और मस्तकमें ६ छ है। अवयव और अवस्थानविशेषानुसार अस्थिमें नानाप्रकारकी विभिन्नता है। अस्थीसमूह पांच प्रकारमें विभक्त है—जैसेतरूण, कपाल, नलक, वलय और रुचक। नासिका, कर्ण, चक्षु और गुह्य अस्थिको कपालास्थि; जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड, तालु, शङ्ख, वैक्षण और मस्तकके अस्थिको—कपालास्थि, दोनो हाथ, पार्श्वद्वयों पीठ, वक्ष, उदर, गुह्य, तथा पदद्वय को टेढ़ो अस्थिको वलायस्थि; छिद्रशालि अस्थिको नकलास्थि और दन्तसमूह को अस्थिको रूपकास्थि कहते

है। दन्त चार प्रकार—छेदन, शौवन, द्वाग्र और पेषण। छेदन दन्त ऊपर ४ और नीचे ४ ; शौवन दन्त दो ऊपर और दो नीचे ; द्वाग्रदन्त ४ ऊपर और ४ नीचे और पेषण दन्त छ उपर और छ नीचे।

अस्थिसन्धि—अङ्गुली, मणिबन्ध, गुल्फ, जानु, कूर्पर, कक्ष, वंक्षण, दन्त, स्कन्ध, योनि, नितम्ब, ग्रीवा, पृष्ठ, मस्तक, ललाट, हनु, ऊरु, कण्ठ, हृदय, नासा और कर्ण आदि स्थानोंकी हड्डी परस्पर मिली हुई रहती है। इससे इसको अस्थिसन्धि कहते है। सन्धिस्थानमें एक चिकना पदार्थ कफ मिला हुआ रहता है, इससे इच्छानुसार सङ्कुचित और विस्तृत होता है।

अस्थिसन्धि सब २१० हैं ; जिसमें अङ्गूठेमें २ ; तथा अन्यान्य अंगूलियोंमें तीन तीन कर मोट ४८, गुल्फमें एक, जङ्घेमें एक, वंक्षणमें एक, मणिबन्धमें एक, केहुनीमें एक, कंधेमें एक, कमरमें ३, पीठमें २४, पार्श्वद्वयमें २४, छातीमें ८, गलेमें ८, गलेके नालीमें ३, हृदय, फुसफुस और क्लोम स्थानके निबन्ध नाड़ीमें १८, दन्तमूलमें ३२, कण्ठमें १, नेत्रवर्त्ममें २, प्रत्येक गाल, कान और शङ्खमें एक एक कर ६, हनुद्वयमें २, भौंके ऊपर दो, शङ्खके ऊपर दो, मस्तकके कपालास्थिमें ५ और बीचमें एक अस्थिसन्धि है।

स्नायु, शिरा और धमनी।—सूतकी तरह एक पतला पदार्थ समस्त शरीरमें फैला हुआ है, उसे स्नायु कहते है। इन्द्रियोंका अनुभव और अवयवोंका चलाना आदि कार्य्य स्नायुसे होता है। लताकी तरह पदार्थ को शिरा कहते हैं, इसीके भीतरसे रक्तादि प्रवाहित होता है ये सब शिरायें मूल शिरा की शाखा प्रशाखा है। इसके सिवाय ४० मूल शिरा है। इसमें १० शिरा वायु, १० पित्त, १० कफ और १० रक्तवहन करती है। सब

शिराओंका मूलस्थान नाभि है। शिराकी तरह कई स्रोत और है, उसे धमनी कहते है। इसमें २ प्राणवहा, २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ शब्दज्ञानवहा, २ स्पर्शवहा, २ रसस्वादवहा, २ गन्धस्थानवहा, २ निद्राकारक, २ जागरणकारक, २ अश्रुवहा, २ स्त्रीयांकी आर्त्तववहा, २ स्तन्यवहा, २ पुरुषका शुक्रवहा, २ अन्नवहा, २ जलवहा, २ मूत्रवहा, २ मलवहा और बहुतेरी अपरिसंख्येय धमनी स्वेद वमन करती हैं। शरीरके लोमकूप सब धमनीका बहिर्मुख है। प्राणवहा और रसवहा धमनीका मूलभाग हृदय, अन्नवहाका मूलभाग आमाशय, जलवहाका मूलभाग तालू और क्लोम, रक्तवहाका मूलभाग यकृत् और प्लीहा, मूत्रवहाका मूलभाग वस्ति और लिङ्ग, मलवहाका मूलभाग पक्वाशय और गुह्य, शुक्रवहाका मूलभाग स्तन और अण्डकोष तथा आर्त्तववहाका मूलभाग गर्भाशय है।

पेशी।—स्नायु, शिरा और धमनीकी संख्या निर्दिष्ट नहीं हो सकती। कार्य्यानुसार जितनेकी उपलब्धि हुई है, केवल उसीकी संख्या निर्देश की गई है। फीतेकी तरह एक प्रकारके पदार्थसे अस्थि, शिरा और स्नायु आदि आच्छादित रहता है, उसको पेशी कहते है। यह स्थानभेद के अनुसार मोटा, पतली, सूक्ष्म, विस्तृत, क्षुद्र, दीर्घ, कठिन, कोमल, मृदु, कर्कश आदि नानाप्रकार को होता है। शरीर का जो जो स्थान सङ्कुचित या चलाया जाता है उसी स्थानमें पेशी रहती है; इसकी भी संख्या अपरिमेय है।

कण्डरा—पेशी के प्रान्तभागका नाम कण्डरा हैं; इससे आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य सम्पादित होता है। कण्डराकी आकृति रस्सीकी तरह है। कण्डरा १६, इसमें ४ हस्तद्वयमें, ४ पदद्वयमें, ४ ग्रीवामें और ४ पीठमें हैं।

जाल—शिरा, स्नायु, मांस और हड्डी ये चार पदार्थोंमें कोई एक पदार्थ जालका तरह छिद्रयुक्त रहनेसे उसे जाल कहते हैं। प्रत्येक मणिवन्ध और गुल्फमें ऐसही प्रत्येक का जाल अर्थात् शिराजाल, मांसजाल और अस्थिजाल रहता है।

मेरुदण्डके दोनो तरफ दो दो कर जो चार मांसमय रस्सोको तरह पदार्थसे मेरुदण्ड आबद्ध हैं उसे रज्जु कहते हैं।

सेवनी—मस्तकमें पांच लिङ्ग और अण्डकोषमें एक और जीभमें जो एक सिया हुआ स्थान दिखाई देता है; उसे सेवनी कहते हैं।

मर्म्मस्थान—शिरा, स्नायु, मांस, अस्थि और सन्धि ये सब जिस जगह परस्पर मिल जाती है उसको मर्म्मस्थान कहते हैं। मर्म्मस्थान सब १०७; इससे शिरामर्म्म ४१, स्नायुमर्म्म २७, मांसमर्म्म ११, अस्थिमर्म्म ८, और सन्धिमर्म्म २० वीस है।

मर्म्मस्थानविभाग।—जिस शिरासे नाक, कान, आंख और जिह्वा आप्यायित होती है, तथा मस्तक के भीतर जहां ये सब शिराओंका मुख मिला हुआ है, वहां एक शिरामर्म्म चार अङ्गुल लम्बा है, मस्तकके बीचमें केशके आवर्त्तके भीतर शिरा और सन्धिके सयोगस्थलमें एक सन्धिमर्म्म है; उसका परिमाण आधा अङ्गुल। दोनो सौंफ प्रान्तभागमें याने कान और ललाटके बीचमें डेढ़ अंगुलका एक अस्थिमर्म्म है। गुह्यद्वारके भीतर गुह्यनाड़ीमें चार अंगुलका मर्म्मस्थान है। इसे मांसमर्म्म कहते है। स्तनद्वयके बीच हृदयमें चार अंगुलका एक शिरामर्म्म है। नाभि, पृष्ठ, कटि, गुह्य, वंक्षण और लिङ्ग इन अङ्गोंके मध्यमें वस्ति है वस्तिमें एक स्नायुमर्म्म है। नाभिके चारो तरफ चार अंगुलका एक शिरामर्म्म है। ये सब मर्म्ममें छेद करने या जोरसे चोट लगनेसे तुरन्त प्राण नष्ट होता है।

चोट लगनेका फल।—दोनो स्तनके नीचे छातीमें दो अंगुल बराबर दो शिरामर्म्म है, स्तनोंके उपर दो अंगुल बराबर दो मांसमर्म्म है, दोनो स्कन्धकूटके नीचे और पार्श्वद्वयके उपर आधा अंगुल दो शिरामर्म्म और छातीके दोनो बगल की वातवहा नाड़ीमें आधा अंगुल बराबर दो शिरामर्म्म है उक्त मर्म्मोंको वक्षमर्म्म कहते है। ये सब मर्म्ममें चोट लगनेसे कालान्तरमें मृत्यु होता है। इसमेंसे शेषोक्त मर्म्ममें चोट लगनेसे कोष्ठमें वायुपूर्ण हो श्वास कास रोगहो मृत्यु होती है। मस्तकके पांच अस्थिसंधिको भी सन्धिमर्म्म कहते है। इसमें चोट लगनेसे उन्माद, भय और चित्तविभ्रम उपस्थित हो प्राणनाश होता है। मध्यमांगुली के समसूत्रमें और हाथ पैरके तलवेके मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द हो अन्तमें मृत्यु होतो है। अंगूठा और तर्ज्जनीके बीचवाले स्थानके शिरामर्म्ममे चोट लगनेसे कालान्तरमें आक्षेप रोग हो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है; अकसर इसमें जल्दी प्राणनाश होते देखा गयाहै। प्रत्येक प्रकोष्ठ और जङ्घाके वीचवाले दो अंगुलके मर्म्ममें चोट लगनेसे शोणित क्षय हो थोड़े दिनमें मृत्यु होती है। स्तनमूल से मेरुदण्ड तक दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर शिरामर्म्म विद्ध होनेसे अत्यन्त रक्तस्राव होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। दोनो जघन और तोनो पार्श्वके सन्धिवाले शिरामर्म्ममे चोट लगनेसे कोष्ठ रक्तसे पूर्ण होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। मेरुदण्डके नीचे नितम्बके सन्धिस्थलके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर दो अस्थिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे रक्तक्षय हो रोगीको पांडु वर्ण या विवर्ण कर कालान्तरमें जान लेता है। नितम्बके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर और दो अस्थिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे कमरसे परके तलवेतक अर्द्धांगमें शोथ और दौर्व्वल्य उपस्थित होता है।

वंक्षण और कन्धेके नीचे भी एक आधे अंगुलका शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदा होता है। जानुद्वय के तीन अंगुल उपर आधे अंगुल बराबर एक स्नायुमर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे अत्यन्त शोथ और दोनो पैर स्तब्ध होते है। जङ्घा और ऊरुके सन्धिमें दो अंगुलका एक सन्धिमर्म्म हैं इसमें चोट लगने से मनुष्य खञ्ज होता है। ऊरुद्वयके मध्य और केहनोसे बगल तक बाहुके मध्यभाग में एक अंगुल बराबर एक शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे रक्तक्षय हो दोनो हाथ पैर सूख जाते है। दोनो पैरका अंगुठा और उसके पासवाली अंगुलीके जड़के वीचमें अर्थात् पूर्व्वोक्त शिरामर्म्म के किञ्चित् उपर एक एक और उसके नीचे पैरके तलवेकी तरफ एक एक स्नायुमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे पैर घूम-कर कांपने लगता है। वंक्षण और अण्डकोषके वीचवाले स्थानके दोनो तरफ एक अंगुलका एक एक स्नायुमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे मनुष्य क्लीब होता है अथवा उसका शुक्र क्षीण हो जाता है। दोनो केहुनोमें दो अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे हाथ सिकुड़ जाता है। कुकुन्दर अर्थात् नितम्ब कूपमें आधे अंगुलका सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे स्पर्शशक्तिका नाश और नीचेवाले अङ्गकी क्रियामें हानि पहुंचती है। छाती और बगलके वीचमें एक अंगुलका स्नायुमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदा होता है। दोनो कानके पीछे नीचेकी तरफ आधे अंगुलका एक स्नायुमर्म्म है उसमें चोट लगनेसे मनुष्य बहिरा होता है। मस्तक और ग्रीवाके सन्धिके दोनो तरफ आधे अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे शिरःकम्प होता है। दोनो स्तनमें आधा अंगुलका दो स्नायुमर्म्म है ; इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथकी क्रिया लोप होती है। पीठके उपर जहां ग्रीवा और मेरुदण्डकी सन्धि है उसकी

दोनो तरफ आधे अंगुलका एक एक अस्थिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथ शून्य और शोथ होता है। दोनो आंखके प्रान्तभाग अर्थात् अपांगमें आधे अंगुलका दो शिरामर्म्म है इसमें चोट लगनेसे मनुष्य अन्धा और क्षीणदृष्टि होता ह। कण्ठनालीके दोनो तरफ ४ धमनो है; इसमें दोको नीला और दोको मन्या कहते हैं, अर्थात् कण्ठनालीके दोनो तरफ दो नीला और ग्रीवाके दोनो तरफ दो मन्या है। यह चार धमनोमें चार शिरामर्म्म है प्रत्येकका परिमाण दो दो अङ्गुल है, इसमें चोट लगनेसे मनुष्य गूङ्गा और विकृतस्वर होता है तथा मुहके स्वाद शक्तिका लोप होजाता है।

नाकके छेदके भीतर आधे अंगुलका दो शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे घ्राणशक्ति नष्ट होती है। भौंके उपर और नीचे वाले अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे दृष्टि-क्षीणता और अन्ध रोग पैदा होता है। दोनो गुल्फमें दो अंगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और खञ्जता पैदा होती है; मणिबन्धमें भी वैसही एक एक सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथको क्रिया लोप होती है। गुल्फ-सन्धिके दोनो तरफ एक एक अंगुलका एक एक स्नायुमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और शोथ होता हैं।

दोनो शङ्खके उपर केशतक आधे अंगुलका दो स्नायुमर्म्म और भौंके बीचमें आधे अंगुलका एक शिरामर्म्म है। इसमें तीर गड़ानेसे जबतक तीर न निकाला जाय तबतक मनुष्य जीवित रहता है तीर निकालतेही मृत्यु होती है;

उक्त मर्म्मोंमें जिसमें चोट लगतेही मृत्यु होना लिखा है, उसमें यदि ठीक बीचमें चोट न लगकर प्रान्तभागमें चोट लगेतो

कालान्तरमें मृत्यु होना है तथा ठीक बीचमें चोट लगनेसे प्राण-नाश न हो केवल यन्त्रणाप्रद होता है। मर्म्मस्थान की सारी पीड़ा कष्टसाध्य है। इससे मर्म्मस्थानो को अच्छी तरह जानना चाहिये।

शरीर-विभाग।—संक्षेपतः शरीर ६ भागसे विभक्त है; मस्तक, मध्य शरीर दोनो हाथ और दोनोपैर। छातीसे नितम्ब तकका मध्य शरीर कहते है। इन्ही अवयवोमें शरीरके प्रधान यन्त्र है। हृदयके बीचमें तीन अंङ्गुलका हृदय नामक चेतना स्थान है। यहां शुद्ध रक्त और प्राणरक्त रहता है। इसमें चार गर्भप्रकोष्ठ है;—दो उपर और दो नीचे। रक्तवहा शिराद्वय शरीरका सब दूषित रक्त दहिने हृद्गर्भमें लाती है तथा क्रमशः उक्त चार प्रकोष्ठोंमें चालित हो विशुद्ध होता है। हृद्पिण्ड रातदिन आकुञ्चित और प्रसारित होता रहता है; आकुञ्चित होतेही वहांका खून वेगसे धमनीके जड़में जाता है तथा धमनीके रास्तेसे सर्व्वाङ्गमें फिरता है। हृदयको आकुञ्चन और प्रसारण क्रिया बन्द होतेही मृत्यु होती है। हृदयके बायें फुसफुस (श्वासयन्त्र) दहिने क्लोम (पिपासा स्थान) और नीचे वृक्क यही अग्रमांस रोग होता है। तथा कण्ठसे गुदामार्गतक ३॥ साढ़े तीन व्यास दीर्घ एक अन्त्रनाड़ी कहीं फैली और कहीं सिकुड़ी हुई है। स्त्रियोंका अन्त्र ३ व्यास लम्बा है। उसीके कण्ठसे पहिला आमाशय फिर पित्ताशय या ग्रहणी तथा फिर पक्वाशय है; इसका दूसरा नाम मलाशय या उण्डूक। इसके नीचे गुह्यनाड़ी है; उदरके दहिने और बायें तरफ यकृत और प्लीहा—यही दो रक्ताशय है, लिङ्गके ऊपर वस्ति और मूत्राशय है। स्त्रियोंके योनिमें शङ्खावर्त्तकी तरह तीन आवर्त्त है; तथा इसीके तीसरे आवर्त्तमें गर्भाशय

है। गर्भाशयकी आकृति रोहित मछलीके मुखकी तरह अर्थात् बाहर सूक्ष्म और भीतर विस्तृत है।

वायुके कार्य्य ।—यही सब आशयोंमें आमाशय कफका, पित्ताशय पित्तका और पक्वाशय वायुका अवस्थित स्थान है। यह तीन दोष शरीरमें सर्व्वत्र और सर्व्वदा रहते हैं ये तीन दोषोंमें वायु शरीरके यावतीय धातु और मलादि पदार्थको चलाता है। तथा वायुहीसे उत्साह, श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेगप्रवृत्ति और इन्द्रिय समूहोंके कार्य्य सम्पादन होते है। वायु स्वभावतः रुच, सूक्ष्म, शीतल, लघु, गतिशील, आशुकारी, खर, मृदु और योगवाही है। सन्धिभ्रंश, अङ्गप्रत्यङ्गादि विक्षेप, मुदगलादिसे मारनेकी तरह या शूलकी तरह अथवा सूई गड़ानेकी तरह दर्द, स्पर्शाज्ञता अङ्गकी अवसन्नता, मलमूत्रादिका अनिर्गम और शोषण, अङ्गभङ्ग, शिरादिका संकोच, रोमांच, कम्प, कर्कशता, अस्थिरता, सच्छिद्रता, रसादिका शोषण, स्पन्दन, स्तम्भ, कषायस्वाद और श्याव या अरुणवर्णता वायुके कार्य्य है। वायु प्रकुपित होनेसे यही सब लक्षण प्रकाश होते है।

पित्तके कार्य्य ।—पित्त स्वभावतः द्रव, तीक्ष्ण, पूति अपक्वावस्थामें नीलवर्ण, पक्वावस्थामें पीतवर्ण, उष्ण और कटुरसपर विदग्ध होनेसे अम्लरस। सन्ताप, दाह, रक्त, पाण्डु या पीतवर्णता, उष्णता, पाक, स्वेद, क्लेद, पचन, स्राव, अवसाद, मूर्च्छा और मदरोग आदि पित्तके कार्य्य है। पित्तप्रकुपित होनेसे रोग विशेषानुसार यह सब लक्षण प्रकाशित होते है।

कफके कार्य्य ।—कफ स्वभावतः श्वेतवर्ण, शीतल, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल बिलम्ब से कार्य्यकारी और मधुर रस, पर विकृत होनेसे लवणस्वाद होता हैं। स्निग्धता, कठिनता, शैत्य,

श्वेतवर्णता, गौरव, कण्डू, स्रोतसमूहोंका रोध, लिप्तता, स्तैमित्य, शोथ, अपरिपाक, अग्निमान्द्य और अतिनिद्रा आदि कफके कार्य्य है। कफ कुपित होनेसे रोगविशेष में यह सब लक्षण प्रकाशित होते है।

वायुप्रकोप शान्ति।—बलवान जीवके साथ मल्लयुद्ध, अतिरिक्त व्यायाम। अधिक मैथुन, अत्यन्त अध्ययन, ऊंचे स्थानसे गिरना, तेज चलना, पीड़न या आघातप्राप्ति; लङ्घन, सन्तरण, रात्रि जागरण, भारवहन, पर्य्यटन या अश्वादि यानमें अतिरिक्त गमन; मलमूत्र अधोवायु शुक्र, वमन, उद्गार, छींक और अश्रुवेग धारण; कटु, तिक्त, कषाय, रूक्ष, लघु और शीतल द्रव्य, शुष्कशाक, शुष्क मांस, मड़ुआ, कोदो, सामा और नीवार धान्य; मूग, मसूर, अड़हर, मटर और सेम आदि द्रव्य भोजन, उपवास, विषमाशन, अजीर्ण रहते भोजन और वर्षाऋतु, मेघागमकाल, भुक्तान्नके परिपाक का काल, अपराह्णकाल वायु प्रवाहका समय, यही सब वायुप्रकोप के कारण है। घृत तैलादि स्नेहपान, स्वेदप्रयोग, अल्प-वमन, विरेचन, अनुवासन, (स्नेह पिचकारी); मधुर, अम्ल, लवण और उष्णद्रव्य भोजन, तैलाभ्यङ्ग, वस्त्रादि द्वारा वेष्टन, भयप्रदर्शण, दशमूल—क्वाथ का प्रसेक, पैष्टिक और गौड़िक मद्यपान, परिपुष्ट मांसका रस पान और सुखस्वच्छन्दता आदि कारणोंसे वायु शान्त होता है।

पित्तप्रकोप शान्ति।—क्रोध, शोक, भय और श्रमजनक कार्य्य, उपवास, मैथुन, कटु, अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, लघु और विदाही द्रव्य, तिलतैल, तिलकल्क, कुरथी, सरसों, तीसी, शाक, मछली, छागमांस, दही, दहीका पानी, तक्रकूर्च्चिका, सौवीर, सुरा, अम्लफल और माखनयुक्त दहीका मट्ठा आदि द्रव्य भोजन तथा शरत्-

काल, मध्याह्न, आधीरात और भुक्तद्रव्यके परिपाकके वखतमें पित्त प्रकुपित होता है। घृतपान मधुर और शीतल द्रव्य द्वारा विरेचन, मधुर, तिक्त और कषाय रसयुक्तभोज्य औषध सेवन, सुगन्ध, शीतल गन्ध सुङ्घना, कर्पूर, चन्दन और खसका अनुलेपन, चन्द्र-किरण सेवन, सुधाधवलित गृहमें वास, शीतल वायु सेवन, मधुर गीतवाद्य और वाक्य श्रवण, प्रियतम स्त्रीपुत्रके साथ कथोपकथन और आलिङ्गन तथा उपवन और पद्म कुमुदादि शोभित सरोवर तीरमें भ्रमण आदिसे पित्त शान्त होता है। इन्ही सब कारणोंसे रक्तका भी प्रकोप और शमन होता है।

कफप्रकोप शान्ति।—दिवानिद्रा, परिश्रम शून्यता, अधिक भोजन, अजीर्णसे भोजन, मधुर, अम्ल, लवण, शीतल, स्निग्ध, गुरु, चिकना, क्लेदजनक, यव, गेहूं, भायन और नैषध धान्य, उरद, वर्व्वटी, तिलपिष्टक, दही, दूध, पायस, खिचड़ी, गुड़, आनूप और जलचर जीवका मांस, चर्व्वी, मृणाल, पद्मफूल, सिङ्घाड़ा, ताड़, मधुर फल, लौकी कच्चा भतुवा, पक्का केला आदि द्रव्य भोजन तथा शीतल द्रव्य सेवन, शीतकाल, वसन्तकाल, पूर्व्वाह्न, प्रदोष और आहारके बाद आदि कफ प्रकोपके कारण है। तीक्ष्ण वमन और विरेचन, मैथुन, शीत, जागरण, धूमपान, गण्डूष धारण, चिन्ता, परिश्रम, व्यायाम; पुराना मद्यपान, तथा रूक्ष, उष्ण, मधुर, कटु, तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे कफ शान्त होता है।

गर्भधारण के समय पिता माताका शुक्रशोणित आदि वायु प्रभृति तीन दोषोंमें से जिस दोषका अनुबन्ध अधिक रहता है, मनुष्य स्वभावतः उसी प्रकृतिका होता है। तीनो दोष समान रहनेसे समप्रकृतिका होता है। वातप्रकृति के मनुष्यगण रूक्ष, कृश, भङ्गा-

वयव, अव्यक्तावयव, अगम्भीर स्वर, जागरूक, चञ्चलगति, शीघ्र कार्य्यकारी, बहुप्रलापी, बहुशिरावृत, थोड़ा देरमें सामान्य कारणसे क्रोध आना, भीत, अनुरागी या विरागी, शीतसहन में असमर्थ, स्तब्ध, कर्कश केश, कर्कश श्मश्रु, कर्कश लोम, कर्कश नख, कर्कश दन्त, और कर्कशांश होते है। तथा चलता वख्त सन्धियोंमें चट चट आवाज होती है और बार बार आंखका निमेष गिरता है। पित्तप्रकृतिगण गरम सहने में असमर्थ, शुक्ल और सुकुमार गात्र, गौरवर्ण मृदु और कपिलवर्ण, केशश्मश्रु और लोमयुक्त, ताम्रनख, रक्तनेत्र, तीक्ष्ण पराक्रम, तीक्ष्णाग्नि, अधिक भोजनशील, क्लेश सहनेमें अक्षम, द्वेषी, अल्प शुक्र, अल्प मैथुन और अल्प सन्तान-जनक होते है। तथा मुख, आंख मस्तक और अन्यान्य अवयवों में गन्ध रहती है सर्व्वांगमें तिल, सेहुआ, खुजली आदि पैदा होते है, वलिपालित्य और टाक भी पित्तप्रकृतिवालेका शीघ्र पड़ता है। कफप्रकृतिगण स्निग्धांग, सुकुमार शरीर, उज्वल श्याम या गौरवर्ण, स्थिर शरीर, पुष्टांग, बिलम्ब में कार्य्यकारक, प्रसन्न मुख, प्रसन्न दृष्टि, स्निग्ध स्वर, बलवान, तेजस्वी, दीर्घजीवी और अल्प क्षुधायुक्त होते हैं, तथा थोड़ेही कारण से क्रोधित नही होते है; शुक्र मैथुनशक्ति और सन्तति अधिक होती है। समधातु व्यक्तिगणोंके यह सब लक्षण मिले हुए होते है। इन सब मनुष्योंके समधातुका मनुष्य प्रशंसनीय है।

———

वैद्यक-शिक्षा।

छठा खण्ड।

—:o:—

नरदेह-तत्त्व और जीव-विज्ञान।

—o:◌:o—

ANATOMY & PHYSIOLOGY.

जिस शास्त्रमें जीवित अवस्थामें प्राणीयोंके शरीरका यन्त्र और धातु समूहोंकी क्रिया अथवा प्रवर्त्तनादि जाना जाता है उसको जीव-विज्ञान कहते है। सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सब इस विशाल जीव जगतके अन्तर्गत है। कारण देहकी सृष्टि, पुष्टि और क्षय आदि सभी कारण एकही प्रक्रियासे, होती है। किन्तु उन सब विषयोंकी आलोचना करना ईस पुस्तक का उद्देश्य नही है, यहां केवल मनुष्य जातिका शरीरतत्त्व और जीवविज्ञान सम्बन्धीय प्रयोजनीय व्यापार समूहोंका अनुशीलन करती है, इस-लिये इस ग्रन्थको मानवशरीरतत्व और जीव-विज्ञान कहा जा सकता है।

प्राण क्या है।—प्राण क्या है? यह एक कठिन प्रश्न है। जीवसृष्टिके आदिकालसे वर्त्तमान समय तक इस प्रश्नका उपयुक्त उत्तर नही मिला है। भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न वैज्ञानिक पण्डितोंने जीवतत्त्वकी आलोचनाकर इस कठोर प्रश्नके बारेमें जो सब प्रकाश कर गये हैं उससे यह जाना जाता है

कि मस्तिष्क, हृत्पिण्ड और श्वास यन्त्रके अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यही का नाम प्राण है। इसलिये उक्त तीन यन्त्रको "त्रिपाद" कहते है। किन्तु अधिक सूक्ष्म विश्लेषणसे जाना जाता है कि जीवन के सिर्फ दो पैर फुस्फुस् और हृत्पिण्ड हैं; कारण केवल मस्तिष्कमें आघात अथवा उसके विक्रियासे मृत्यु कभी नही होती पर वही चोट अथवा विक्रिया फुस्फुस् या हृत्पिण्डमें होनेसे मृत्यु होती है।

हृत्पिण्डका कार्य्य—शोणित सञ्चालन और फुस्फुस्का प्रधान कार्य्य श्वास प्रश्वास है। शोणित सञ्चालन और श्वास प्रश्वास यह दो मे एक भी रहित होनेसे मस्तिष्क की क्रिया रहित होती है। किन्तु यदि किसी कृत्रिम उपायसे हृत्पिण्ड और फुस्फुस्का कार्य्य ठीक रखकर मस्तिष्क बाहर निकाल लिया जायतो जीव की मृत्यु नही होती है।

जीव क्या है?—ऊपर कह आए है कि सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सभी जीवपदवाच्य है। जीव जड़ और जङ्गम ऐसे दो श्रेणीमें विभक्त है। उद्भिदादि जड़ तथा चक्षुके अगोचर चलच्छक्तिविशिष्ट जीवानुसे पूर्ण मनुष्य तक को जङ्गम कह सकते है। यही दो प्रकारके जीवोंकी सृष्टि, पुष्टि और नाश प्रायः एकही क्रियासे होता है।

कोष वा सेल CELL।—जीव विज्ञानवित् पण्डितोने बहुत खोजकर स्थिर किया है, कि जीवमात्रके देहमें असंख्य कोषों (CELL) की एक समष्टि है। यह सब कोष अति सूक्ष्म रीतिके जीवनी शक्तिका एक एक आधार है। इन सबका आकार इतना छोटा है कि विना अणुवीक्षण यन्त्रसे दिखाई नही देता। आधुनिक वैज्ञानिकोने इसका व्यास एक

इञ्चका ६००० वां अंश स्थिर किया है। हड्डी, मज्जा, मांस मेद, शोणित आदि शरीरके सब धातु इसी कोषसे बनाया गया है।

पलल या "प्रटोप्लाजम्" Protoplasm।—नयनके अगोचर अति सूक्ष्म जीवाणुरूप जीव जो जननीके जठरमें जन्म लेता है वह भी ऐसही एक कोषके सिवाय और कुछ नही है। परीक्षा करनेसे उक्त कोषमें एक प्रकार अर्द्धतरल पदार्थ दिखाई देता हैं उसको पलल या "प्रटोप्लाज्म्" कहते है। पलल स्वच्छ और वर्णविहीन क्षारमय पदार्थ जीवमात्रके अनुप्राणनीशक्ति इस पललमें निहित है।

मृत्यु क्या है।—जड़ या जङ्गम जीवमात्रका शरीर असंख्य कोषोंको समष्टि तथा उक्त कोषोंमें पलल नामक एकप्रकार अर्द्धतरल स्वच्छ पदार्थ और यह पलल जीवनीशक्तिका आधार स्थिर हुआ है। ऐसही शरीर उपकरणमें असंख्य जीवनीशक्ति है। जीविका देह जैसे असंख्य कोषकी समष्टी है वैसही जीवका जीवन भी क्षुद्र क्षुद्र पलल अर्थात् जीवनीशक्ति को समष्टी है। पहले कह आए है कि हृत्पिण्ड, फुस्फुस् और मस्तिष्कका अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यही जीवन भी रहता है तथा इस कार्य्य होता रहता है तभीतक जीवन भी रहता है तथा इस कार्य्यको निवृत्ति होनेसे मृत्यु होती है।

मृत्यु दो प्रकार।—साधारणकी धारणासे मृत्यु एकप्रकार; किन्तु वास्तवमे मृत्यु नानाप्रकार है। यही सब मृत्यु स्थानिक (Local) और सार्व्वांङ्गिक (General) भेदसे दो भागमे विभक्त है। जीवदेहमें प्राय सर्व्वत्र प्रतिक्षणमें स्थानिक मृत्यु होती है। शरीरके भीतर और बाहरी त्वकमें सर्व्वदा असंख्य

सेल अर्थात् कोष विनाश होते है तथा नये नये कोष पैदा होकर स्थान अधिकार करता है। शोणितके लाल कणा समूहोंमें भी सर्व्वदा ऐसाही परिवर्त्तन हुआ करता है। स्थानिक मृत्यु मनुष्यको सर्व्वदा दिखाई नहो देती है तथा यह प्राणरक्षा में विशेष उपयोगी है।

स्थानिक मृत्यु (Local Death)।—कभी कभी स्थानिक मृत्यु विस्तृत स्थानमें फैलकर होते दिखाई देता है; किसी प्रकारकी क्षयकरी पोड़ा अथवा आघात लगनेसे शरीरके प्रभूत अंशकी मृत्यु होते देखते हैं। शरीरका कोई अंश जल जानेसे अथवा किसी स्थानमें फोड़ा होनेसे शरीरका चमड़ा अल्प सा अधिक नष्ट हो जाता है। स्नायु, पेशी, हड्डी, चमड़ा आदि शरीर उपादान की मृत्यु होनेसे वह फिर पैदा होता है।

सार्व्वाङ्गिक मृत्यु (General Death)।—सार्व्वांगिक मृत्यु, दो प्रकार, समग्र शरीर की मृत्यु और शरीरके उपादान समूहों की मृत्यु प्रथमोक्त मृत्यु से हृत्पिण्ड फुस्फुस् और मस्तिष्कके सम्पूर्ण कार्य्य का निवृत्ति को कहते है। दूसरी मृत्यु शरीरके समस्त विधान उपादान अर्थात् समस्त कोष समूहोंकी जीवन शक्तिके सम्पूर्ण अपगम को कहते है। जीवकी मृत्यु होनेसे उसका समस्त शरीर पहिले मरता है; किन्तु शरीरके उपादान समूह शरीरके साथही नहो मरते अकसर बहुत देरके बाद समस्त उपादानोंकी मृत्यु होती है। इसलिये फांसी आदि प्राणदण्डसे दण्डित व्यक्तिगण की मृत्यु होनेके थोड़ी देर बाद भी उपयुक्त उत्तेजक पदार्थके संयोगसे उसके पेशीमण्डलमें सङ्कोच होता है, इस अवस्थामें मनुष्य मर जानेपर भी पेशीसमूह बहुत देरतक जीवित रहती है।

मौलिक उपादान।

ELEMENTARY TISSUES

जीव-शरीर को अच्छीतरह परीक्षा करनेपर उसके मौलिक उपादान समूह दिखाई देते है। जिसकी संख्या चार प्रकार (१) कौषिक, (२) संयोजक, (३) पेशिक और (४) स्नायविक; कोई २ शोणित और लसिका को भी इसके साथ मिलाकर सब समेत पांच प्रकारके उपादान उल्लेख कर गये हैं।

पहले कह आये है कि जीव देहमें असंख्य कोषको संख्यामात्र है। जो सब कोष त्वक, कफज और रसवाही झिल्लीको ढांके रखता है तथा जिससे शरीरके अपरापर अंशोको आवृत्ति होती है उसीको कौशिककला कहते है। शरीरके ऊपरवाले चमड़ेका कौशिककला प्रधान उपादान है। यहांतक कि नख और केश त्वकमें भी कौशिक उपादान दिखाई देता है। इसके सिवाय नासारन्ध्र, मुखगह्वर, मलमार्ग और मूत्रमार्ग आदि प्रधान २ रन्ध्र तथा श्वासमण्डल, अन्त्रमण्डल, मूत्रण और जनन मण्डल के भीतर की ग्रन्थी समूहोके नलमें भी यह भरपूर विद्यमान है।

संयोजक उपादान।

(CONNECTIVE TISSUES.)

प्रकृति और कार्य्य।—जिससे हड्डी, उपहड्डी बन्धन, आदि शरीरके अंशोंकी अपने २ स्थानमें निबद्धकर कङ्काल बनावे तथा स्नायु, पेशी और ग्रन्थि यन्त्रोके गठन और आवरण कार्य्यमें सहायता करे उसको संयोजक उपादान कहते है। शरीरके सब अंश अपने २ स्थानसे अलग न होय अर्थात् उचित स्थानमें रहकर जीवनका उद्देश्य साधन करना ही संयोजक

दानका प्रधान कार्य्य है। यह सब कार्य्यसाधन के लिये यह शरीर के सब धातुओंसे मिला हुआ रहता है।

संयोजक उपादान कठिन और कोमलभेदसे दो प्रकार का है। किन्तु श्रेणीविभाग के लिये सचराचर तीन प्रधान विभागमें विभक्त है। तान्तव संयोजक उपादान, उपास्थि और अस्थि।

तान्तवसंयोजक उपादान।

यह विधानोपादान शरीरके प्रायः सभी कोमल अंशोंमें है। धमनी, पेशी, बन्धनी, रज्जू या अधः त्वक, स्लैष्मिक, झिल्लि, स्नायु और ग्रन्थि आदि आवरण, झिल्लि, तथा मस्तिष्क, प्लीहा और यकृत् आदि जो सब तन्तुवत् कर्दमसदृश, श्वेत, पीत और रक्तवर्ण पदार्थ दिखाई देते है, उसीको तान्तव संयोजक उपादान कहते है।

उपास्थि। CARTILEGE

पक्के नारियलके गरीको तरह जो सब अर्द्धकठिन, अर्द्धकोमल पदार्थ नाक, कान, अस्थिका प्रान्त, श्वासनाली आदि स्थानोंमें दिखाई देता है, उसको उपास्थि कहते हैं। महर्षि सुश्रुत उपास्थि को तरुणास्थि कहते हैं। उपास्थि हड्डीकी तरह कठिन नही होती। उपास्थि नानाप्रकार तथा श्वेत, पीत और स्थितिस्थापक है। शेषोक्त उपास्थि मूषिक, चमगादड़ आदि प्राणियोंके कानमें दिखाई देती है।

अस्थि। BONE)

उपादान।—जीवदेह के कठिन पदार्थ को अस्थि कहते हैं। उपास्थिमें दो चार पार्थिव पदार्थ मिलानेसे हड्डी होती

है। लवणका चूर्ण इसका प्रधान उपादान है। यह दो उपादान निकाललेनेसे हड्डीमें कठिनता नही रहती और अति कोमल हो जाती है।

संख्या।—मनुष्यदेहमें दो सौ से अधिक अलग अलग हड्डी दिखाई देती हैं, किन्तु विशेष विचार कर देखनेसे जीवके सर्व्व अवस्था में अस्थिसंख्या बराबर नही रहती। बाल्यावस्थामें बहुतेरो हड्डियां अलग अलग रहती हैं, वह फिर वार्द्धक्यमें एकत्र मिलजाती है। देखिये, मेरुदण्डमें पहिले ३३ अलग अलग कशेरुका रहती है; इसमें ऊर्द्धांशकी २४ कशेरुका जन्मभर वैसही अलग अलग देखनेमें आती हैं; बाकी ९ में ५ एकत्र मिलकर पृष्ठवंश मूलमें मिलजाती है। शेष ४ की एक हड्डी हो जाती हैं, इसीका शङ्खावर्त्त कहते हैं। लड़कपनमें करोटीमें २२ अलग अलग हड्डी रहती हैं; तथा जवानीमें इसकी संख्या और भी बढ़जाती हैं तथा बुढ़ौतीमें फिर कम हो जाती हैं। छातीके दोनो तरफ १२ बारह कर २४ पर्शुका याने पञ्जरी है। इससे अधिकांश उपास्थिसे छातीके हड्डीका सम्बन्ध है। यह सब पर्शुका पृष्ठवंश अर्थात् मेरुदण्डसे आराम्भ हो धनुष की तरह टेढ़ी हो छातीके हड्डीसे मिली हुई हैं। छातीके हड्डीके उपर कंधेके सामने और पीछे चक्र और अंस फलकास्थि नामसे दो दो कर चार हड्डियां हैं।

करोटीमें ८ हड्डी हैं; यथा—ललाटमें १ और दोनो पार्श्वके उपरकी तरफ २ पार्श्वास्थि है। यह दोनो उपरकी तरफ परस्पर मिली हुई है। ऊर्द्धशिरः दोनो पार्श्वास्थिके नीचे दोनो पार्श्वमें दो शंखास्थि है। करोटीके जड़में और आगे एक शीषरास्थि है। बाकी दो करोटीके पीछे पार्श्व में हैं।

अस्थिके कार्य्य।—शरीरके अवयवोंमें हड्डा ही प्रधान उपादान हैं। हड्डी कठिन और हलकी अथच लघु हैं, इसीलिये उक्त कार्य्योमें यह विशेष उपयोगी हहै।ड्डी जैसी कठिन और हलकी हैं वैसेही यदि भारी होती तो शरीरगणोंका चलना फिरना एक तरहसे रहित हो जाता। हड्डी भीतरी कोमल यन्त्र समूहोंको (मस्तिष्क, हृत्पिण्ड, यकृत् आदि) बाहर। आघातादि से रक्षा करता है। करोटी और पर्शुका आदि यदि कठिन न हो कोमल होता तो सामान्य चोटसे ही जीवका प्राण-नाश होता। हड्डी कठिन होनेके सिवाय किसीकदर इससे स्थितिस्थापकता भी हैं। इसीलिये सहजमें नयी टूटती, इसके सिवाय हड्डीसे भारी वस्तु उठाना, चलना, सिकोड़ना आदिमें भी विशेष सहायता मिलती हैं।*

दन्त।

—:०:—

दांत जिस उपादानसे बनाया गया हैं उसका नाम रद है। वही एक पदार्थ हड्डीकी तरह कठिन हैं; इसीलिये दांतको अस्थि और संयोजक तन्तुकी समश्रेणी कहकर एकत्र वर्णित किया हैं; दांतके अन्यान्य उपादान भी हड्डी ही की तरह हैं; इसीलिये यहां

---

* हिन्दू आयुर्व्वेद के मतसे नरकङ्काल में सब २४६ हड्डियां है।

सक्थिद्वय (दोनो निम्नशाखा)	६२	बदनमण्डल	१४
बाहुद्वय (ऊर्द्धशाखा)	६४	दोनो कान	६
छाती	१	जिह्वामूल	१
पृष्ठवंश	२६	अगणमण्डलास्थि	८
पर्शुका (पञ्जरी)	३२	दन्त	२
करोटीमें	८	मोट	२४६

दांतके विषयमें भी कुछ कहना है। हिन्दू आयुर्व्वेद शास्त्रमें दांतको रुचकास्थि नामकी आख्या है।

स्तनपायी अन्यान्य प्राणियोंकी तरह मनुष्य भी जीवनके दो निर्द्दिष्ट समयोंमें दोवार दांतसे सजाया जाता है,—प्रथम जब दांत निकलते हैं उसको अस्थाई या दूधके दांत कहते हैं। दूधके दांत टूटकर फिर दूसरे दांत जब आते हैं उसे स्थायो दन्त कहते हैं। स्थायी दांत टूटनेपर फिर नहो आते है।

दांत चार प्रकार,—छेदन, शोवन, द्व्यग्र और पेषण। ऊपर की पातोमें ४ और नोचेकी पातोमें ४ को छेदन दन्त, शोवन दन्त उपर दो और नोचे दो, द्व्यग्रदन्त उपर ४ और नोचे ४, और पेषण दन्त उपर छ और नोचे छ; इसो तरह कुल ३२ दांत है।

दांत ठीक कौन वख्त निकालता है, इस विषयमें कुछ मतभेद दिखाई देता है; किसी बालक को छ मास होनेसे पहिले ही दांत निकलता हैं, किसीको नवे महीने और किसोको १२वे महीने निकलता है। गरज मोटा ताजा सबल बालक को छठे महीने दांत निकलता हैं। इसीलिये हमारे देशमें ६ठे महोने अन्नप्राशन करनेकी विधि है। पूतना आदि पोड़ासे हड्डोके पुष्ट होनेमें वाधा पड़नेसे दांत निकलनेमें देर होती हैं।

प्रत्येक दांतमें सचराचर तोनभाग है; यथा—अग्र, ग्रोवा और मूल। बाहर निकले हुए भागको अग्र, इसके नोचेवाले भागको ग्रोवा तथा इसके नोचेवालेको मूल कहते हैं। दांतका प्रधान उपादान रद ना क पदार्थ है। इसमें हड्डोकी अपेक्षा थोड़ा तान्तव पदार्थ भो हैं। यह रद एकप्रकार अस्थिमय पदार्थसे मण्डित है, दांतकी उज्वलता और मसृणता इसोसे साधित होतो हैं। रदका जो अंश दन्तवेष्टके बाहर हैं उसोसे यह उज्वल पदार्थ दिखाई देता

है, तथा इसका अंश जो चहुएके भीतर रहता है, वह भी एक कठिन पदार्थसे बना हैं। दांतके भीतर एक छोटा छेद हैं। इस छेदमें दो छोटा मुह दन्तमूलके दो तरफ से निकला हुआ हैं। स्नायु और शोणित नाली सब यही दो मुखसे दांतके गर्भमें प्रविष्ट हुई है। इसीलिये दांतका गर्भ कोमल रहता हैं।

प्रौढ़मानव-शरीरकी अस्थिसंख्या।

—०:○:०—

बहुत खोज करनेपर मालूम हुआ हैं कि दन्त आदि कई छोटी छोटी अस्थिके सिवाय मनुष्य देहमें सब २०० हड्डी हैं। नीचे उसकी फिहरिस्त दी जाती हैं।

पृष्ठवंश	२६
करोटी	८
मुखमण्डल	१४
छाती और पञ्जरी आदि	२६
ऊर्द्ध शाखाद्वय	६४
सक्थि या निम्न शाखाद्वय	६२
मोट	२००

अस्थिसमूहोंके प्रकारभेद।

—०:०:०—

महर्षि सुश्रुतके मतसे हड्डी पांच प्रकार, यथा—कपाल, रुचक तरुण, वलय और नलक। डाक्तरी मतसे भी हड्डी चार श्रेणीका विभक्त है. यथा—दीर्घास्थि, खर्व्वास्थि, प्रशस्तास्थि और विविधाकार अस्थि समूह। सुश्रुत कहते हैं जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड,

नरकङ्काल।
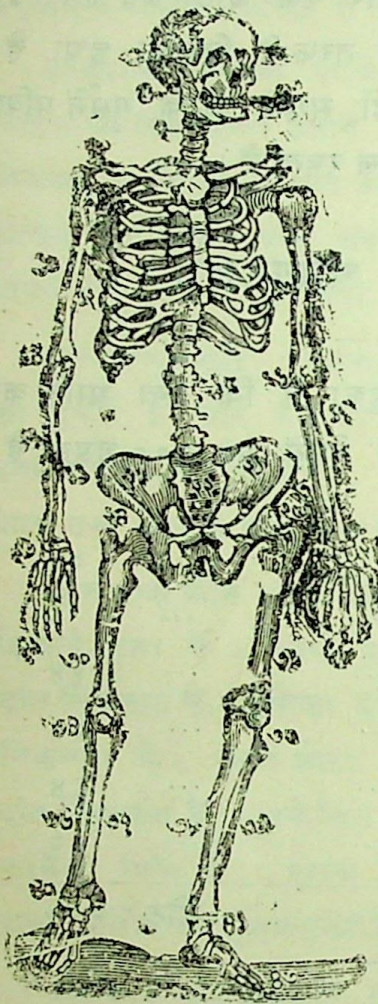
तालु, शङ्ख, और मस्तक में कपोल नामक हड्डियां हैं। दांतको रुचक अस्थि कहते हैं। नासिका, कर्ण, ग्रीवा और आंखके दोनो कोनोंमें तरुण अस्थि रहती हैं। तरुण हड्डियोंको अङ्गरेजीमें कार्टिलेज (Cartilege) अर्थात् अधना उपास्थि कहते हैं। वलय नामक हड्डिया पाणि, पाद, पार्श्व, पृष्ट, उदर और छातीमें दिखाई देती है। अवशिष्ट स्थानो में नलक नामक हड्डिया रहती है। सुश्रुतोक्त तरुण हड्डी अर्थात् कार्टिलेज को छोड़ देनेसे केवल चारही प्रकार बाकी रहता हैं। सुतरां डाक्तरी शास्त्रोक्त चार प्रकार की हड्डीयोंके साथ इसकी समानता हो सकती है। किन्तु इसमें कौन दीर्घ और छोटी तथा कौन विविधाकार हैं इसका निर्णय करना कठिन है।

१। दीर्घास्थि—मनुष्य शरीरमें सब समेत ९० दीर्घास्थि हैं। इन्ही सब हड्डीयोंसे देहकी रचा होती हैं, तथा चलना फिरना, भारी वस्तु उठाना और उठना वैठना कार्य्य इसीसे होता हैं। इसमे प्रत्येक के मध्यमें अस्थिमज्जानाली और एक एक काण्ड हैं।

२। खर्व्वास्थि—सब समेत ३० है, देहके जिस अंशमें अधिक बल किन्तु कम सञ्चालन क्रिया की जरूरत है, यह हड्डो इन्ही सब स्थानोमें रहती है।

३। प्रशस्त अस्थि—की संख्या ३८ है। यह भीतरी यन्त्र समूहो के चारो तरफ दीवालकी तरह घेरकर चोटसे रक्षा करती है।

४। विविधाकार अस्थिसमूह—की संख्या ३९ है। यह पृष्ठ-वंशास्थि, शङ्खावर्त्त, शङ्खास्थि, शोषिरास्थि, कीलकास्थि, और कशे-रुका हड्डीयोंको श्रेणीके अन्तर्गत है।

हाथ और पांच अङ्गुली।
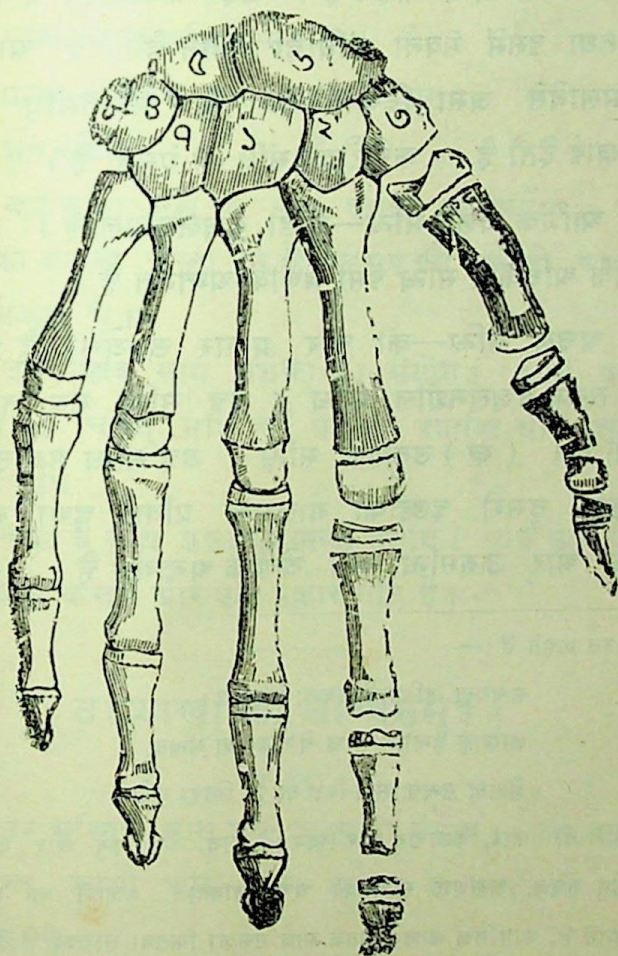
अस्थिसन्धि या जएण्टस्। (Joints)

उत्थान, गमनागमन, भारोत्तोलन आदि क्रिया जिससे बैठकें होती हैं उसको अस्थिसन्धि कहते हैं। अस्थिसन्धि तीन प्रकार में विभक्त की जाती है। (१) अचलसंधि, (२) आंशिक चलत् संधि, और (३) चलत् संधि।

अचलसन्धि और उसके भाग।—१। केवल नीचे वाली हनुसंधिके सिवाय बाकी करोटी और मुखमण्डल तथा और सब संधिको अचल सन्धि कहते है। यह अचलसंधि ३ उपश्रेणीमें विभक्त हैं तथा इसमें सेवनी संधि ही प्रधान है। २ आरीके दांत परस्पर मिलानेसे जैसा दिखाई देता है, सेवनीसंधि भी ठीक वैसही दिखाई देती है। करोटीकी संधि भी ऐसही है।

२। आंशिक चलत् सन्धि—थोड़ी सञ्चलनशील है। कशेरुका और वस्तिके अधिकांश सन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

३। अचल सन्धि—की चार प्रकार उपश्रेणी है; (क) कई चारो तरफ सञ्चलनशील सन्धि; यह सन्धि सब तरफ आवर्त्तित होती है। (ख) उदूखल सन्धि; यह सन्धि सब ऊखल की तरह गह्वरमें दूसरी हड्डीका गोलमुख प्रविष्ट हुआ रहता हैं। स्कन्धसन्धि और ऊरुसन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। (ग) जानु-

---

महर्षि सुश्रुत कहते हैं :—

सन्धयस्तु द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च।

शाखासु हन्वोःकट्याञ्च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः!

शेषास्तु सन्धयः सर्व्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः॥

अर्थात् सन्धि दो प्रकार, चेष्टावान और स्थिर। हाथ, पैर हनु और कमरकी सन्धि चेष्टावान अर्थात् सचल, अवशिष्ट सन्धि को अचल जानना। हजारों वर्ष पहिले महर्षि सुश्रुत जी कहगये है, आधुनिक डाक्तरी मतके साथ उसका कितना सादृश्य हैं देखिये।

सन्धि, गुल्फसन्धि और कफोणिसन्धि दूसरे श्रेणीके अन्तर्निविष्ट हैं। (घ) आवर्त्तनशील सन्धि। इसके सिवाय प्रकोष्ठ और कोदन्त संधि भा इसो श्रेणीके अन्तर्गत है।

देहकाण्ड के अस्थिसमूह।

—:०:—

१। पृष्ठवंशको अस्थिसंधि। यह संधि कशेरुका समूह के अस्थिका कोई अंश और प्रवर्द्धनोंसे बना है।

२। पार्श्वकपाल-अस्थिकासंयोग।

३। पार्श्व-कपालके साथ आंखका संयोग।

४। हनुसंधि।

५। कशेरुका समू के साथ पर्शुका का संयोग। यह सब अचलसंधिको बन्धनो इतनो दृढ़ है कि सहजमें उसको अलग नहीं किया जा सकता है।

६। उरोऽस्थिके साथ पर्शुका का संयोग। इसमें एक अर्द्ध-चलत् और ६ चलत् संधि है, पर्शुका उपास्थि और वक्ष अस्थिके किनारे को संधि।

७। वस्तिके साथ पृष्ठवंशास्थिका संयोग। यह सात प्रकारको सन्धिके सिवाय कक्षमें और एक प्रकार संधि है।

उर्द्धशाखा को सन्धिसमूह।

—:०:—

१। उर:अस्थिके साथ जत्रु अस्थिका संयोग। जत्रुका आभ्यन्तरिक प्रान्त, छातो और प्रथम पर्शुका के उपास्थिके साथ यह सन्धि निर्म्मित है।

२। अंशफलकास्थि के साथ जत्रु अस्थिको संधि।

३। अंशफलकास्थि की प्रकृत सन्धियां।

४। स्कन्धसंधि।

५। कफोणिसंधि।

६। कोदण्डास्थिके साथ प्रकोष्ठास्थिका संयोग।

७। मणिबंधसंधि।

८। मणिबंधमें पंक्तिवत् अस्थिसमूहोंका संयोग।

निम्नशाखाकी संधिसमूह।

१। ऊरुसंधि।

२। जानुसंधि।

३। अग्रजङ्घास्थिके साथ अनुजङ्घास्थिका संयोग।

५। गुल्फसंधि।

५। प्रपदास्थिसमूहोंका संयोग।

६। अङ्गुलिसमूहोंका संयोग।

द्विविध सन्धि।—महर्षि सुश्रुत ने क्रियाविशिष्ट और स्थिर एवं दो भागोंमें संधियों को विभक्त किया है। हाथ पैर हनु, और कमर इन स्थानोंकी संधिको क्रियाविशिष्ट तथा बाकी को स्थिर कहते है। सब समेत २१० संधि हैं। जिसमें हाथ पैर में ६८, कोष्ठमें ५९, ग्रीवाके उपर ८३, प्रत्येक पदाङ्गुलिमें तीन तीन कर १२ और अङ्गुठेमें २ सब समेत १४ ; जानु, गुल्फ और वंक्षण में एक एक। प्रत्येक पैरमें १७ कर ३४, इसी प्रकार दोनों हाथों में भी ३४ संधि हैं। कमर और कपालमें ३, पृष्ठमें २४, दोनो पार्श्वमें २४, छातीमें ८, गरदनमें ८ और कण्ठमें ३ संधि है। नाड़ी, हृदय और क्लोममें १८ तथा दांतमें जितने दांत उतनीही संधि है। कण्ठमें एक,

नाकमें एक नेत्रमें दो, गाल, कान और शङ्खमें एक एक, हनुमें दो, भौंके उपर दो, दोनो शङ्खमें दो, सिरके खोपड़ीमें ५ और मूर्द्धमें एक।

सन्धि आठ प्रकार।—उपरोक्त सन्धिया ८ प्रकार; यथा कोर, प्रतर, उदूखल, सामुद्र, तुन्नसेवनी, वायसतुण्ड, मण्डल और शङ्खावर्त्त। अंगुलि, मणिवंध, जानु, गुल्फ और कूर्पर इन सब स्थानोंको संधिको कोरसंधि कहते है। कांख वंक्षण और दांतके संधिको उदूखल; कंधा, मलद्वार, योनि और नितम्बको संधिको सामुद्र, गरदन और पीठके संधिको प्रतर; मस्तक, कमर और कपालके संधिको तुन्नसेवनी; तथा दोनो हनुके संधियोंको वायसतुण्ड कहते हैं। कण्ठ, हृदय, नेत्र, क्लोम और नाड़ी की संधि, मण्डल नामसे अभिहित है।

पेशीसमूह। (Muscles.)

प्रकृति और विभाग।—पेशीयोंसे देह और अंश सब सञ्चालित होते हैं। स्थितिस्थापक, किञ्चित् लालरंगके पतले तन्तुमय पदार्थ के पेशी कहते हैं। इसमें बहुत पानी रहता है। पेशी दो श्रेणीमें विभक्त है। (१) इच्छानुग, और (२) स्वाधीन। अन्नवहा नाली, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, धमनीकी दीवाल, विशेषकर शिरा और लसिका नाली समूहो की दीवाल आदि स्थानोंमें स्वाधीन पेशी देखाई देती है। बाकी स्थानोंमें इच्छानुग पेशी है।

पेशीसंख्या।—मनुष्यके देहन प्रायः चार सौ पेशी है; जिसमें करोटीके पेशीके बारेमें पहिले लिखता हूं। (१) ललाट और कपालके पीछेको पेशीसे भी, ललाट और मुखमण्डल की क्रिया प्रकाश होती है। (२) अक्षिपुट सम्मिलक पेशी; इससे अक्षिपुट बन्द होता है। (३) भ्रूसङ्कोचक पेशी; इससे भौं नीचे

और भीतरके तरफ आकृष्ट होता है। (४) अक्षिपुटाग्र—आकर्षक पेशी ; यह अक्षिगोलक के उपर अश्रुग्रन्थिका छिद्र और अश्रुस्थाली को दबा रखती है। (५) एक पेशी उपर के अक्षिपल्लव को उठाती हैं। (६) और एक पेशी अक्षिगोलक के उपर हैं। (७) एक पेशी नीचेकी तरफ है। (८) एक पेशी भीतरकी तरफ। (९) एक पेशी बाहरकी तरफ। (१०) अपर एक पेशी सामने और पीछे अक्षांखामें घूमती है। (११) एक पेशी अक्षिगोलक के पीछे और बाहर घूमती है, तथा कनीनिका को अक्षिकोटर के बाहरी और उपरवाले कोनमें ले जाती है।

इसके सिवाय नासिकामें तीन, ऊर्द्ध ओष्ठमें छ. अधरमें चार, हनुमें पांच, कानमें तीन, कानके भीतर चार ग्रीवाके सर्व्वत्र तैतास, तालुमें आठ, पीठमें सब समेत सात, छातीमें पांच, उदरमें छ, विटपमें आठ किन्तु स्त्रीके विटपमें सात, कांधेके ऊर्द्धशाखा और प्रगण्डमें पंदरह, प्रकोष्ठमें इक्कीस, हाथमें एगारह और सक्थि अर्थात् निम्नशाखामें बावन यही सब प्रधान पेशी हैं। इसके सिवाय और भी दो सौ छोटी शाखाप्रशाखा पेशी है।

स्नायुसमूह। (Nerves.)

पेशी और स्नायु।—स्नायु क्या है?—पेशी समूहोसे शरीर अथवा शरीर के अङ्गप्रत्यङ्ग सञ्चालित होते है, किम्बा अपने अपने कार्य्यसाधनमें समर्थ होते हैं। यह शक्ति स्नायुमण्डलसे पेशीको मिलता है। अर्थात् स्नायुके सहायतासे पेशी अपना काम करती है तथा हमलोग जैसे चलते, फिरते, उठते, बैठते और काम कर सकते है। क्षुधा, तृष्णा, काम, क्रोध आदि वृत्ति और प्रवृत्ति आदि सब स्नायुके कार्य्य है। रूपदर्शन, शब्द

श्रवण, गन्धग्रहण, रसास्वादन और स्पर्शज्ञान आदि सब कार्य्य स्नायुसे साधित होता है। मत्त मातङ्गकी तरह बलवान पुरुष विराट देह और विशाल हाथ पैरसे कूद फांद रहा है, उसके सिरमें मारतेही देखेंगे की थोड़ेही देरमें ऐसा महावली पुरुष मिट्टीके गोलेकी तरह वेहोश हो जमीनपर गिर पड़ा है। यह दशा उसकी सिर्फ स्नायुमण्डल मे चोट लगनेसे हुई है, यदि वह चोट थोड़ी हो तो थोड़ी देरमें होशमें आसकता है और यदि चोट जोरसे लगीतो मूर्च्छाके साथही साथ मृत्यु होती है। इससे स्पष्ट हुआ कि स्नायु-मण्डल ही जीवका चेष्टा और चैतन्य का प्रधान यन्त्र है।

———

मस्तिष्क।

—:०:—

बनावट।—पहिले कह आये है, कि करोटी-गह्वरके हड्डोकी कठिन दीवारके भीतर मस्तिष्क है। ठीक अखरोटके गूदेकी तरह इसके भीतर का हिस्सा दिखाई देता है। मस्तिष्क के चार प्रधान विभाग है, (१) वृहत् मस्तिष्क, (२) क्षुद्रमस्तिष्क, (३) सेतु या एक सफेद रङ्गका बन्धन और (४) मात्रका मूला-धार। इसके सिवाय इससे ३ झिल्ली है जिससे यह चारो तरफ आच्छादित रहता है।

वजन।—पूरे उमरके व्यक्तिका मस्तिष्क प्राय डेढ़ सेर वजनका होता है। हाथी और ह्वेल मछली आदि प्राणीयांकी अपेक्षा मनुष्यका मस्तिष्क भारी होता है। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका मस्तिष्क २॥ छटांक कम वजन होता है।

मस्तिष्कके चार भागोंमें वृहत् मस्तिष्क ही सबसे बड़ा है इसका वजन ४३ से ५३ औंस है। करोटी गह्वरके उपरि अंशमें इसका स्थान है। यह स्नायुमय पिण्डपदार्थ अंडेकी तरह होताहै।

मस्तिष्क की तस्वीर।

मेरुरज्जु ।

—:०:—
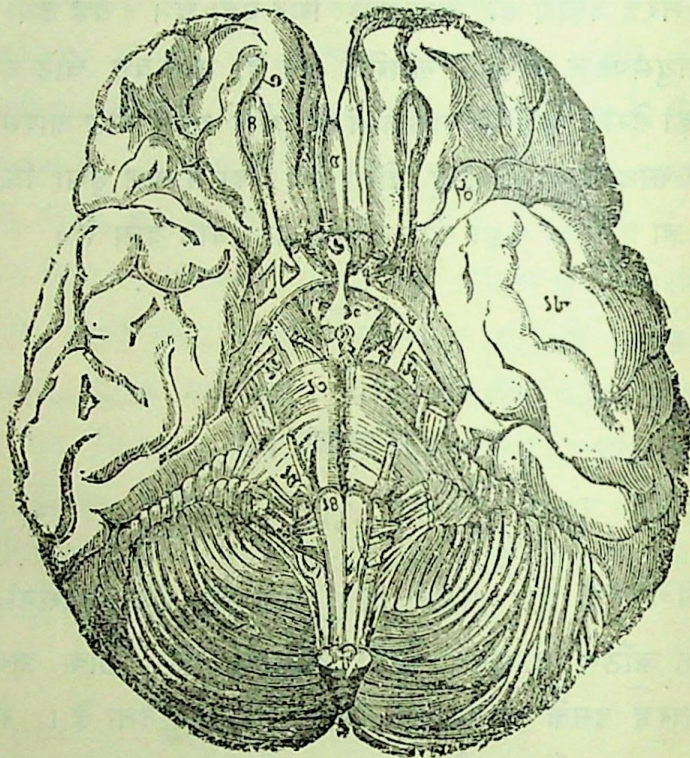
झिल्ली और स्नायु।—कसेरूका प्रणालीके भीतरवाली स्नायुके पोली नलीके पिण्डको मेरुरज्जु कहते है। यह तीन मज्जामय झिल्लोसे आच्छादित है; तथा वही तीन झिल्ली अनेक अंशोंमें

मस्तिष्कके झिल्लीसे मिली हुई है। मेरुमज्जासे ३१ युग्म स्नायु उत्पन्न हुई है; इसीलिये यह स्नायु सब मेरुमज्जाजात स्नायु नामसे अभिहित है। कसेरुकाके पाससे जो जो स्नायु निकाला है, कसेरुका उसी उसी नामसे प्रसिद्ध है।

गरदनमें ८ स्नायु है। यह स्नायु जितनी नीचे गई है, आकार भी उसका उतनाही बढ़ता गया है।

पीठमें १२ स्नायु है। इसमें प्रथम स्नायु पीठके प्रथम और द्वितीय कसेरुका के मध्यभागसे और शेष स्नायु द्वादश संख्यक पृष्ठावलम्बी और प्रथम संख्यक कमरकी कसेरुका से उत्पन्न हुई है।

कमरमें स्नायु १० दश,—प्रत्येक पार्श्वमें पांच करके है। इसमें बहुतेरी नीचे बस्तितायतन की साहानुभूतिक स्नायुसे मिला हुआ है।

पूर्व्वोक्त त्रिविध स्नायुके सिवाय पृष्ठवंशमूलमें पांच और ब्रह्मा-वर्त्तमें एक स्नायु और है। यही दो प्रकार स्नायु यथाक्रम पृष्ठवंश-मूलीय और ब्रह्मावर्त्तीय स्नायु नामसे अभिहित है। ऊपर जितनी स्नायुका नाम कहा गया है, इन स्नायुओंके सिवाय क्षुद्र और वृहत् बहुतेरी स्नायु तथा साहानुभूतिक स्नायु नामसे और एक स्नायु है।

स्नायुसमूह।

—:०:—

(क) मस्तिष्कका सामना। (ख) मुखमण्डलकी स्नायु। (ग) पश्चात् मस्तिष्क और मातृका। (घ) कशेरुका मज्जा। (ङ) ऊर्द्ध

शाखाका स्नायु। (च) प्रकोष्ठका स्नायु। (छ) मणिबन्ध और हाथ का स्नायु। (ज) अङ्गुली का स्नायु। (झ) छाती और पीठका
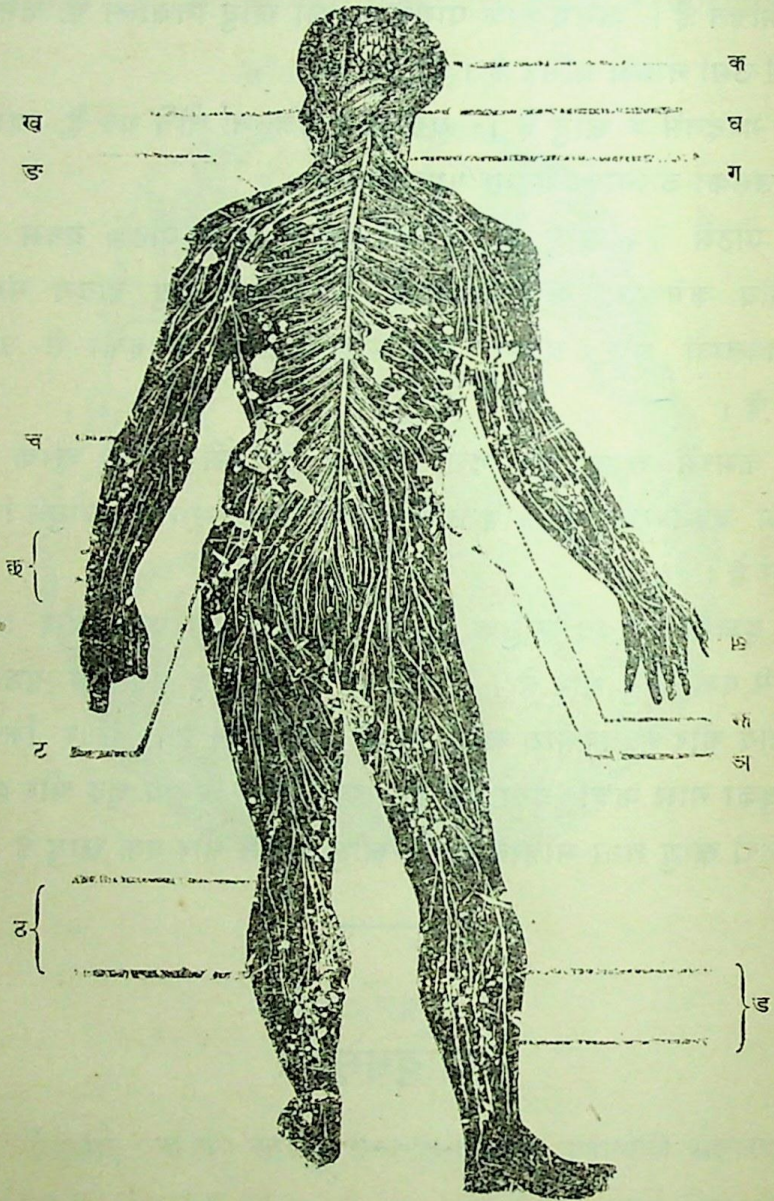
स्नायु। (ञ) निम्न शाखा की स्नायु। (ट) ऊरुको स्नायु। (ठ) जानु और पैर को स्नायु।

बगल की तस्वीरमें शरीरके समस्त स्नायुविधान दिखाये गये है। मस्तिष्क के सम्मुख अंशमें मातृका मूलाधार और कशेरुका-मज्जा दिखाई देती हैं, तथा मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा से जितनी स्नायु निकल कर शरीर के नानास्थानों मे व्याप्त हुई हैं, वह दिखाया गया हैं।

शरीर और मन।

—०:०:०—

दोनोंमें प्रभेद।—पहिले कह आए है कि, शत मत्त-मातङ्गके तुल्य बलवान व्यक्तिके मस्तिष्क मे सामान्य चोट लगनेसे वह निर्जीव जड़ मांसपिण्डकी तरह जमीनपर गिरपड़ता है। इस अवस्थामें वह मुर्देकी तरह हो जाता है; पर सेवा करनेसे तुरन्त ही जाग उठता है; मानो उसको किसी तरह की कोई तकलीफ नहीं हुई थी। उत्कट मनोवेग अथवा विकट दुर्गन्धसे भी कोई कोई स्नायविक प्रकृतिवाले मनुष्य को ऐसही अवस्था हो जाया करती है। मनके साथ शरीरका कितना घना सम्बन्ध हैं, यह इससे जाना जाता हैं। तथा इससे यह भी स्पष्ट है कि शरीर अर्थात् पेशी सब मनके सम्पूर्ण अधीन हैं। पर थोड़ा विचार करनेही से यह बात भूल मालूम होगी। इसका कारण यह है कि मानलो कि किसीके पृष्ठवंश या पीठमें किसीने छूरी मारी अथवा गोली किया, इससे उसका मेरुदण्ड दो टूकड़े हो गया और बाकी यन्त्र सब ज्योंके त्यों है। तुम समझोगे कि वह अब नही बचेगा। यह न हो वह बच गया और उसके बाकी सब

यन्त्र ठीक हैं। उसका मनभी पूर्व्ववत् हैं सिर्फ मेरुदण्ड कट जानेसे सीधा खड़ा होनेकी शक्ति लोप हो गई है। सिर्फ यही नही उसके दोनो पैरकी अनुभूति शक्ति भी नष्ट हो गई हैं, इसलिये वह इच्छानुसार नीचेका अङ्ग चलाने अथवा वहांके पेशी समूहोंका सङ्कोच और विस्तार नही कर सकता हैं। इससे मालूम होता है कि उक्त अवस्थामें नीचेके अङ्गोंके उपर मनकी क्षमता नही रहती हैं।

मन कहां है।—विचारकर देखनेसे मालूम होता है कि मस्तिष्क ही सब प्रकार की अनुभूति शक्ति और मानसिक कार्य्य का आधार है तथा सब स्वेच्छानुग पेशी प्राय सर्व्वतोभावसे इसी मस्तिष्क के अधीन है। सुतरां मस्तिष्क ही मनका आधार है।

शोणितसञ्चालन प्रणाली।
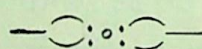
कार्य्य और अपचय।—जीवदेह कभी भी निष्क्रिय नही रहता ; जीव खुद क्रियाशून्य और निश्चिन्त मनसे बैठा रहनेपर भी शरीरयन्त्रके भीतर उसके नानाप्रकारके कार्य्य हरवक्त जारी हैं,—हृत्पिण्ड, फुसफुस, धमनी, शिरा, पाकस्थली, प्लीहा, यकृत आदि अपने अपने कार्य्यमें लगातार लगे हुए है। इन सब के कार्य्य क्रमशः दिखाये जायगे। पर इन सबके परिश्रम से प्रत्येक की सञ्चित शक्ति क्रमशः अपचय हो जाती है; कारण कार्य्यके होनेसे उसकी शक्तिका भी थोड़ा अपचय होता ही है।

शक्ति-सञ्चय।—जिस शक्तिका एक दफे अपचय या क्षय हुआ, वह फिर शरीर यन्त्रके पूर्ण नही होता। उसे बाहरी द्रव्यसे पूरा करना पड़ता है, बाहरी द्रव्यका नाम है भोजन। हमलोग जो कुछ खाते है, वह पाकस्थली में जाकर शोणित, मलमूत्र आदिमें क्रमशः परिणत होता है। इसी शोणित से क्षय हुई शक्तिका फिर सञ्चय होता है तथा मलमूत्रादि शरीरके दूषित पदार्थोंको बाहर निकालते है। अतएव शोणित ही जीवकी शक्ति है। इसका रङ्ग लाल है, इससे सचराचर इसे रक्त कहते है।

शोणित क्या है?—शोणित क्या है? शोणित एक खारा और पतला पदार्थ है। इसमें जलीय, कठिन और वायव पदार्थभी मिला है। स्त्री और पुरुष तथा उमर और अवस्था भेदसे वही सब पदार्थ के परिमाण में प्रभेद हो जाता है। अर्थात् शोणित के १०० भागमें ७९ भाग पानी और २१ भाग सूखा कठिन द्रव्य दिखाई देता है। वायुमें यवाक्षार और खट्टा जितना है, ठीक उतनाही शोणित में पानी और कठिन पदार्थ हैं। अर्थात् शोणित में चार आने कठिन पदार्थ और बारह आने केवल पानी है, तथा इक्कीस भाग कठिन पदार्थ में १२ भाग सफेद और लाल कणिका है बाकी ९ भागमें ६ भाग एल्‌बिउमेन नामक पदार्थ और तीन भाग लवण, वसा और शर्करा है। इसके सिवाय शरीरके भीतरकी शक्तिका क्षय हो जो सब पदार्थ शरीरके बाहर निकलते है, उसका कुछ अंश और फाइब्रिन नामक एक प्रकार तन्तु सदृश पदार्थका कुछ कुछ अंश शोणित में दिखाई देता है।

वायव पदार्थ।—शोणितका प्रायः आधा हिस्सा वायव

पदार्थ इसमें है; अर्थात् प्रति १०० इञ्ची गाढ़े खूनमें कुछ कम ५० इञ्ची गाढ़ा वायव पदार्थ है। यह वायव पदार्थ को अङ्गाराम्ल, अम्लजान और जवाखारजान कहते हैं। यही वायव पदार्थ बाहरी हवामें भी है। बाहरी वायुमें बारह आने यवाखारजान, चौथाई अम्लजान और अङ्गाराम्लका बहुत सामान्य लेशमात्र दिखाई देता है। पर शोणितमें वायव पदार्थका परिमाण ऐसा नहीं है; शोणित में प्राय दश आने अङ्गाराम्ल और कुछ कम छ आने अम्लजान और बहुत कम जवाखारजान है।

पहिले कह आए हैं कि उमर, आहार, धातुप्रकृति, और स्त्री पुरुष भेदसे स्वस्थ्य अवस्था में भी शोणितके उपकरण समूहोंमें तारतम्य दिखाई देता है।

१। स्त्री पुरुष भेद। स्त्री जातिकी अपेक्षा पुरुषके शोणितमें लाल कणाका परिमाण बहुत वेशी है, इससे स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें गुरुत्व भी अधिक है।

२। ससत्त्वावस्था। गर्भिणीके शोणितमें लाल कणाका परिमाण कम रहता है, इसीलिये ससत्त्वावस्था की अपेक्षा शोणित में गुरुत्व भी कम है।

३। वयस। गर्भस्थ बालक से दो महीनेतक के बालकके शोणित में कठिन पदार्थ विशेषकर लालकणाका परिमाण बहुत अधिक है। लड़कपन में यह कठिन पदार्थ नीचे बैठजाता है तथा यौवन और प्रवीण अवस्था में फिर उपरको उठ आता है। तथा बुढ़ौती में यह कम हो जाता है।

४। धातुप्रकृति। तामसिक प्रकृति या क्रोधी स्वभाववालेके शोणित में कठिन द्रव्य अर्थात् लालकणिका का परिमाण अधिकतर रहता है।

५। खाद्य। मांसाहारी की अपेक्षा शाकभोजीके शोणित में कम कठिन द्रव्य दिखाई देता है।

६। शोणित मोक्षण। फस्त लेनेसे शोणितके लालकणिका का परिमाण कम हो जाता है।

वर्ण और विभिन्नता।—शरीरके सब स्थानोंके, शोणित का रङ्ग एकसा नहो हैं; धमनीका रक्त शिराके रक्तकी तरह नही होता, तथा शिरामण्डल में भी सब जगह एकसा रक्त नही हैं। धमनीके शोणितका रङ्ग उज्वल लाल; कारण इससे अम्ल-जान अधिक है; शिरा मण्डलका शोणित बेंगनी रङ्ग, कारण उसमें अम्लजान कम हैं। इसके सिवाय धमनीका शोणित जितना जल्दी जम जाता है उतना जल्दी शिराका शोणित नही जमता। तथा फुसफुस, यकृत् और प्लीहाकी शिरायोंका शोणित भी और शिरायोंके शोणित से भिन्न प्रकार है।

रक्तका परिमाण।—जीव शरीर में कितना रक्त है, इसका अभ्रान्त निर्णय करना अति कठिन है; तथापि बहुत विचार करने पर स्थिर हुआ हैं कि जीवके शारीरिक बोझके साथ रक्तका भी अनेक सम्बन्ध है। पण्डितगणोंने अनेक परिक्षा-कर निर्णय किया है कि शरीरके समग्र भागके प्रायः १।१२ से १।१४ भाग शोणित जीवके शरीरमें रहता है। मनुष्यका भी ठीक ऐसही है। पर अवस्था भेदसे कुछ तारतम्य दिखाई देता है। भरपूर भोजनके थोड़ी देर बाद शरीरके रक्तका जो परिमाण रहता है उपवास में उससे कुछ कम हो जाता हैं।

रक्तका उपादान।—रासायनिक उपकरणके सिवाय बाकी शोणितके जो सब प्रधान उपादान है, यहां उसका संक्षेप में और लिखा जाता है। शोणित के चार प्रधान उपादान है।

जैसे (१) रस, (२) कस, (३) कणिका और (४) तन्तु। शोणित के पतले मेंअंश जो कणिका सब तैरती है उसको रस कहते है। शोणितसे खूनका गाढ़ापन निकाल लेनेपर जो मैला पतला पदार्थ बाकी रहता है वही उसका कस है। कणिका दो प्रकार (१) श्वेत अथवा वर्णहीन (२) और लाल कणिका। स्वस्थ्य शरीर मे खूनकी सफेद कणिका की अपेक्षा लाल कणिका अधिक रहती है; कारण वही कणिका रक्तका सार पदार्थ है और इसीकी सत्तासे शोणित का रङ्ग लाल होता है।

रक्तका उद्भव।—लाल कणिका ही जब रक्तका प्रधान सार पदार्थ है, तब उसकी उत्पत्ति निर्णीत होनेही से रक्तका उद्भव स्थिरीकृत हो सकता है। कोई कोई कहते है, जीवकी पर्शुका अर्थात् पञ्जरास्थि समूहों के भीतर जो लाल रङ्गकी मज्जा है उसीमें से खूनके लालकण उद्भूत और परिपुष्ट होते है। कोई कहते है, प्लीहाके उपादानमें लाल और वर्ण-हीन दोनो कणिका पैदा होती हैं। किसीका मत यों है कि सफेद कणिका सब दिन पाकर लाल कणिका का रूप धारण करती है। गरज इस विषय में अबतक कोई अभ्रान्त मत प्रचार नही हुआ है।

शोणित की क्रिया।—शोणित जैसा जीवका प्रधान साधन है, वैसाही यह शरीर के बाहरी और भीतरी सब यन्त्रोंका जीवन स्वरूप है। कारण इससे सब क्रिया की कुशलता साधित होती है। जो स्नेह पदार्थ मस्तिष्क का प्रधान उपादान हैं वह शोणित से उत्पन्न होता है। शोणित छातीका गह्वर, अस्थिका झिल्लीजाल और मज्जा, मज्जाकी कोमलता, पेशीका तन्तु, पाकस्थली की पाचकाग्नि, मुखकी लार, यकृत् का पित्त; वृक्कमें

मूत्र, आंखमें आंसु, त्वकमें पसीना, मस्तकमें केश, और अङ्गुलियों में नख की योजना कर सबको परिपुष्ट भी रखता है।

शोणित-सञ्चालन।

—:०:—

शोणितका चलाचल।—पहिले कह आये हैं कि शोणित ही जीवका मूल आधार है खाया हुआ अन्न परिपाक ही शोणित होता है। तथा यह सारे शरीरमें व्याप्त हो रहता है। और इसके चलाचल के लिये शरीरके समस्त अंशो में रास्ता या नाली है। वही नाली धमनी, शिरा आदि नामसे प्रसिद्ध है। वृक्षादि स्थावर जीव जैसे पृथिवी से रस आकर्षण कर जीवित रहते है, जङ्गम जीवगण जैसे पाकस्थलीके अन्नसे रक्त संग्रह कर जीवन की रक्षा करते है। धमनी और शिरायें भी वैसही शरीरके सब अशमें शोणित लेजाकर शरीरको सजीव रखती हैं। इस नालीका शोणित शरीरके सब अंशोमें पानीकी तरह व्याप्त है।

सच पूछिये तो हृत्पिण्डही शोणितका प्रधान आधार है। हृत्पिण्ड से धमनी और धमनी से शिरामण्डलमें प्रवाहित होता हैं। यहांसे फिर शोणित फुसफुससे होते हुए हृत्पिण्डमें लौट आता है और हृत्पिण्ड से फिर धमनी और शिरामें जाता है। इसी तरह शरीर यन्त्रमे शोणित बराबर चलता रहता है। शोणित के नाली में कोई द्रव्य रहनेसे शोणित प्रवाह में वह भी डोलता फिरता है। यदि वह पदार्थ दूषित हो तो मुहुर्त्तभर में सारे शरीर को दूषित कर डालता है। इसीलिये शरीरके चाहे जिस प्रान्तमे सांप काटनेसे थोड़ेही देरमें शोणित मण्डल विषाक्त हो मृत्यु आ घेरती है।

नाड़ी।—हृत्पिण्डमें शोणित बराबर चलता रहता हैं। इसके खुलनेसे शोणित इसमें सञ्चय होता है, और प्रत्येक सङ्कोचनसे शरीरमें सर्व्वत्र चलता हैं। हृत्पिण्डके प्रतिसङ्कोचन से शोणितपूर्ण धमनीमें जो शोणित तरङ्ग उत्पादित होताहै उसीको नाड़ी कहते हैं।
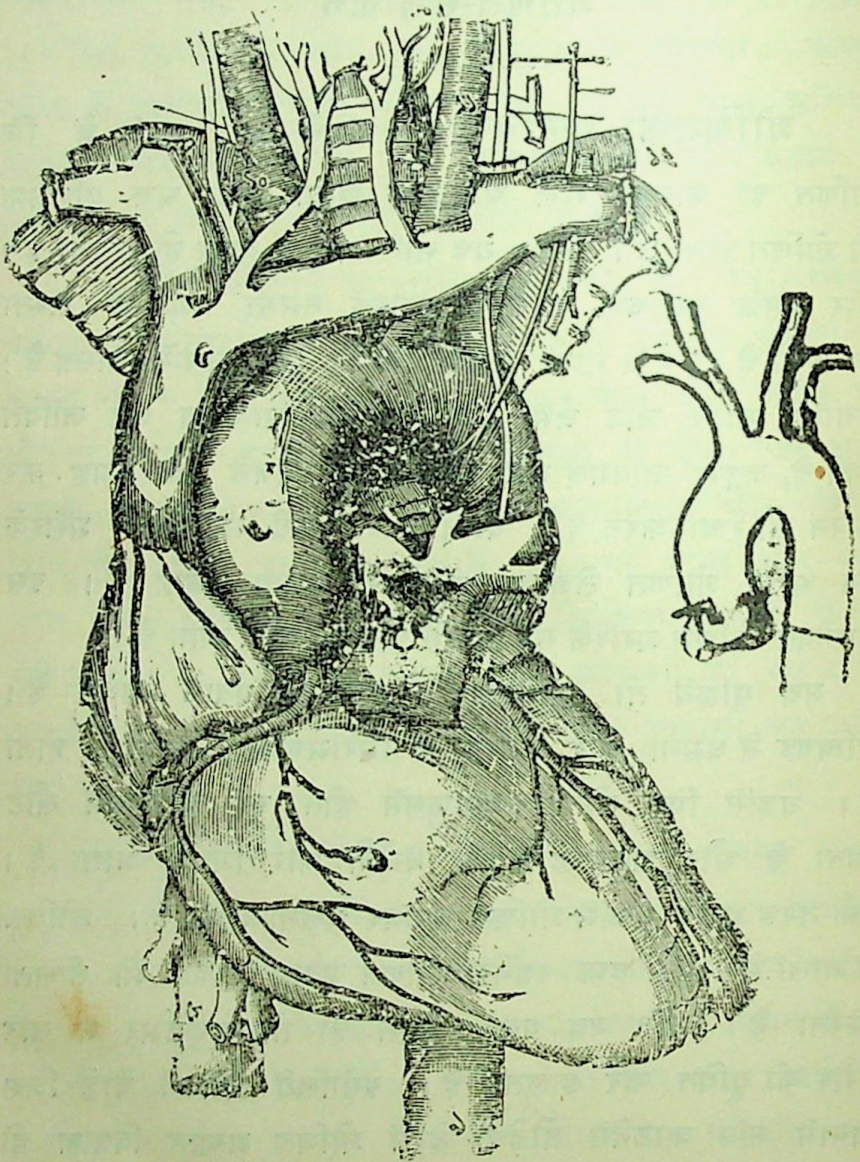
हृत्पिण्ड और वृहत् रक्तनाली समूह

हृत्पिण्ड।—हृत्पिण्ड एक शून्य गर्भ अर्थात् पोल पैशिक यन्त्र है। यह छाती गह्वर के बांये और दहिने फुसफुस के मध्यमें स्थित हैं। इसके उपर झिल्लीका एक आवरण है, उसको हृदावरण कहते है। हृत्पिण्ड चार कक्षोंमें विभक्त है;—दक्षिण और वामकोष्ठ तथा दक्षिण और वाम उदर है। दक्षिण तरफ जो कोष्ठ है उसके पास और उदरके साथ उसका संयोग है तथा वाम उदरके साथ वाम कोष्ठका संयोग दिखाई देता है; किन्तु बांये तरफके दोनो कक्षसे दक्षिने तरफवाले दोनो कक्षसे प्रत्यक्ष संयोग नही है। बांये कक्षके धमनोसे शोणित प्रवाहित हो दक्षिण कक्षमें लौट आता है। शरीरके ऊर्द्ध और अधोदेशके कैशिक नाली नामक अति छोटी छोटी शिरायोंसे परस्पर मिला हुआ है।

आकार और वजन।—मनुष्य हृत्पिण्डकी लम्बाई प्राय ५ इञ्च, चौड़ाई साढ़े तीन ३॥ इञ्च और मोटाई दो इञ्च है। जवान मनुष्यका हृत्पिण्ड ८ से ० औंस भारी है। प्रौढ़ावस्था तक इसका वजन बढ़ताही जाता है तथा बुढ़ौती में कमना शुरू होता है।

शोणितसञ्चालन।—हृत्पिण्डके दहिने तरफ के फुसफुस धमनीसे शोणित फुसफुस में प्रवाहित होता है। तथा फिर फुसफुसके कैशिक नाली और शिरा समूहोंसे हृत्पिण्डके बांये तरफ लौट आता है। अतएव इससे स्पष्ट जाना जाता है कि शोणित दो रास्तेसे प्रवाहित होता है। इससे एक छोटा और दुसरा बड़ा रास्ता हैं। हृत्पिण्डके दहिने तरफ से फुसफुसमें और वहांसे हृत्पिण्डके बांये तरफका छोटा रास्ता हैं। दुसरा हृत्पिण्डके बांये तरफ से प्रवाहित हो शोणित सारे शरीरमें

सञ्चालित हो हृदयके दहिने तरफ लौट आता है—इसको बड़ा रास्ता कहते है। पर विशेष विचार कर देखनेसे शोणित सञ्चालन प्रणाली केवल एकही है; कारण समग्र शोणित-प्रवाह एक वखत फुसफुस के भीतर से प्रवाहित होता है।
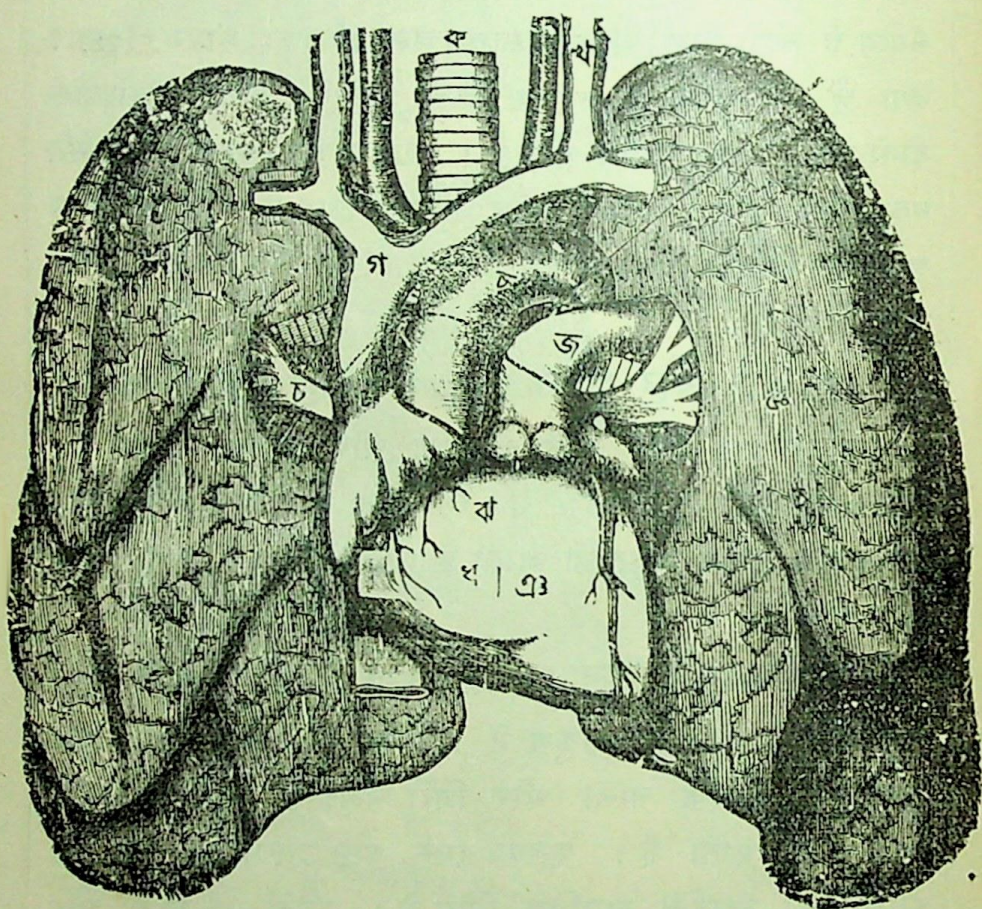
फुसफुस और हृत्पिण्ड।

हृत्कोष्ठ के शोणितका परिमाण।—पहिले कह आए हैं कि शोणित वामकोष्ठसे वाम उदरमें और वाम उदरसे सारे शरीरमें व्याप्त होता हैं। परीक्षासे जाना गया है कि प्रत्येक हृदयमें प्राय ४से ६ औंस तक शोणित रहता है। हृत्कोष्ठमें इससे कम रहता है। हृत्पिण्डके प्रत्येक सङ्कोचन में भी वही परिमाण अर्थात् ४ से ६ औंस तक शोणित शरीरमें सञ्चालित होता है। इसी तरह हृत्पिण्डके प्रत्येक विस्फारण में उसी परिमाण से शोणित इसके कक्षमें आकर प्रवेश होता है।

शोणित-संकोच।— इसी तरह शोणित बार बार सङ्कुचित और विस्फारित होता रहता है। इसी बार बार विस्फारण और सङ्कोचनसे शरीर की कण्डरा, धमनी और शिरा प्रभृति शोणित नाली सब सर्व्वदा शोणितपूर्ण रहती हैं। इसी परिपूर्ण नालीमें हृत्पिण्ड जोरसे बार बार शोणित सञ्चालन करनेके सबब उसकी दिवाल आहत और विस्फारित होती है। इसीको शोणित-संञ्चाप कहते हैं।

——

धमनी या आर्टारि।

——:०:——

जो सब नलाकार प्रणालीके भीतरसे होतेहुए हृत्पिण्डके उदर से शोणित सारे शरीरमें सञ्चालित होता है, उसको धमनी या आर्टारि कहते है।

आदि कण्डरा।—शरीर की प्राय सब धमनी दो प्रधान धमनीकी शाखा प्रशाखा है। यह दोमें एकका नाम

आदिकण्डरा है, यह हृत्पिण्डके वाम उदरसे उत्पन्न हुई है। इसके उत्पत्ति स्थानके पाससे ३ शाखा धमनी उत्पन्न हो मस्तक, ग्रीवा और ऊर्द्ध अङ्गोमें फैली है। तथा इसके बाद आदि कण्डरा छाती और उदर मे प्रवेश हुई है। उदरसे उसकी दो शाखा उत्पन्न हो दोनो सकथि तक फैली है। इसी दो धमनीसे दोनो सकथिका पोषण होता है।

फुसफुस धमनी।—दूसरी सबसे बड़ी धमनीका नाम फुसफुस धमनी हैं। यह हृत्पिण्डके दक्षिण उदरसे उत्पन्न हुई है। सिर्फ इसी एक धमनी से शैरिक रक्त प्रवाहित होता है। यह धमनी प्राय २ इञ्च लम्बी है। इससे शोणित हृत्पिण्डके दहिने तरफसे फुसफुस में जाता है। यह दक्षिण हृदय के एक विशेष अंशसे उत्पन्न हो ऊर्द्धगामी कण्डराके सामनेसे होते हुए उपर और पीछेकी तरफ गई है; और कण्डराके नीचे दो भागमें विभक्त हुई है; वही दो शाखाका नाम बाम और दक्षिण फुसफुस धमनी है।

वाम।—बांये तरफ की फुसफुस धमनी दहिने तरफ से छोटी हैं। यह नीचेवाली कण्डराको अतिक्रम कर बांये फुसफुस के जड़तक गई है; फिर दो प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुस के दो अंशोंमें छितर गई है।

दक्षिण।—दहिनी फुसफुस धमनी बांये धमनीसे अधिक स्थूल और बड़ी हैं। यह ऊर्द्धगामी कण्डरा और महाशिरा के पीछे दक्षिण फुसफुस के जड़में जाकर दो प्रशाखा में विभक्त हुई है। यह दो प्रशाखामें एक नीचे और दूसरी उपर को गई है। नीचेवाली शाखा फुसफुसके निम्न प्रान्त में और ऊर्द्धशाखा उसके वीचमें फैली हुई हैं।

धमनीका मिलन।—कण्डरा सर्व्वदा साफ़ खूनसे पूर्ण रहता है और यही रक्त सारे शरीरमें सञ्चालित हो स्वास्थ्यको अव्याहत रखता है। धमनियोंका मूल अलग होने पर भी परस्पर मिला हुआ है। इसका यही मिलन विशेष मङ्गलकर है, कारण किसी पीड़ाके सबब एक धमनी काटनेसे अथवा कोई कारण से वह बन्द हो जानेसे उसी मिलन पथमें शोणित स्रोत प्रवाहित होता है। इसका औपान्तिक सञ्चालन कहते है।

संस्थिति।—धमनी सब प्रायः शरीरके गभीर निरापद अंशमें रहती है। इन सब स्थानोंमें एकाएकी दाब या चोट नही लगता। इन सबकी गति प्रायः सीधी और सर्व्वदा परस्पर मिली हुई है। प्रायः सब धमनी साहानुभूतिक स्नायुसे वेष्टित है। यह सब स्नायु जालकी तरह धमनी से लिपटी हुई है। अति सूक्ष्म धमनी और कैशिक नाली भी इसी तरह स्नायुजाल से वेष्टित हैं।

आदिकण्डरा।

—:०:—

उत्पत्ति और भाग।—आदि-कण्डरा ही वैधानिक धमनी की जड़ है; इसलिये इस को मूल धमनी भी कहते हैं। इसका कुछ अंश छातीके गह्वर में और कुछ उदर गह्वर में है। यह हृत्पिण्डके बांये उदर से उत्पन्न हो बांये फुसफुस तक फैली हैं। फिर मूल धमनी कशेरुका—स्तम्भके सामने निम्नगामी हो उदर गह्वर तक नीचे उतर गई हैं। और चौथी कमर को कशेरुका के सामने दो भागमें विभक्त हुई है।

आदि कण्डराकी गोलाई ।—यह तीन अंशमें विभक्त हैं। यह तीन अंशके गति अनुसार उसका नामकरण हुआ है ; यथा ऊर्द्ध-गामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी, गोलाईके न्युज अंशमें बांये फुस-फुसका मूल और फुसफुस धमनी में शाखा भेद आदि दिखाई देते है।

ऊर्द्धगामी अंश।—प्राय: दो इञ्च दीर्घ है। वक्षस्थिके मध्यभाग के पीछेके अंशमें तृतीय पञ्जर बक्षास्थि के बराबर उठकर उपर की तरफ तीर्य्यक भावसे दक्षिण की तरफ गई है। और द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थि के ऊर्द्धप्रान्तके वक्षास्थिक पास खतम हुई है। शाखा दक्षिण और बाम हृदय धमनी हृत्पिण्ड में व्याप्त है।

अनुप्रस्थ अंश।—द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थिके ऊर्द्ध प्रान्तसे आरम्भ हो फुसफुस मूलके उपर होते हुए पीछेकी तरफ कोर भावसे पीठकी कशेरूकातक गई है। इसकी दो शाखा है। प्रथम शाखाका कोई विशेष नाम नही है; इसलिये इसको अनामिका कहते हैं। अनामिका १॥ डेड़से २ इञ्च लम्बी है। यह अनुपस्थ अंशके आरम्भ स्थानसे उठी है और दक्षिण तरफ को गई है। इसकी दो प्रशाखा है।

निम्नगामी अंश।—चतुर्थसे पञ्चम पीठकी कशेरूका तक फैली है।

शोणित शोधन।—इसके पहिले प्रमाणित हो चुका है कि, हृत्पिण्डसे रस बाहर हो धमनीके रास्तेसे सर्व्वांगमें फिरता है, और शिराके रास्तेसे हृत्पिण्डमें लौट आता है। यह शोणितका सञ्चालन हुआ। समस्त शरीर में भ्रमण करनेसे रक्त दुषित हो जाता , तथा दुषित अवस्थाही में वृहत् शिरासे हृत्पिण्डके दक्षिण कोष्ठमें उपस्थित होता है। यहांसे दक्षिण हृदुदरमें आता है।

तथा दक्षिण हृदुदरसे फुसफुस धमनी द्वारा फुसफुस में प्रवेश करता है। यहा अम्लजान वाष्प ग्रहण कर दुषित रक्तका साफ कर निर्दोष करता है। फुसफुसका शुद्ध शोणित फुसफुस के शिरासे हृत्पिण्डके वाम कोष्ठमें आता है। वाम कोष्ठ से वाम उदर में और वहासे आदि काण्डरा द्वारा सर्वत्र शरीर में सञ्चालित होता है। यह वृहत् धमनी व क्षुद्र धमनी समूहोंमे, धमनीसे छोटे छोटे कैशिक नाली में कैशिकनाली से शिरा समूहोंमे और वही सब शिरासे दूषित अवस्था में शोणित फिर हृत्पिण्ड में लौट आता है। जन्मसे मृत्युतक हृत्पिण्डके सञ्चालन और विस्फारण से शोणित का वह चलाचल होता रहता है।

कपाट।—यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि रक्त हृत्पिण्डके दक्षिण कोष्ठ से वाम कोष्ठही में और धमनी से शिराही मे प्रवेश करता है इसका क्या कारण? क्यों वह दक्षिण हृदुदर से बाम कोष्ठमें और शिरासे धमनी में जाता है? इसका विशेष कारण है। हृत्पिण्ड का कोष्ठ और उदरके मध्यभागमें एक एक कर दरवाजा है तथा इस दरवाजे में एक एक जोड़ा पेशीका किवाड़ है। यह किवाड़ इस ढङ्गसे बना हैं कि हृत्कोष्ठसे हृदुदर में रक्त जातीवख्त खुल जाता है तथा तुरन्त हो ऐसा बंद हो जाता है कि हृदुदर से शोणित किसी तरह हृत्कोष्ठ में नही आसकता। इसी तरह हृदुदरमें भी किवाड़ रहनेसे रक्त हृदुदर से फुसफुस धमनी में जातेही किवाड़ बन्द हो जाता है, तब रक्त किसी तरह धमनी से फुसफुस में नही आसकता है। प्रायः वाम हृत्कोष्ठ, तथा वाम हृदुदर और आदि काण्डरा में इसी तरहका किवाड़ दिखाई देता है। शिरा समूहों भी किवाड़ है। यह

किवाड़ ऐसे कौशलसे बनाया गया है कि रक्तशिरासे हृत्पिण्ड की तरफ आसके किन्तु हृत्पिण्ड से शिरामें किसी तरह न आसके।

कैशिक रक्तनाली और शिरासमूह।

—०:*:०—

कैशिक नाली।—पहिले कह आए हैं कि धमनीके छोटे छोटे शाखाग्रसे कैशिक नाली द्वारा शोणित शिरा समूहों में प्रवाहित होता है। केवल शिश्नकी रक्तनाली और जरायुका परिस्रव या फुलके सिवाय प्राय सर्व्वत्र ही यह वैचित्र दिखाई देता है। कहां किस अंशमें धमनीका शेष और कहां छोटी छोटी शिरायें आरम्भ हुई है, यह ठीक नही जाना जाता है। कारण यह शोणित नालीका व्यास सर्व्वत्र समान नही है; किन्तु कैशिक नालीमें ऐसा नही दिखाई देता,—इसमें आरम्भसे लेकर अवसान तक का व्यास एक समान है। यह एक इञ्चो का १००० का भाग होगा।

शरीरके प्रायः सब अंश में कैशिक रक्तनाली दिखाई देती है, पर जितने यन्त्र अधिक सक्रिय है उनमे अधिक और जितने यन्त्र अल्प क्रियाविशिष्ट है उसमें कम देखनेमें आती हैं।

शिरायें सब।—शिरायें सब कैशिक नालीसे उत्पन्न हुई है। इसका आकार पहिले बहुत पतली होता है पर कैशिक नालीसे पतला नही हैं। कैशिक नाली इससे भी पतली होती हैं। शिरायोंकी जड़ संकीर्ण होनेपर भी मूल शिराद्वय और हृदयके शिरायोंकी तरफ जैसे जैसे अग्रसर हुई है आकार भी उतनाही बढ़ता गया है।

कपाट।—पहिले कह चुके है कि, हृत्पिण्डके कोटरकी तरह शिरायोंमें भी किवाड़ है; इसके रहनेसे रक्त विपरीत तरफ नही जासकता। निम्नशाखाकी शिरा समूहोंमें कपाटकी संख्या सबसे अधिक है। कपाट का आकार अर्द्ध चन्द्राकार है। इसका न्युब्ज अंश शोणितस्रोतके प्रतिकूलमें है। कई शिरायोंमें कपाट नही है।

श्वासक्रिया।

पूर्व्व अध्यायमें शोणित सञ्चालन-प्रणाली सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय बातें कह चुके है। यहां शोणित क्या है, किस उपायसे कौन कौन यन्त्र या कौन कौन स्थानमें उत्पन्न होता है, तथा सारे शरीरमें प्रवाहित होते होते क्योंकर दूषित होता है, तथा वह दूषित रक्त फुसफुसमें आकर कैसे विशोधित होता है, इस विषय की आलोचना की गई है। अब यह देखना चाहिये श्वास-कार्य्य किस तरह होता है, श्वासकार्य्यका प्रधान यन्त्र फुसफुस कैसे बनाया गया है, उक्त कार्य्यमें यह कैसे मदद करता है, और कौन उपाय से फुसफुस शोणितको साफ करता है।

हृत्पिण्ड छेदित।
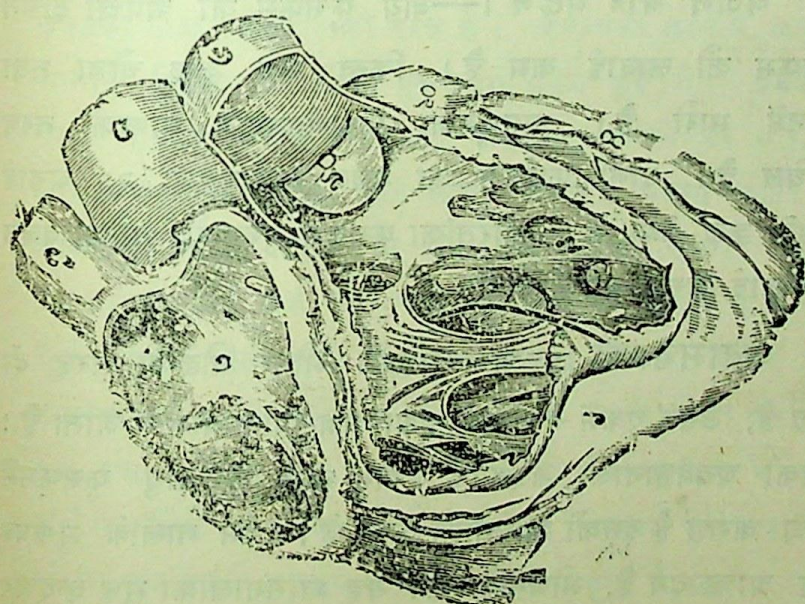
हृत्पिण्ड छेदित।

दक्षिण हृत्कोष्ठ और हृदुदर उन्मुक्त और अभ्यन्तर भाग प्रकाशकर दक्षिण और सन्मुख प्राचोरका कियदंश अन्तरित है।

१, दक्षिण हृदुदरका बाहरी अंश। २, उसका अभ्यन्तर। ३, दक्षिण हृत्कोष्ठका अभ्यन्तर। ४, वाम हृदुदरका वहिरंश। ५, आदि कंडराका मूल। ६, फुसफुस धमनी। ७, प्रधान मूल शिरा। ८, अप्रधान मूल शिरा। ९, फुसफुस धमनीका अर्द्ध चन्द्राकार कपाट। १०, वाम हृत्कोष्ठका एकांश।

दोनों फुसफुस।—दोनों फुसफुस स्पञ्जकी तरह सछिद्र तथा वक्षःगह्वर को ढाके हुए हैं। दोनोंके मध्यमें हृत्पिण्ड और हरेक फुसफुस एक एक स्वतन्त्र गह्वर में स्थित और श्लैष्मिक झिल्लीसे आच्छादित है। इस झिल्लीको फुसफुसावरण कहते हैं। प्रत्येक फुसफुस देखनेमें शुंडाकार है।

वजन और बढ़न।—बांयें फुसफुस की अपेक्षा दहिने फुसफुस की लम्बाई कम है। किन्तु यह कुछ चौड़ा तथा वजनमें भारी है। फुसफुसका विधानोपादान स्पञ्जकी तरह शिथिल है। दोनों फुसफुस का वजन साधारणतः २॥ अढ़ाई पौंडसे कुछ वेशी है। औरतोंका फुसफुस पुरुषकी अपेक्षा वजन में चौथाई हिस्सा कम होता है।

श्वासनाली।—मुख गह्वरके भीतर पीछेकी तरह दो छिद्र है, उसमें एकमें से खाया हुआ अन्न पाकस्थालीमें जाता है। उसको अन्नवहानाली कहते हैं और दूसरे से वायु फुसफुसमें प्रवेश करता है इसको श्वासनाली कहते हैं। इस नालीके मुखपर एक आच्छादन है, भोजनके वखत यह श्वासनालीका मुह बन्दकर

रखता है। इसीलिये खाया हुआ द्रव्य उसमें नही जाकर अन्न-वहा नालीमें जाता है। नासारन्ध्र भी ईस छिद्रके पास तक फैला है इसीलिये मुखरन्ध्र और नासारन्ध्र दोनो छिद्रोंसे कोइ वस्तु श्वासनाली में नही जाती है।

लम्बाई और गढ़न।— श्वासनालीका अग्रभाग और सब स्थानोंकी अपेक्षा बढ़ा है। इसमें पांच उपास्थि है, यहीसे कण्ठस्वर उत्पन्न होता है। मुखके पिछेसे आरम्भ हो गरदनके भीतर से होते हुए श्वासनाली वक्षगह्वर में प्रविष्ट हुई है। गलेके सामने हाथ लगानेसे श्वासनाली का अनुभव होता है। किसी पीड़ाके सबब श्वासरोध होनेसे शल्य चिकित्सक गलेके श्वासनालीमें छेद करदेते है, तथा इस छेदसे वायु प्रविष्ट हो श्वासकार्य्य सम्पन्न होता है। उपास्थि निर्म्मित अग्रभाग कण्ठ और तत्परवर्त्ती अंशको गलनाली कहते है। गलनाली ४ से ४॥ इञ्ची लम्बा है। यह स्वाधीन पेशी और १६ से २० तक उपास्थिसे बनी है। यह उपास्थि ठीक अंगूठी की तरह है। गलनाली छातीमें जाकर दो भागोंमें विभक्त हो दोनो फुसफुसमें प्रवेश हुई है। इसको वायु नाली भी कह सकते है। यह वायुनाली पहिले दो भाग फिर चार भाग तथा क्रमश: आठ भाग इसी तरह अगन्य छोटी छोटी शाखा प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुसके सर्व्वत्र छितराई हुई है। यह वायुनालीके सब स्थूल अंश उपास्थिसे बने हुए है, यह क्रमश: जैसे पतली होती गयी हे वैसही इसके गढ़नमें पेशीने आकर उपास्थिका स्थान अधिकार किया है। गलनालीकी परिधि प्राय एक इञ्च; किन्तु यह विभक्त हो वायुनाली आकार से क्रमश: छोटेसे छोटे आकारमें जब फुसफुसमें विस्तृत हुई तब इसकी परिधि एक इञ्चके चालीस भागका एक भाग हुआ है।
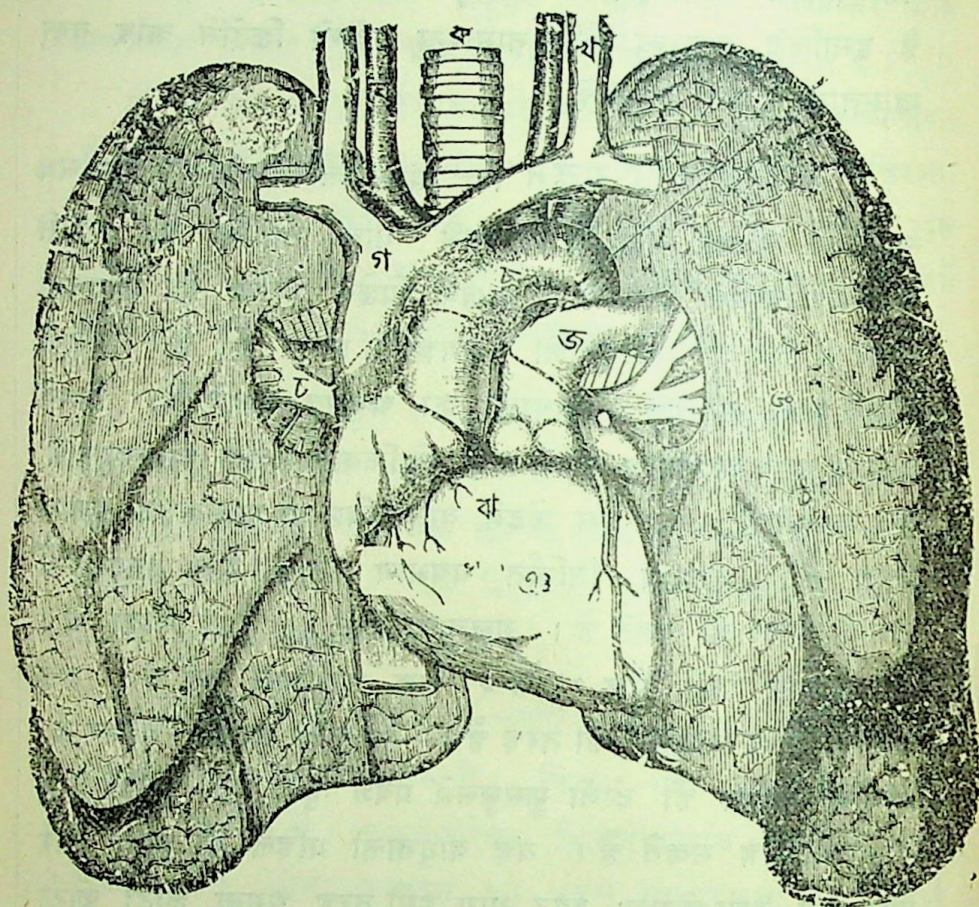
फुसफुस और हृत्पिण्ड।

शिरा और नाली।—पहिले कह आये है, कि फुसफुसमें असंख्य वायुकोष है तथा उसके बीचवाले स्थानोमें शिरा, कैशिक नाली, स्नायु और स्थितिस्थापक तन्तु है। दोवायुकोषके बीचमें कैशिक धमनी भी दिखाई देती है। कैशिकनालीके भीतर शोणित के दोनो तरफ वायु भरा हुआ वायुकोष है।

शोणित शोधन।—बाहरी वायुमें अम्लजान नामक जो वायव पदार्थ है, वही हम लोगोंका जीवन स्वरुप है, कारण इसी अम्लजान से शोणितका दोष दूरीकृत होता है। अम्लजान प्रश्वास द्वारा फुसफुस में जाकर उसके असंख्य वायुकोषों में प्रविष्ट हो खूनमें मिलजाता है। खूनकी लाल कणिका अम्लजान शोषण करलेता है, फिर खून शरीरमें प्रवाहित हो दूषित होता है, तब उसमें द्वयम्ल अङ्गार वाष्पका परिमाण अधिक मिल जाता है। यह दूषित रक्त फुसफुस में फिर लौट आनेसे उसमेका द्वयम्ल-अङ्गार वाष्पका परिमाण अधिक होनेसे वह निश्वास से निकल जाता है, इसलिये रक्तमें अम्लजानका भाग अधिक रहता है।

श्वाससंख्या।—सचराचर युवावस्था में एक मिनिट में १४से १८ दफे श्वास चलती है। प्रत्येक निश्वास में हम लोग प्राय ३० घन इञ्ची वायु ग्रहण करतेहैं; अतएव सारे दिन रात अर्थात् २४ घण्टेमें ५८६००० घन इञ्च वायु फुसफुस में प्रविष्ट होता है और वहांसे निकलता है; प्रत्येक घण्टेमें १५८४ घन इञ्च वायु ग्रहण और १३८६ घन इञ्च द्वयम्ल-अङ्गार वायुका परित्याग किया जाता है। युवाकी अपेच्छा बालक अधिक बार श्वास ग्रहण करता है। परिश्रम और आहारके बाद श्वासकार्य्य किञ्चित् तेज हो जाता है।

खाद्य और परिपाक।

—०:*:०—

खाद्य और क्षुधा क्यों?—जीवन धारण करने लिये किसी तरहका कुछ खाद्य अवश्य चाहिये। पहिले कह आए हैं कि जीव देहमें प्रतिनियतही शक्तिका क्षय होता है। कोई काम न कर केवल आलसी की तरह निश्चिन्त मनसे रातदिन सोकर बितानेवालेको भी शरीरके भीतरी शक्तिका क्षय होता रहता है। यही क्षय हुई शक्तिका अभाव पूरा करनेके लिये आहार की जरूरत पड़ती है।

क्षुधा क्या?—भोजनका प्रधान उद्देश्य—शरीर पोषण और शरीर पोषणका अर्थ—शरीर की क्षय हुई शक्तिका पूरण कर नई शक्तिका साधन है। अतएव शरीर पोषण के निमित्त क्षुधा चाहिये, और क्षुधाको निवृत्तिके लिये पुष्टिकर खाद्य आवश्यक है। पुष्टिकर खाद्यके अभाव से पाकाशय में प्रवल वेगसे शोणित सञ्चारित होता रहता हैं, इससे उसकी गांठे फूल उठती है। साहानुभूतिक स्नायुमण्डलकी ऐसी चेष्टासे मनमें जो उद्वेग होता है वहा क्षुधा है। पाकस्थाली में खाद्यद्रव्य प्रविष्ट होतेही उनके ग्रन्थियोंमेंसे एक प्रकारका पाचक रस निकलता रहता हैं। इसी रसके सहारे भुक्तद्रव्य जीर्ण होता हैं।

तृष्णा क्यों।—सभी जानते हैं कि पाकाशय में क्षुधा और कण्ठनाली में तृष्णा का उद्रेक होता है। पहिले कह आए हैं कि हम लोगोंके शोणितमें चार प्रधान उपादान है जिसमें पानी-

का परिमाण सबसे अधिक हैं। परिश्रमादि से पानीका परिमाण कम होता है तब उस कमी को पूरी करनेके लिये मनमें जो उद्वेग होता है, वही तृष्णा है। शरीर रक्षाके लिये खाद्य जैसा आवश्यक है पानी भी वैसाही प्रयोजनीय है। इसीलिये हिन्दूशास्त्रमे पानीको जीवन कहा हैं।

क्षुधा और पाकाशय।—पीड़ा किम्वा और किसी कारणसे शरीरका बल अधिक कम हो जानेसे आहार की उत्कट इच्छा होती हैं; इसीलिये बहुमूत्र रोगीकी क्षुधा अकसर प्रवल रहती है। क्षुधाके समय पाकाशय खाद्यद्रव्यसे पूर्ण होते ही क्षुधाकी शान्ति होती है। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि पाकाशयके साथ क्षुधाका अति घनिष्ट सम्बन्ध है; किन्तु हरवक्त यह सम्बन्ध नही रहताहैं कारण पाकाशयमें खाद्यद्रव्य रहनेपर भी बहुतोंको अकसर क्षुधा लगती है। भुक्तद्रव्य जीर्ण हो शोणित न होनेतक अथवा कच्चा रहनेपर भी पाकस्थली मे रहता है। सुतरां इससे शरीरके शक्तिका पूरण नही होता इसी तरह पाकस्थली पूर्ण रहनेपर भी कई रोगींमें क्षुधा लगते देखा हैं।

परिपाक।—अन्न मुखमें जातेही चहुआ उसको चर्व्वन करता है। इस विषय में जीभही प्रधान सहायक है। अन्न दांत से पिस जानेपर लारसे पिण्डाकार होता है, फिर वह पिण्ड गले-की नालीसे पाकस्थली मे जाता है तथा यहां पाचक रसके सहा-यतासे परिपक्क होता है, तिसके बाद अंत्रमें प्रवेश होता हैं। यहां पित्त, क्लोमरस और आंत्रिक रस उसके साथ मिलकर परि, पाक होता है। यहां यह कहना जरूरी है कि पाकस्थली में जो अन्न परिपाक होता है वह प्राय: शरीरके सब अंशोमें शोषित

हो शक्ति वृद्धि करता है। बाकी अन्न अन्त्रमें शोणित हो जाता है। इसके बाद जो बाकी बचता है वह पूरीषहो सरलांत्र से शरीरके बाहर निकलता है। उपर जो कहा है इससे स्पष्ट प्रतीत होगा कि सब समेत पांच रसोंसे भुक्त अन्नका परिपाक होता है। यथा लार, पाचक रस, पित्त, क्लोमरस और आंत्रिक रस। यही पांच रसके अभाव, आधिक्य अथवा और कोई विक्रिया होनेसे परिपाक में वाधा होती है।

लाला रस।—लार निःसारक ग्रन्थियोंसे लार निकलता है। यह सब ग्रन्थि नानाप्रकार की है। तथा ओष्ठाधर, गण्ड, कोमलतालू, और जिह्वामूल की स्लैष्मिक झिल्लीके निम्नभाग में उक्त ग्रन्थि सब रहती है। दो स्नायु शाखा, यह सब ग्रन्थियों-पर फैली है इसो दो स्नायुसे इस सबका कार्य्य उत्तेजित होता है; इसीलिये कोई खट्टा पदार्थ देखनेसे मुहसे लार निकलती है।

पाचक रस।—पाकस्थलीके भीतरी भागसे पाचक रस निकलता है। भुक्त अन्न पाकाशयमें जातेही यह रस बाहर निकलता है। यह रस पानीकी तरह पतला, कुछ स्वच्छ, गन्ध-हीन और अम्लस्वाद विशिष्ट होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १·००२ से १·०११ तक है। सन्दर्शन से स्थिरीकृत हुआ है कि सारे दिनरात अर्थात् २४ घण्टेमें एक स्वस्थ युवा पुरुषको १० से २० पांइट तक पाचक रस निकलता है। इसमें खट्टापन रहनेवे सबब ईसका स्वाद खट्टा होता है।

पहिले जो पांच प्रकारके पाचक रसके बारमें कह आए हैं, उससे अधिकांशके निकलने में और भुक्तद्रव्यके परिपाक कार्य्यमें निम्नलिखित पांच यन्त्रविशेष से सहायता मिलती है; यथा—

पाकाशय, क्षुद्रान्त्र, वृहदन्त्र, क्लोमग्रन्थि और यकृत्। इन सबका ब्यौरा क्रमशः दिया जाता है।

पाकस्थाली।

—:०:—

स्थिति, भार और प्रसार।—पाकस्थली अन्नवहा नालियोंमें सबसे अधिक प्रशस्त है। यह उदर गह्वर में संस्थित हैं। इसका आकार सब जगह एकसा नही है। जो व्यक्ति जितना अधिक आहार करता है पाकस्थली भी उसकी उतनी ही बड़ी होती है, पर मोटामोटी परिमाण करनेसे पाकस्थली बायुसे विस्फारित करना पड़ता है। बायुसे विस्फारित पाकस्थली की लम्बाई १०।११ इञ्च, गभीरता प्राय ४ इञ्च, और इसका वजन ४॥ औंस होता हैं। इसका आकार ठीक शूण्डकी तरह है। बांया अंश स्फीत और दक्षिण अंश क्षुद्र और संकुचित है, तथा सम्मुख प्रदेश न्युब्ज और ऊर्द्धाभिमुख हैं। यह यकृत् का निम्नप्रदेश और उदरप्राचीरके साथ मिला हुआ है। इसका पश्चात् प्रदेश निम्नाभिमुख है। यह प्रदेश अनुप्रस्थ वृहदन्त्रके ऊर्द्ध और सम्मुख से अवस्थित हैं। इसके पीछे क्लोमग्रन्थि, वामवृक्क या मूत्रग्रन्थि और प्लीहा आदि अंश तथा मेरुदण्ड और सम्मुखस्थ वृहत् रक्तनाली सब संस्थित हैं।
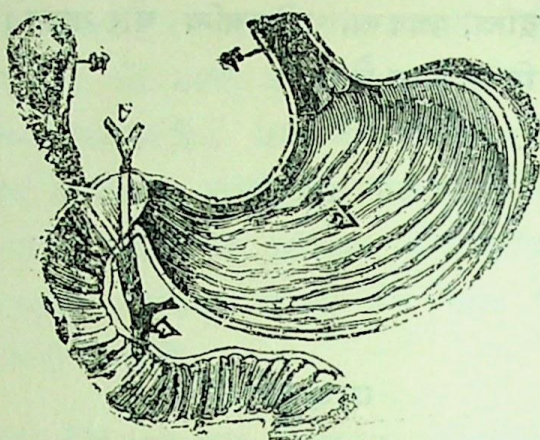
पाकस्थाली ।

क्रिया।—पहिले कह चुके हैं, कि पाकाशयसे पाचक रस निकलता हैं। पाकस्थाली जब शून्य अथवा निष्क्रिय रहती हैं, तब उससे रस नहो निकलता तब केवल कफसे इसके भीतर की प्राचीर आवृत रहती है। पर इसमें अन्न अथवा और कोई द्रव्य प्रविष्ट होतेही पाकस्थाली का शोणित-नाली वेगसे चलने लगती है तथा इस प्रचूर शोणित संस्पर्शसे कफकी झिल्ली लाल होजाती है। पाकस्थाली को ग्रन्थि सब साथही बहुत वेगसे रस देने लगती है। पाचक रस बाहर निकलतेही पाक स्थाली हिलने लगती है, इसो तरह ३।४ घण्टे में भुक्त अन्न हजम होता है।

———

अन्त्रमण्डल ।

—:०:—

प्रकार।—अन्त्रमण्डल क्षुद्र और वृहत् भेदसे दो प्रकारका हैं। यह दो भागों के भिन्न भिन्न दो अंश हैं यह केवल व्यास

की विभिन्नता से दो भागमें विभक्त है। जहां क्षुद्र अन्त्रका शेष और वृहदन्त्रका आरम्भ हुआ है, वहां एक किवाड़ है। यह किवाड़ इस ढङ्गसे वना है कि क्षुद्र अन्त्रसे अन्न विपाक का अवशेष वृहदन्त्र में जा सके पर वृहदन्त्रसे क्षुद्रान्त्र में न आसके।

क्षुद्रान्त्र।—वर्णन करनेके सूबीतेके लिये यह तीन अंशोमें विभक्त है। पूरी उमरवाले व्यक्तिका क्षुद्रान्त्र २० फीट लम्बा होता है।

वृहदन्त्र।—पूरी उमरवाले व्यक्तिका वृहदन्त्र ४ से ६ फीट लम्बा रहता है। वर्णनके सूबीतेके लिये इसेभी तीन अंशोंमें विभक्त किया है;—यथा ऊर्द्धगामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी। सरलान्त्र अपने निम्नांश में विस्फारित हो फिर संकीर्ण भाव धारण करता है तथा फिर विस्फारित हो मलद्वार में पर्य्यवसित हुआ है।

अन्त्रमें परिपाक।—दोनो प्रकारके अन्त्रोंमें कई ग्रन्थि है। पहिले जिस आंत्रिक रसको बात कह आए है, वह इस ग्रन्थियोंसे निकलता है। पाकस्थाली में परिपाक और शोषणके बाद जो भुक्तद्रव्य बचता हैं वही अन्त्रमूल में जाता है। वहां क्लोमग्रन्थि और यकृत्‌का रस तथा क्षुद्रान्त्रके रससे परिपाक होता रहता है। घृत और चर्व्वी आदिका अधिकांश अन्त्रमूल में परिपाक होता है।

स्थिति और विस्तार।—क्लोमग्रन्थि। क्लोमयंत्र देखने से एक गांठकी तरह है यह अन्त्रमूलके कोर अंशमें अवस्थित है। इसका एक मुह नलाकार अंत्रमूलके साथ मिला हुआ है। इसी नलसे इसका रस अंत्रके उक्त अंशमें जाता है। यह पाकाशयके पीछे और वृहत् रक्तनालियोंके सामने मेरुदण्डके उपर न्यस्त है।
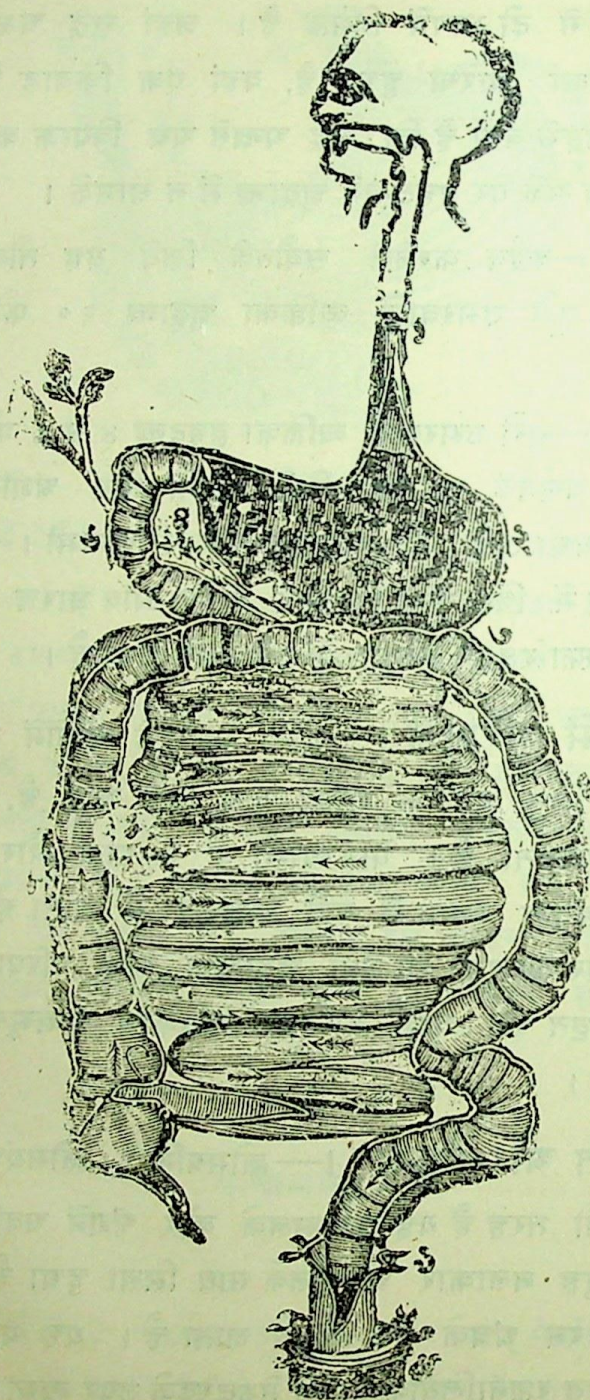
पाकप्रणाली और मलवहा नाली ।

इसकी लम्बाई ६।८ इञ्च, गभीरता १ से १॥ इञ्च, और स्थूलता १।२ से ३।४ इञ्च है तथा वजन २ से ३॥ औंस। क्लोमयन्त्रसे जो रस निकलता है, अन्न परिपाक में उसकी विशेष जरुरत है। तेल घी और चर्व्वी आदि इसी रसके सहारेसे हजम होता है।
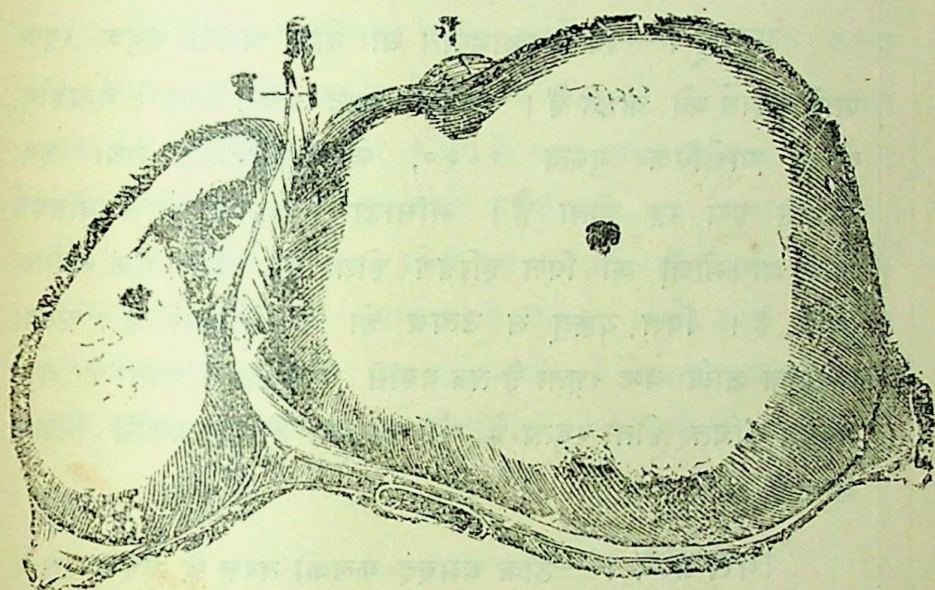
यकृत् का ऊर्द्धप्रदेश।

क। यकृत् का दक्षिण खण्ड। ख। वामखण्ड। ग। पित्त-नाली मुख। घ। बन्धनी, ङ। रक्तनाड़ी।

स्थिति और वजन।—यकृत् एक ग्रन्थिमय यन्त्र है। यह ग्रन्थिमय और औदरीय यन्त्रमें सबसे बड़ा है तथा यह दक्षिण उदर का अधिकांश ढांके हुए है। इसका ऊर्द्धप्रदेश न्युजाकार; निम्नप्रदेश में पाकाशय, अनुप्रस्थ में अन्त्रमूल, अन्त्रांश और दक्षिण मूत्रपिण्डके उपर स्थित है। यकृत् सचराचर १०।१२ इञ्च प्रशस्त होता ह। इसका जो अंश सबसे स्थूल है उसका परि-मांण २॥ से ३। इञ्च और वजन ३।४ पाउण्ड होगा। यकृत् दो असम खण्डों मे विभक्त है। इन दो अंशोकी वाम और दक्षिण

खण्ड कहते है ये दोनो खण्ड परस्पर अविच्छिन्न भायसे संवद्व है। इसके सामने और पीछे एक छेद है, उपर एक और वन्धनीके नीचे अनुलम्ब विदार है। पित्तको निकालनाही यकृत् का प्रधान कार्य्य है इससे पित्तको परिपाक कार्य्यमें सहायता मिलती है।

यकृत्।—पित्त, रक्ताभपीत या पीत अथवा सवुज रङ्गके पतले पदार्थ को कहते हैं। इसका स्वाद उत्कट तिक्त; गन्धहीन, इसका आक्षेपिक गुरुत्व १०२०, क्षारगुणविशिष्ट तथा हवा लगनेसे हरा रङ्ग होता है। मांसाहारी जीवका पित्त पीतवर्ण और शाकभोजी का पित्त हरिद्वर्ण होता है। यह एक यौगिक पदार्थ है। पित्त यकृत् से उत्पन्न हो अन्त्रमें जाता है; अथवा परिपाक कार्य्य वन्द रहता है तब वहांसे पित्तकोषमें आता है वहा क्रमश: संचित होता रहता है और जरुरत होनेपर वहांसे निकल जाता है।

पित्तकोष।—ठीक अमरुद फलकी तरह है यह यकृत् के नीचे लगा हुआ तथा उपर वृत्ति को धरे हुए रहता है। यह सामने और पीछे तीर्य्यकभावसे स्थित तथा इसका प्रशस्त अंश सामने, नीचे और दहिने तरफ है तथा संकीर्ण अंश अर्थात् ग्रीवा नीचेवाली दूसरी नालीमें शेष हुई है। इसकी लम्बाई ३।४ इञ्च; इसका प्रशस्त अंश प्राय १॥ इञ्च प्रशस्त है। पित्तकोषमें प्राय: २॥ औंस पित्त रहता है।

पित्तका परिमाण।—यकृत् से दिनरातमें कितना पित्त निकलता है वह नीचे लिखे अनुसार स्थिर हुआ है। यकृत् का वजन जितना रहता है २४ घण्टेमें उतनाही पित्त निकलता है। पित्त बराबर निकलता रहता है। उपवास में बन्द रहता

है और आकार के बाद परिमाण अधिक हो जाता है। पित्तकोष में पथरी पैदा होनेसे अथवा और कोई कारण से पित्त यन्त्र से न निकले तो यह खूनको सुखाता है पित्तमिला शोणित शरीरमें फैलनेसे पाण्डुरोग होते देखा गया है।

क्रिया।—पित्तका प्रधान कार्य्य अन्नको परिपाक करना है, किस उपायसे यह कार्य्य सम्पन्न होता है इस विषय में बहुत कुछ कह आये हैं। यहां संक्षेप में यही कहा जाता है कि पित्त भुक्तद्रव्यके साथ मिली हुई चर्व्वी आदि पदार्थ को गलाकर छोटा छोटा कण करता है। इससे वह पदार्थ बहुत जल्दी शरीर मे शोषित हो जाता हैं। पाकाशयके पाचक रसकी तरह इसमे भी पचननिवारणी शक्ति है; उस शक्तिके प्रभावसे यन्त्रस्थ भुक्तद्रव्य समूह नही सड़ता। इसके सिवाय पित्तमें विरेचन शक्तिभी है।

प्लीहा।

—०—

वजन और आकार।—प्लीहा एक वृहत् यन्त्र है। यह उदर गह्वर के वाम पश्चात् अंश में अवस्थित है। उसके दाहिने पाकाशय का प्रशस्त अंश है। साधारणत: इसका आकार पिष्टकाकार रङ्ग घोर बैगनी इसका आकार हरवख्त एकसा नही रहता, इसके भीतर खूनके कमी वेशीसे आकार भी घटता बढ़ता रहता है। साधारणत: इसकी लम्बाई ५ इञ्च, चौड़ाई ३।४ इञ्च और मोटाई १॥ इञ्च और वजन ६।७ औंस होगा। बुढ़ौती में इसका आकार और वजन कम हो जाता है तथा सविराम और कम्पज्वर

में अधिक वढ़ता है यहांतक की कभो कभो कई पौंडतक बढ़जाता है।

संख्या।—प्राय: मनुष्यको एक प्लीहा रहती है किन्तु किसो किसो समय एक से अधिक अर्थात् छोटो छोटो कइ प्लीहा मूल प्लीहाके नोचेको तरफ लगी हुई रहती है। इसका आकार मटर से लेकर अखरोट को तरह होता है।

क्रिया।—प्लीहाका प्रकृत कार्य्य अभीतक स्थिर नहो हुआ है। पर विशेष सन्दर्शन से स्थिर हुआ है कि भुक्त अन्नका परिपाक जैसे जैसे शेष रहता है प्लीहाका आकार भी उसो हिसाब से बढ़ता रहता है। थोड़ी देरके बाद फिर घटने लगता है। इसलिये वहुतेरे लोग अनुमान करते हैं कि भुक्तद्रव्य में अण्डलाल नामक जो पदार्थ रहता है वह अन्न परिपाक के वख्त वहांसे अन्तरित हो प्लीहामें संचित होता हैं। इससे प्लीहा बढ़ती है तथा फिर शोणित में मिलनेसे प्लीहा कमहो जाती है। इसके सिवाय प्लीहासे खूनकी श्वेत और लाल कणिकाकी उत्पत्ति होती है।

वृक्कद्वय (किडनिस्)।

वजन और आकार।—वृक्ककी संख्या दो। यह ग्रन्थिमय यन्त्र देखने में ठीक बहुत बड़ी सेमके बीजकी तरह हैं। यह कमरके भीतर मेरुदण्डके दोनो तरफ रहता हैं। इसका रङ्ग गुलाबी, लम्बाई ४ इञ्च, चौड़ाई २॥ इञ्च और मोटाई

१। इञ्च। पुरुषके वृक्कका वजन प्राय: ४॥ औंस, स्त्रीके वृक्कका वजन पुरुषसे कुछ कम होता है।

क्रिया।—वृक्क या मूत्रपिण्ड से मूत्र उत्पन्न होता है। यह ऐसे कौशल से बना है कि, शोणित का जलीय अंश इससे परिस्रुत और इसमें आकर सञ्चित हो फिर मूत्राशय में जाता है। मूत्राशय मूत्रपूर्ण होते हो पिशाब की हाजत होती हैं।

परिमाण।—सारे दिनरात में एक सबल मनुष्य ५२॥ औंस अर्थात् प्राय डेढ़ सेर मूत्रत्याग करता है। अवस्था भेदसे इसमें तारतम्य दिखाई देता है। मूत्रसे रक्तका दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है, पसीनसे भी यह कार्य्य साधित होता है। ग्रीष्मकाल में पसीना अधिक आता है इससे मूत्रका परिमाण कम हो जाता है, तथा फिर शीतकालमें पसीना कम होनेसे मूत्रका परिमाण बढ़जाता हैं।
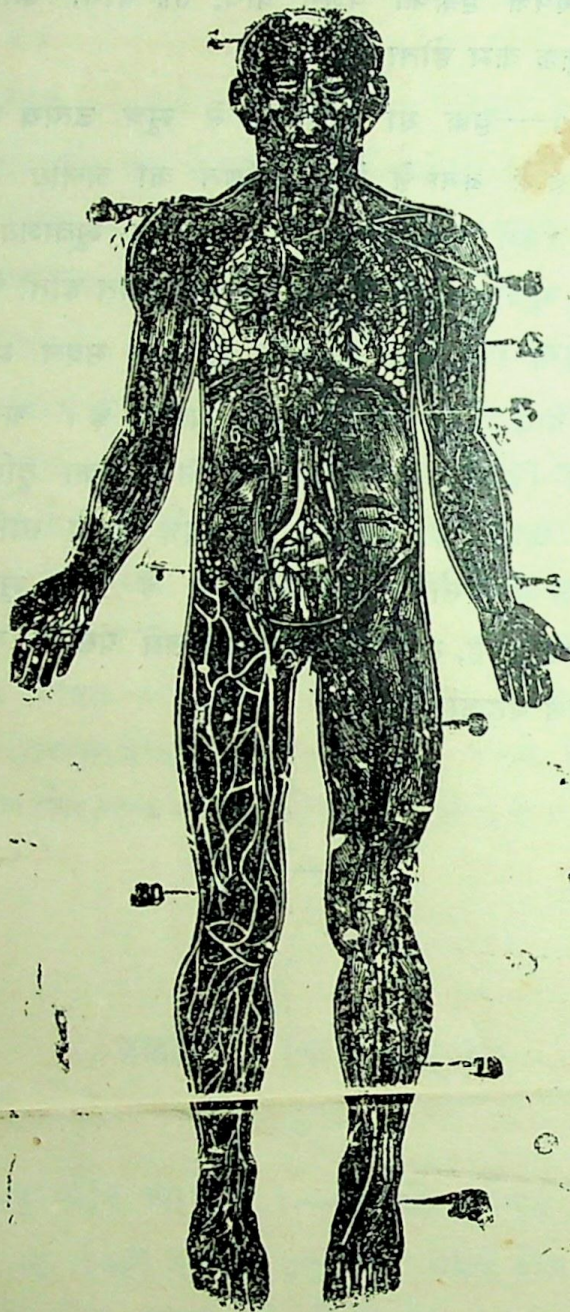
शरीरके भीतरी यन्त्र और शोणितनाली समूह।

5, 6, वृक्कद्वय 7 मूत्राशय। बाकीके बारेमें पहिले कहचुके।

वैद्यक-शिक्षा।

सप्तम खण्ड।

धात्री-विद्या।

MIDWIFERY.

धात्रीविद्या क्या है?—जिस विज्ञान और शिल्पशास्त्र को सहायता से ससत्त्वावस्था या प्रसव के पहिले और प्रसवके वक्त तथा सूतिकावस्था में जननी और सन्तान के विषय की शिक्षा और उसके चिकित्सा कार्य्यमें पारदर्शिता लाभ होती है उसको धात्री-विद्या कहते है। प्रसवकाल में धात्रीको सहायता एकान्त आवश्यक है; इसलिये इसका नाम धात्रीविद्या रखा गया है।

त्रिकास्थि या वस्ति।--धात्रीविद्या मे ज्ञानलाभ करने वालों को पहिले वस्तिगह्वर और जननेन्द्रिय विषयों को सीखना चाहिये। इसीलिये यहां वही दो विषयों की आलोचना की जाती है। मेरुदण्ड और दोनो सक्थि अर्थात् दोनो अधःशाखाके बीचमें जो हड्डीका गह्वर है उसको त्रिकास्थि या वस्ति कहते हैं। यह चार हड्डियोंमें बनी है। यह चार हड्डी पृष्ठवंशमूलीय शंखावर्त्त और दो अनामिका है। पहिली दो हड्डी वस्तिके पीछे और दो अनामिका हड्डी इसके सामने और बगलमे है।

माप और परिमाण।—वस्तिके दो दरवाजे हैं; एक प्रवेश द्वार और दूसरा निर्गम द्वार। प्रवेश द्वार इसके उपरी अंशमें है इसको परिधि प्राय: १६ इञ्च होगा; सन्तान भूमिष्ठ होनेसे पहिले इसी द्वारसे वस्तिगह्वर में जाता हैं। इसके तीन व्यास है; (क) सामने और पीछे; इसको लम्बाई ४। इञ्च, (ख) अनुप्रस्थ; इसको लम्बाई ५। इञ्च; और (ग) तिर्य्यक; इसको लम्बाई ५ हैं। वस्तिके निम्नांश को इसका निर्गम द्वार कहते है। इसका दो व्यास सामने और पीछे अनुप्रस्थ। पहिले को लम्बाई ५ इञ्च और दूसरे को ५। इञ्च होगो।

स्त्री-वस्ति।
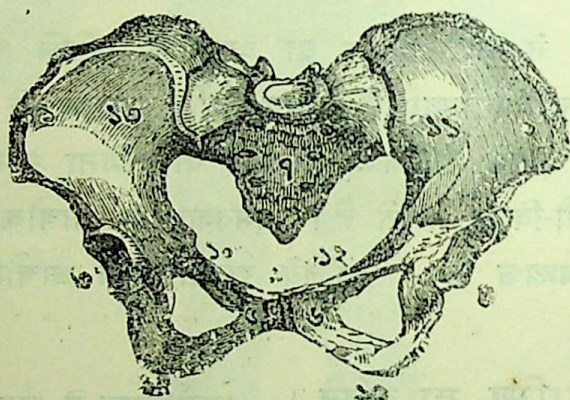
१, २, ३, ४ और ५, ६, वस्तिके भागत्रय, ७ पृष्ठवंशमूलीय अस्थि; इसके नोचेवाली चूड़ा शङ्खावर्त्त; ८ और १०—११, वाम तिर्य्यक व्यास; १२—१३ दक्षिण तिर्य्यक व्यास; दोनो व्यासके संयोगविन्दु से वाम और दक्षिण सूत्रपात में एक सीधी लकीर खीचने से अनुप्रस्थ व्यास होगा।

———

जननेन्द्रिय।

—:○:—

विवरण।—धात्री विद्याका मुख्य आधार जननेन्द्रिय है, तथा जीव सृष्टिका प्रधान कारण भी इन्द्रियही है। जिसके उपयुक्त कार्य्यके अभाव से जीवकी सृष्टि नही होती उसको जननेन्द्रिय कहते है। जननेन्द्रिय का दूसरा नाम उपस्थ है। जननेन्द्रिय के सिवाय जीवोत्पत्तिका दूसरा उपाय नही है। जननेन्द्रिय का सङ्ग प्रतिज्ञा पूर्व्वक परित्याग करने से जीवोत्पत्ति बन्द होती है। इस यन्त्रकी वनावट अति विचित्र है, यह कैसे अपूर्व्व कौशल से बना है और इसके अङ्ग प्रत्यङ्गोका परस्पर सम्बन्ध और क्रियाविशेषकारिता शक्ति कैसी अनिर्व्वचनीय है कि जिसकी शक्तिमें ब्रह्माण्डके जीव सब अवश और मुग्धमानस हो पाशबद्ध बन्दर की तरह निरन्तर नाचता फिरता है। तथा इसीके प्रभाव से आनन्दप्रवाह, कर्म्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, दाक्षिण्य, आस्तिक्य और मैत्री इस भूमण्डलमें नित्य विराजमान है। जननेन्द्रिय पुरुष और स्त्रीभेद से दो प्रकार है।

मेढ़्र और मेढ़्रभूमि।—वस्तिकी दोनो अनामिका जहां परस्पर मिली है उसके उपर के प्रशस्त अंशको मेढ़्रभूमि कहते है। शिश्न इसी स्थानमें अवस्थित है। यही सङ्गम साधन की प्रधान इन्द्रिय है। मूल देह और मुण्ड ऐसे इसके तीन अंश है। मूलभाग दो प्रवर्द्धन से दोनो शाखा और एक बन्धनी से बस्तिके साथ संयुक्त है। उपरवाले भागको लिङ्ग मुण्ड तथा मुण्ड और मूलके बीचवाले को लिङ्ग शरीर कहते है। शिश्न कई उत्थानशील तन्तुयोंसे बना है। इस तन्तुके भीतर बहुतेरी

छोटी छोटी रक्तनाली है। चैतन्य होतेही इन सब रक्तनालियो में शोणित बड़े वेगसे धावमान होता है, इसीसे शिश्न उत्तेजित होता है। लिङ्ग मुण्डवाला अनुप्रस्थ छिद्र प्रस्राव द्वार है। मूत्रनाली मूत्राशय से आरम्भ हो यहीं आकर खतम हुई है।

अण्डकोष।—अण्ड दो ग्रन्थिमय यन्त्र है। यही दो यन्त्रोंसे पुरुष का शुक्र बनता है। यह मुष्क नामक दो चमड़े की थैलीसे निहित और वस्तिप्रवेश से रेतोरज्जु नामक दो रज्जु से लम्बित है। साधारणत: प्रत्येक अण्ड प्राय १॥ इञ्च दीर्घ है। इसका सम्मुख पश्चात् भाग १। इञ्च और अनुप्रस्थ अंश ३।४ से १ इञ्च होगा। वजन ३।४ से १ औंस। दो अण्डकी बीचमें सचराचर एककी अपेक्षा दूसरा कुछबड़ा होता है।

शुक्रकोष।—अण्डकोष में पुरुष का शुक्र बनता है, पाश्चात्य शरीरतत्त्ववित् पण्डित यह कहते है कि शुक्र यहांसे दोनो अण्डकोष के उपरवाली दो थैलीमें जाता है, यह दो थैली को शुक्रकोष कहते है, तथा इन्हो दो कोषोमें पुरुषका शुक्र संग्रहीत होता है। शुक्र उज्वल श्वेतवर्ण तरल पदार्थ तथा लसदार और इससे एक प्रकार विचित्र गन्ध होती है। शुक्रमें एक प्रकार अगण्य सूक्ष्म जीव विद्यमान है। वह जीव प्राय १।५००० इञ्च लम्बा है। मैथुन कालमें शुक्रकोष से शुक्र प्रक्षेपक नालीसे यह निक्षिप्त होता है।

स्त्री-जननेन्द्रिय।

—०—

भग, भगांकुर, योनि, भगोष्ठ, जरायु, अण्डाधार आदि की समष्टी को जननेन्द्रिय कहते है। यह अन्त: और वाह्य ऐसे दो

भागों में विभक्त है। इसमें भग भगांकुर वृहदोष्ठद्वय, चुद्रोष्ठद्वय कामाद्रि, प्रस्राव द्वार, सतोच्छद, योनि आदि बाह्य जननेन्द्रिय तथा अण्डाधार, डिम्बवाही दो नाली और जरायु यह तीन को अन्तर्जननेन्द्रिय कहते हैं। दोनो स्तनोंके साथ यद्यपि जननेन्द्रिय का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है, तथापि यह दो उसके अन्तर्गत नही है।

कामाद्रि।—भगके ऊर्द्धांश को कहते है। युवावस्था में यहां लोम पैदा होता है।

योनि।—यह एक नलाकार गह्वर है। यह जरायुसे भगतक फेला है। इसका निम्नांश संकीर्ण और ऊर्द्धप्रसारित है। योनिके सामने मूत्राशय और प्रसव द्वार, पीछे सरलान्त्र और विटप, दोनो तरफ प्रशस्त दो बन्धनो और उपर यह जरायुसे संयुक्त है।

वृहदोष्ठद्वय।—दोनो वृहदोष्ठ योनिमुख के दोनो तरफ स्थित है। इसका वहिर्द्देश त्वक और अभ्यन्तर भाग श्लैष्मिक झिल्लिसे आवृत है। शैशवावस्था में यह दो ओष्ठका भीतरी अंश परस्पर मिला रहता है। फिर पुरुष सङ्ग और सन्तान पैदा होनेसे अलग हो जाता है।

चुद्रोष्ठद्वय।—वृहदोष्ठद्वय के भीतर दोनो चुद्रोष्ठ है। दोनो तरफ के चुद्र ओष्ठ भगांकुर के पास आकर दो भाग में विभक्त हुआ है।

भगांकुर। उपर दोनो वृहदोष्ठका जहां सम्मिलन हुआ है उसके प्राय आध इञ्च नीचे भगांकुर है। यह शिश्नकीतरह उत्थान शील तन्तुओं से बना है तथा रतिकाल में उत्तेजित होता हैं।

सतोच्छद।—प्रस्राव द्वारके नीचे योनिमुख है। शैशवावस्था में वह एक पतली झिल्ली से आवृत रहता है, उसको सतोच्छद कहते है। पुरुष संगसे सतोच्छद कट जाता है; किसी २

का सतीच्छद इतना कड़ा होता है कि बिना काटे पुरुष सङ्ग नहीं कर सकता है।

विटप।—यह योनिमुख के पीछे और मलद्वारके सामने करीब १॥ डेढ़ इञ्च लम्बा है।

स्त्री-जननेन्द्रिय—छेदित।
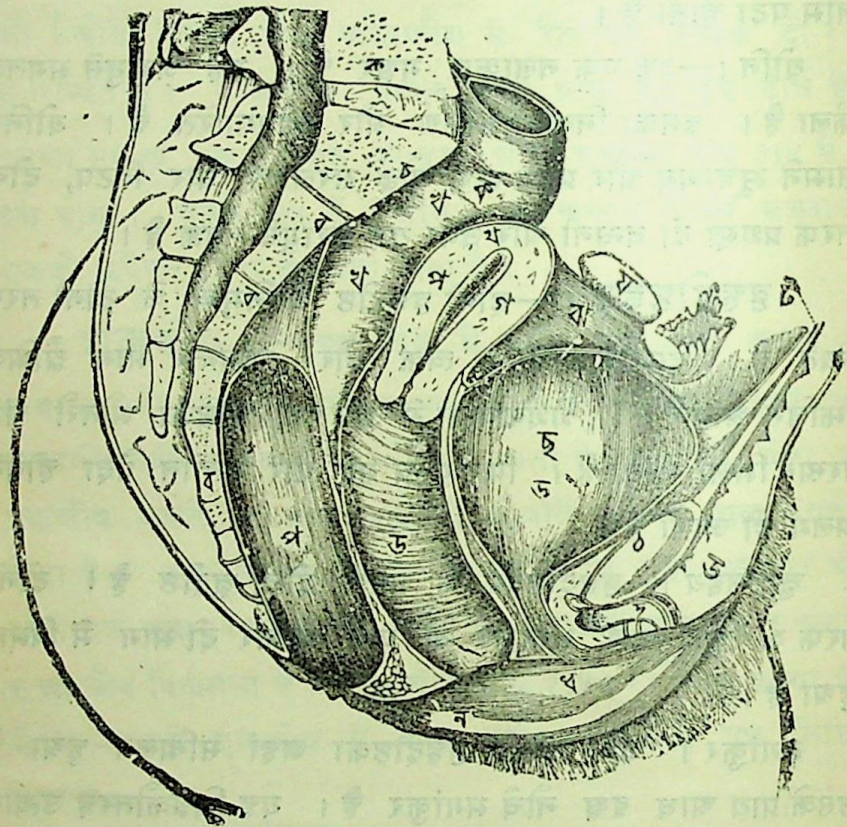
क, ख, ख, प, सरलांत। प, य, ग, जरायु। ङ योनि नाली। ध, प्रस्राव द्वार। न, क्षुद्रोष्ठ। ठ भगांकुर। ट, मूत्रप्रणाली। छ, ङ, मूत्राशय। भ, प्रशस्त बन्धनी। य, अण्डाधार। क, व, क, व, शङ्खावर्त्त।

जरायु।—यह ठीक बड़े असरूद को तरह है। सामने और पीछेका अंश थोड़ा चिपटा तथा भीतर पोला है, इसोको गर्भाशय कहते है; पुरुष का शुक्र और स्त्रोके अण्डसंयोगसे इस यन्त्रमें भ्रुण उत्पन्न और क्रमश: पुष्ट हो प्रसवकालमें यहोंसे बाहर निकलताहै।

विभाग और विस्तार।—जरायु तीन अंश में विभक्त है—ऊर्द्ध, मध्य और निम्न। इसका ऊर्द्धांश मुण्ड, मध्यांश देह और निम्नांश ग्रोवा नामसे अभिहित है। जरायु वस्तिगह्वर में योनिके ऊर्द्धांश में अवस्थित है तथा इसके दोनो तरफ दो बन्धनो इसको आबद्ध किये हुए है। इसके सामने मूत्राशय और पीछे सरलांत्र है। कुमारियों का जरायु १॥ इञ्च लम्बा तथा जिन्हे एकबार सन्तान प्रसव हुआ है उनका जरायु ३ इञ्च लम्बा होताहै।

डिम्बवाही नाली।—जरायुके उपरवाले दो कोनेसे यह दो नाली उत्पन्न हो किञ्चित् वक्रभासे अण्डाधार तक विस्तृत है। हरेक नालीको लम्बाई ३।४ इञ्च होगो। इसका भीतरो भाग पोला तथा नालीका शेषांश जालकी तरह बना हुआ है।

अण्डाधार।—जरायुके दोनो पार्श्वको प्रशस्त दोनो बन्धनोंके पीछे दो अण्डाधार है। यह देखनेसे ठीक अण्डेकी तरह है। प्रत्येक अण्डाधार प्राय दो इञ्च लम्बा तोन इंच चौड़ा आध इंच मोटा है। ऋतुकाल में इसका आकार बढ़जाता है और गर्भावस्थामें दुना आकार हो जाता है। अण्डाधारके भीतर असंख्य अण्ड निहित है।

स्तनद्वय।—दोनो स्तन जननेन्द्रियके अन्तर्गत न होनेपर भी इन दोनोका घनिष्ट सम्बन्ध देखनेमें आता है; इसीलिये यहां उसके बारेमें थोड़ा लिखते है। दोनो स्तन अर्द्ध गोलाकार, इसके उपरीभागमें क्षुद्र वर्त्तुलाकार दो पदार्थ है; इसीको चुंची कहते है।

दोनो स्तन छातीके दोनो तरफ तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ट पञ्जरास्थि आवरणकर उत्पन्न होता है। इसके भीतर बहुतेरो दूध निकालनेवाली ग्रन्थि है। यौवनके प्रारम्भमें दोनो स्तन कठिन और छोटा रहता है; फिर उमर वृद्धिके साथ साथ इसका भी आकार बढ़ता रहता है; तथा गर्भावस्थामें अत्यन्त स्फारित और पीनोन्नत हो जाता है। प्रसवके बाद स्तन शिथिल और झुक जाता है।

ऋतु और गर्भाधान।

हिन्दू और पाश्चात्य मत।— ऋतु और गर्भाधान सम्बन्ध में हिन्दु और पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रसे भिन्न प्रकार बिवरण दिखाई देता है। यह विवरण भिन्न होनेपर भी मूल विषय में दोनोका सादृश्य है। इसोलिये यहां दोनो मतोंका आलोचना करते है। हिन्द आयुर्वेदकारोंमें सबसे अधिक इस विषयकी आलोचना महर्षि चरक और सुस्रुतने की है। यहां उनके ग्रन्थका वही अंश संग्रह किया जाता है।

शुक्र।—जो पदार्थ स्त्रीसे समाहित हो गर्भ पैदा करता है उसे पण्डितगण शुक्र कहते है। शुक्रमें वायु, अग्नि, भूमि और पानी यह चार महाभूतका अंश वैद्यमान है तथा यह मधुरादि छ रसोसे उत्पन्न होता है।

शुक्र, शोणित और जीव कुक्षिगत हो संयुक्त होनेहीसे उसको गर्भ कहते है। अर्थात् आकाश, बायु, अग्नि, पानी चौर भूमिके

विकृतिको गर्भ कहते हैं, यही गर्भ चेतनाका अधिष्ठान है। इसी चेतनाको गर्भकी छठी धातु कहते है। बाल्यावस्था अतिक्रम कर युवावस्था मे स्त्रियोंके अनेक भावोंमें परिवर्त्तन दिखाई देता है। युवावस्थामें दोनो स्तन पीनोन्नत योनि विवर्द्धित और वस्ति-लोमसे व्याप्त होती हैं। जरायु कोषसे पतला और साफ रक्त निकलता है। इसी रक्तको आर्तव या पुष्प कहते है, चलित भाषामें इसको स्त्रीधर्म्म कहते हैं।

स्त्रीधर्म्म।—प्रति मासमें वह रक्त निकलता। रक्त यदि शश रक्त या लाहके पानीकी तरह हो और वस्त्रादि में दाग न लगे तो निर्दोष रक्त जानना, यह रक्त ४।५ दिनतक स्थायी रहता है। न एव नियमोंका व्यतिक्रम होनेसे रजोदुष्टि स्थिर करना। रोग शोक वर्जित परिपुष्टांगी स्त्री को प्राय: बारह वर्ष अतिक्रम होनेसे रज:प्रवृत्ति होता है तथा यह पचास वर्षके बाद बन्द होता है। शरीरमें खराबी होनेसे पचास वर्षके भीतर ही रजो निवृत्ति हो जाती है। रज:प्रवृत्तिके पहिले दिनसे सोलहवें दिनतक को ऋतुकाल कहते हैं। यही काल गर्भ ग्रहणका उपयुक्त काल है। प्रकृतिभेदसे स्त्रियोंके ऋतुकालमें भी हेरफेर होता है अर्थात् किसी किसी स्त्रीको सोलह दिनतक गर्भ ग्रहण को शक्ति नही रहती है। सूर्य्य अस्त होनेसे जिस तरह पद्मिनी मूद्रित होती है, वैसही ऋतु-काल अतीत होनेसे नाली जरायु सङ्कुचित हो जानेसे गर्भ ग्रहण-की शक्ति नही रहती। ऋतुकालमें स्त्रीगण अपेक्षाकृत अधिक सम्भो-गाभिलाषिणी होती हैं; यह वक्त प्रकृत रतिकाल है। उसर भूमिमें बीज डालनेकी तरह और वक्तका शृङ्गार निरर्थक होता है।

ऋतुमती।—शुद्ध आर्तवारमणीको ऋतुके पहिलेही दिनसे व्रह्मचर्य्य रहना चाहिये। दिवानिद्रा, अञ्जन, अश्रुपात,

स्नान, अनुलेपन, तैलादि मर्द्दन, नखच्छेदन, धावन, अतिशय हसना, बहुत बोलना, तेज आवाज सुनना, अवलेखन, वायु सेवन, और परिश्रम उनको त्यागना चाहिये। यह सब विधि पालन न करनेसे गर्भ नानाप्रकारसे दूषित हो जाता है तथा उस गर्भमें सन्तान पैदा होनेसे वह नानाप्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहती। जिसका व्यौरा नीचे संक्षेपमें दिया जाता है।

विशेष विशेष रोग।—ऋतुमतीके दिवानिद्रासे भावी सन्तान निद्राशील; अञ्जन लगानेसे अन्धा, अश्रुपातसे विकृति दृष्टि, स्नानानुलेपनसे दुःखशील, तैलादि मर्द्दनसे कुष्ठी, नख छेदनसे कुनखी, धावनसे चञ्चल, अधिक बोलनेसे प्रलापी ऊंचा शब्द सुननेसे वधिर, अवलेखनसे खलमति, वायुसेवन और श्रमसे उन्मत्त तथा अधिक हसनेसे सन्तानकी दांत, ओष्ठ, तालू और जीभ श्यामवर्ण होते है। अतएव ऋतुमती स्त्री सर्वतोभावसे यह सब त्याग दें। ऋतुके तीन दिन उनको कुशासनपर सोना, करतल अथवा पत्तलमें हविष्यान्न भोजन और स्वामी सहवास बन्द करना चाहिये।

ऋतुस्नाता।—ऋतुमती स्त्री चौथे दिन स्नानकर सुन्दर और पवित्र वस्त्रालङ्कार धारण और स्वस्तिवाचन पूर्व्वक सबसे पहिले भर्त्ताका दर्शन करें। स्वामी न उपस्थित होतो सूर्य्यको देखना, इसका तात्पर्य्य यह है जि ऋतुस्नानकर रमणी जैसे पुरुषको देखेगी। इसके बाद अब गर्भाधान।

गर्भाधान।—भर्ता एकमास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर भार्य्याके ऋतुकालके चौथे दिन घी दूध और शालिधान्यका भात भोजन करे तथा भार्य्या एक मास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर उस दिन तैल मर्द्दन अधिक उरदका द्रव्य भोजन करें, फिर भर्ता वेदादिमें विश्वास कर पुत्रकामी हो उसी रातको अथवा षष्ठ, अष्टम

दशम या द्वादश दिनको भार्य्यासे उपगत होवे। ऋतुकालके चौथे दिन से बारवें दिन उत्तरोत्तर जितने दिन पर समागम हो सन्तान उतनीही सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य्यशाली और बलशाली होती है। कन्याकी इच्छा हो तो पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश दिन गमन करना चाहिये। तेरहवें दिनसे समागम अवैध है यहां यह याद रखना आवश्यक है कि पुरुषाभिलाषिणी कामातुरा व्याधिहीना स्त्रीके साथ सञ्जात हृष, व्याधिहीन रतिज्ञ पुरुषका ऋतुकालमें संसर्ग होनेसे अपत्योत्पादन इच्छाफलवती होती है। कृष्ट जल-सिक्त उपयुक्त गुणसम्पन्न क्षेत्रमें यथासमय में निर्दोष बीज बपन करनेसे जैसे उसमेसे अङ्कुर निकलता है, वैसही अदोष योनिमें यथासमय अदोष शुक्र आहित होनेसे गर्भोत्पत्ति अवश्य होती है।

अभिगमन।—ऋतुकालका संसर्ग नानाप्रकारके अनर्थका निदान है। ऋतुके पहिले दिन गमन करनेसे पुरुषका आयुःक्षय होता है। उसमे यदि गर्भ हो तो गर्भस्राव हो जाता है। दूसरे दिन गमन करनेसे भी वैसही फल होता है, अथवा सूतिका गृहमें ही सन्तान मरजाती है। तीसरे दिन गमन करनेसे वही फल अथवा सन्तान अपूर्णाङ्ग या अल्पायु होती है। चौथे दिन गमन करनेसे सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घायु होती है। पर जबतक शोणित स्राव होता रहे तबतक बीज प्रविष्ट होनेमें कोई फल नही होता। जैसे नदीके स्रोतमें कोई द्रव्य डालनेसे वह जाता है, बीजभी वैसेही गर्भकोषमें न जाकर प्रत्यावृत्य होता है। अतएव ऋतुकालके तीन दिन गमन नही करना चाहिये। ऋतुका १२ वां दिन बीत जानेसे फिर एक महीनेके बाद गमन करना उचित है। इस नियममें सन्तान पैदा हो तो वह सन्तान

रूपवान, महा बलवान, बुद्धिमान, आयुष्मान, पितृपरायन, धनवान और सत्पुत्र होता है ।

वर्ण और चक्षु ।—गर्भोत्पत्ति, कालमें तेजोधातु अधिकांश जलधातुके साथ मिलनेसे गर्भ गौर वर्ण होता है ; अधिकांश पार्थिव धातुके साथ मिलनेसे गर्भ कृष्णवर्ण होता है। अधिकांश पृथिवी और आकाश धातुके साथ मिलनेसे कृष्ण श्याम और अधिकांश जलीय और आकाश धातुके साथ मिलनेसे गौर श्याम होता है। कोई कोई कहते हैं कि गर्भावस्थामें गर्भिणी जिस रङ्गका द्रव्य आहार करती है, सन्तान भी वही रङ्गकी होती है। तेजदृष्टि शक्तिके साथ न मिलनेसे सन्तान जन्मान्ध होती है। तेज शोणितका आश्रय ले तो सन्तान रक्ताक्ष होती है। पित्तका आश्रय ले तो चक्षु पीतवर्ण, कफका आश्रय ले तो शुक्लाक्ष और वायुका आश्रय ले तो विकृताक्ष (टेरा) होती है ।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव ।—जिस गर्भका शुक्र और शोणित, आत्मा, आशय अर्थात् भ्रुणोत्पत्ति स्थान (जरायु क्षेत्र) और काल यह सब दोष वर्जित हो तथा गर्भिणीके आहार विहार के कोई दोष न होतो वह अदुष्ट शुक्र-शोणित सम्भूत गर्भ सर्व्वतोभावसे सब अवयव सम्पन्न हो प्रसूत होता है। सुप्रजा अर्थात् अवन्ध्या स्त्रीकी योनि या जरायु का दोष, मानसिक विविध अशान्ति या क्लेश, शुक्र या शोणितकी खराबी, आहारादि का अत्याचार अकाल योग किम्बा व्याधि आदिसे देरमें गर्भ धारण होता है। गर्भस्रावका विषय अति भयानक है, इससे एक रहस्य है। रूक्षान्न पानादिसे गर्भाशय की वायु कुपित हो किसी किसी स्त्रीका ऋतुशोणित बन्द हो ठीक गर्भका लक्षण प्रकाश होता है। बहुतेरे लोग उसे गर्भ स्थिर करते है, पर थोड़े दिन बाद

शोणित अधिक सञ्चय होनेसे स्राव अथवा अग्नि या सूर्य्य ताप, श्रम, क्रोध, शोक, अथवा उष्ण अन्नपानसे परिस्रुत हो जाता है।

पुत्र कन्या और बहु सन्तान।—यदि बीज अर्थात् मिलित शुक्र शोणित में रक्तका भाग अधिक होतो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो पुत्र पैदा होता है कोई कोई कहते है कि चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि युग्म दिनोंमें गमन करनेसे पुत्र और पंचम, सप्तम, नवम आदि अयुग्म दिवसमें कन्या पैदा होता है। वा कुपित हो बीजको दो भागमें विभक्त करें तो यमज सन्तान होती है। इस दो भागमें यदि एक भागमें रक्त अधिक होतो कन्या और दूसरे भागमें शुक्र अधिक होतो पुत्र जन्मता है या दोनो भागो में रक्तका भाग अधिक होतो दो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो दो पुत्र होता हैं। अति प्रवृद्ध वायु जब बीजको कोई बिभागोमें विभक्त करेतो बहु सन्तान प्रसव होती है। प्रकुपित वायु कर्तृक यदि बीज विषमांससे विभक्त हो अर्थात् एक अंशमें अधिक बीज और दूसरे अंशमें कम तथा गर्भिणी यदि उपयुक्त आहार प्राप्त न हो और उसका कोइ धातुका चय या अधिक स्राव होतो गर्भ सूखजाता हैं;—इससे प्रसवके निर्द्दिष्ट समयसे अधिक दिनपर प्रसव होता हैं।

नपुंसक।—अब नपुंसकादिके जन्मका कारण लिखता हूं। उपरोक्त वीज में शुक्र और शोणितका भाग बराबर हो तो स्त्री या पुरुष चिह्नयुक्त सन्तान होती है। वायु कुपित हो गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय नष्ट करनेसे वह प्राणी-पवनेन्द्रिय होता है। वायुकर्तृक गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय द्वार विघटित होनेसे संस्कारवाही सन्तान पैदा होती हैं। यदि पितामाता हीन बीज या अल्प बीज-विशिष्ट दुर्व्वल और अहर्ष

अर्थात् मैथुनमें अल्प हर्ष-विशिष्ट होती वह पुत्र या कन्या नरषण्ड या नारीषण्ड होती है। माताकी मैथुनकी अनिच्छा और पिताका-बीज दुर्ब्बल होती सन्तान टेढी (वक्र) होती है। पितामाता ईर्षाभिभूत वा मैथुनमें मन्द हर्ष होती सन्तान ईर्षापरतन्त्र होती है। जिस पुरुषका दोनो कोष वायु और अग्निदोषसे नष्ट हो जाता है उसको वातिक षण्ड कहते है।

विशेष इन्द्रिय।—गर्भका शरीर माता आदिसे उत्पन्न होनेपर भी वह पांच महाभूतका विकार है, कारण जीवदेह पंच महाभूतात्मक है। किस महाभूतसे क्या उत्पन्न होता है, वह क्रमशः विवृत होगा। शब्द, श्रोत, लघुता, रुक्षता और छिद्र यह सब आकाशसे उत्पन्न होता है। स्पर्शेन्द्रिय, रुक्षता, श्वासप्रश्वास क्रिया, धातु और शारीरिक चेष्टा वायुसे उत्पन्न होता है। रूप दर्शेन्द्रिय प्रकाश, परिपाक और उष्णता यह सब अग्निसे उत्पन्न है। रस, रसेन्द्रिय, शैत्य, मृदुता, स्नेह, और क्लेद पानीसे उत्पन्न है। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, गुरुत्व, स्थैर्य्य, और मूर्त्ती यह सब पृथिवीसे उत्पन्न हैं। जगतमें जितने भाव है पुरुषमें वही सब भाव दिखाई देते हैं। पण्डितगण जगत् और पुरुषके भावका एकही रूप बताते है। इसी तरह तृतीय मासमें गर्भ औरभी कई अङ्ग और अंगावयव एकहीबार उत्पन्न होतेहो। इसके सिवाय कालान्तरमें और भी कई भाव उत्पन्न होते हैं। दांत, स्तनोन्नति, अधोलोम, श्मश्रु और कक्षलोम काल-विशेषमें उत्पन्न होते है। बुद्धि, रूप, वाक्शक्ति, शुक्र और गमन धावनादि भावोंको उत्पत्ति भी क्रमशः होती हैं।

———

भ्रूणका क्रमस्फुरण।

गर्भकी सब इन्द्रियां उत्पन्न होनेपर शिशुको अन्तःकरण का दर्द अनुभव करनेको शक्तिका सञ्चार होता है। इन्हा सबसे गर्भ स्पन्दित होता रहता है। इसको लोग सचराचर गर्भ यन्त्रणा कहते हैं। वास्तवमें इस दर्दको तरह भयङ्कर दर्द दूसरा नहो है। इसवक्त जीव गर्भ यातनासे व्याकुल हो भगवानको स्तुति करता है। गर्भस्थ शिशुका हृदय माताका और माताके हृदयके साथ शिशुका घना सम्बन्ध हैं इसोलिये वृद्धगण गर्भको दैहृद्य कहते हैं। इसवक्त गर्भिणीको गर्भके प्रतिकूल आहार विहारादि त्याग करना चाहिये कारण इसवक्त गर्भके प्रतिकूल कार्य्यादिसे गर्भका नाश या विकृति होनेका डर है।

इसवक्त इन्द्रियोंको कोई कोई विषय भोगकी इच्छा होती है। यह इच्छा पूर्ण होनेसे सन्तान गुणवान और आयुष्मान होती है। किन्तु माताकी यह इच्छा यदि पुरो न होतो गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, खञ्ज, वामन, विकृताङ्ग अथवा अन्ध होती है। अतएव गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अभिलषित द्रव्य अवश्य देना उचित है।

चौथे महीनेमें गर्भ स्थिर होता हैं; इससे गर्भिणीका शरीर इसवक्त भारी हो जाता हैं। पांचवे महीने गर्भका मांस और शोणित कुछ बढ़ता है। इसीलिये गर्भिणी पांचवे महीने बहुत दुबली हो जाती है। छठे महीने और महीनेकी अपेक्षा भ्रूणका बल और वर्णका ह्रास होता हैं। सातवें महीने गर्भके सब भावोंकी वृद्धि हो गर्भिणीके आकारमें क्लान्ति दिखाई देती

है। आठवें महीने गर्भ और माता रसवाहिनी शिरा समूहोंसे परस्परका ओज ग्रहण करते हैं। इसवक्त गर्भिणी बारबार ग्लानि युक्त मोटी ताजी होती है। ओजोधातुके अनवस्थितत्वसे यह विपद होनेकी सम्भावना है। इसीसे पण्डितगण अष्टम मासको गर्भका अहितकर निर्देश करते हैं। आठवां महीना पूरा हो नवें महीनेके पहिले दिनसे दशवें महीने तक प्रसवका मुख्यकाल है। इससे अन्यथा होतो विकृति स्थिर करना।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।
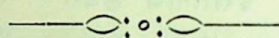
गर्भस्राव।—पहिले कह आए हैं कि किसी तरह की सांघातिक पीड़ा होनेसे अकसर गर्भस्राव हो जाता है। गर्भाधानके बाद २८ हप्ता पूर्ण होनेके पहिले भ्रूण निकलेतो उसे गर्भस्राव कहते है। इसके बाद शिशु भूमिष्ठ होनेसे प्रायः शिशु मरता नही है, इसे अकाल प्रसव कहते है। बहु प्रसविनी स्त्रीकी गर्भस्राव अधिक होता है।

कारण।—गर्भस्राव नाना कारणोंसे होता है, जरायुके भीतरका रक्तस्राव हो तो गर्भ नही ठहरता। भ्रूणकी मृत्युभी गर्भस्रावका अन्यतम प्रधान कारण है। उपदंश, चेचक आदि पीड़ामें भी गर्भस्राव होता है। उत्कट परिश्रम या मानसिक अवसाद, अत्यधिक रमण, अधिक सुरापान, विषद्रव्य सेवन, गर्भके उपर अकस्मात् गुरुतर आघात, जरायु प्रदाह किम्बा स्थानच्युति आदि कारणोंसे भी गर्भस्राव की सम्भावना है।

उपर जितने कारणोंका उल्लेख किया गया है, उनमेंसे कोई कोई पूर्व्वप्रवर्त्तक और कोई कोई उत्तेजक कारण हो जाते हैं। पहिलेहीसे गर्भस्रावके लक्षण जिसमें रहते है, उसको थोड़ेही कारणसे गर्भस्राव हो जाता है। पर पूर्व्व प्रवणता न रहनेसे गर्भ सहजमें नष्ट नही होता।

लक्षण।—गर्भस्राव होनेसे पहिले जरायु सङ्कुचित होता हैं, तब गर्भिणीके तल पेटमें उत्कट दर्द होता है साथही इसके अथवा थोड़ो देर बाद जरायुसे शोणितस्राव होना आरम्भ होता है। शोणित कभो थोड़ा थोड़ा निकलता है इस दशामें गर्भिणीको अवस्था सङ्कटापन्न हो जातो है। कभो पहिले दो तीन दिन थोड़ा-थोड़ा शोणित निकलकर क्रमशः कमहो बन्द होजाता हैं। तब लोग समझते है कि गर्भिणी आराम हो गई, फिर एकाएकी शोणित दिखाई देता हैं। फलतः शोणितस्राव और दर्द यह दोनो गर्भस्रावके प्रधान लक्षण है। इन दो लक्षणोंमें एक भी दिखाई देनेसे चिकित्सा करना उचित हैं।

माता और शिशु।—गर्भावस्था गर्भिणीके हकमें बड़ा विषम काल हैं। भ्रूणका जन्म और क्रमस्फूरणसे लेकर जबतक भूमिष्ठ न हो तबतक गर्भिणीको विशेष सावधानीसे रहना चाहिये। सामान्य त्रुटि या अनियम, अथवा थोड़ा अत्याचारभो गर्भिणी और साथही गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य नष्ट कर सकता है। इसीलिये इस वक्त गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहे इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना चाहियें। इससे केवल गर्भिणीका मङ्गल हैं सो नही गर्भस्थ शिशुका भी स्वास्थ्य अच्छा रहता हैं। शिशु जबतक गर्भमें रहता है तबतक माताके शोणितसे ही उसका पोषण होता है; अर्थात् शोणित माताके शरीरसे सन्तानके शरीरमें जाकर उसकी

जोवन रक्षा होती हैं। सुतरां इससे स्पष्ट जाना जाता है कि माताका शोणितही शिशुके जोवनशक्तिका एकमात्र प्रस्रवण है। वही प्रस्रवण दूषित होनेसे शिशुका स्वास्थ्य नष्ट और कहांतककि जोवन विपन्न होनेकी सम्भावना है इससे स्पष्ट जाना जाता हैं कि गर्भावस्थामे गर्भिणीका स्वास्थ्य ठोक रहनेसे गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य ठोक रहेगा और उसके क्रमस्फूरणमें काई तरहकी वाधा नही होगी। गर्भिणोका स्वास्थ्य ठोक रहने में पथ्य, परिश्रम, निद्रा आदि कई एक विषयमें ध्यान रखना उचित हैं।

भोज्य।—पहिले आहारके सम्बन्धमें कहते है;—गर्भावस्थामें हलका और पुष्टिकर द्रव्य आहार करना उचित है। गर्भिणोका पथ्य जितना सुपाच्य और पुष्टिकर हो उतनाही अच्छा है मांससे टटका पक्का फलमूलसे विशेष उपकार होता हैं, हमारे देशमें सचराचर जो सब कन्दमूल मिलते हैं उसमें आलू, गोभी, बैगन, मटरका छीमी; बीट और केला, कमलानीबू, तरबूज, शरीफा, अमरूद, आम, जामुन आदि व्यवहार किया जा सकता है। मछली कम आहार करनेमें बाधा नही हैं, यदि कोई मास विना खाये न रहसके उनको थोड़ा मांस भी देना चाहिये। मांसाहारसे गर्भिणोका स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना है; इससे जहांतक बने मास न खानाही अच्छा है। मरे प्राणोके मांससे गर्भस्थ शिशुका कोमल शरीर नही बन सकता; इसलिये शरीरतत्त्ववित् पण्डितोंने गर्भावस्थामें मांसाहार मना किया है। बहुतेरी स्त्रियां गर्भावस्थामें अधिक खट्टा खाती है, यह सर्व्वथा बन्द करना चाहिये। यदि बिना खट्टा खाये न रहसके तो थोड़ी पुराना इमली आदि खट्टा खानेको देना चाहिये। पीनेके द्रव्यमें शुद्ध पानी और दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका उत्तेजक

पेय बन्ध रखना ; यहांतक कि यदि किसीको चाह पीनेका अभ्यास हो तो वहभी त्यागना चाहिये।

लघु आहार।—बहुतेरोंका यह ख्याल है कि गर्भिणीको जब अपने शरीरके सारांशसे गर्भस्थ शिशुकी रक्षा और पोषण करना पड़ता है तब उसका आहार बढ़ाना चाहिये। बहुतेरे इसके अनुसार काम कर भ्रूण और माताका नाना प्रकार अमङ्गल कर बैठते हैं। यह धारणा जैसी भ्रमसंकुल है वैसही अनिष्टकर हैं। इसीलिये गर्भावस्थामें परिमित आहार आवश्यक हैं ; इससे माता और शिशु दोनोंके शरीरकी रक्षा और भ्रूणके स्फूर्त्ती साधनोपयोगी सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। अतएव गर्भिणीको लघु पुष्टिकर और परिमित द्रव्य भोजन देना चाहिये।

पेय।—हमारे देशमें गृहस्थके स्त्रियोंमें सुरा आदि मादक द्रव्य सेवन की प्रथा नही है। पर पाश्चात्य देशीय बहुतेरी कुल-कामिनी हरवख्त और कहांतक कि गर्भावस्थामें भी सुरापान करती हैं। इससे उनकी सन्तान प्रायः उन्मत्त और दुर्नीत-परायण होती है। अतएव गर्भावस्थामें किसी तरहका मादक द्रव्य सेवन करना उचित नही है ; और कहातक कि चाह कापीतक पीना मना है। शुद्ध पानी और दूधही गर्भिणीका एकमात्र पेय है।

कदर्य्य रुचि।—हमारे देश और विलायतमें भी बहुतेरी गर्भिणीकी जघन्य द्रव्यादि सेवनकी इच्छा वलवती होती हैं। कोई जली हुई मिट्टी, कोई राख आदि पदार्थ बड़ी रुचिसे खाती है। यह बड़ा अन्यान्य हैं ; कारण ऐसे द्रव्य आहार करनेसे गर्भिणी पाण्डू, कामला और अजीर्ण आदि पीड़ासे पीड़ित होता हैं।

शौचाचार।—गर्भावस्थामें शौचाचारके विषयमें विशेष ध्यान रखना आवश्यक हैं ; कारण इस दशामें शौचाचार का सामान्य व्यतिक्रम होनेसे गर्भिणीको नानाप्रकारकी पोड़ा होनेको सम्भावना हैं। इस देशको औरतें शौचाचार में जैसी सावधान है, अन्य देशकी औरतें वैसी सावधान देखनेमें नहीं आती। यहांको औरतें आशौच अत्यन्त दूषणीय मानती है। शौचाचार में स्नानही प्रधान है। इससे त्वक और लोमकूप रोज साफ होनेसे शोणित भी साफ रहता हैं। स्वस्थ्य शरीरमें रोज स्नान करनेसे स्वास्थ्य ठीक रहता है। पर अस्वस्थ्य शरीरमें विशेषकर मलेरियाके विषसे जिनका शोणित दूषित हो गया है उनको रोज स्नान करना उचित नहीं है। अवस्था और सहने पर हफ्तेमें दो दिन या तीन दिन स्नान करना अच्छा है।

वायु और परिश्रम।—गर्भावस्थामें अपना और शिशुका शोणित शुद्ध रखनेके लिये साफ हवा सेवन करना उचित है। स्वास्थ्यरक्षाके हकमें यही जीवनका प्रधान उपाय है। आहार न कर आदमी २१४ दिनतक रह सकता है पर साफ वायुके बिना एक मूहूर्त्त भी नहीं वच सकता। अतएव रहनेके घरमें सर्वत्र साफ हवाका चलाचल हो इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना उचित है। मकानके सब घरोंकी अपेक्षा सोनेके घरमें साफ हवाका ख्याल रखना आवश्यक है। मकानमें सर्व्वत्र साफ हवा सञ्चालिक होनेसे शिरःपीड़ा, अजीर्ण, दृष्टिदौर्बल्य और नानाविध स्नायवित पोड़ा नहीं होती। हम लोगोंके सहज शरीर में जब साफ वायु इतनी उपकारी है तब गर्भिणीके हकमें वह तो अधिक आवश्यक है इससे विन्दूमात्र भी सन्देह नहीं हैं। अतएव क्या दिन क्या रात, क्या जाग्रत, क्या निद्रित हरवक्त और सब अवस्थामें गर्भिणीको साफ हवामें रखना चाहिये।

व्यायामादि।—जीवका जीवन धारणके निमित्त किसी तरहका परिश्रम या व्यायाम आवश्यक है; इससे शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्ग और यन्त्र समूहों की उन्नति और स्फूर्त्ती होती है और साथही स्वास्थ्य भी ठीक रहता है अतएव परिश्रम सुख स्वास्थ्य और स्वच्छन्दता में विशेष उपयोगी है। जो परिश्रम न कर आलसीकी तरह बैठे रहते हैं उनका जीवनही वृथा हैं। सहज शरीरमें सब प्रकारका व्यायाम करना चाहिये, पर गर्भिणीको श्रमसाध्य गृहस्थीका काम अवश्य करना चाहिये। इस देशमें गवई गांवकी औरते स्नान शौचकर्म्मके लिये मैदानमें जो जाया करती हैं यह अच्छी प्रथा है। इससे विशुद्ध वायु सेवन और सामान्य परिश्रम दोनो उद्देश्य साधित होते है।

विश्राम और निद्रा।—विश्रामविशेषकर निद्रा स्वास्थ्य-रक्षाका एक प्रधान उपाय है। मस्तिष्क और शरीरके सब यन्त्रोंको दिन रातमें एक दफे विश्राम आवश्यक है। परिश्रमके अनुसार विश्राम भी स्थिर करना चाहिये अर्थात् परिश्रमके परिमाणसे उसका उतनाही विश्राम चाहिये। कोई रात दिनमें ६ घण्टा कोई ८ घण्टा सोनेसे अपनेको स्वस्थ्य मानतेहैं। सहज शरीरमें अनिद्रा और अतिनिद्रा दोनोही जैसी अनिष्टकर है, गर्भावस्थामें यह और भी अनिष्टकर है। सचराचर ६ से ८ घण्टातक सुनिद्रा होनेसे ही स्वास्थ्य ठीक रहता है, इसके अधिक निद्रासे शरीर खराव होनेका डर है।

मानसिक अवस्था।—निद्रा, आहार आदि व्यापारसे गर्भिणीको जैसा विशेष सतर्क रहना आवश्यक है, मानसिक अवस्थाके तरफ भी उनको वैसही दृष्टि रखना आहिये। सबसे अधिक मानसिक शान्तिके लिये एकान्त आवश्यक है। चित्त स्थिर और

मन सर्व्वदा शान्तिमय रहनेसे गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु दोनोका स्वास्थ्य ठीक रहता हैं। इसलिये भावी जननीको सर्व्वदा क्रोधादि रिपु और जिस कार्य्य या दृश्यसे मानसिक उद्वेग और उत्तेजना हो उससे दूर रहना चाहिये। गर्भिणीका आतंक उद्वेग और उत्तेजनासे अकसर शिशुका विशेष अनिष्ट होता है। इन सब व्यापारसे माताके स्नायुमण्डल में हटात् प्रचण्ड-विप्लव होता हैं, तथा साथही शिशुके स्नायुमण्डलमें भी उत्पन्न होता हैं इसवक्त शिशुका मस्तिष्क और स्नायुमण्डल इतने जोरसे परिस्फुरण होने लगता है कि कोई प्रकारका इससे विकार होनेसे कोई कोई वक्त उसका प्रतिविधान भी नहीं सकता है गर्भिणीके अकस्मात् आतङ्क, क्रोध या और कोई रिपुके उत्कट उत्तेजनासे अकसर गर्भस्थ शिशुको मृगी और उन्माद आदि पीड़ा होती देखा गया है। अतएव गर्भावस्थामें रमणीको सर्व्वदा शान्त और निरुद्वेग रहना चाहिये। धर्म्मचिन्ता, धर्म्मकर्म्मका अनुष्ठान और आलोचना, अथवा धर्म्मपुस्तकादि पाठ करनेसे गर्भिणीका मन सर्व्वदा शान्ति-रससे आप्लुत रहता हैं और उसके साथही गर्भस्थ शिशुके मस्तिष्क में भी धर्म्मचिन्ताका बीज धीरे धीरे अंकुरित होता हैं। इसके सिवाय सुन्दर आलेख्य सन्दर्शन श्रुतिसुखकर मनोहर सङ्गीत या स्वरलहरी श्रवण आदि कार्य्यभी गर्भिणीके हकमें विशेष हितकर है।

प्रसव-प्रक्रिया ।

—:०:—

द्विविध प्रसव ।—प्रसव दो प्रकार,—स्वाभाविक और अस्वाभाविक। सर्वाङ्गसे मस्तक स्वभावत: भारी है इससे प्रसव

कालमें सचराचर पहिले वही बाहर आता है। इसको स्वाभाविक प्रसव कहते है। यह २४ घण्टेमें सम्पन्न होता है। शिशुका माथा नीचे रहनेपर भी प्रसवको २४ घण्टासे अधिक समय लगेतो उसे विलम्बित प्रसव जानना। तथा २४ घण्टेके पहिले प्रसव होनेसे उसे द्रुतप्रसव कहते है।

वेदना।—प्रसवकार्य्यमें जरायुका सङ्कोचन एकान्त आवश्यक है; जरायु सङ्कुचित न होनेसे गर्भस्थ सन्तान भूमिष्ठ नही होती। जरायुके सङ्कोचनसे जो एक प्रकारको दर्द होती है उसको प्रसव वेदना कहते है। प्रसव वेदना रह रहकर उठती हैं तिसपर भी माताको कितनी तकलीफ होती हैं; यदि वह दर्द लगातार निरवच्छिन्न होता रहता तो माता और गर्भस्थ शिशुका दोनोंका जीवन संकटापन्न होजाता कारण प्रसवमे बिलम्ब होनेसे प्राय ऐसाही अनिष्ट होता है।

द्विविध वेदना।—प्रसवके पहिले कभी दो प्रकारका दर्द होता है; जरायु आपही संकुचित होनेसे जैसा दर्द होता है और जो जरायुके आधेयको क्रमशः प्रसव पथमें ले आता है, उसको प्रकृत वेदना कहते है। प्रकृत वेदनाका आरम्भ पहिले धीरे धीरे मृदुभावसे होता है। फिर बढ़ते बढ़ते कुछ कम हो अन्तमें थोड़ी देरके लिये बन्द हो जाता है। इसके बाद फिर दर्द तेज हो कम हो जाता है। जैसे जैसे दर्द उठताहै वैसही उसका निर्द्दिष्ट क्रमभी दिखाई देता है। पर अप्रकृत वेदना ऐसी नही है;—इसका कोई निर्द्दिष्ट क्रमभी नही है। इससे जरायुका समस्त अंश संकुचित न हो उसका एक अंश मात्र संकुचित होता है। जरायुके किसी अंशमे घाव या रक्ताधिक्य होनेसे अथवा पाकस्थाली या यन्त्रके उत्तेजनासे जरायुका कोई अंश उत्तेजित

होनेसे वहां भी यही अप्रकृत वेदना उठती है। पूर्ण गर्भमें सन्तान भूमिष्ठ होनेके कई दिन पहिले अप्रकृत वेदना सचराचर उठती है।

उपक्रम ।—प्रकृत प्रसव वेदना प्रकाश होनेसे कई दिन पहिलेहो से गर्भिणोके शरोरमें कई एक लक्षण प्रतीयमान होने लगते है। इस समयसे जरायु अल्प अल्प संकुचित होने लगता है। प्रसव पथके कोमल तन्तु सब शिथिल होने लगता है और जरायु इसी रास्तेसे आहिस्ते आहिस्ते नीचे आने लगता है। इस अवस्थाकी प्रसवका उपक्रम कहते हैं।

तीन क्रम ।—सचराचर प्रसवके तीन क्रम हैं ; पहिले क्रममें जरायुका मुख बड़ा हो साथही संकोचन आरम्भ होता है तथा जरायुके उर्द्धभागमें संकोचन आरम्भ हो क्रमशः नीचे आता है। द्वितोय क्रममें शिशु भूमिष्ठ होता है। जरायु मुखका पूरा विस्फारण इसी क्रममें आरम्भ हो शिशु निकलने पर उसकी समाप्ति होती है। इस क्रमके पहिले भिल्ली फटकर पतला फेनकी तरह एक प्रकार पदार्थ निकलता है इसवक्त जरायुका आकार कम हो जाता है। शिशु भूमिष्ठ होनेपर तीसरा क्रम आरम्भ होता है और खेरी बाहर होनेसे उसका शेष होजाताहै। शिशु प्रसूत होनेके आधा घण्टा बाद खेरी निकलती है ; किसी वक्त दूसरा क्रम शेष होतेही बाहर निकलती है।

———
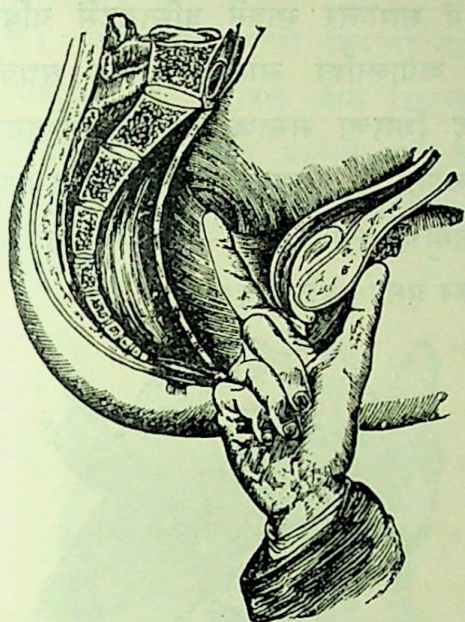
अपत्यपथमें सन्तान परीक्षा।

उत्तर वेदना।—शिशु भूमिष्ठ और खेरी निकल जानेसे जरायु संकुचित होता है, इस संकोचनसे अकसर दर्द होता है। इसीलिये इसको उत्तर वेदना कहते है। इस देशको औरतें इसे पोतनहर का फिरना कहती है। यदि दर्द अकसर प्रसवके कई घण्टे बाद उठता है; कभी यह क्रमागत २।३ दिनतक रहता है, इस दर्दसे प्रसूतीका अच्छा है, कारण प्रसवके बाद भी जरायुके भीतरका जमा हुआ रक्त आदि जो कुछ रहता है यह इस दर्दसे निकल जाता है।

विविध प्रसव।—पहिले कहचुके है, कि शिशुका मस्तकही अकसर पहिले प्रसव पथमें आता है। यह सहज प्रसव है कारण ईससे माता या शिशुको क्वचित् कोई कष्ट होता है। अर्थात् शिशुका मस्तक माताके वस्तितटके तिर्य्यक व्यास-

द्वयके कोई एकमें समान्तर भावसे वस्तितटमें प्रविष्ट होता है। उसवक्त शिशुकी कपालास्थि माताके सामने अथवा पीछे रहती है। इसके बाद शिशुका मस्तक माताके वस्तिगह्वर में तिर्य्यक व्याससे उतरने लगता है; इसवक्त आवर्त्तन क्रियासे वह वस्तिके निर्गम द्वारके सम्मुख पश्चात् व्यासमें आकर उपस्थित होता है। फिर थोड़ा फैलकर प्रसव-पथसे बाहर आता है।

शिरःप्रागवतरण।

मुख और ललाट।—शिशुका मस्तक पहिले न निकल कभी कभी इसका मुख बाहर आता है। किसी कारणसे पश्चात् कपालास्थि वस्तितटमें अवरुद्ध होनेसे माथेका विवर्त्तन नहीं होने पाता; इससे जरायुके संकोचनसे शिशुका मुखभी क्रमशः प्रसव पथसे उतरता आता है और अन्तमें बाहर गिर पड़ता हैं। कभी कभी मुखके बदले पहिले ललाट उतरता है; किसी कारणसे मस्तक उपयुक्त परिमाणसे विस्तृत नहीं होनेसे भी ऐसा होता है।

वस्ति।—किसी किसी वक्त शिशुका माथा, मुख या ललाट आगे न उतर वस्ति जङ्घा अथवा पैर निकले तो उसे वस्ति प्रागव-

तरण कहते हैं। इस प्रागवतरणसे शिशुको अपेक्षाकृत अधिक विपद होनेकी सम्भावना है ; कारण आगे शिशुका निम्नांग अवतीर्ण होनेसे नाभिरज्जुके उपर दाब पड़नेसे शोणित सञ्चालन बन्द होनेकी सम्भावना है। तथा शोणित सञ्चालनमें बाधा पड़नेसे प्रायः शिशुकी मृत्यु होती है।
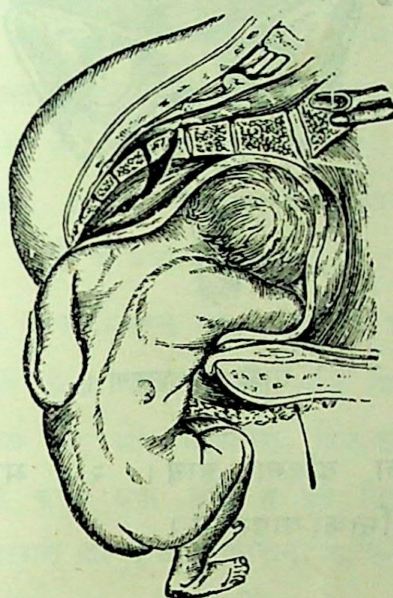
जानु-प्रागवतरण।

पार्श्वदेश।—सब शरीरके बाद मस्तक निकलता है। भ्रूणका ऊर्द्धांग या निम्नांग प्रसवपथमें न आकर कभी कभी इसके बगलमें आजाता है। इस अवस्थामें शिशुका कंधा पहिले निकलता है ; या किसी वक्त केहुना या हांथका पंजा आगे निकलता है। यह प्रसव अत्यन्त संकटमय है कारण इसमें माता और भ्रूण दोनोके जानका डर रहता है।
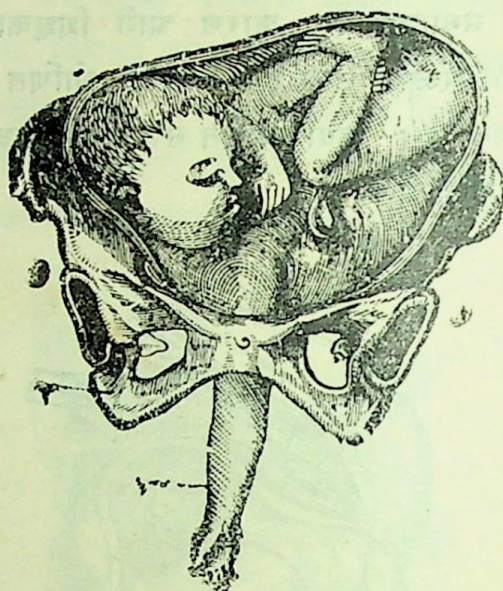
पार्श्वप्रागवतरण।

१। शिशुका दहिना हाथ। २। मातृवस्तिकी दक्षिण वाहु। ३। वस्तिको वाहुसन्ध।

चिकित्सा।

उपर जितने प्रकारके प्रसव कह आए हैं उसमें वस्ति और पार्श्व प्रागवतरण में विपद की सम्भावना है। वाकी दो प्रागवतरण की अपेक्षा पार्श्वप्रागवतरण में शिशुका विपद अधिक होते देखा गया है। यहां शेषोक्त द्विविध प्रसवको चिकित्साविधि लिखते हैं।

निर्णय।—शिशुको वस्ति पहिले प्रसव पथमें आती है वा नहो सबसे पहिले इसका निर्णय करना चाहिये। उसका श्रोणिद्वय, उपस्थ आदि वाह्य जननेन्द्रिय अङ्गुलिसे मालूम होतो

समझना कि वस्ति पहिले उतर रही है। इस तरह उसका प्रागवतोर्ण अंश निर्णीत होनेसे चिकित्सा करना चाहिये।

नाभिरज्जु रक्षा।—जिसवक्त शिशुकी वस्ति पहिले निकले तथा प्रसव द्वारमें दिखाई देतेही चिकित्सक उसे अपने हाथसे धर लें। यदि पहिले पैर बाहर आवे तो चिकित्सक को सावधान होना चाहिये कारण इस अवस्थामें प्रसव पथ अच्छी तरह विस्फारित नही होने पाता और इसोसे शिशुका शिर जल्दी नही निकलता इसीलिये अकसर जानपर नौबत आती है। इस दशामें शिशुके नाभिरज्जुमे दाब न पड़े इस विषयमें दृष्टि रखना आवश्यक है। शिशुके नाभिस्थलतक बाहर आनेपर मातृ-वस्ति जहां अधिक चौड़ी है वहा रज्जु रखना।

हस्तद्वय।—नाभिस्थल बाहर होनेके बादही दोनो हाथ बाहर दिखाई देते हैं। यह न हो यदि शिशुके दोनो हाथ माथेपर उठ जाय तो भी सामनेसे शिशुका हाथधर नीचे उतारना। दोनो हाथ एक दफे न धर पिछला हाथ पहिले निकालना, फिर सामने का हाथ निकालना चाहिये।

मस्तक निर्गमन।—यदि सर्वाङ्ग निकलकर मस्तक अड़जायतो शिशुको तकलीफ अधिक बढ़जाती है। इस अवस्थामें शिशुके मुखमें हवा लगे इसेलिये अङ्गुलीसे योनि की पश्चात् प्राचीर थोड़ा हटाकर मुह बाहर करना तथा उदर प्राचीरमें हाथ रख जरायुको दबाना। इससेभी यदि जल्दी शिशुका माथा न निकले तो जरायु पर दाब दूसरेसे दिलाकर चिकित्सक शिशुके कपालके पोछे अङ्गुलीसे दबावें तो मस्तक जल्दी निकल आवेगा।

———

जानु प्रागवतरण।

दोनो जंघा आगे आता है फिर छाती विवर्त्तित होती है।

पार्श्व प्रागवतरण।—पार्श्वप्रागवतरण में अर्थात् जब शिशुका एक हाथ निकल आवे तब बाहरी उपायोंसे शिशुका मस्तक या वस्ति प्रसवपथ में घुमाकर लाना चाहिये। इसमे कृतकार्य्य न होनेसे चिकित्सक जरायुके भीतर एक हाथ डालकर शिशुका पैर निकालनेको चेष्टा करें। यदि इससे भी भ्रूण बाहर न निकले तो शस्त्रसे काटकर प्रसवकार्य्य सम्पादन करना चाहिये।

———

प्रसवमें वाधा।

—०:०:०—

जरायुका दोष।——नानाकारणोंसे प्रसवमें बाधा होता है, इन बाधाओंमें से कई प्रधान बाधाके बारेमें यहां लिखते है। जरायुकी ग्रीवा अत्यन्त दृढ़ होनेसे या उसका बाहरी मुख बन्द हो जानेसे, किम्बा जरायु ग्रीवामें किसी सववसे दट्ठा पड़नेसे अथवा जरायु मुखमें खराबघाव होवे तो जरायुका मुख सहसमें नहो खुलता। तथा जरायुका मुख न खुलनेसे सन्तान अपत्य पथ-में नहो आसकतो। इस अवस्थामें माता और शिशु दोनोका जीवन विपन्न हो जाता हैं।

योनिका दोष।—जरायुमें किसो प्रकारका दोष न हो तो शिशु उसके मुखसे निकलकर योनिमें आता हैं। इस अवस्थामें योनिमें कोई दोष हो तो उसमें से भी शिशु निकल नहो सकता। अन्यान्य दोषोंसे योनिकी दृढ़ता अधिक विपज्जनक है। योनि नानाकारणोंसे दृढ़ होतो हैं; उपदंशसे अथवा और कोई कारणसे घाव होनेपर योनि दृढ़ हो जातो है, तथा किसोके योनिका प्राचोर स्वभावतः इतनो दृढ़ होतो है कि सहजमें नहो फैलतो; इसोसे बालक निकल नहो सकता।

अन्यान्य दोष।—इसी तरह योनिद्वार और उसके पासवाले तन्तु समूहोके विकृत अवस्थामें प्रसवमें प्रवल वाधा हो सकतो है। वस्तिका विटप दृढ़ और भगपृष्ठमें शोथ होनेसे भो प्रसव प्रतिरुद्ध होनेकी सम्भावना है। इसके सिवाय माताको वस्ति विकृत, संकोर्ण अथवा टेढ़ो होनेसे किम्बा वस्तिमें अर्व्वुद पैदा होनेसे भो प्रसव में वाधा होती हैं। मूत्राशय मूत्रपूर्ण और

सरलान्त्र मलपूर्ण रहनेसे भी कभी कभी प्रसव प्रतिरुद्ध हो जाता है। पर शेषोक्त दो बाधा बहुत सामान्य है। बाकी बाधायें बड़ी विषम है कारण सहज में उन सबका प्रतिकार नही होसकता।

शीर्षाम्बु।——कभी कभी भ्रूणके स्वाभाविक अवस्था दोषसे भी प्रसवमें घोर बाधा हो जाती है। इस प्रकारकी बाधा-ओंमें शीर्षाम्बुहीका उल्लेख करने योग्य है। भ्रूणके शिरमें अधिक पानी जमकर कभी कभी उसका आकार इतना बड़ा हो जाता है कि वह विकृत मस्तक किसी तरहसे जननीके प्रसव पथसे बाहर नही आसकता।

चिकित्सा।

—०—

योनिनालीमें घट्टा पड़ैतो उसे छूरीसे काटना चाहिये। विटप अत्यन्त दृढ़ हो तो उसके उपर सेंक देना उचित हैं। यदि इससे भी नरम न हो तो स्नेह द्रव्य मालिश कर अन्तमें छूरीसे कई जगह चीरदेना चाहिये। भगपृष्ठ में शोथ हो तो उसमें कई एक छेद करना और उसमें अर्व्बुद हो तो पहिले उसे वस्तितटके उपर उठानेकी चेष्टा करना, तथा इससेभी कृतकार्य्य न होनेसे शंकु-यन्त्रसे शिशुको बाहर निकाल लेना। यह कोशिश भी व्यर्थ हो जाय तो शस्त्रसे शिशुको काटकर प्रसव कार्य्य पूरा करना। वस्तिको विकृति या सङ्कीर्णता के सबब प्रसवमें बाधा हो तो, शंकुयन्त्र, विवर्त्तन, अकाल प्रसवसाधन किम्बा मातृगर्भ विदारण

करना चाहिये। शिशुके माथेमें पानी जमकर प्रसवमें बाधा होनेसे त्रिकूर्चक अस्त्रसे उसके माथेमें होशियारीसे छेदकर पानी बाहर निकालना अथवा शस्त्र प्रयोग से उसे तोड़कर प्रसव कार्य्य पूरा करना चाहिये।

अकालमें प्रसव।—जिस्को वस्ति विकृत अथवा संकीर्ण है उसको गर्भोत्पत्ति होना विशेष अमङ्गलका निदान हैं। इस लिये इस विषयमें पहिलेहीसे सतर्क होना चाहिये। गर्भ होतेही उसे अकालहीमें प्रसव करना उचित है। इससे माता और शिशु दोनोंके जानकी रक्षा होती है; यदि यह काम असाध्य मालूम होतो गर्भके तरुण अवस्थाहीमें उसको नष्ट करना उचित है।

शंकुयंत्र या फर्सेप्स।—शंकू बेड़ीकी तरह एकप्रकार के यन्त्रको कहते हैं महात्मा सुश्रुतने मूढ़गर्भ की चिकित्सामें शङ्कुनामक यन्त्रके बारेमें जो लिखा हैं यह प्राय: इसी प्रकारका था। आजकल जो शङ्कुयन्त्र व्यवहृत होता है वह विलायती है, विलायती शङ्कु दो प्रकार, छोटा और बड़ा। इसके प्रत्येक में एक एक फलक और मुट्ठी है। फलक लोहेका और मुट्ठी काठकी हैं। मुट्ठीके उपर एक खोल हैं वही खोल दो फलक को आवद्ध करनेसे एक जोड़ा शंकुयन्त्र होता है। इस बड़ी होशियारीसे प्रयोग करना चाहिये।

शंकुयन्त्र या फर्सेप्स।

(क) अधुना प्रचलित सिम्सनका फर्सेप्स।

(ख) ” ” जिगलका फर्सेप्स।

विकृत वस्ति।

जननीकी वस्ति नानाप्रकार से विकृत होता है। उसमेंसे कई एकके बारेमें नीचे लिखा जाता है।

(१) संकुचित वस्ति।—सर्व्वाकृति (नाटी) स्त्रीकी वस्ति
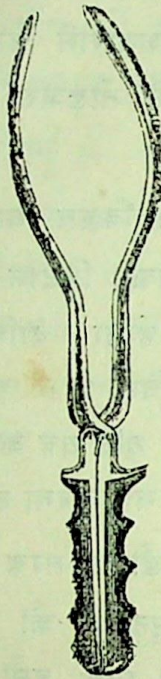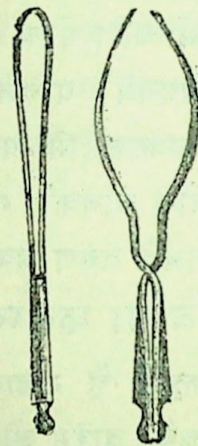
(क) (ख)

सचराचर ऐसही देखनेमें आती है शंकुचित वस्तिसे प्रसव में बाधा होती है तथा सन्तान सहजमें नहीं निकलता।

(२) विस्तृत वस्ति।—इस वस्तिका सर्वांश साधारण वस्ति की अपेक्षा बड़ा होता है ; इसलिये प्रसव बहुत जल्दी होता है।

(३) शैशव वस्ति।—जिस स्त्रीको वस्ति थोड़ीही उमरसे कठिन हो जाती हैं और अधिक उम्र में भी नहीं बढ़ती उसको शैशव वस्ति कहते हैं। इस तरह की वस्तिमें प्रसवमें विघ्न होता है।

(४) पौरुष वस्ति।—इस वस्तिका तट सचराचर स्वाभाविक, किन्तु इसका गह्वर गभीर और संकीर्ण तथा निर्गम पथका व्यास छोटा होता है।
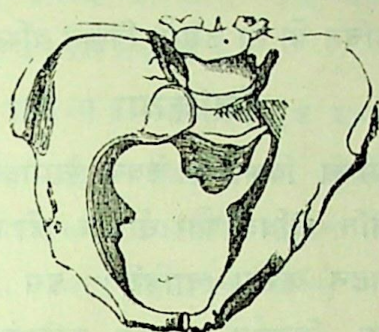
रिकिट या पूतनाग्रस्त वस्ति ।

(५) पूतनाग्रस्त वस्ति ।—रिकिट या पूतना रोगसे वस्तिमें एक प्रकार विकृति होती है। इसलिये वस्तितटका सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होता है। पृष्ठवंशभूलोग्र का कोरभाव बढ़ जानेसे और विटप शाखा पीछे हटजानेसे वस्तितटका आकार अङ्गरेजोके "४" अङ्कको तरह हो जाता है।

(६) भङ्गुर विकृत वस्ति ।—अस्थिका लवणांश कम हो जानेसे हड्डी कोमल और वेदम हो जाती है। अङ्गरेजीमें इसीको "अष्टीयो मेलेकिया" रोग कहते हैं। इस रोगके आक्रमणसे वस्ति बहुत विकृत हो जाती है।

(७) माकुवत् वस्ति ।—हड्डीके कोई कोई रोगसे पञ्चम कशेरूका अस्थि स्थानच्युत होती सामनेको तरफ झुक जाती है। इससे वस्तितट का सम्मूख पश्चात् व्यास छोटा होजानेसे माकु के आकारकी तरह हो जाता है।

(८ संकीर्ण वस्ति ।—इस प्रकारको वस्ति दोनो पार्श्वको वस्तिवाहु भीतर के तरफ आजानेसे निर्गम-पथका अनुप्रस्थ व्यास छोटा हो जाता है। इस तरहकी विकृतिसे प्रसवमें भयानक बाधा होती।

इसके सिवाय वस्तिप्राचीरमें अर्ब्बुद होनेसे, अथवा वस्ति-तिर्य्यकभावसे संकुचित हो तो उसेभी विकृत वस्ति जानना ।

चिकित्सा ।

वस्तिकी सामान्य विकृतिमें केवल स्वभावके उद्यमसे ही प्रसव कराना, यदि विकृति अधिक और घोरतर हो तो कृत्रिम उपायसे प्रसव कार्य्य सम्पादन करना चाहिये। इस दशामें अवस्थाभेदके अनुसार शंकुप्रयोग, विवर्त्तन, अकाल प्रसव-साधन, अथवा कुक्षि-पाटन (सिजारियन् सेक्शन्) यही चार प्रकारके उपायोंमें से कोई एक अवलम्बन करना चाहिये। चारो उपायोंको क्रमशः लिखते हैं। पाश्चात्य जगतके सुप्रसिद्ध प्रसव चिकित्सक लिश्मैन, विकृत वस्तिके किस अवस्थामें कौन उपाय अवलम्बन करना चाहिये, इस बारेमें जो संक्षिप्त नियम प्रगट कर गये है यहां वहभी उद्धृत किया जाता है।

अनुप्रस्थ व्यास ४ इञ्चसे ३। इञ्च होनेसे शंकुप्रयोग आवश्यक ।
„ ३॥ „ २॥। „ „ विवर्त्तन „
„ ३ „ १॥ „ „ छेदन भेदन „
„ १॥ या इससे कमसे कुक्षिपाटन „

शंकु-प्रयोग ।

शंकुप्रयोग के पहिले नीचे लिखी बातों पर दृष्टि रखना उचित है। शलाका और पिचकारीसे गर्भिणीका मूत्राशय तथा निम्नयन्त्र साफ़ करना चाहिये। जलथाली न फटे तो उसे फाड़ डालना और भ्रूणके माथे की सियन सब परिक्षा-कर शिशुका आसन निर्णय करना। शंकुप्रयोग करती वक्त अकसर बेहोश करना पड़ता है। इस विषयमें एक नियम पर दृष्टि रखनेसे सन्देह दूर होता हैं। भ्रूणका मस्तक वस्तिके

उपर हो तो वेहोश करना चाहिये ; यदि वह नोचे उतर आवे तो वेहोश करने को जरूरत नहो है।

प्रयोग में शयन।—शंकुप्रयोगके समय प्रसूती को बायें तरफ सुलाना अच्छा है ; तथा उसका दोनो जंघा समेट पेटके उपर रख चोकी या उसके उपरवाले कठिन विछौने के दक्षिण किनारेपर सुलाना। प्रसव सङ्कटापन्न होनेसे गर्भिणी को उतानो सुलानेसे सुबोता होता है।

शंकुके दोनो फलक गरम पानीमे तपाकर उसमें कार्व्वलिक तेल अथवा कार्व्वलिक भेसिलिन लगाकर प्रसवपथमें प्रवेश करना।

प्रवेशन।—शंकुके दो फलो में से एक को ऊर्द्ध और दुसरे को निम्न फलक कहते हैं। वड़ा यन्त्र का निम्न फलक पहिले और ऊर्द्धफलक पीछे से प्रवेश करना चाहिये। छोठे शंकुका दो में चाहे जो फलक प्रवेश कर सकते हैं। पीड़ा कम होनेपर हो शंकु धोरे धोरे प्रवेश करना उचित है तथा प्रसव पथके किसो स्थानमें अड़ जानेसे तुरन्त फलक निकाल लेना चाहिये ; तथा थोड़ो देर बाद फिर प्रवेश करना। दोनो फलक प्रविष्ट होजाने पर दोनो एकत्र कर सावधानो से खोल बन्द करना उचित है और खोल बन्द होनेपर आकर्षण और सञ्चालन आदि कार्य्य करना।

आकर्षण।—खींचनाही शंकुका प्रधान कार्य्य हैं। सिर्फ दर्दके समय अपत्य पथके अचरेखा में भ्रूणका मस्तक धोरे धोरे खींचना चाहिये। जबतक शिशुका माथा वस्तितटके उपर रहे तबतक उसे नोचे और पीछे की तरफ खींचना। तथा वह नोचे आतेही तुरन्त पीछेको तरफ से सामने को खींचना ; अन्तमें जब निर्गम द्वारके पास आवे तब शंकु उपर और सामने को खींचना

चाहिये। इसी तरह शिशूका मस्तक शंकुसे विटपमे आजाने पर यदि देखें की दर्द जोरसे और नियमित हो रहा है तो खींचना वन्द कर प्रकृतिके उपर निर्भर करनेसे प्रसव आपही हो जाता है।

प्रसव कार्य्यके सुबीते के लिये विलायत में नाना प्रकारके फर्सेप्स बनाया गया है; जिसमे डेनमैन्, जिग्लर और सिम्सन्— यही तोन प्रसव चिकित्सक के बनाये फर्सेप्स अधिक प्रचलित है। यह विविध शंकुमें जिगलरका अधिक और सिम्सन्का अधिकतर व्यवहृत होता है।

फर्सेप्स आविष्कार होनेसे पहिले युरोप में भेकटिस् और फिलेट नामके दो प्रकारका यन्त्र व्यवहृत होता था। आजकल इन दोनो का प्रयोग प्राय: उठगया हैं कहनेसे भी अत्युक्ति नही होगी।

मूढ़गर्भ चिकित्सा

और

भ्रूणहन्तारक शास्त्रोपचार।

गर्भ और प्रसव सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय विषय आर्य्य ऋषिगणोंको विदित था। किस किस कारणोंसे गर्भ नष्ट होता हैं या प्रसवमें बाधा हो सकती है, वाधा कितने प्रकारको है और वाधा विपत्ति होनेसे कौन उपायसे उन सब का प्रतिकार होता है; महर्षि सुश्रुत ने इसको विस्तृत आलोचना की है। यहां उसे भी उद्धृत किया जाता हैं।

निर्व्वचन।—गर्भ नष्ट हो प्रसव में वाधा होनेसे उसे मूढ़गर्भ कहते है।

प्रकार।—मूढ़गर्भ चार प्रकार ;—कील, प्रतिखुर, बीजक, और परिघ। बाहु, मस्तक और पैर उपरको तरफ तथा बाकी शरीर नीचेको तरफ गठरीके आकारसे योनिमुखको रोध कर रखे तो उसे कील कहते हैं। एक हाथ, एक पैर और माथा निकलकर बाकी शरीर अटका रहनेसे प्रतिखुर कहते है। केवल एक हाथ और माथा निकले तो उसे बीजक जानना, और भ्रूण परिघ की तरह योनिमुख आवृत किये रहे तो उसे परिघ कहते है।

निदान।—ग्राम्यधर्म्म, सवारीका पथश्रम, ठोकर लगना, गिरना, किसीतरह से चोट लगना, विपरीत भावसे शयन और उपवेशन, उपवास, मलमूत्र वेगधारण, रुक्ष, कटु और तिक्त भोजन, शाक या अतिशय चार भोजन, अतिशय वमन, विरेचन, दोलन, और गर्भपातन आदि कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है।

निर्णय।—गर्भका स्पन्दन आदि लक्षण लक्षित न होनेसे गर्भिणी का सब शरीर श्याम या पाण्डुवर्ण तथा श्वास में दुर्गन्ध और गर्भमें शूलवत् वेदना होनेसे गर्भस्थ सन्तान गर्भमें मरगयी है जानना।

चिकित्सा।—मूढ़गर्भ रूप शल्यका उद्धार करना अति कठिन हैं। इससे सचराचर उत्कर्षण, आकर्षण, स्थानापवर्त्तन, उत्कर्त्तन, भेदन, छेदन, पीड़न, ऋजुकरण और दारण,—यही नौ प्रक्रियाओं में से एक को जरूरत पड़ती है। इनमे से भेदन, छेदन, और दारण यह त्रिविध कार्य्य से भ्रूणके अङ्गप्रत्यङ्गोंका छेदन करना पड़ता है ; बाकी ६ प्रक्रिया कर कौशल सम्पादित होता है।

महर्षि सुश्रुत कहते है की गर्भस्थ शिशु जीवित रहनेसे कदापि यन्त्रसे दारण नही करना। कारण इससे जननी और सन्तान दोनोंके प्राण नाश होते है। सुश्रुत यन्त्र प्रयोग के पक्षपाती नही हैं। उनका मत यह है कि पहिले कर कौशल या औषधादि से मूढ़गर्भ निकालने की कोशिस करना; इस मे कार्य्यसिद्धि न होनेसे यन्त्र प्रयोग उचित हैं। अन्तर्मृत शिशुके अङ्गप्रत्यङ्गादि को छेदने के लिये सुश्रुत मण्डलाग्र * और वृद्धिपत्र यही दो प्रकार के यन्त्रको काममें लाने को कहते हैं। इसमे से मण्डलाग्र नामक यन्त्रका व्यवहार उनके मतसे प्रशस्त है, कारण तीक्ष्णाग्र वृद्धिपत्र द्वारा जननीके अपत्यपथमें आघात लगने का डर है।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में मूढ़गर्भ या संकटापन्न प्रसव के चिकित्साके वारे में प्राय: इसीतरह का उपदेश है। इनके मतसे भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार चार प्रकारका है; जैसे क्रेनियटमी, सिफाकोट्रिपसि, डिक्यापिटेशन और एभिसारेशन।

छेदन भेदन।—इस प्रक्रियासे भ्रूणका मस्तक और कर उसी छिद्रसे मस्तिष्क बाहर निकालना। मस्तिष्क निकाल लेने से मस्तक का आकार छोटा हो जायगा तब क्रोचेट और हुक आदि यन्त्र से सन्तान को बाहर निकालना चाहिये। भ्रूण हन्तारक शस्त्रोपचार में सचराचर पांच यन्त्र व्यवहार होते हैं; जैसे पार्फोटर, क्रोचेट, भाटिब्रेलहुक, क्रोनियटमी, फर्सेप्स् और सिर्फलोट्राइब।

* मण्डलाग्रेण कर्त्तव्यं छेद्यमन्तर्विजानता।
वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात् कदाचन॥
सुश्रुत—चिकित्सास्थान, १५ अध्याय।
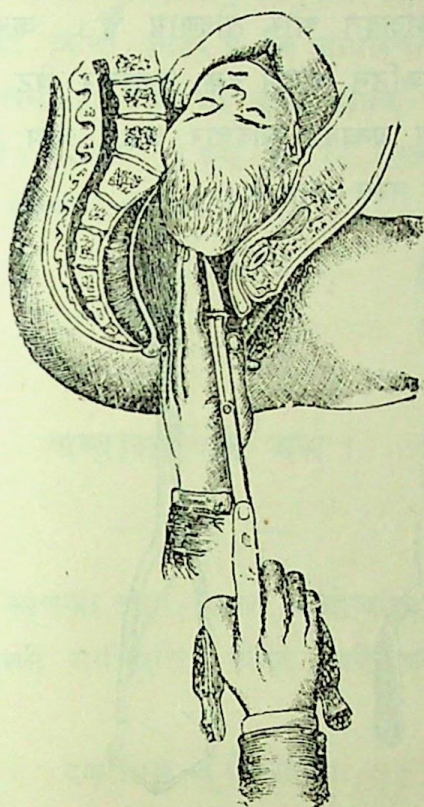
भेदन और छेदन प्रक्रिया।

पार्फोरेटर से भ्रूणको करोटी काटी जाती है।

पार्फोरेटर।—पार्फोरेटर यन्त्र में दो चोखा फलक है। इससे करोटी विदारित होती है। इसीलिये इसे पार्फोरेटर कहते है। इसे क्रेनियटमी—सिजार्स भी कहा जा सकता है। इसके दो फलक का बाहरी हिस्सा चोखा होनेसे करोटी को काट कर दोनो तरफ फैला देता है।

क्रोचेट ।—क्रोचेट देखने में ठीक गड़सी की तरह है। पर यह खुब मजबूत और तीक्ष्णाग्र है। करोटीके बाहरी या भीतरी किसी कठिन अंशमें हुक लगाकर बेट धर कर खीचना पड़ता है। इस यन्त्रका व्यवहार बहुत कम है। मेटिबेलहुक प्रायः क्रोचेट की तरह होता है।
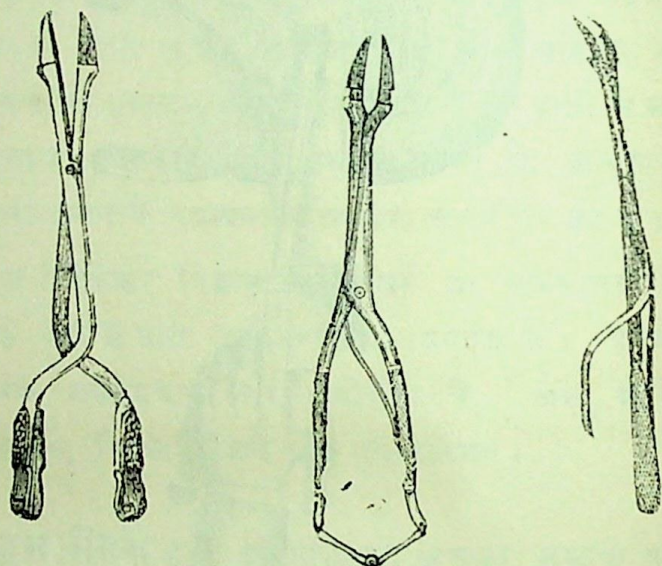
नानाप्रकारके पार्फोरेटर।

क्रेनियटमी फर्सप्स् ।—क्रेनियटमी फर्सप्स दो फलक से बनता है। तथा दोनो फलक के भीतरी तरफ आरी की तरह दांत रहता है। ऐसा दांत रहनेसे भ्रूणका मस्तक मजबूत धरने में आता है।

सिफालोट्राइव ।— सिफालोट्राइव भी दो कठिन फलकसे बनता है। इससे माथे का कई टुकड़ा कर सहज में बाहर किया जा सकता है। सिफालोट्राइब से जो काम होता है उसे सिफालोट्रिपसि कहते हैं।

किसवक्त क्रेनियटमी प्रयोग करना चाहिये, इसबारे में मत-भेद दिखाई देता है। पर भिन्न भिन्न मत का समन्वय साधन करनेसे केवल यही जाना जाता हैं कि साधारणतः जहां वस्तिका व्यास तीन इंच से लगा १॥ इंचसे भी कुछ अधिक है वहां क्रेनियटमी की जरूरत है। ठीक १॥ इञ्च हो तो सिजारियन सेकशन अर्थात् कुक्षिपाटन करना चाहिये।

अस्वाभाविक गर्भ।
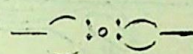
एकसे अधिक भ्रूणका उद्भव, विकृत भ्रूणोत्पत्ति, अथवा जरायुके सिवाय अन्य स्थानमें गर्भोत्पत्ति होनेसे उसे अस्वाभाविक गर्भ कहते है।

एकाधिक भ्रूणोत्पत्ति।

दो, तीन, चार और कभी कभी पांच भ्रूण पैदा होता है: पर ऐसी घटना बहुत कम देखने में आती है। गढ़ में ८० गर्भमें एक यमज सन्तान होता हैं, ७००० गर्भमें एक, तीन सन्तान उद्भूत होती है, चार या पांच सन्तानकी सम्भावना इससे भी कम है।

वहिर्जरायुज गर्भाधान।

[Extra Uterine-Gestation.]

जरायु-गह्वरके सिवाय अन्य स्थानमें भी अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित हो सकता है। पर इस तरह का गर्भाधान क्वचित्

देखने में आता है। पर सभ्यजगत में आजतक कितने अस्वाभाविक गर्भ हुए हैं उसका श्रेणी विभाग नीचे लिखा जाता है।
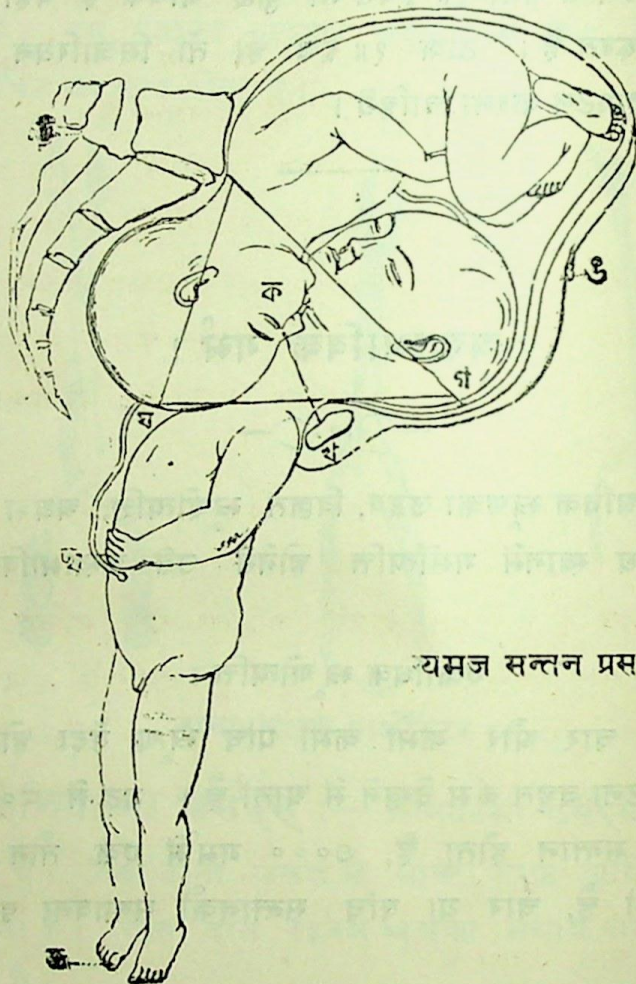
यमज सन्तान प्रसव।

१। नालीय या टिउव्याल :—अण्डवहा (फेलोपियन) नली में अण्ड अनुप्राणित और परिस्फूरित होता है। तथा इसके दो प्रकार है। (क) जरायुप्राचीर और नलीके संयोग स्थल में अण्डको

स्थिति। (ख) अण्डवहा नाली का झालरवाला मुख और अण्डाधार के भीतर अण्डकी संस्थिति।

२। औदरीय या एब्डोमिनैल ;—उदर गह्वरमें अण्डका निवेशन। इसके दो प्रकार। (क) प्राथमिक अनुप्राण के आरम्भसे उदर में निवेशन तक। (ख) द्वैतीयक अर्थात् नालीगर्भ नाली विदीर्ण हो जानेसे अण्डवहा से गर्भमें जाकर रहता है।

३। अण्डाधारीय वा ओभेरियान ;—ओभेरी अर्थात् अण्डाधार के भीतर अण्डका अनुप्राण, परिस्फूरण और निवेशन। इसके सिवाय द्विखण्डित जरायुके अपरिस्फूट शृङ्गमें अथवा किसी स्थानीमें अण्ड जानेके अनुप्राणित और परिस्फुरित होता है।

केवल एकके पैरसे छातीतक बाहर आया है ; दोनोका मस्तक प्रसवपथमें अटका है।

ये तिन प्रकारके अस्वाभाविक गर्भमें भी गर्भसूचक प्राय: सब लक्षण दिखाई देते है, पर ऐसे गर्भका निर्णय और चिकित्सा करना कठिन है। इस दशामें गर्भिणी और गर्भस्थ शिशुकी अवस्था अत्यन्त सङ्कटापन्न हो जाती है। इसलिये अस्वाभाविक गर्भ निर्णीत् होते ही भ्रूणका प्राणनाश करना उचित है। पर इस समयका शस्त्रोपचार बहुत कठिन है, बहुदर्शी प्रसव-चिकित्-सकके सिवाय और किसीको ऐसे कठोर कार्य्यसे हाथ लगाना उचित नही है, कारण ऐसा करनेसे भ्रूणहत्या और स्त्रीहत्याके पापसे लिप्त होना पड़ता है।

कुक्षिपाटन।—उपर कहे हुए उपाय समूहोसे प्रसव साधन असम्भव जान पड़े तो कुक्षिपाटन या सिजारियान् सेक्सन करना चाहिये। किसी वक्त यह प्रक्रिया बड़ो विपज्जनक थी, किन्तु आजकलके पाश्चात्य शल्य चिकित्साने बहुत सहज और

निरापद जान पड़ती हैं। ऐसे प्रक्रियासे गर्भिणीका उदर विदीर्ण कर, इसी पथसे भ्रूण निकालना चाहिये, इस उपायसे सजीव भ्रूण भी निकल सकता हैं, किन्तु इसमें माताको बड़ी विपदमें पड़ना पड़ता है। पहिले जमानेमें यही शल्य चिकित्साका प्रचार भारतमें था। सुश्रुत आदि कह गये है कि मूढ़गर्भ जीवित रहते घृताक्त हाथ योनिमें डालकर धात्री सन्तानको निकाले, गर्भ नष्ट होनेसे शस्त्रपण्डिता भयशून्या और लघुहस्ता धात्रीको योनिके भीतर शस्त्र प्रवेश करानेको कहना। सजीव गर्भमें शस्त्र प्रयोग करना चाहिये। भ्रूणका जो जो अङ्ग योनिसे संसत्य हो उसी अङ्गोमें शस्त्र लगाकर निकालना चाहिये। शङ्कु अथवा युग्म शङ्कुसे मूढ़गर्भ खीचना चाहिये। आसन्न प्रसवा गर्भिणी वस्तमासे विपन्न हो यदि उसकी कुक्षि स्पन्दित होता चिकित्सक को गर्भ विदारकर सन्तानका उद्धार करना चाहिये।

———

संक्रामक रोग-परिचय।

——:०:——

बिऊबोनिक प्लेग।—युरोप के अनुग्रह से हमलोग अच्छे बुरे सब विषयमें शामिल हो चुके है और हो रहे हैं। इस प्लेग को इस देशमें युरोप से नई आमदनी हुई है। प्लेग के ऐसा सत्यानाशी रोग का इतना अधिक विस्तार और सालाना बढ़न्ती भारतवर्षमें किसी कालमें नही था। प्लेग के इस सब विषयमें अधिक विचार करना इस स्थान पर उचित नही हैं। इस रोग से हमलोगों के साथ इतना अधिक सम्बन्ध हो गया हैं कि इसका विशेष परिचय देना जरुरी नहीं है।

प्लेग तीन भागमे विभक्त है।—जैसे बिऊबोनिक, निऊमोनिक और डायारिक। इन सबमें बिऊबोनिक प्लेग का आक्रमण कुछ अधिक है, इस लिये हम यहां इस बिऊबोनिक प्लेगका विवरण संक्षपमें देते है। प्लेग में सेवा और जीवन रक्षा करने के विषय में जो मुख्य बातें है, उसे मनुष्य मात्रको जानना बहुत जरुरी है। क्योंकि समय समय पर उसको जरुरत पड़ सकती है।

प्रदेश।—कलकत्ता, बम्बई, पूना, इलाहाबाद, पश्चिमोत्तर और मध्य भारत के बहुतेरे प्रधान प्रधान शहरों और नगरोंमें, प्लेग हर वर्ष फैलकर आदमियों का सत्यानाश करता हैं, लेकिन पहिले लोग प्लेग के नामसे डरते थे, और प्लेगाक्रान्त रोगी का सत्कार करनेमें कोइ भी सहजमे राजी

नही होता था और रोगियोंके साथ शामिल होने और उन लोगों को सेवा करने में कोई भी अग्रसर नही होता था। लेकिन अब वैसो डरावनी अवस्था न रही। आगे युरोप में प्लेग के फैलने के समय वहुतेरे प्लेगाक्रान्त रोगी बिना दवा और चिकित्साके ही मृत्युप्राप्तहोतेथे। प्लेग की कोई निर्दिष्ट चिकित्सा भी नही थी और कोई चिकित्सक भी प्लेगाक्रान्त रोगी को छुते नही थे। तब प्लेग असाध्य रोगों में गिना जाता था। मगर अब चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान के मददसे यह (Preventible Disease) याने साध्य रोगों में गिनाजाता है।

बनिस्वत और सब प्लेग के विभाग से बिऊ-बोनिक का ज्यादा विस्तार है।—क्योंकि बहुतेरे आदमी इसी रोग से आक्रान्त होते है। राजधानी और बड़े बड़े शहरों में प्लेग के फिहरिश्त में जिन सब प्लगाक्रान्त रोगियों की मृत्यु खबर प्रचारित होती है उसमें ज्यादातर बिऊबोनिक का ही नाम रहता है। म्युनिसिपलटी रोजाना और हफतावारी जो सब प्लेग सम्बन्धि तालिका निकाला करती है, उसमें कितने आदमी प्लेग आक्रान्त हुये है कितनेकी मृत्यु हुई है वह सब उस फिहरिश्त से हमलोग जान सकते है।

आजकल कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े बड़े शहरों में स्वास्थ्य विधानानुमोदित उपायसे प्लेग के प्रतिकार और फलाव का निवारण करने के लिये कई प्रकार की सुव्यवस्था हो रही है। इसलिये शाही और म्युनिसिपलटीके खजानोंसे अगणित रुपये व्यय होरहे है। इससे जो सुफल नही होता है सो नही। कई वर्ष पहिले बम्बई और कलकत्तेमें प्लेग का जोर जितना था उतना अब नहीं है।

सम्भवतः बहुतोंने सुना होगा कि अस्वास्थ्यकर स्थानमें ही प्लेगकी अधिक प्रवलता देखी जाती है। बम्बईकी बस्तीका अवस्था बड़ी शोचनीय है हर वर्ष किसी एक निर्द्दिष्ट समयमें उस स्थानोंमें प्लेगकी बढ़न्ती होती है। कलकत्त में कोलुटोला, जोड़ाबागान, बड़ाबाजार, आदि कई निर्द्दिष्ट स्थानों में हरवर्ष प्लेगकी मृत्युसंख्या का आधिक्य देखाई पड़ता है। अगर यह सब स्थानोंमें उपयुक्त ड्रेन और नाली वगैरह बनाई जावेतो प्लेग का नाम निशान भी नही रहे। स्वास्थ्यकर स्थानमें रहना उत्तम खाद्य वस्तु भोजन करना और खुब सफाई के साथ रहनेसे प्लेग का डर उतना नही होता। इसके सिवाय सब शरीरमें सरसोंके तेल का मालिश करना सफाईके साथ देह धोना हरवक्त पुष्टि-कर द्रव्य खाना आदि स्वास्थ्य रक्षक नीति अबलम्बन करना चाहिये।

प्लेगके कीड़े ही प्लेगकी बढ़न्तीके कारण है।—

अन्यान्य संक्रामक रोगोंकी तरह प्लेग भी विभिन्नता है। प्लेगाक्रान्त रोगी के साथ बात करनेसे या उसके पास बैठनेसे ही जो प्लेग होता हैं यह बेजड़ की बात है। जबतक प्लेग बिष किसी सुस्थ शरीरमें नही घुसता है तबतक अपना असर नही दिखा सकता। प्लेगके कीड़े के विषयमें डाक्टर कियासिटो और डाक्टर हाफ्किन् आदि वैज्ञानिक पण्डित लोग आजतक कई प्रकारका अनुसन्धान याने खोजकर रहे है। वैजिक तत्व-वित् डाक्टर हाफ्किन् को आजकल प्लेग सम्बन्ध में खोजाखोजी के लिये भारत सरकारने नियुक्त किया है। हाफ्किन् के मतसे प्लेग कीड़ेसे पेदा हुआ रोग है। बसन्तका टीका जैसे लगाया जाता है वैसेही प्लेग में भी टीका लगाया जाता हैं।

जिन रोगियों को टीका लगा रहता है उन लोगोंको प्लेग होने से मरनेका सम्भावना नही रहती। तथा शरीर प्लेगके आक्रमण से सम्पूर्णरूपसे विमुक्त रहता है। हाफ्किन् का यह सिद्धान्त अभीतक सर्व्वसाधारणमें परिगृहीत नही हुआ है।

१८९४ सालमें चीन देशके हंकं शहर में प्लेगका बड़ा जोर हुआ था, उस समय कियासिटो नामक वैजिक तत्त्व-वित् कई एक चिकित्सकोंने प्लेगसे मरे हुवे एक रोगीके शरीर को चीरा था। दुरबीनसे उसके भीतरी पीप रक्तादि परीक्षा कर उन्होने उसके भीतर एक लाठी के तरह एक प्रकार का छोटा कीड़ाको देखा था। इसी कीड़ेके मददसे सर्व्व-प्रकार परीक्षाकर यह स्थिर किया कि यही प्लेगका कीड़ा प्लेगरोग को बढ़ाने वाला है। किन्तु बढनेके वक्त मदद न पानेसे यह दुसरे शरीरमें नही पैठ सकता। डाक्टर कियासिटो के दिखाये हुये रास्तेसे और कई एक युरोपीय वैज्ञानिक पण्डितोंने इस विषय में बहुत दिन तक खोजाखोजी के बाद सर्व्वप्रकार यन्त्र और दैहिक परीक्षाके वाद यह सिद्धान्त किया है कि मरेहुवे आदमियों का शरीरके भीतरसे जो कोड़े निकलते है, उसोसे प्लेग पैदा होता है। इस प्रकारका लाठी के तरह कीड़ेका आकार और संक्रामक रोगके कीड़ेके आकारसे बहुत फर्क है। और सुस्थ शरीरमें यह कभी ही नही दिखाई पड़ता, यदि चूहा खरगोश आदि छोटे छोटे जानवारोंके शरीरमे यह वीज प्रवेश करे तो उस शरीरमें भी प्लेग उत्पादन करसकता है यही उनलोगों का सिद्धान्त है।

डाक्टर कियासिटो की निकाली हुई प्रयासे प्लेगी कीड़ेके वारेमे बहुत कुछ परीक्षा हुई है। प्लेगाक्रान्त स्थान में

रह कर इस विषय में बहुत कुछ खोजाखोजी करने की इच्छा से १८८७ सालमें कई एक जीवानुतत्त्ववित युरोपीय पंडित बम्बइमें आये थे। वेलोग कीड़े की परीक्षा करनेके लिये थोड़ेसे कीड़ोंको अपने देश ले गयेथे। यह कीड़ा चूहे और खरगोश के शरीरमें प्रवेशकर कैसा असरदिखाता है, इसकी परीक्षा करनेके लिये वेलोग एक वर्ष बाद इन कीड़ोंको कइ एक चूहे के शरीरमे प्रवेश कराया था। जो नौकर उन चूहों को खाना वगैरह देता था पहिले उसीपर प्लेगने अपना असर दिखाया। खोंज खबर लेनेके बाद मालूम हुवा कि उस नौकरका हुक्का चूहोंके पिंजरे के पास रखा था। कीड़ा चूहेके के देहसे निकल नलसे नौकर के शरीरमें प्रवेश हुआथा। उसी बेचारे नौकर के मुह से निकले हुये फेनमें क्टिासिटोके उद्भावित किये हुवे कीड़े उसमे देखाई पड़े इससे यह प्रमाण हुआ कि यह निऊमोनिक प्लेगसे मारागया है। केवल मात्र वह नौकरही नही वल्कि वह चिकित्सक जो उसकी चिकित्सा करताथा तथा सेविका जो उसके विछौनेके पास बैठी रहती थी उनदोनोंको भी प्लेगने धरदबाया। लेकिन दोनों को वहांसे खसका देनेके कारण रोग ज्यादा बढ़ नही सका। इससे प्रमाणित हुवा कि प्लेगका कीड़ा एक सालतक मनुष्य के शरीरमें रह कर रोग उत्पन्न करता है।

बिना दुरबीनके मददसे प्लेगका कीड़ा या माइक्रोव देखाई नही पड़ता साठ कीड़ों को इकट्ठा करने पर एक गुच्छा बाल के तरह मोटा होता है यानही सन्देह है। प्लेगाक्रान्त रोगीके गांठ को चीरनेसे उसमें यह कीड़े देखाई पड़ता हैं। इसीलिये नस्तर देनेके समय डाक्टरलोग जिस छूरी को इस्तामाल

करते हैं फिर इस्तामाल नहो करते मरने के थोड़ी देर पहिले प्लेगरोगीके खूनकी परीक्षा करने से भी उससे कीड़े नजर आते है। मनुष्यके शरीरके सिवाय रोगाक्रान्त जगहपर भी कीड़े नजर आते है। सूर्य्यके तापसे, गरमपानी और प्रतिशोधक रासायनिक द्रव्य आदिसे यह कीड़े मरजाते है।

कईसौ वर्ष पहिले इङ्गलंड में एकबार प्लेगका खूब प्रकोप हुवा था लंडन शहरमें हो बहुतेरे गरीब आदमियों इसी रोगसे आक्रान्त हो दुनिया से चलबसे। इसलिये लंडनके प्रधान प्रधान अधिवासियोंने इसका नाम "गरीबोंका रोग" रखाहै। भूखे रहना, गरीबी, पुष्टीकीकमी, अस्वास्थ्य कर घर और ठंढी जगहमें रहना, बराबर परिश्रम करना आदि तथा कुसमय खाना, धूप और हवा बिहीन दुर्गन्ध जगहमें रहना आदि कारणोंसे प्लेगका प्रकोप वृद्धिपाता है। इस कलकत्ता शहरमें साहबों के रहनेकी जगह चौरंगीं, प्लेग प्रकोप विहीन स्थान है। ऐसा क्या साहबोंके इस देशीय नौकर भी रोगाक्रान्त जल्दी नहो होते। लेकिन जोड़ाबागान, कुमारटोली, चितपुर, कोलुटोला, आदि देशीय स्थानों में उन्नत मारवाड़ीयोंमें भी प्लेगका प्रकोप देखा जाता है।

संक्रामन का रास्ता।—निश्वाससे या चमड़ेके उपर का कोई भी फोड़ा या घावसे प्लेगका कीड़ा मनुष्य के शरीरमें घुसता है। प्लेगाक्रान्त स्थान के मट्टी पर जो धुला रहता है वह भी प्लेगके कीड़ोसे भरा रहता है। सम्भवत: वह हवेके सहारे उड़कर दुसरोके नाक और मुहमें घुस प्लेग उत्पादन कर सकता है। प्लेग रोगीके साथ मिलनेसे और उसके बिछौनेको इस्तामाल करनेसे (बिछौने पर सोनेमे) यह रोग हो सकता है। विऊबोनिक प्लेगके रोगीके कोषको चीरनेसे जो पीप निकलता है या निऊ-

मोनिक प्लेगके आक्रान्त रोगी के मुखसे निकला हुवा कफ और डायरिक प्लेगाक्रान्त रोगियों के दूषित मल मूत्रके दुर्गन्धसे भी यह रोग उत्पन्न होता है। आधुनिक मतसे आसपाससे चूहे के मरनेसे वहां प्लेगका प्रारम्भ देखाइ पड़ता है। प्लेगके विषसे मट्टी खराव होनेसे ही चूहे लदालद मरतें है। इसीलिये कलकत्ते के म्युनिसिपल डाक्टर प्लेगाक्रान्त रोगीको देखने जातें है तब पूछते है कि आसपास कहीं चूहा तो नही मरा है। आजकल के स्वास्थ्य रक्षकों के मतसे चूहेसे ही प्लेग एक जगह से दूसरे जगह पहुंचाया जाता है। चूहे प्लेगाक्रान्त हो इधर उधर दौड़ादौड़ी कर प्लेग चारोतरफ फैला देते हे। प्लेगाक्रान्त रोगीको एक स्थानसे दुसरे स्थानमें लेजानेसे वहां भी प्लेग फैल जाता है।

प्लेगके लक्षण विकाश।—रोगके अन्तःस्फुरण काल (Inoculation Period) ऊर्द्ध संख्या दसदिन तक है। कोई सुस्थ आदमी के शरीरमें प्लेग घुसनेहीसे उसी वक्त रोग फैल नही जाता दसदिनके भीतर रोगबीज देह में घुसकर आस्ते आस्ते अपनी शक्ति विस्तारकर रोग के लक्षण समूह देखाई देते है। इसलिये रोगी प्लेगाक्रान्त है या नही इसका सन्देह होतेही, उस रोगीको प्लेग परीक्षा के स्थान में लेजाकर १० दिन तक रोक रखनेका नियम प्रचलित है।

प्लेगका प्रधान लक्षण।—खुब जोरसे बोखार आना पड़ा और बगलमें गांठ होना। किसीके बगलमें और गर्दन पर गांठ दिखाई देती है। इस गांठमें असह्य दर्द होता है। रोग प्रकाश होनेके पहिले ही से गांठका जलना और रोगी का

तथा बोलना बढ़ जाता हैं। कोई कोई रोगीको बोखारको साथ खांसी और साथही साथ बहुत कफ गिरता है। यह कफ युक्त प्लेग ही निऊमोनिक प्लेग है। निऊमोनिया और इन्फुलुएञ्जा के साथ इसका बहुत सादृश्य है। रोगीके मुहसे निकले हुवे कफ में यह कोड़ा दिखाई दे तो उस रोग को प्लेग समझना चाहिये प्लेग विष रक्तके साथ न मिलने तक कोई प्रकारकी तकलीफ नही मालूम होती। रोगके लक्षण विकाश के साथ ही साथ रोगी अगर चार या पांच दिन बच जायतो उसके जीनेकी आशा की जासकती है। बहुत स्थानोंमें देखा जाताहै कि २४ घण्टेके ज्वर भोग के बाद ही रोगी मरजाता है। प्लेगरोग मात्रही सांघातिक हैं। बहुत स्थानोंमें रोगीके दवापानी करनेका भी मौका नही मिलता। और और रोगके तरह प्लेगकी कोई स्थिर चिकित्सा भी नही हैं। उपसर्ग वगैरहका उपशम होने से ही रोगकी शान्ति होती है।

सेवा व चिकित्सा।—घरमें किसीको प्लेग हुवा हो तो किसीको डरना नही चाहिये। संक्रामक रोगमें साहस और निडरता की जरुरत है। प्लेग होनेहीसे मृत्यु निश्चित है इसका कोई माने नही है। प्लेग रोग के होतेही रोगीको एक अलग कमरेमे रखना चाहिये। उस कमरेमें धूप व साफ हवाका संचालन होना चाहिये। (धूप आने वाला व हवादार कमरा होना चाहिये) चिकित्सककी खबर देनेपर जैसा वह कहें वैसाही करना चाहिये। कोई निर्द्दिष्ट नियमसे प्लेगकी चिकित्सा करने की व्यवस्था न होनेसे भी चिकित्सक रोगीकी तकलीफ और उपसर्ग देखने पर उसे आराम कर सकते है। प्लेग रोगीकी सेवा वगैरहमें बहुत सावधानी आवश्यकता है। रोगी के अवस्था में कोइ तरह का अदल बदल होनेसे या कोई नया

उपसर्ग वगैरह दिखाई पड़ने से चिकित्सक को उसी वक्त खबर भेजना चाहिये। रोगीके दवा देने में व खाने पीनेमें जो कुछ कह जायगी उसे प्रतिपालन करना चाहिये। रोगीके वाई के झोंक व बेहोशीके वक्त किसीको भी रोगीका साथ नही छोड़ना चाहिये। प्लेग रोगमें रोगी पुरेतौरसे कमजोर हो जाता हैं। इसलिये मलमुत्रादि त्याग व और कोई प्रयोजनमें रोगीको शय्या त्याग करने देना न चाहिये। "बेड प्यान" वगैरहमें रोगी का मलमुत्र धारण करना। उसी मल-मुत्रको शुद्ध द्रव्योंसे शुद्धकर पायखानामें डालदेना चाहिये। रोगीके मुहसे निकले हुवे कफ व कै वगैरह को कपड़ेसे पोंछ कर शुद्ध द्रव्योंसे शुद्ध करना चाहिये। रोगीका बिछौना व तकियाको रोज धूपमें रखना चाहिये। प्रचण्ड धूपसे प्लेगके कीड़ों को मृत्यु होती है। रोगीके घरसे ज्यादा भीड़ न करना चाहिये। रोगी के कमरेकी जमीन रोज शुद्ध द्रव्य में कपड़ा भींगो अच्छी तरह पोंछना चाहिये। घरके भीतर फजूल असबाब रखनेकी कोई जरूरत नही हैं। पथ्यादि विषयमें चिकित्सक जैसा कहें वैसाही करना चाहिये इस रोगमें ज्वर के साथ गांठ भी आराम होती है। दवा के सेवनसे धीरे धीरे सब उपसर्ग भी कम होजाता है। रोगी इस समयमें बहुत दुर्ब्बल होजाता है। यहां तक कि थोड़ेही मेहनत से उसे मूर्च्छा आजाती है। इसलिये रोगी इस बिछौने से उस बिछौने एक कमरेसे दुसरे कमरेमे लेजानेमे बहुत सावधानी की जरूरत है अपने ख्याल और लज्जावश बहुत रोगी बिछौने पर मल मूत्र नही करते है। ऐसा करना चाहिये प्लेग रोगीके सेवाके समय सेविकाओंकी बहुत सावधानीसे चलना चाहिये सेविका जिस कपड़े को पहिन कर रोगीको सेवा करती है उस

कपड़े को पहिन कर खाना पीना न चाहिये और उस कपड़े को शुद्ध करना चाहिये। विशोधक द्रव्य न कार्व्वलिक सावुनसे हाथ व पांव दो तीन बार धोकर खानेको बैठना चाहिये। रोगी परित्यक्त मल मूत्र कफ, या नस्तर करनेके वाद पट्टीमेंसे निकला हुवा पीप उसके बिछौनेमें या बिछौनेसे किसी कपड़ेमें या घरके और कोई कपड़ेमें लगना न चाहिये। बहुतेरे रोगियों के पट्टेमे नस्तर देना पड़ता है, ऐसे मौकेपर चिकित्सक जैसा कहें वैसा एक एक कर सब करनेसे बाज न आना चाहिये रोगीका व्याण्डज कपड़ा वगैरह रोज गरम पानीमें औटाकर धपमें सुखा लेना चाहिये। जो लोंग रोज एक एक तथा व्याण्डेज व्यवहार करसकते है उन्हे यह उच्छिष्ट कपड़ा व्यवहार न करना चाहिये। परन्तु उस कपड़ेको आगमें जलादेनेसे सब तरह की डर दूर हो जाती है।

प्लेग निवारक व्यवस्था।—प्लेगके कीड़ेसे प्लेग होता है सही, लेकिन यह कीड़ो की वढ़न्ती व रचापाने का कारण न होनेसे देहके भीतर ताकत नहीं दिखा सकता। इसलिये रोग के वढ़न्ती की आशा कम रहती है। देह अगर ताकत वर व नीरोग रहे और रहने को जगह धूप और हवादार हो घर व आसपास के मकानों के नाला नर्द्दमा वगैरह साफ रहे तब कीड़े देहमें घुसने परभी कोई नुकसान नहो पहुंचा सकता है लेकिन अगर घर और असपास के मकान वगैरह बहुत गन्दे होवे और चारो तरफ मोरी नरदमासे दुर्गन्ध निकलती हों ऐसे मौकेपर प्लेग के कीड़े आदमियोंके शरीर के भीतर घुसने लग जाते है। प्लेगके प्रकोपमें अपनी गली वो महल्लेको वचानेके लिये

प्रधानतः दो विषयमें ध्यान रखना चाहिये प्रथमतः रोगोके साथ घरके और कोई आदमीको मिश्रित न होना चाहिये दुसरे अपने और पड़ोसियोके मकान के चारों तरफ खूब सफाई रखना चाहिये। मैलेहोसे प्लेग को उत्पत्ति होती है यह कहना फजूल नही है। इसोलिये घरके चारों तरफ या कोनेमें ड्रेन या पैखाना कहीं भी किसो प्रकारका मैला जमने देना नही चाहिये। बहुत आदमी एक घरमे नही रहना चाहिये और खाने पीनेमें भी सावधानी रखना चाहिये धनी भले आदमियों के मकानके आसपास नीच जाति की वस्ती रहती हैं स्वाभाविक इच्छा के अनुसार यह लोग प्रायः ही अपरिच्छन्न अवस्थामें रहते है बहुतेरे इन्लोगों में भुखे व आधा पेट खा कर समय बितातेहैं महल्ले के अवस्थापन्न आदमी अगर ऐसे मौंके पर उन गरीयोंको धनसे मदद करे जिससे वेलोंग सफाई रख सके अपना खाना पीना सावधानी से करे। किसो महल्लेमे यदि प्लेग को उत्पत्ति होने को सम्भावना होवे तो अमीरो को दरिद्र व निःसहाय आदमियों के लिये थोड़ा बहुत जितना होसके चन्दाकर उन्लोगोंका दुःख निवारण करना चाहिये।

प्लेगके फैलाव के निवारण के लिये खास सर्कार और म्युनिसिपलटीके पक्षसे नानाप्रकारके नियम प्रचलित हुये है और होरहे है। पाठकों को जाननेके लिये उसका विवरण थोड़ासा नीचे दिया जाता हैं। उसके अनुसार चलने से आसपास के मकान व पड़ोस प्लेगसे बच सकते है।

(१) महल्लेमें किसी के घरमें प्लेग होनेसे उस गली को छोड़ देना चाहिये, ऐसा करनेसे वह गली प्लेगकी उत्पात से बच सकती है। रोग की पहिली अवस्थामें कोई स्वास्थ्यकर

महल्लेमें जाकर रहनेसे रोगी की जान बच सकती है और परिवारोंको प्लेगाक्रान्त होनेकी आशङ्का नहीं रहती हैं।

(२) महल्लेमें यदि कोई गरीब आदमी को प्लेग होवेतो उसे सम्मत कराकर निकटस्थ कोई हस्पताल में भेजना चाहिये। हस्पताल में जानेसे रोगीका जीवन बच सकता है। रोगीको हस्पताल भेजकर उसका मकान अच्छी तरहसे शुद्ध करालेना चाहिये।

(३) घरमें किसीको प्लेग होनेसे पीड़ित व्यक्तिको सुस्थ व्यक्ति के पास से दूर रखना चाहिये। रोगीको हस्पताल भेजनेसे आपत्ति होवे तो उसे अन्तत: एक अलग कमरेमें रखना चाहिये।

(४) मकान में सबसे बड़ा और लम्बा चौड़ा कमरा जिससे धूप और हवेका पुरा इन्तजाम रहे ऐसे घरमें रोगीको रखना चाहिये। जिन्लोगोंको कमरेकी कमी हैं, उन लोगोंको दूसरे किसीके घर नही भेजना चाहिये। जोलोग खोलेके घर और खपड़ैलेमें रहते है, उन लोगों को उसी घर को जहांतक बन पड़े सफाई रखना चाहिये।

(५) रोगी के कमरेमें चिकित्सक व उसकी सेविका छोड़ और किसीको जाने देना न चाहिये। घरके और किसी आदमी के साथ सेविका को मिलना जुलना न चाहिये।

(६) जिस घरमें एक बार प्लेग होगया है, उस घरमें फिरसे रहना होतो घरको पुरे तौरसे बिशुद्ध करलेना चाहिये। शहरमें मिउनिसिपलटी को खबर कर देनेसे बिनाखर्च सफाईका काम हो जाता हैं। मफ:स्सिलमें जिन्लोगोंको घर साफ़ करनेकी जरुरत

पड़े वैलोंग सबसे पहिले घरका दरवाजा और खिड़की खोल उसमें अच्छीतरहसे धूप और हवा पहुंचने देना चाहिये, हवा और धूप प्राकृतिक संशोधक उपादान है। फिर पारक्लोराइड् अफ-मार्कारि मिश्रित पानीसे घरकी दीवाल कड़ी आदि धोना चाहिये। यह विशोधक द्रव्य डाक्टरखानेमें मिलता है। दाम भी ज्यादा नही है। फिर घरमें चूनाकाम करलेना सबसे अच्छा है।

(७) कलकत्ता या और कोई बड़े शहरमें प्रवासी रूपसे रहने की इच्छा करने वाले मकानभाड़ा लेनेके आगे पहिले पता लगा लेना चाहिये कि यहां पर प्लेग रोग होनेके बाद कमरे की अच्छी तरह से सफाई हुई है कि नही।

(८) प्लेग-रोगी जो सब कपड़ा बिछौना और पहिनने का पोशाक व्यवहार करता हैं, वह रोग विषसे जहरीला होजाता है। अवस्था वैगुण्य से इन सबको फेंक या जलादेना अथवा विशोधक चीजकी मददसे अच्छी तरह से साफकर धूपमें सुखालेना चाहिये। जो लोग यह सब को जलाकर फेंक सकतें है। उन्लोगों को वही करनाही ठीक है।

(९) खास गभर्णमेण्ट और म्युनिसिपल डाक्टर लोगों का सिद्धान्त यह है कि रोग तत्वको जानने वाले डाक्टर हाफ्किन् के निकाले हुये बीजसे प्लेगका छापा लेनेसे प्लेग आक्रमण नही कर सकता या करनेसे भी वह प्राणघातक नही होता। छापा लेने के सम्बन्धमें भिन्न आदमीका भिन्न मत है। अभी तक इस विषयका कुछ ठीक यानें पक्का सिद्धान्त नही हुवा है। जोलोग अच्छा समझते है वे लोग लेसकते है।

(१०) जिस जगह प्लेग देखाई दे वहां भीड़ घटानेकी कोशिश करना चाहिये (याने ज्यादे भीड़ न होने देना चाहिये)।

घरके एक कमरेके चार या पांच आदमी सोते है, नाना स्थानसे पाहुने भी आकर कुछ दिन के लिये आकर रह जाते है। एक घरमें अधिक आदमो के रहनेसे प्लेगका असर बाकीयां परभी पड़ सकता है।

(११) प्लेगके के समय हर घरवालेको चाहिये कि अपने घरके चारोतरफ को मोरी नर्दमा वगैरह को फिनाईल और बिशोधक चोजसे सफाई करना चाहिये। रोगके वढनेके वक्त हररोज ऐसा करनेमें बहुत अच्छा है। लेकिन अवस्था के अनुकुल न होनेसे हफ्तेमें कम से कम तीन दिन इस तरफ ध्यान रखना चाहिये।

(१२) सिर्फ अपनेही सफाई के साथ रहनेसे नही चलेगा पड़ोसी को भी सफाई रखनेकी जरूरत समझाकर उसको समय के माफिक कर्त्तव्य पालन करनेसे वाध्य करना चाहिये। हरेक गलोके पढ़े लिखे आदमो यदि अज्ञ और निरक्षर आदमियो को घर वगैरह और उसके चारोतरफ सफाई रखनेको आवश्यकता समझा काम करानेसे गली प्लेग मुक्त हालतमे रह सकतो हैं।

(१३) नोचेके कमरेमें प्लेग ज्यादातर हुया करता है। उपर के घरमे धूप और हवेका वन्दोवस्त रहने से रोगके वढ़न्तो को उमेद कम रहतो है जिन लोगों का पक्का मकान है उन लोगोंको प्लेग के समय दोतल्ले पर रहना चाहिये।

(१४) जो लोग नोचेके घरमें रहते है और जिनलोगोंको कच्चे मकान के सिवाय रहनेका और कोई उपाय नही है। वे लोग रहनेकी जगह खुब साफ और परिच्छन्न रखे। हर रोज बराबर सवेरे खिड़की खोल शूद्ध हवा और धूप पंहुचना चाहिये।

तथा हररोज सवेरे किवाड़ो और खिड़की खोलकर धूप और हवा का निकास कर देना चाहिये।

(१५) बहुतेरोंका मत है कि प्लेग बहुत संक्रामक होने परभी प्लेग रोगीके शरीरमें संक्रामकत्व नही रहता रोगीके घरका मैला, कतवार अशुद्ध हवा, गन्दा कपड़ा आदि संक्रामक है। यथासाध्य उन सबोंको त्याग करना चाहिये।

(१६) चेचक रोगी का विष हवेसे चारो तरफ फैलता है। लेकिन प्लेग का विष जमीन मे ही रहता है (याने एक जगह से दुसरे जगह नही जाता) प्लेग दुषित जमीन पर ही चुहे मरते है। जिस विषसे चुहे आंक्रान्त होते है। उस बिषसे वच जाना मनुष्य के लिये असम्भव है। इसीलिये उस जमीनको अच्छी तरह से पारक्लोराइड अफ मार्कारि द्रव्यसे विशोधन करलेना चाहिये।

(१७) किसी जगह में ज्यादा चूहा मरता होवेतो वहां समझना चाहिये कि यह जगह पुरे तौर से विषाक्त होगयी है जोते चूहे कोई ढंगसे मार डालना चाहिये। अगर किसी घरमें चूहा मरेतो उसे चिमटा व संड़सी से पकड़ किरोसिन तेलमें भिगो कर जला देना चाहिये। मरे चूहेको हाथसे छूना बड़ा विपज्जनक है।

(१८) ऐसे वक्त चूहा अगर काटे तो उसीवक्त डाकर खानासे कार्ब्बलिक लोशन या और कोई विशोधक चीज मंगाकर काटे हुवे स्थानको धो डालना चाहिये।

(१९) प्लेग के समय व्यर्थ धुपमें न फिरना चाहिये, भुखे न रहना चाहिये, रातभर जागना और ज्यादा मेहनत

करना मना है। इन सब कामोंसे देहमें कान्ति और ताकतकी कमी होती हैं।

(२०) हरवक्त बुरे ख्याल न करना चाहिये, घरमें व घरके पास प्लेग हुवा सुनकर अपने आपसे बाहर न होइयेगा। विपद के समय चित्तको दृढ़ता होना अत्यावश्यक है।

(२१) घरके सामने महीन चूना छितरा देना चाहिये। नंगे पांव कभी घुमना नहीं चाहिये। भुखे कभी भी किसी रोगी के पास न जाना चाहिये।

(२२) धूप, शुद्ध हवा और अग्नि यही तिन प्रकृत प्रदत्त दवा है। घर को साफ और उजियाला रखना ही संक्रामकता के नाशका प्रधान उपाय हैं।

(२३) प्लेग के प्रकोप के वक्त देह को हर तरह से साफ रखना चाहिये। रोज सबेरे प्रातःकृत्य समापन कर शरीर का धूला व कादेका अच्छी तरह से दूर करना चाहिये। नहानेके वक्त बहुतसा कड़वा तैल बदनमें मलकर नहाना चाहिये। जो लोग साबुन इस्तमाल करते है। उन लोगो का इस मौके पर साबुन इस्तमाल न करना चाहिये। शुद्ध सरसोंका तेल शरीरके छिद्र को कार्य्यशील करता है। इसीलिये उसके भीतर को मैल वगैरह चमड़े के साथ बाहर निकल आती है।

(२४) कामकाल के अनुरोधसे सबको वाहर जाना पड़ता हैं। हर बार बाहर से भीतर आनेके वक्त मुह नाक अच्छो तरह से साफ करलेना चाहिये।

(२५) दुर्गन्धमय मोरी व नदमा के पाससे जाना पड़ेतो नाक अच्छीतरह बन्द कर जाना चाहिये। एक रुमाल इत्र वगैरह लगा सुंघना चाहिये।

(२६) सबेरे और शामको भींगें कपड़ेसे बदनको अच्छी तरह पोंछलेना चाहिये। नहानेसे आगे या बाद इसके सिवाय शरीर के लोमकूप साफ और कार्य्यक्षम रखने का उपाय दूसरा नही है।

(२७) हाथ या पावका नाखून बड़ा होनेसे उसके भीतर मैला जमता है। इस मैले से नाना प्रकार के नुक्सान करने वाली चीजें रहती है। महामारी प्रकोपके समय हफ्ते में दो दिन नाखून कटवा देना चाहिये। इस वक्त चित्तको धर्म्मवलसे बलीयान करना चाहिये क्योंकि चित्तबल ही श्रेष्ठ बल है।

(२८) हररोज दोनो वक्त खाना खाने के पेश्तर हाथ, पाव के नाखून को अच्छा तरहसे साफ करलेना चाहिये। हिन्दु लींग अंगुली के मददसे खाना खाते हैं। ऐसा करनेसे खानेके चीजमें नाखूनका मयला मिलजाने का डर नहीं रहता।

(२९) हिन्दु मात्र ही सबेरे प्रात:कृत्यसे छुट्टी पा रातके कपड़े को बदल देते है। प्लेग के प्रकोपके समय दिनभर जिस कपड़े को इस्तामाल करेगें उसे रातका इस्तामाल न करना भीतरके कपड़ेमें शरीर का मयला जमजाता हैं। इसलिये इसे दो एक दिन में साफ करलेना चाहिये।

(३०) जो लींग घरके अच्छे हैं और घरमें गोशाला अस्तबल रखते है। घर के सफाई के साथ साथ अस्तबल वगैरह कीभी सफाई के तरफ ध्यान रखना चाहिये। घरमें पाले हुवे पक्षी और जानवर रहे तो उन्हे उसे दूसरे जगह हटा देना चाहिये। कारण पशु पक्षी प्लेग के प्रकोप को बढ़ानेमें मदद करते है।

(३१) पायखाना, ड्रेन, नाला मोरी वगैरह को साफ रखनेकी बात पहिले ही कहा जा चुकी है। फेनाइल बजारमें

बनिया व डाक्टरखाने में मिलता है। दामभी कम है। अगर कोई नाली व मोरी मे से दुर्गन्ध निकले, तब समझना चाहिये कि वह अच्छी तरह से साफ नहो है। एक बालटी व लोटा में थोड़ासा फिनाइल के साथ चौगुना पानो मिला इस सब स्थानोंमे रोज डाल देना चाहिये। सामान्य दो चार आने की किफायत कर फिर सैंकड़ो रुपये डाक्टर बुलाने में खर्च करना वुद्धिमानों का काम नहीं है।

(३२) बजार की मिठाई का खाना एकदम निषिद्ध है अपने घरमेही जलपानका बन्दोवस्त करलेना चाहिये। इसमे खर्च कम होता है और साथही साथ रोगाक्रमण का डर नहो रहता दुकान की मिठाई हरवक्त धूला मखी मैला आदि सब चीज पड़ी रहती है। बाजार से तरकारी वगैरह भी घर लेजानेसे पहिले अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

(३३) मखी व मच्छड़से खाद्यद्रव्यमें रोग बीज संचारित हो सकता है। इसलिये खाने के चीजोंको हरवक्त ढांक रखना चाहिये। जिस खानेकी चीज में मखी व मच्छड़ पड़ जाय तो उसे न खाना चाहिये।

(३४) १ आउन्स कार्वलिक एसिड् १९ आउन्स गरम पानी के साथ मिलानेसे कार्वलिक लोशन तैयार होता है। फिनाईल लोसन भी ऐसे ही तेयार होता है। Chloride of lime (Bleaching powder) का दाम कम हैं। एक छटाक Chloride of lime तीन सेर पानी में मिलानेसे लोशन तैयार होता है। ब्लिचं पाउडर व कार्वलिक पाउडर की छितरा देनेसे संक्रामता की नाश व भूमिकी शुद्धता होती है। प्लेग की समय इन सब की सहायता से खूब सफाई चारोतरफ रखना चाहिये।

प्लेग बीज के नाश करनेका उपाय।—

आगे कहा गया है कि स्वास्थ विधानानुमोदित थोड़ेसे रासायनिक द्रव्य के मददसे रोगके गिल्टी व माइक्रोब नष्ट हो सकता हैं। यह रसायन चीजें कलकत्ते के हरदवाखानेमें मिलती है मफःस्सिल के बड़े बड़े डाक्टरखानों में भी मिलती है। इसका दाम भी इतना थोड़ा है कि भविष्यत् में सैकड़ो रुपये चिकित्सा के लिये खर्च करने के सामने यह कुछ नही है। रोग होने पर उसे आराम करनेके लिये चिन्ता न कर धैर्य्य धारण करना चाहिये और जिससे घरमें रोग अपना असर न जमा सके वैसी कोशिश करना चाहिये। आजकल कलकत्ते व और और जगहों में लोग बड़े बड़े डाक्टरखानोसे डिसइनफेक्टान्ट या विशोधक द्रव्य खरीद कर रोज अपने मकान की सफाई किया करतें है। इसे समयोचित शुभ चिह्न बोलना चाहिये। विशेषतः प्लेग के फैलनेके समय ऐसी व्यवस्थासे यथेष्ट लाभ होसकता है। जो सब दवायें गिल्टी नाशक और जीव के जीवन रक्षामें मदद पहुंचाती है, तथा जो सब हालत मनुष्योंके आयत्ताधीन है हम यहां उसके कई एक सहज उपाय का उल्लेख करते हैं।

जिस जमीन पर प्लेग के कीड़े फैले और जिस वायुके झोंकसे कीड़े इधर उधर फिरतें है तथा जिस सूर्य्यकिरण से रोग जीवाणु अपना अस्तित्व स्थाई न रख सके। उसी जमीन पर हवा और धूप सर्व्वश्रेष्ठ विशोधक पदार्थ है। घरकी खिड़की व किवाड़ खोलदेनेसे या घरके भीतर अग्निजलाने से सहजही में कीड़े मर जातें है। इङ्गलण्ड वगैरह देशमे कमरेके भितर अग्नि जलानेका नियम है। शीत प्रधान देशमें गरम हवा के लिये जोसब कमरें तैयार होतें है। वे सब विशेष प्रक्रियासे बने रहते है। लेकिन

हमारे गरम देशमें इन सबका प्रयोजन नहीं है। दोपहर के वक्त ३।४ घण्टा घर के किवाड़ व खिड़की खोल दिया जाय तो सहजही में कीड़े मर जाते हैं। २४० से २५० डिग्री फारेनहिट तापसे कीड़े नष्ट हो जाते हैं। सूर्य्य किरनसे यह ताप संग्रह करना बहुत कठिन है। घरके सब जगह में व उसके भीतर वाली चीजोंमें जिसमें खूब ज्यादा सूर्य्य किरण पड़े वैसी व्यवस्था करना। इसके बाद फिर पानी। दूषित जलको अच्छी तरह गरम करने हीसे रोग बीज नष्ट होता है। रासायनिक विशोधक द्रव्यको उस गरम जलमें मिला रोगीके कपड़ेको धोना चाहिये। धोनेसे कपड़ा निर्द्दोष होजाता है, और उसके भीतर वाले कीडे भी नष्ट होजाते है।

इस देशके राजधानीयोंमें म्युनिसिपल्टी के परिशोधक वाष्पागार या Disinfecting chamber हैं। इङ्गलण्डमें ऐसी कोई म्युनिसिपल्टी नहीं है जहां यह न हो। गृहस्थ के घरमे इसका वन्दोवस्त होना बहुत कठिन है। गद्दो, गलीचा, तकिया, कम्बल वगैरह जिसे घरमें गरम पानीसे धोने लायक नहीं है ऐसी चीजों को म्युनिसिपल्टी के वाष्पागारमें भेजना चाहिये।

कार्व्वलिक एसिड से भी रोगबीज नष्ट होता है। लेकिन यह बहुत तीव्र विष है। इसको घरमें खूब सावधानी से रखना चाहिये। लड़के वाले इसके पास न जासकें वैसी व्यवस्था करना चाहिये। क्यालभर्टका आसिड सबसे बढ़िया विशोधक पदार्थ है। आजकल इस देशमें रासायनिक पदार्थ बनानेके जगहमें भी कार्व्वलिक आसिड बनता है। यह लोशन की तरह व्यवहार होता है। एक आउंस आसिड व ३८ अउंस गरम पानी मिलानेसे जो लोशन तैयार होता है उससे वदनका चमड़ा व दुषित कपड़े बीज शून्य

किये जा सकते है। रोगी को पिकदानी मे इस विशोधक, द्रव्यको डाल देना चाहिये। एक आउंस कार्व्वलिक आसिड को दश गुने पानीके साथ मिला घरका कपड़ा मैला पिसाब वगैरह सब चीजों को सफाई करना चाहिये। कार्व्वलिक लोशन हाथ पांव वगैरह धोनेसे भी व्यवहृत होता है। कार्व्वलिक पाउडर वाजार में मिलता है। लेकिन जहांपर ऐसे सूबीते का अभाव है। वहां पर एक आंउस कार्व्वलिक आसिड् के साथ आधासेर वालु मिलाकर पाउडर बनाया जा सकता है। इसे ड्रेन मोरी व नालीमें देनेसे प्लेगके कीड़े नष्ट होते है।

क्लोराइड अफ लाइम एक दामी चीज है, यह आध सेर २ सेर पानी के साथ मिलाकर जो मिश्र बनता है उससे ड्रेन, पायखाना वगैरह साफ हो सकता हैं। यह एक छंटाक तीन सेर पानी के साथ मिला घरके असबाव वगैरह विशोधित हो सकतें है। किरोसिन् सब्लिमिट या रस कपुर वड़ा बिषाक्त पदार्थ हैं। इसको मिलानेसे थोड़ी नैपुण्यता को जरुरत है। इससे डाक्टर खाने से इसको बनवा लेना चाहिये। इसे खुब सावधानी स रखना चाहिये। रोगीका मयला व मयलायुक्त कपड़ा घरको दिवाल वगैरह इसीसे धो लेना चाहिये सलफेट अफ आइरन या हीराकस डेढ़ सेर २ सेर पानीके साथ मिलानेसे लोशन तैयार होता है। ड्रेन व रोगी के मलपात्रको विशोधन करनेसे इसकी बहुत आवश्यकता हैं। पायखाने के लिये भी यह इस्तमाल किया जा सकता हैं, बजार में (Condy's fluid) नामक एक प्रकार का लोशन विकता है। यह पार्म्माङ्गानेट अफ पटास का सत् है। एक छटाक Condy's fluid को तीनसेर पानीके साथ मिलानेसे जो लोशन तैयार होता है। उसे सेविका व घर

के और लोगों के हाथपांव धोनेमें जरूरत पड़ सकता है। कै वगैरह भी इसी से धोया जाता है। गन्धक जलाने से जो भाप निकलता हैं उसे सालफुरिक आसिड ग्यास कहते है। घर साफ करने में यह इस्तमाल होता है। किवाड़ व खिड़की अच्छी तरह से बन्दकर शोधन करने लायक कपड़ोंको रस्सी के उपर फुला रखना घरकी दीवाल, छत् वगैरह को अच्छीतरहसे पानी से तर करना। १८०० फिट स्थान को विशोधन करने वक्त निम्न-लिखित उपाय अवलम्बन करना चाहिये। एक सेर गन्धक तोड़कर छोटा छोटा टुकड़ा करना फिर ऐक मिट्टीके वर्त्तन में मिथिलेटेड् स्पिरिट को एक वाल्टी पानी के उपर रखना चाहिये। इसके वाद स्पिरिट को जला घरको चारो तरफ से बन्द करदेना चाहिये। २४ घण्टे ऐसा करने के बाद किवाड़ खिड़्की को खोल शुद्ध हवा आनेदेना चाहिये। स्पिरिट के अभाव में मिट्टी के पात्रमें भी गन्धक को जलादेने पर भी काम चल सकता हैं।

सुचीपत्र ।

—:०:—

प्रथम खण्ड ।

स्वास्थ्यविधि ।

रोग-परीक्षा ।

नाड़ी परीक्षा ।

तापमान यन्त्र।

मूत्रपरीक्षा।

नेत्रपरीक्षा।

अरिष्ट-लक्षण।

रोग-विज्ञान।

ज्वर।

प्लीहा ।

पांडु और कामला।

रक्तपित्त।

राजयक्ष्मा और क्षतक्षीण।

कासरोग।

हिक्का और श्वासरोग।

हृद्रोग ।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात ।

अश्मरी ।

प्रमेह ।

सोमरोग ।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग ।

मेदो रोग।

उदर रोग।

शोथ रोग।

कोषवृद्धि।

गलगण्ड और गण्डमाला।

श्लीपद।

विद्रधि व्रण।

भगन्दर।

उपदंश और व्रध्न।

कुष्ठ और श्वित्र।

शीतपित्त।

अम्लपित्त।

विसर्प और विस्फोट।

रोमान्ती और मसूरिका।

चुद्ररोग।

मुखरोग।

कर्णरोग।

नासारोग।

नेत्ररोग।

शिरोरोग।

स्त्रीरोग।

गर्भिणी चिकित्सा।

सूतिका रोग।

स्तनरोग और स्तन्यदुष्टि।

वालरोग।

द्वितीय और तृतीय खण्ड।

परिभाषा।

धातु आदिकी शोधन और मारण विधि।

यन्त्र परिचय ।

पारिभाषिक संज्ञा ।

पथ्यप्रस्तुत विधि।

ज्वराधिकार

वातज्वर में।

पित्तज्वरमें।

श्लेष्मज्वरमें।

वातपित्त ज्वरमें।

वातश्लेष्म ज्वरमें।

पित्तश्लेष्म ज्वरमें।

नये ज्वरमें।

अभिन्यास ज्वरमें।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।

प्लीहा और यकृत्।

शोकादिजातिसारमें ।

पित्तकफातिसारमें ।

वातकफातिसारमें ।

वातपित्तातिसारमें ।

पक्कातिसारमें ।

ग्रहणी ।

अर्श (बवासीर)

रक्तपित्त ।

राजयक्ष्मा ।

कास ।

हिक्का और श्वास ।

कोषवृद्धि ।

गलगण्ड और गण्डमाला ।

श्लीपद ।

विद्रधि और व्रण ।

भगन्दर ।

उपदंश ।

कुष्ठ और श्वित्र ।

चतुर्थ खण्ड।

विष चिकित्सा।

वैद्यक-शिक्षा

पञ्चम खण्ड।

शरीर विज्ञानकी सारबातें।

वैद्यक-शिक्षा

षष्ठ खण्ड ।

नरदेहतत्त्व और जीवविज्ञान ।

अस्थि ।

पेशीसमूह ।

स्नायुसमूह ।

मस्तिष्क ।

मेरुरज्जु ।

शरीर और मन ।

शोणित सञ्चालन प्रणाली ।

शोणित सञ्चालन ।

धमनी या आर्टरि ।

आदि कण्डरा ।

कैशिक, रक्तनाड़ी और शिरासमूह।

हृत्पिण्ड छेदित।

खाद्य और परिपाक।

पाकस्थली।

अन्त्रमण्डल।

प्लीहा।

वृक्कद्वय।

वैद्यक-शिक्षा।

सप्तम खण्ड।

धात्री-विद्या।

सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

वर्णानुक्रमिक निर्घण्ट ।

—:०:—

शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध।

52क

फ।

शास्त्रीय औषध।

ब।

ल ।

शास्त्रीय औषध ।

श ।

शास्त्रीय औषध।

ष।

शास्त्रीय औषध।

ह।

शास्त्रीय औषध।

सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

वैद्यक शब्दसिन्धु ।

आयुर्व्वेदीय सुवृहत् द्रव्यगुणाभिधान ।

द्रव्यगुण व द्रव्य दोनो आयुर्व्वेदका प्रधान अङ्ग है। इस विषय के यद्यपि पुराने जमाने से कई एक संस्कृत निघण्ट प्रचलित है, पर उसे बिना गुरुके समझना कठिन है। और फिर उसमें आजकालके प्रचलित दवायोंका नाममात्र भी नहीं है। इसलिये निघण्टमें अभिधानका अभाव दूर नहीं हो सकता है। इसीलिये सर्व्वसाधारण के आग्रहसे "वैद्यक-शब्दसिन्धु" बनाया गया है। इसमें आयुर्व्वेदोक्त समस्त औषधियोंके नाम संस्कृत, ल्याटिन, हिन्दी, तेलेगु, तामिल, उड़िया, बंगला आदि और चलित भाषामें दवायि का गुण प्रयोग प्रमाण, नामी दवायोंकी बनाने की तर्कीब धातु आदिके शोधने की तर्कीब आदि जानने लायक बातें इसमें लिखी गई हैं। इस प्रकारका सर्व्वाङ्ग सुन्दर आयुर्व्वेदीय अभिधान दूसरा नहीं है।

कलकत्ता संस्कृत कालेज के भूतपूर्व्व पुस्तकाध्यक्ष स्वर्गीय उमेशचन्द्र गुप्त कविराज महाशयने इस पुस्तकको सर्व्वप्रथम प्रति खण्ड १०) में बेचा था। उनके वैकुण्ठवासी होनेपर इस पुस्तक का समस्त अधिकार मैंने खरीद कर इसका दूसरा संस्करण प्रकाश किया है। इस संस्करण में पुस्तक का आदि अन्त सब अच्छा तरह संशोधन आवश्यकतानुसार जगह जगह अदल बदल और कई एक नये विषयों से इसे बढ़ाया गया है। हरजातियोंके सुबीते के लिये यह देवनागरी अक्षरमें छपवाया गया है। तथा आगे के वनिस्वत आजकल रुपये का अभाव देखकर दामभी आगेसे घटा दिया हैं। इतने बड़े पुस्तकका दाम ६) डाकमहसूल १।) आने।

कविराज नगेन्द्रनाथ सेन एण्ड कों० लिमि:,

१८।१ व १९ नं० लोवार चित्पुर रोड, कलकत्ता।